THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180411

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—391 29-4-72—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 Accession No. G. H626

Author G 98P

Title गुरुदत्त

This book should be returned on or before the date last marked below.

कर सके। जो लोग इसे केवल एक मत समझते थे वे इसके साथ, अन्य मत-मतान्तरों की भाति, प्रेम का अथवा प्रेमयुक्त आलोचना का व्यवहार करते रहे हैं। दादू, कबीर, नानक, रामानुज और अन्य मुसलमानी काल के साधू-सन्त इसी श्रेणी के लोग हुए हैं। उन्हें सफलता नहीं मिली। ये लोग मुसलमानों में विचार-परिवर्तन नहीं कर सके। उसके स्थान पर प्रत्येक महात्मा हिन्दुओं में एक नया मत छोड़ गया है। उनके मत प्रचलित वैष्णव मत और इस्लाम के बीच समझौता-स्वरूप हैं। इस पर भी वे अपने विचार एक भी मुसलमान को नहीं दे सके। यथार्थ में वे भूल में थे। वे इस्लाम को ठीक रूप में नहीं समझे थे। दूसरे पक्ष के लोग भी थे जो इस्लाम को एक विदेशी राजनीतिक शक्ति समझते रहे हैं। राजनीति में दाव-पेंच होते हैं। कभी सुलह, कभी विग्रह होता है। जो लोग इस्लाम को केवल राजनीतिक दल समझते रहे थे वे इसके साथ समय समय पर झगड़ा और मित्रता करते रहे हैं। राणा प्रताप और अन्य हिन्दू राजा-महाराजाओं ने इसी नीति का अवलम्बन किया था। ऐसा करते समय वे भूल गये थे कि इस्लाम एक पृथक मत भी है। मित्रता करने वालों ने अपनी लड़कियाँ उनको दीं, परन्तु वे उनकी लड़कियों को नहीं ले सके।

इस्लाम के विपरीत सफलता मिली थी शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, बन्दा वैरागी इत्यादि को। कारण यह था कि जहाँ ये लोग इस्लाम की राजनीतिक शक्ति को क्षीण करने का यत्न करते थे वहां इस्लाम को एक मज़हब मानकर भी विरोध करते थे।

काग्रेस मुसलमानों से राजनीतिक समझौता करना चाहती थी। इसमें उसे सफलता नहीं हुई। कारण स्पष्ट है। दोनों संस्थायें एक ही क्षेत्र में नहीं विचर रहीं। मुस्लिम संस्थायें जहा मज़हबी हैं वहां राजनीतिक भी, और कांग्रेस केवल एक राजनीतिक संस्था है। मुस्लिम संस्थाओं का समझौता यदि हो सकता है तो ऐसी ही मज़हबी और राजनीतिक संस्था से। हिन्दू सभा तथा अन्य कोई ऐसी संस्था ही इस कार्य के लिये उपयुक्त है।

अतः कांग्रेस-नीति में परिवर्तन की आवश्यकता है।

जब तक इस्लाम मत होने के साथ साथ एक राजनीतिक संस्था बनी रहेगी तब तक हिन्दुस्तान क्या संसार के किसी भी देश का इसमें सहयोग असम्भव है। टर्की, मिश्र इत्यादि देशों में इस्लाम केवल एक मज़हबी मात्र रह गया है। मुल्ला-मौलानाओं के हाथ से राजनीतिक शक्ति छिन गई है। वहां पर अब वह समस्या नहीं रही जो आज भी हिन्दुस्तान के सम्मुख है। हिन्दुस्तान में अब भी जहां जहां जितनी भी शक्ति मुसलमानों के हाथ में है वहां तब्लीग और राजनीति साथ साथ चलते हैं। इससे मुस्लिम समस्या उपस्थित है। भूपाल, हैदराबाद, बहावलपुर इत्यादि रियासतों में जहां मुसलमान हुक्मरान हैं वहा राजनीतिक सत्ता रखते हुए इस्लाम का प्रचार और दूसरे मतों के प्रचार में बाधा विद्यमान है।

इस समस्या को हल करने के दो उपाय हैं।। प्रथम तो यह है कि इस्लाम में परिवर्तन हो जाय। वह या तो एक विशुद्ध राजनैतिक शक्ति रह जाय, अर्थात इस संस्था में कुरान और हज़रत मुहम्मद पर ईमान रखने की पाबन्दी न रहे। किसी भी प्रकार का मज़हबी विश्वास रखने वाला सबके बराबर अधिकार प्राप्त कर सके। या इस्लाम एक विशुद्ध मज़हबी संस्था बन जाय, अर्थात मज़हब के नाम पर राजनीतिक अधिकारों का बटवारा न हो। ऐसी अवस्था में हिंदुस्तान में यह समस्या सुलझ जायेगी। परन्तु ऐसा करना किसी एक व्यक्ति के आधीन नहीं और कोई अन्य मतावलम्बी उनमें यह परिवर्तन कर भी नहीं सकता। हिन्दुस्तानी मुसलमानों में कमाल पाशा के से व्यक्ति की आवश्यकता है।

इसका दूसरा यह उपाय है कि मुसलमानों से निपटने वाले समझ लें कि वे एक ऐसी शक्ति से टाकरा ले रहे हैं जो न केवल राजनीतिक है, प्रत्युत मज़हबी भी। यह कुरान और तलवार दोनों को साथ साथ रखती है। इसका विरोध अथवा इससे मित्रता करने वाली शक्ति भी ऐसी ही होनी चाहिये।

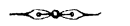
इस पुस्तक के लिखने तथा छपाने में श्रीयुत रामप्रताप जी गोंडल

एम० ए०, साहित्यरत्न से बहुत सहायता मिली है। लेखक उनका इन और अन्य अनेकों सहायताओं के लिये बहुत धन्यवाद करता है।

चैत्र कृष्णपक्ष द्वादशी
सं० २००० विक्रमी

गुरुदत्त

अनुक्रमणिका



१—आपित मन्दिर १

२—चुनाव ८१

३—स्टूडैंट्स फैडरेशन १४६

४—विवाह अथवा संघ-कार्य २५३

५—पथिक अथवा मधुसूदन ३६४

किसी के अति मधुर स्वर में गाने का शब्द सुनाई दिया। कोई गा रहा था:-

बंदों श्री हरि पद सुखदाई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे,
अंधरे को सब कुछ दर्शाई.....

लड़की ने पहले सिर उठाकर गाने वाले की ओर देखना चाहा। वह घाट पर जल के समीप खड़ी थी। किनारा ऊंचा था, इस कारण वह गाने वाले को नहीं देख सकी। वह अपनी छोटी सी गगरी को, जो उसने जल से भरकर सीढ़ी पर रखी थी, वहीं छोड़, भागकर घाट की सीढ़ियों पर चढ़ गई और बगिया की ओर देखने लगी।

बगिया में, मन्दिर के बाहर चबूतरे की सीढ़ियों पर एक, सिर नंगा, बड़ी २ दाढ़ी-मूँछों वाला आदमी बैठा गा रहा था। लड़की ने अपनी मां और अन्य गांव वालों से सुना हुआ था कि इस मकान में भूत रहते हैं। अस्तु, इस गाने वाले को उसने भूत समझ लिया और चिल्लाकर मां से कहने लगी, 'मां, भूत!' और उंगली से श्रापित बगिया की ओर संकेत करने लगी।

मां भी दौड़ती हुई घाट के ऊपर चढ़ आई और गाने वाले की ओर देखने लगी। न जाने गाने वाले ने उनको देख लिया था अथवा वैसे ही, वह मन्दिर की सीढ़ियों से उठा। उठने पर तो उसकी आकृति और भी भयानक प्रतीत होने लगी। वह धीरे २ घाट की ओर आने लगा।

दोनों मां-बेटी अपने आपको अकेला जान भय से कांपने लगीं और फिर बिना अपने गीले कपड़े और गगरे उठाये गांव की ओर 'भूत! भूत!' चिल्लाती हुई भाग खड़ी हुईं। भागते हुए उनको किसी की विकराल हंसी पीछा करती हुई सुनाई दी।

गांव, नदी के किनारे से कुछ दूर हटकर, बगिया से दक्षिण की ओर था। गांव में आगे २ मां और पीछे २ लड़की को चिल्लाते और भागते हुए देख सब लोग घरों से बाहर निकल आये और अचम्भे में उन्हें देखने लगे।

मां-बेटी जब अपने घर में घुसने वाली थीं तो पड़ौस की कुछ स्त्रियों ने उन्हें रोक ही लिया। "अरी, बतातीं क्यों नहीं ? क्या हुआ है ? क्यों भागी चली आती हो ?" उन्होंने घबराहट में पूछा।

नलिनी, यह लड़की का नाम था, पकड़े जाने पर खड़ी होगई, और हांफते हुए, अवाक् दूसरों की ओर देखती रह गई। यह देख गांव के और लोग भी एकत्रित हो गये। आखिर नलिनी की मां को बताना ही पड़ा। वह बोली, "श्रापित मन्दिर में भूत देखा है।"

"तुम वहां गयी ही क्यों थी ?" एक ने पूछा।

"गयी नहीं थी। घाट पर स्नान कर धोती छांट रही थी कि बिटिया ने मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठे देखा और मुझे दिखाया। जब हमने उसे अपनी ओर आते देखा तो हम भाग खड़ी हुईं। हाय रे ! बाप रे !! अब हमारे कपड़े-गगरा कौन लायेगा ?"

[२]

उस दिन घाट पर स्नान के लिये कोई नहीं गया। गांव भर में हलचल मच गई। गांव की पंचायत बुलाई गई और भूत से बचने के उपायों पर विचार होने लगा। कुछ लोगों ने, गांव के दक्षिण में, पद्मा पर नया घाट बनवाने का प्रस्ताव किया। ज़मींदार, जो लखनऊ ताल्लुकेदार स्कूल से पढ़कर आया था, भूत की कथा पर और गांव वालों की मूर्खता पर हंसते हुए बोला, "देखो जी, भूत-वूत कुछ नहीं होते। यह सब तुम लोगों का भ्रम मात्र है। एक पगली स्त्री के कहने पर तुम सब लोग साहस छोड़ बैठे हो। और फिर घाट एक दिन में तो बनेगा नहीं। तब तक स्नान करने और पानी भरने का क्या प्रबन्ध होगा ?"

इस पर एक गांव वाला बोला, "महाराज !" (अवध में बड़े २ ज़मींदारों को राजा और महाराजा कहकर पुकारा जाता है) "महाराज, यदि आपको खर्चा करने में संकोच हो तो चंदा कर लिया जाय।"

ज़मींदार अभी बाईस-तेईस वर्ष का युवक था। इस लाञ्छन से भड़क उठा। बोला, "रुपया खर्च करने में संकोच नहीं है, परन्तु केवल

एक स्त्री की मूर्खता से हज़ारों रुपये व्यय करना भी क्या अक्लमन्दी है ?"

"तो क्या भूत नहीं होते ?"

"नहीं।"

"क्या आपित ज़मींदार आप से नहीं मरा ?"

"नहीं, अपनी मौत मरा है।"

"इसी कारण तुम भी उसी मार्ग का अनुकरण कर रहे हो।"

इस पर बहुत से लोग, खुशामद से अथवा किसी अन्य कारण से, ज़मींदार की बात काटने वाले को धिक्कारने लगे।

उस आदमी ने फिर कहा, "यदि भूत नहीं होते तो, महाराज, हमारे आगे २ चलकर बग़िया और मन्दिर की तलाशी कर देखें कि वह कौन है जो वहां गा रहा था ? मैंने अपने कानों से वहां किसी को गाते सुना है।"

इस पर युवक ज़मींदार ने वहां जाना स्वीकार कर लिया। वह और गांव के कुछ अन्य युवक, लाठियां ले, जाने को तैयार हो गये। यद्यपि सब अपने २ मन में डरते थे, परन्तु एक दूसरे के सम्मुख भय प्रकट करने में लजा मान घाट पर चलने को तैयार हुए थे। कुछ लोग तो तमाशा देखने के लिये ही चल पड़े थे।

पुरुषों को भय के स्थान पर जाते देख भला स्त्रियां कब पीछे रह सकती थीं। जब उनके प्रियजन, पति, पुत्र तथा भाई, अपनी जान हथेली पर रख, सौ वर्ष से प्रचलित विश्वास की परीक्षा करने जा रहे थे, तो वे घरों में बैठी नहीं रह सकती थीं। बिना किसी परामर्श के, बिना संगठन के, बिना किसी प्रकार की लजा-संकोच के गांव की प्राय: सब प्रौढ़ा स्त्रियां, पुरुषों के पीछे २ घाट की ओर चल पड़ीं। लड़के-लड़कियों ने भी घर बैठे रहना उचित नहीं समझा। वे भी अपनी माताओं के पीछे पीछे हो लिये।

जब ज़मींदार, पुरुषों की लाठियों से सुसज्जित टोली के साथ, घाट पर पहुँचा तो उसने वहां एक अपरिचित आदमी को गहरी नीद में सोते देखा। उसे देख ज़मींदार ने कहा, "पूछो तो, कहीं नलिनी की मां इसे

ही तो भूत नहीं कह रही थी ? यह तो कोई भला मनुष्य प्रतीत होता है।"

यह ठीक था कि उस सोये हुए मनुष्य के बाल बड़े २ हो गये थे। उसकी दाढ़ी और मूँछें बढ़ रही थीं। उसके कपड़े मैले और फटे हुए थे। जूता घिस गया था और जूते के तले में सूराख हो गये थे। इस पर भी उसके मुख पर एक विशेष आभा थी। घाट पर के नीम के पेड़ के पत्तों में से छनकर आने वाली सूर्य-किरणें उसके मस्तक की दिव्य ज्योति को देदीप्यमान कर रही थीं। जब गाव के लोगों ने उसे देखा तो सब एक स्वर से कहने लगे, 'यह तो बेचारा कोई पथिक है।'

ज़मींदार ने स्त्रियों के झुंड की ओर देख कर पुकारा, "नलिनी की मां ! देखो तो, यही तुम्हारा भूत है क्या ?"

नलिनी की मा ने आगे बढ़कर देखा और कहा, "हां,कुछ ऐसा ही प्रतीत होता था।"

इस पर सब खिलखिलाकर हस पड़े। इस हंसी और लोगों की परस्पर की वार्तालाप ने सोये हुए पथिक को जगा दिया। वह उठकर बैठ गया और आंखें मल-मलकर अपने चारों ओर स्त्री-पुरुषों की भीड़ देखने लगा। वह नहीं समझ सका कि ये सब लोग क्यों एकत्रित हुए हैं। उसके मुख से अचम्भा प्रकट हो रहा था। इस समय ज़मींदार कुछ आगे बढ़कर पूछने लगा, "तुम कौन हो ?"

पथिक ने प्रश्न का उत्तर न देकर पूछा, "तुम सब लोग मुझे क्यों देख रहे हो ?"

इस पर ज़मींदार ने मुस्कराते हुए कहा, "तुम भूत जो हो।"

पथिक ने और भी अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "भूत ? कौन कहता है ?"

इस पर नलिनी की मां ने अपने आपको मुक्त करवाने के लिये कह दिया, "नलिनी कहती थी।"

"नलिनी। कौन नलिनी ? कहां है वह ?"

इस पर ज़मींदार ने फिर पूछा, "महाशय, तुम कौन हो और यहां

क्यों आये हो ?"

इस बात ने पथिक को गम्भीर विचार में डाल दिया। वह प्रश्नकर्ता का मुख देखने लगा। उसका दाहिना हाथ आधा उठकर रह गया, मानो वह कुछ कहने लगा हो, परन्तु कोई बाधा आ पड़ने से रुक गया हो। फिर वह अपने हाथ से सिर खुजलाने लगा। बहुत यत्न के पश्चात् वह बोला, "आपने पूछा है, मैं कौन हूँ ? मैं भी अपने आपसे यही पूछ रहा हूँ, परन्तु कुछ उत्तर सूझ नहीं पड़ता।

"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं बहुत देर से चला आ रहा हूँ। मार्ग, जिस पर मैं चला आ रहा हूँ, कुछ दूर तक तो दिखाई देता है। उससे पहले वह मेरी स्मृति में धुँधला सा प्रतीत होता है, और फिर उससे पूर्व सर्वथा अन्धकार है। मेरी बुद्धि, स्मरण-शक्ति उस अन्धकार को भेदने में असफल है। मुझे कई वर्ष भ्रमण करते हुए हो गये हैं। मैं सैकड़ों स्थानों पर ठहरा हूँ। प्रत्येक स्थान के लोग मुझसे यही पूछते हैं और मैं भी हर बार अपने से पूछता हूँ, परन्तु मुझे समझ नहीं पड़ता कि मैं कौन हूँ।"

इतना कह पथिक ने अपने मस्तक को दोनों हाथों में पकड़ लिया। ज़मींदार और दूसरे लोग अचम्भे में उसकी ओर देख रहे थे। पथिक ने माथे को वैसे ही पकड़े हुए कहना जारी रखा, "मुझे कुछ याद नहीं आता। जब भी मैं सोचता हूँ मेरे सिर में घोर वेदना होने लगती है। मैं पागल नहीं हूँ। मैं देख रहा हूँ कि आप लोग खड़े मुझे देख रहे हैं। यह नदी बह रही है और वे दूर पर्वत हैं। इस नीम के पेड़ में से छनकर आने वाली किरणें बहती हुई नदी पर अठखेलियां कर रही हैं। स्वयं मुझे खुशी होती है, शोक होता है, डर लगता है। अभिप्राय यह है कि मेरी इन्द्रियां ठीक काम करती हैं। मैं गाता हूँ, खाता हूँ, सोता हूँ, और प्रत्येक बात को अपनी इच्छा से करता हूँ। सुन्दर दृश्य मुझे आनन्द देते हैं। योग, ध्यान, सन्ध्या, उपासना, कर्म, ज्ञान सब समझता हूँ। मैं पढ़ा-लिखा भी हूँ, परन्तु जब मैं अपने जीवन-पथ को देखना चाहता हूँ तो विवश हो

जाता हूँ और कुछ नहीं सूझ पड़ता। कुछ लोग मुझे पागल कहते हैं और दूसरे धूर्त। मुझे किसी से झगड़ा नहीं। कारण कि मैं स्वयं नहीं जानता कि मैं क्या हूँ ?"

यह परिचय इतना लम्बा होने पर भी ज़मींदार की समझ में नहीं आया। वह अपने मन में यह निश्चय नहीं कर सका कि वह धूर्त है अथवा पागल। प्रश्न के पहले भाग के उत्तर से निराश हो उसने दूसरे भाग को फिर दोहराया और पूछा, "यहां किस प्रयोजन से आये हो ?"

"मैं एक प्रयोजन से घूम रहा हूँ, वह है चित्त की शांति। दूर पहाड़ों में योगी, तपस्वी, साधू, महात्मा अनेकों से मिलता चला आता हूँ। जहां सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखता हूँ, वहां ठहर जाता हूं। कल गौपुरी से चला था। सायंकाल यहां पहुंचा। पश्चिम से सूर्य की किरणें आकर इस नदी की उछलती-कूदती लहरों पर सुनहरी चादर डाल एक विशेष शोभा उत्पन्न कर रही थीं। नदी के पार वे पहाड़ और उनसे दूर और ऊपर हिम से ढकी हुई चोटियां, अस्त होते हुए सूर्य की किरणों से चुम्बन किये जाने पर लज्जा से लाल हो रही थीं। यह सब मन को इतना आकर्षित कर रहा था कि मैंने यहीं ठहरने का निश्चय कर लिया। मैंने समझा कि वह कोई मन्दिर है, परन्तु पहुँचने पर उसे वीरान पाया। रात चबूतरे पर लेट तो गया, पर सो नहीं सका। मच्छरों ने सोने नहीं दिया।' अब घाट पर चलती वायु में नींद आगई और सो गया था।"

ज़मींदार ने पथिक से बहुत प्रश्न पूछे। वह बुद्धिमान, धीर, गम्भीर और सभ्य था। उसके उत्तरों और बोलने के ढंग से प्रतीत होता था कि वह पढ़ा-लिखा, विद्वान और सुशील है। परन्तु जब भी उसके पूर्व निवास-स्थान अथवा नाम इत्यादि के विषय में पूछा जाता, तो वह, जैसे किसी जंगल में खो गया हो, भौंचक्का हो प्रश्नकर्ता का मुख देखने लगता था। अन्त में ज़मींदार ने कहा, "तुम बहुत धूर्त प्रतीत होते हो। भला यह कैसे हो सकता है कि अपना पूर्व परिचय देने के समय ही

तुम्हारा दिमाग़ काम करना छोड़ देता है ? और बातें तो तुम सब ठीक करते हो। केवल अपना नाम-धाम नहीं बताते। तुम अवश्य ढोंगी हो।"

पथिक यह लांछन सुनकर चुपचाप ज़मीदार का मुख देखता रहा। बहुत यत्न कर उसने केवल यह कहा, "आपका ऐसा कहना स्वाभाविक है। मैं स्वयं परेशान हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या होगया है। केवल एक धुंधला सा चित्र मेरे मन पर है। एक कोठी में एक घास के लॉन (मैदान) पर एक देवी मुझे चाय पीने को दे रही थी। यह कब था, कहां था और वह देवी कौन थी, मैं नहीं जानता। पश्चात् काशमीर में एक अति सुन्दर घाटी में एक देवी मेरी सेवा-सुश्रूषा करती थी। फिर एक समय कुल्लू में मैं भजन गाता था और लोगों की भीड़ मेरे आसपास एकत्रित हो जाती थी। इसके पश्चात् का चित्र जो मेरे मन पर अंकित है, अधिक स्पष्ट है। कुल्लू में मुझे एक महात्मा मिले थे। वह मुझे अपने साथ कैलाश-यात्रा को ले गये। उनकी संगति ने और उनकी औषधियों ने मेरे मन को कुछ अंशों में स्वस्थ कर दिया है। कैलाश से लौटकर मैं पंजाब की राजधानी लाहौर में पहुंचा। वहां सार्वजनिक सेवा में कुछ समय व्यतीत किया। वहां पर मुझे यह ज्ञान हुआ कि मेरी विचार-शक्ति मेरा पूर्ण रूप से साथ नहीं देती। मैं अनेकानेक विषयों पर विचार करता था, परन्तु सर्वसाधारण से भिन्न परिणामों पर पहुंचता था। इससे लोगों से मेरा झगड़ा प्रायः सदैव रहता था। मैं वहां से चला आया और नैपाल पहुंचा। वहां से मुझे आदेश हुआ कि मैं पुनः मैदानी इलाके में लौट जाऊं। अतएव घूमता-फिरता स्थान स्थान पर चित्त की शांति के साधन ढूंढता हुआ यहां पहुँच गया हूँ।"

"नैपाल से चले जाने का आदेश किसने दिया था ? नैपाल राज्य ने?"

"नहीं, मेरी अन्तरात्मा ने; अथवा यों कहो कि सृष्टि के नियन्ता ने।"

"सृष्टि के नियन्ता ने ?"

"हां भगवान ने।"

"अब यहां कब तक रहोगे ?"

"नहीं बता सकता। यहां रहना, अथवा यहां से चला जाना मेरे अपने आधीन नहीं है।"

"किसके आधीन है?"

"मनुष्य के जीवन का संचालन करने वाली शक्तियां अनेक हैं। मान लो यदि आप मुझे यहां से निकाल बाहर करने पर हठ करें तो मुझे आप लोगों से झगड़ा करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

इस स्पष्ट कथन ने जमींदार को विचार करने पर मजबूर कर दिया। वह सोचने लगा कि इस विचित्र व्यक्ति को गाव में ठहरने दे अथवा न। इस विषय में अपने साथियों के विचार जानने के लिये उसने गाव वालों की ओर देखा। गांव वाले बहुत से लोग वापिस चले गये थे। स्त्रियां जो प्रातःकाल से स्नान करने अथवा पानी भरने घाट पर नहीं आयी थीं अपने अपने घर से गगरी ले आईं और जल भरने लगी थीं। जमींदार के पास कुछ लड़के-लड़कियां, जिनमें नलिनी भी थी, और एक-दो गांव के लोग रह गये थे। इनमें एक वृद्ध व्यक्ति भी था। ज़मींदार ने उसे ही सम्बोधित कर पूछा, "काका, तुम ही बताओ क्या किया जाय?"

वह वृद्ध पुरुष कुछ सोचकर बोला, "बेटा सुरेश," यह जमींदार का नाम था, "यह रहेगा कहां?"

सुरेश ने कुछ व्यंग के भाव से और कुछ लोगों के मन में अंकित करने के लिये कि वह भूत-प्रेत को नहीं मानता तुरन्त उत्तर दे दिया, "इसी बगिया में रह जाय, अच्छा ही तो है।"

वृद्ध ने दाहिने हाथ से सिर खुजलाते हुए कहा, "इस बगिया में! भला यह कैसे हो सकता है?"

सुरेश ने अब कुछ जोश के साथ कहा, "हो क्यों नहीं सकता? काका, मैं भूत-प्रेत, श्राप, आशीर्वाद को नहीं मानता। इतनी बड़ी बगिया और सुन्दर मकान हम लोगों की मूर्खता से वीरान पड़ा है। यह पथिक यहा रह सकता है।"

वृद्ध चुप था। अन्य कोई आपत्ति उठाने वाला था ही नहीं। सुरेश

ने पथिक की ओर देखकर कहा, "हम लोगों को तुम्हारे रहने में आपत्ति नहीं। हां, यदि तुमने कुछ भी उपद्रव किया तो तुम्हारे लिये ठीक नहीं होगा।"

इतना कह वे लोग वहां से चले गये। लड़के-लड़कियां भी वहां से खिसक रहे थे। नलिनी वहा से जाने वालों में सबसे अन्तिम थी। वह वहा खड़ी क्या सोच रही थी, बताना कठिन है। पथिक दोनों हाथों में सिर को रखे आंखें नीची किये हुए गम्भीर विचार में मग्न था। नलिनी उसके मुख की ओर देख रही थी। एकाएक उसने कह दिया, "मैं तुम्हें पहचानती हूं। तुम हो·····।" जैसे एकाएक वह बोलने लगी थी, वैसे ही चुप कर गयी।

पथिक ने, एक भोली लड़की को यह कहते सुन कि वह उसे पहचानती है, मुख ऊपर उठाकर उसकी ओर देखा। वह निरीह बालिका का भोलापन और अद्वितीय सौंदर्य देखकर चकित रह गया। उसने उत्सुकता से पूछा, "तुम मुझे पहचानती हो? बताओ मैं कौन हूं?"

लड़की कुछ स्मरण करने का यत्न कर रही थी। आंखें मूंदकर और दाहिने हाथ को कुछ उठाकर, मानों कोई पिछली बात याद कर बताने लगी हो, बोली, "तुम्हें देखा तो जरूर है, पर नाम याद नहीं आता। हां क्या, तुम भूतनाथ तो नहीं हो?"

पथिक भूतनाथ का नाम सुन हंसने लगा। फिर कुछ अपने मन को स्थिर कर पूछने लगा, "और तुम कौन हो?"

"मैं?" अपने विषय में प्रश्न पूछे जाने पर उसे कुछ लज्जा और संकोच अनुभव हुआ। वह दाहिने हाथ की उंगली मुँह में डाल और मुख फेरकर बोली, "मैं नलिनी हूं।"

"ओह! तुमने ही मुझे सुबह देख भूत समझा था।"

नलिनी को अब ज्ञात हुआ कि सब पुरुष और बच्चे घाट पर से चले गये हैं और वह अकेली भूत से बातें कर रही है। यह जानते ही उसके मन में एक अनिश्चित सा भय उठा। उसने इधर-उधर देखा और वह वहां से भाग खड़ी हुई। कुछ दूर जाकर खड़ी हो लौटकर

पथिक की ओर देखने लगी। फिर भागी तो सीधी घर पहुंची।

[३]

नलिनी घर पहुँची तो कुछ सहमी हुई थी। उसकी मां ने उसे देखा तो घबराकर पूछा, "क्यों क्या हुआ ? नलिनी, तेरा मुख पीला क्यों पड़ गया है ?"

"कुछ नहीं मां, मैं डर गई थी।"

"किससे डर गयी थी ?"

"भूत से।"

मां हंस पड़ी। बोली, "तो तू अभी तक वहीं खड़ी थी। पगली सी। वह भूत नहीं है।"

नलिनी के मुख का रंग ठीक हो रहा था। उसका उत्साह मा को निडर देख बढ़ रहा था। उसने कहा, "हा मां, वह भूत नहीं है। मैंने उसे पहचान लिया है।"

मां ने नलिनी को ऐसी बातें करते पहले कभी नहीं देखा था। वह ऐसे कह रही थी, जैसे किसी भूली बात के याद आने पर मनुष्य अलौकिक आनन्द अनुभव कर उस बात को वर्णन करने लगता है ; जैसे मानो उसने कोई पहेली बूझ ली हो और उसको प्रकट कर वह सारे संसार को चकाचौंध कर देने वाली है।

मां ने उत्सुकता से पूछा, "तूने पहचान लिया है ? भला सुनूं, कौन है वह ?"

"भूतनाथ·····नहीं···हां···नहीं···ऊं···मुझे नाम याद नहीं रहा। मैंने उसे देखा है।"

"कहां देखा है ?"

"याद नहीं। नदी के किनारे पर। यह नदी नहीं, मां। एक बड़े मकान में। बहुत सुन्दर कपड़े पहने हुए।"

मां ने समझा लड़की घबड़ा गई है। यह सोच कि कहीं उसका दिमाग न हिल जाय बात को टालकर कहने लगी, "पगली सी, छोड़ इस

बात को। देख किसी से यह कहना नहीं, नहीं तो लोग तुझे पागल कहेंगे। चल रोटी खा।"

मां ने कुछ भुने चावल और अरहर की दाल उसको दे दी। नलिनी खाने लगी, परन्तु उसका ध्यान घाट पर पथिक की ओर था। जब वह चावल-दाल खा चुकी तो कुछ चावल, नमक, हरी मिर्च एक कपड़े के टुकड़े में बांधने लगी। मां दूसरे कमरे से आई तो पूछने लगी, "यह क्या कर रही है?"

"चावल बांध रही हूँ।"

"क्यों?"

"उसके लिये।"

"किसके लिये?"

"भूतनाथ के लिये। उसने तो कुछ खाया न होगा।"

"कैसे जानती है कुछ नहीं खाया?"

"वहां घाट पर कोई नहीं है मां। वह अकेला है।"

"तो उसे कौन देने जायगा?"

"मैं, क्यों?"

"तुझे डर नहीं लगेगा?"

जैसे कोई भूमि पर लावारिस पड़ी वस्तु को पाकर उस पर अपना विशेष अधिकार समझता है, वैसे ही नलिनी इस पथिक को अपना समझने लगी थी। गांव में सब से पहले उसी ने उसको देखा था। इससे वह उस पर अपना विशेष अधिकार समझती थी। फिर और कोई उसे खाने को क्यों देगा? किसी दूसरे ने तो उसे पाया नहीं है। इसके अतिरिक्त उसे ऐसा प्रतीत होता था कि बहुत छोटी अवस्था में उसकी आंखों के सम्मुख वह आता रहा है। उसके रूप का सा मनुष्य उसके मन के पर्दे पर अंकित था।

वह चावलों की पोटली लिये हुए घाट पर जा पहुँची। पथिक सत्य ही अकेला था। अब उसने स्नान कर लिया था और मैले कपड़ों को धो

डाला था। एक उज्ज्वल चादर और धोती पहने हुए घाट के एक कोने पर नदी की ओर मुख किये बैठा वह अब भयानक प्रतीत नहीं होता था। नलिनी उसके समीप जाकर खड़ी हो गई। पथिक ने उसकी ओर देखा और मुस्कराकर कहा, "तुम फिर आगई हो। यह हाथ में क्या है?"

"चबैना।"

पथिक ने हाथ से समीप बैठने का संकेत कर कहा, "बैठ जाओ। तुम तो बहुत अच्छी लड़की मालूम होती हो। कुछ पढ़ती भी हो या नहीं?"

"हां पढ़ती हूँ।" यह कहती हुई वह समीप ही बैठ गई।

"क्या पढ़ती हो?"

"हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे। मेरी मां मुझे पढ़ाती है।"

"और क्या पढ़ी हो?"

"रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम।"

"ओह, तुम तो बहुत कुछ जानती हो।"

लड़की ने सहज स्वभाव से कहा, "हां, और मैं गाना भी जानती हूं। सुनाऊं?"

"हां सुनाओ।"

लड़की ने पोटली अपने सम्मुख रख ली और दोनों हाथ जोड़, आंखें मूंद, गाना आरम्भ कर दिया :—

विनती सुनो प्रभु मोरी, भक्ति मांगूँ प्रभु तोरी
द्रौपदी, मीरा, अहिल्या, सती सावित्री बाई।
सबके दुख मेटन हारे, मैं दासी प्रभु तोरी॥
विनती सुनो प्रभु मोरी .....

"तुम्हारी मां तुम्हें बहुत कुछ पढ़ाती है। वह बहुत अच्छी है।"

"तुम भी तो गाते थे। सुबह तुम गा रहे थे न!"

"ओह, तो तू सुन रही थी?"

"तभी मैंने तुम्हें भूत समझा था। तुम्हें और भी गाना आता है?"

इतना कह नलिनी ने माता की ओर देखकर पूछा, "क्यों मां, कैसी अच्छी कहानी है ?"

मा, जो बहुत ध्यान से नलिनी की बातें सुन रही थी, बोली,"हा।"

"मा, क्या यह सच्ची बात है ?"

"वह क्या कहता था ?"

"कहता था बिलकुल सत्य है। उस लड़की की समाधि अभी भी उसके देश मे है और लोग उस पर अब भी फूल चढ़ाते हैं।"

"ओह !"

"पर मा ! जलते समय उसे पीड़ा तो बहुत हुई होगी।"

"इसी से तो उसे स्वर्ग मिला। वह भगवान के अपने देश में चली गई।"

"और उसको क्या हुआ जिसने उसे धोका दिया था ?"

"उससे पूछा क्यों नहीं ?"

"तुम जो आगई थीं। अच्छा, कल पूछूँगी।"

[४]

पथिक सत्य ही बहुत भूखा था। उसने नलिनी की पोटली खोली और उसमें से चावल नमक-मिर्च के साथ खा लिये। उसके धुले वस्त्र सूख गये थे। उन्हें एकत्र कर वह मन्दिर में पहुँचा। मन्दिर की सफाई करना एक दिन का काम नहीं था। एक सौ वर्ष से अधिक हो गया था कि उसमें किसी ने कदम नहीं रखा था। वह मन्दिर के ऊपर चढ़ गया। उसकी छत को साफ कर रात के सोने का प्रबन्ध कर लिया।

सायंकाल वह गांव में गया। वहां उस वृद्ध से भेंट हो गई जो ज़मींदार के साथ था। पथिक ने उसे पहचान लिया। दोनों में बातचीत होने लगी और खाने का प्रबन्ध हो गया। वह वृद्ध गाव का मुखिया छत्रपालसिंह था।

कुछ ही दिनों में गांव के प्रत्येक आदमी से पथिक का परिचय हो गया। सब उसके सभ्य व्यवहार और बातचीत के ढंग से प्रसन्न थे। वह कभी २ लोगों को कथायें सुनाया करता था। उसका ध्यान अधिकतर

गांव के बालकों की ओर था। छोटे बच्चे, लड़के-लड़कियां तो उसे घेरे रहते थे। सायंकाल बच्चे और अन्य लोग घाट पर एकत्रित हो जाते और पथिक उन्हें कहानियां सुनाता, गीता सुनाता। रामायण और महाभारत की कथा सुनने तो स्त्रियां भी आजाया करती थीं।

मन्दिर और बगिया बुहारकर साफ कर दी गई और वहां लड़कों की पाठशाला खोल दी गई। पढ़ने वालों में अधिक संख्या छोटी जाति के लड़कों की थी। हिन्दी पढ़ना-लिखना, भगवत्भक्ति और देशभक्ति के गीत पढ़ाई के मुख्य विषय थे। लड़कों में जातीय और देश-प्रेम उत्पन्न करने का यत्न किया जाता था। पाठशाला के लड़कों तथा कथा सुनने वाले लोगों में स्वतन्त्रता की भावना, प्राचीन आर्य-सभ्यता से प्रेम और हिन्दू नाम तथा रीति-रिवाज के लिये श्रद्धा उत्पन्न करना पथिक का मुख्य काम था। दृष्टान्त रामायण से हो अथवा महाभारत से, किसी पुराण से हो अथवा ब्राह्मण ग्रन्थ से, परिणाम सदैव यह निकलता था कि आर्यावर्त्त देश देवताओं का देश है। इसे संसार भर में मान-प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिये। इसकी पराधीनता का पाप देश में रहने वालों पर है। इस पाप को मिटाने के लिये सर्वस्व की आहुति देनी पड़े तो भी अधिक नहीं।

कथा के पश्चात प्रायः लोग अपना संशय निवारण किया करते थे। एक दिन सुरेश, वहा का जमींदार, पथिक के कथा के ढङ्ग की प्रशंसा सुन वहां चला आया। कथा सुनकर उसके मन में अनेक संशय उत्पन्न हुए। वह ताल्लुकेदार-स्कूल लखनऊ का पढ़ा हुआ था। वहा पर अंग्रेजों की प्रभुता को लड़कों के मन पर अंकित करने में कोई कसर नहीं रखी जाती थी। अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी भेष, अंग्रेजी आचार-व्यवहार वहा के विद्यार्थियों के लिये आदर्श बातें थीं। इसके मुकाबिले में हिन्दुस्तानी रहन-सहन घटिया और तिरस्कार योग्य समझा जाता था। केवल एक बात थी जो अंग्रेजी होते हुए भी उनकी पहुँच से दूर बताई जाती थी। वह थी स्वतन्त्र, प्रजातन्त्र राज्य-पद्धति। इस विषय में वहां विद्यार्थियों को बताया जाता था कि हिन्दुस्तानी इसके योग्य नहीं हैं। यहां पढ़े-लिखे संख्या में

बहुत कम हैं। यहां की जलवायु ऐसी है जिसमें लोग कामचोर, काहिल, निकम्मे और अयोग्य ही रहते हैं। यहां धर्म और मत-मतान्तरों के झगड़े हैं।

आज सुरेश के सम्मुख जब प्राचीन आर्य-सभ्यता और देश के जलवायु तथा यहां की उपज की भूरि २ प्रशंसा की गई तो वह बिना बोले नहीं रह सका। वह पूछने लगा, "इस देश की प्राचीन संस्कृति बहुत उत्तम थी, यह आपने कहा है। यदि यह सत्य है तो इसका पतन क्यों हुआ? क्या हमारे देश में अंग्रेजी राज्य होने से यह सिद्ध नहीं होता कि हमारा धर्म, हमारे रीति-रिवाज सब झूठे हैं और हमें उनको छोड़ देना चाहिये?"

पथिक ने गम्भीरता से उत्तर दिया, "धर्म और सभ्यता का दोष नहीं; उस पर हम लोगों के न चलने का दोष है। मिश्री मीठी होती है पर यह मीठा स्वाद खाने वालों को मिलता है, केवल हाथ में पकड़ने वाले को नहीं। श्रेष्ठ धर्म उसको फल देता है जो उस पर आचरण करता है। केवल धर्म धर्म कहने से धर्म का फल प्राप्त नहीं हो सकता।"

"तो क्या हमारे पूर्वज आर्य धर्म पर आचरण नहीं करते थे?"

"पहले तो करते थे, परन्तु बीच के काल में धर्म-कार्य को छोड़ बैठे थे। ये मध्यकालीन भारतवासी वेदों की पूजा करते थे, परन्तु इन पर आचरण नहीं करते थे। गीता का पाठ तो होता था, परन्तु केवल पाठमात्र से ही मुक्ति का प्राप्त होना माना जाता था। गीता में लिखी बातों पर आचरण नहीं होता था। परिणाम यह हुआ कि मुट्ठी भर विदेशियों ने भारतवर्ष की अतुल जन-संख्या को अपने आधीन कर लिया। वेद-शास्त्र जिस बात को कहते हैं व्यवहार में ले आओ और फिर देखो तुम्हारी अवस्था सुधरती है या नहीं।"

"इतना झगड़ा करने की क्या आवश्यकता है? पहले तो खोज करो कि वेद-शास्त्र क्या कहते हैं और फिर उस पर आचरण करो। क्या यह अच्छा न होगा कि विजयी जाति के धर्म, आचरण और रीति-रिवाज

को अपना लिया जाय ? ऐसा करने से जितनी विजयी जाति शक्तिशालिनी है उतने ही हम भी शक्तिशाली हो जावेंगे। हम संख्या में अधिक हैं इससे राज्य हमारा हो जावेगा।"

"ऐसा होना असम्भव है। एक तो लोगों का आचरण देश के जलवायु के अनुकूल होना उचित है। भारतवासियों का आचरण भारतवर्ष के जलवायु के अनुकूल होना चाहिये न कि इङ्गलिस्तान के जलवायु के। दूसरी बात यह है कि अंग्रेजी सभ्यता कोई अच्छी सभ्यता नहीं है। हम जो कुछ आजकल हैं इससे वे कुछ अंशों में अवश्य अच्छे हैं, परन्तु यथार्थ अच्छाई के विचार से उनमें बहुत कमी है। आज तो अंग्रेजी सभ्यता भारतवासियों के लिये विष का काम कर रही है। चरित्र सब प्रकार की उन्नति का स्रोत है और यह सभ्यता हमारे चरित्र को ही भ्रष्ट कर रही है। स्कूलों और कॉलेजों से जो विद्यार्थी पढ़कर निकलते हैं प्रायः चरित्रहीन हो जाते हैं। अंग्रेजों में स्वयं भी कुछ बहुत ऊंचा चरित्र नहीं है और इसका परिणाम शीघ्र ही निकलने वाला है। यह भविष्यवाणी करनी कुछ कठिन प्रतीत नहीं होती कि ब्रिटिश साम्राज्य टूट-फूटकर नाश को प्राप्त होने वाला है। रूस और जर्मनी इस साम्राज्य पर चील-कौवों की भांति मंडरा रहे हैं और इस ताक में हैं कि अवसर मिलते ही इसके शव को नोच नोचकर खा जायें।"

"परन्तु इसका प्रमाण क्या है कि अंग्रेज चरित्रहीन हैं और हमें चरित्रहीनता सिखा रहे हैं। देखिये महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेसी नेता, सर पी० सी० राय, सर रमन, सर बोस, जिन्होंने संसार में भारतवर्ष का नाम उज्ज्वल कर रखा है, सब अंग्रेजी शिक्षा से ही उत्पन्न हुए हैं।"

"ये लोग अंग्रेजी शिक्षा की उपज जरूर हैं और यही कारण है कि संसार में दूसरे लोग इनकी प्रशंसा करते हैं। यूरोप और अमेरिका अपनी सभ्यता की उपज की प्रशंसा नहीं करेंगे तो और किसकी करेंगे ? महात्मा गांधी और दूसरे राजनैतिक नेता देश-प्रेम भी सीखे हैं तो अंग्रेजों से। यही कारण है कि समय पड़ने पर वे भारतवर्ष के हित को न समझ

सके हैं और न कभी समझ सकेंगे। यही बात एक-दो वैज्ञानिकों की है। वे भी भारतवर्ष को कुछ विशेष लाभ नहीं पहुँचा सके।"

"यह आपका कहनामात्र है। इसमें प्रमाण तो कुछ नहीं है।"

"प्रमाण हैं। भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य आये लगभग दो सौ वर्ष हो चुके हैं। इतने काल में इतने बड़े देश में एक-दो वैज्ञानिकों का उत्पन्न हो जाना कोई श्लाघा की बात नहीं और फिर उन लोगों ने भारत को कितना उन्नति के मार्ग पर डाला है? कुछ भी नहीं। दूसरी ओर जापान ने पचास वर्ष में वह उन्नति की है कि रूस जैसी महान शक्ति के दांत खट्टे कर दिये हैं। यहां तक कि इंगलिस्तान, जर्मनी और अमेरिका को भी व्यापार में परास्त कर दिया है। व्यापार का आधार विज्ञान है और यदि पचास वर्ष में जापान ने यूरोप और अमेरिका को व्यापार में परास्त कर दिया है तो अनुमान लगा सकते हो कि उन्होंने विज्ञान में कितनी उन्नति की है। इंगलिस्तान और जर्मनी जापान से एक सौ वर्ष आगे थे। पचास वर्ष में जापान न केवल उनके बराबर हो गया है, प्रत्युत उनसे आगे निकल गया है। जापान ने यह सब उन्नति यूरोपियन संस्कृति के आधार पर नहीं की। हमारी शिक्षा का आधार यूरोपियन भाषा और ढंग है और हम डेढ़ सौ वर्ष में केवल एक-दो वैज्ञानिकों को पाकर फूले नहीं समाते।"

सुरेश ने लखनऊ में तो यह पढ़ा था कि ब्रिटिश साम्राज्य बहुत सुदृढ़ और विस्तृत है। आज यह पगला उसे यह बता रहा था कि यह साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट होने वाला है। उसने पढ़ा था कि अंग्रेजी साहित्य संसार में सर्वोत्तम है और यह देहाती गंवार उसे यह बताने का यत्न कर रहा था कि वह चरित्रहीनता की ओर ले जा रहा है। एक बात थी कि जापान की उन्नति चकाचौंध कर देने वाली थी और वे लोग न तो कोट-पतलून पहनते हैं और न ही अंग्रेजी भाषा में उनको शिक्षा दी जाती है। इस उदाहरण ने उसके चिर निर्मित विचारों को हिला दिया था।

[५]

पथिक की ख्याति और सर्वप्रियता देवाग्राम से बाहर भी फैल रही थी। प्रत्येक आदमी से वह अत्यंत सहानुभूति और सच्चाई से बर्ताव करता था। लोग भी अपनी घरेलू और निजी बातों मे उससे सम्मति लेने आया करते थे। आठ–दस आस–पड़ोस के गाव के लोग प्रायः अपने २ मुकदमे लेकर आते और बहुधा पथिक की सहायता से बहुत पेचीदा समस्यायें भी सुलझ जाती थी। स्त्री–पुरुष, भाई–भाई और पड़ोसी–पड़ोसी जब भी झगड़ पड़ते थे, तो कचहरी जाने के बजाय पथिक से जाकर फैसला करवा लेना अधिक सुगम, सस्ता और न्याययुक्त मानने लगे थे। पथिक को स्वयं न तो किसी से लगाव रहता था और न ही निजी लालच। इस कारण उसके निर्णय निष्पक्षतापूर्ण होते थे। सब से बड़ी बात तो यह थी कि वह दोनों पक्षों को ऐसे ढंग से समझाता था कि झूठा और दोषी अपना दोष मान जाता था।

एक दिन मुखिया छत्रपालसिंह बेनी कहार और उसकी स्त्री को साथ लेकर वहा पहुँचा। पथिक श्रापित मन्दिर के बाहर चबूतरे पर आसन जमाये संगीत का अभ्यास कर रहा था। इन लोगों को आया देख अपना तान-पूरा एक तरफ रख बोला, "ठाकुर साहब, क्या बात है जो आज इनको साथ लेकर आये हो?"

जब सब लोग बैठ गये तो कुशल-समाचार के पश्चात बात आरम्भ हुई। पथिक ने कहा, "मैं आप लोगों की क्या सेवा कर सकता हूं?"

बेनी की स्त्री ने घूंघट काढ़े हुए कहा, "महाराज, यह मेरा आदमी है, परन्तु घर पर नहीं आता। बताइये मै क्या करूं?"

पथिक ने बेनी की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। बेनी उत्तर मे कहने लगा, "पाच वर्ष की सख्त महनत के पश्चात लखनऊ से पाच सौ रुपया कमाकर लाया था। वह सब रुपया इस राड ने चुराकर किसी के पास रख छोड़ा है। यह रुपया मुझे देती नहीं, और मैं इससे घृणा करता हूं। मैं इसका मुख भी देखना नहीं चाहता।"

अब पथिक ने छत्रपालसिंह की ओर देखा। वह बोला, "बेनी की स्त्री मेरे पास यह शिकायत लेकर आई थी। मैंने दोनों को समझाने का यत्न किया है, परन्तु फल नहीं निकला। अब इनको आपके पास लाया हू। आप बतायें कि इनका क्या किया जाय?"

बेनी पथिक के पास प्रायः नित्य आया करता था और पथिक के शिक्षा और कथा के काम मे बहुत उत्साह प्रकट किया करता था। अतएव बेनी से पथिक को कुछ लगाव हो गया था। देखा में बहुत कम लोग थे जो उसको इतनी सहायता देते थे। पथिक उसे भला मनुष्य समझता था, परन्तु इस घरेलू झगड़े से उसके मन मे बेनी के विषय में कई संशय उत्पन्न हो गये। वह उन सबका निवारण करना चाहता था।

"बेनी भाई, तुम तो बहुत धार्मिक विचारों के प्रतीत होते थे। क्या तुम घर मे इस प्रकार झगड़ा करते हो? तुम्हारे जैसे आदमी को तो घर मे ही सब बातें समझा-बुझाकर ठीक कर लेनी चाहियें।"

बेनी ने हाथ जोड़कर कहा, "गुरुदेव, यह सब कुछ कर चुका हूँ, परन्तु यह स्त्री कुछ मानती ही नहीं। जब इससे मेरा विवाह हुआ था तो यह तब बहुत छोटी उम्र की थी। इसकी आयु ग्यारह वर्ष की रही होगी। मैं इसे माँ के घर छोड़ लखनऊ नौकरी के लिये चला गया। दिन भर एक बीमा कम्पनी की नौकरी करता था, और प्रातः-साय समाचार-पत्र बेचता था। इस प्रकार २४ घन्टे मे १६ घन्टे काम कर रुपया कमाता रहा हूँ। पाच वर्ष निरन्तर यत्न के पश्चात् पाच सौ रुपया जमा कर मैं घर लौटा। मैं यह सुनहरी आशा लगाये हुए था कि इसके साथ रहकर सुख से जीवन व्यतीत करूंगा। घर पहुँचने पर अपनी आशाओं पर पानी फिर गया देख बहुत निराश हुआ। मेरी स्त्री ने गाव के एक ठाकुर विजयबहादुर से मित्रता कर ली थी। मैंने बिगड़ी बात बनाने का यत्न किया। मैं इसकी मा के पास पहुँचा। उसे लखनऊ मे महनत से कमाई करने की अपनी कथा सुनाई और उसका फल पांच सौ रुपया उसे दिखाया। मा ने लडकी को समझाया और यह मेरे पास

आकर रहने लगी। एक दिन मैं नदी पर स्नान करने आया हुआ था कि यह मेरे सन्दूक का ताला तोड रुपये निकाल अपने मित्र को दे आई। मैंने इसे बहुत समझाया कि यह रुपया हम दोनों के लाभ के लिये है, परन्तु यह मानती ही नहीं। यह कहती है रुपया इसने नहीं लिया। मुझे विश्वास है इसी ने लिया है।"

"क्या अभी भी विजयबहादुर से इसका सम्बन्ध है?"

"मैं नहीं बता सकता। मैं छः मास से रात के समय घर पर नहीं रहता। यह मेरे घर में रहती है और मैं अपनी मौसी के घर रहता हूँ। कभी २ दिन के समय इसे समझाने जाता हू, परन्तु परिणाम में गालियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।"

पथिक यह हृदय-विदारक कथा सुन गम्भीर विचार में पड गया। बहुत सोच-विचारकर उसने बेनी की स्त्री से कहा, "बेटी, क्या यह सत्य कहता है?"

'बेटी' शब्द कुछ ऐसे ढंग से कहा गया था कि बेनी की स्त्री का शरीर काप उठा। पथिक ने इस कापने को देख लिया था और वह इसका अर्थ सोचने लगा था। बेनी की स्त्री विस्मय भरी दृष्टि से घूंघट में से पथिक के मुख पर देखने लगी। वह मुख सर्वथा गम्भीर था।

पथिक ने इस शब्द के प्रभाव का अर्थ समझने के लिये फिर कहा, "देखो बेटी, मै तुम्हें बुलाने नहीं गया। तुम अपनी इच्छा से आई हो। मै सरकारी अफसर नहीं, न ही मैं तुम्हारे गाव का मुखिया हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा बेनी के साथ रहने की न हो तो मैं तुमको मजबूर नहीं कर सकता। मेरे पास तो यदि तुम आई हो तो मेरी सहायता लेने के लिये। बताओ यदि तुम मुझे सत्य नहीं बताओगी तो मैं तुम्हारी सहायता कैसे कर सकूगा? बताओ, क्या बेनी सत्य कहता है?

बेनी की स्त्री पथिक का मुख देख रही थी। उसका घूंघट कुछ हट गया था और एक बालिका का सहमा हुआ मुख बिनर-बिनर आखों से उसे देख रहा था।

जब पथिक को अपने प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं मिला तो उसने 'बेटी' शब्द के प्रभाव का अभिप्राय जानने के लिये स्पष्ट प्रश्न किया, "तुमने अपने पिता को देखा है ?"

अब बेनी की स्त्री का धीरज टूट गया। उसने एक लम्बा सांस ले कहा, "बापू को ? हां।"

पथिक समझ गया कि यह लड़की अपने पिता से विशेष प्रेम रखती है। बेटी शब्द से उसके कांपने का अभिप्राय अब स्पष्ट हो गया। पथिक ने बेनी की स्त्री के हृदय तक पहुँचने का मार्ग ढूंढ लिया था। उसने कहा, "हां, वह अब कहां है ?"

बेनी की स्त्री की आंखों में आंसू भर आये। पथिक यह देख रहा था। छत्रपालसिंह ने पथिक को परिचित करने के लिये कहा, "इसके बाप का देहान्त हुए एक वर्ष हो गया है। बेचारा बहुत ही भला आदमी था। एकाएक रात को पेट में पीड़ा हुई और देह छोड़ गया।"

इस पर तो बेनी की स्त्री सिसकियां भरकर रोने लगी। पथिक ने उसे सान्त्वना दे बहुत कठिनाई से चुप कराया। जब वह कुछ शांत हुई तो फिर पूछने लगा, "यदि इस समय तुम्हारा पिता तुमसे पूछता कि बेटी, सत्य कहना तो क्या तुम झूठ बोलती ? जिनसे हम प्रेम करते हैं उनकी आत्मा सदैव हमारे पास रहती है। उनको असत्य बात सुनने पर कितना दुख होता है यह तुम नहीं जानती। बताओ बेटी, क्या तुम अभी भी विजयबहादुर को पसन्द करती हो ?"

"नहीं !" बेनी की स्त्री ने आवेग में कहा। यह उसका पहला शब्द था जो अन्तरात्मा से निकला प्रतीत होता था।

"बहुत ठीक। मैं भी ऐसा ही समझता था। परन्तु तुम उसके जाल में क्यों फँसी हुई हो ?"

"मैं उसे नहीं चाहती। मैं उससे घृणा करती हूँ, परन्तु मैं उसके वश में हूँ। मैं उसे छोड़ नहीं सकती।"

"क्यों ? क्या मैं जान सकता हूँ ?"

इस पर वह फिर भयभीत हो पथिक और छत्रपालसिंह की ओर देखने लगी। पथिक समझता था कि इस लड़की के नन्हे से दिल में कोई बात छिपी है जिसके प्रकट हो जाने से बेनी के घर की समस्या सुलझ सकती है। इस कारण पथिक ने बहुत ही मीठी आवाज में कहा, "हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। यदि कोई ऐसी बात भी तुमने की होगी जिसके जानने से कोई तुम्हें हानि पहुचा सके, तो भी हम तीनों तुमको कुछ नहीं कहेंगे। बेनी तो तुम्हारा पति है। यह तो तुम्हें दुश्चरित्रा जानते हुए भी एक बार अपने घर लेगया था। अब भी इसने तुम्हें अपने घर से निकाला नहीं है, प्रत्युत स्वयं घर से निकल गया है। यह बहुत बड़ा दिल रखता है और यदि तुमने कोई खराब बात भी की होगी तो तुम्हें कुछ नहीं कहेगा।"

ये सब बातें बेनी की स्त्री के लिये घाव पर मरहम का काम कर रही थीं। पथिक में आकर्षण था और उसके मुख से 'बेटी' के शब्द ने उसे पिता की याद दिला दी थी। उसकी इच्छा न रहते हुए भी उसके मन की बात फूट फूटकर उसके मुख से निकलने लगी। वह पहले धीरे २, मानो बोलने में यत्न कर रही हो, कहने लगी और पश्चात् एक बार जब वह अपना दोष स्वीकार करने के मार्ग पर चल पड़ी तो फिर धारा-प्रवाह मन की बात बताने लगी :—

"मैं बिलकुल नासमझ थी। मुझे अपने विवाह की बात भी भली भांति स्मरण नहीं। विवाह के समय तो मैं सो रही थी। पीछे यह लग्वनऊ चले गये। साल पर साल बीतने लगे। मुझे संसार की बातों का ज्ञान होने लगा। मेरी मा विजय बाबू के घर चौका-बासन करने जाती थी। मैं भी कभी २ वहा जाया करती थी। आज लगभग एक वर्ष हुआ है जब उसने मुझे भ्रष्ट किया था। मेरी मा को सब मालूम था। उसको विजय ने दो नोट, शायद दस २ रुपये के, दिये थे। मेरी मा ने वे रुपये बापू से छिपाकर रख छोड़े थे। इसके पश्चात विजय ने और रुपये भी मा को दिये थे। मैं उसके घर माँ के साथ प्रायः जाया करती थी। मा काम

करती थी और मैं उसके कमरे में चली जाती थी। विजय की मा भी इस बात को जानती थी।

"घर में मा, एक दिन, कुछ नये कपड़े खरीद कर लाई। बापू ने पूछा, 'कहा से लाई हो ?' मा ने कह दिया, 'विजय की मा ने दिये हैं।' दूसरे दिन जब हम विजय के घर से लौटकर आये तो हमने देखा कि बापू हाथ में कुछ नोट पकडे थे और वह सन्दूकची जिसमें मा रुपये छिपाकर रखती थी सामने रखी थी। मा ने समझा सब भेद खुल गया। वह घबडा गई। बापू ने उसकी घबड़ाहट देख ली और मा को डाटा। माँ बक गई। उसने बहाना यह लगाया कि बेटी का आदमी तो सालों से घर नहीं आया और उसकी जवानी खराब जाती है। बापू मुझे बहुत प्रेम करते थे। वह केवल मेरे पालन-पोषण के लिये दिन भर महनत करते थे और कहा करते थे, 'यदि यह बिटिया न होती तो इस भूखे देश को छोड़ कहीं और चले जाते।'

"मा ने अपना दोष मेरे सिर पर डाल दिया। बापू को मुझ पर क्रोध चढ़ आया। मैने सब बातें ज्यों की त्यों बता दीं। मैं उनके सम्मुख झूठ नहीं बोल सकी। सब दोष मेरी मा का था। बापू ने छड़ी उठाई और मा को बहुत पीटा। पश्चात् हाथ-पाव बाध उसे कोठरी में बन्द कर दिया। दो दिन ऐसे ही निकल गये। प्रातःकाल बापू मा को बाहर लाते थे। टट्टी-पेशाब करवा कर फिर कोठरी मे बन्द कर देते थे।

"तीसरे दिन रात के समय की बात है। हाय ! हाय !! का शब्द सुन मेरी नींद खुल गयी। मैं कोठरी से बाहर निकल आई। रसोईघर में मेरी मा बापू की छाती पर सवार बैठी थी और विजय ने बापू के हाथों को पकड़ा हुआ था। मा के हाथ बापू के गले पर थे। उनकी जबान मुख से बाहर लटक रही थी और आखों की पुतलिया घूम चुकी थीं। मैं भागकर घर से बाहर आना चाहती थी और शायद बाहर आकर हल्ला करती, परन्तु विजय ने मुझे देख लिया। उसने बापू के हाथ छोड दिये। वह अब मर चुके थे। भागकर उसने मुझे पकड़ लिया। मुझे हाथ से पकड़

कर खींचता हुआ सोने के कमरे में लेगया। बड़ा भाई भी आगई, और उन्होंने कहा कि यदि मैंने कुछ भी भेद खोलने का यत्न किया तो मार डाली जाऊँगी। विजयबहादुर ने मुझे दो-तीन चाटे भी लगाये। मैं डर गई और बापू की मृत्यु का रहस्य आज तक किसी को मालूम नहीं हुआ।

"बापू के मरने के पश्चात् माँ और मैं और भी विजयबहादुर के आधीन हो गईं। कुछ महीने पीछे यह लखनऊ से लौट आये और मुझे अपने घर ले जाने का प्रस्ताव किया। माँ नहीं चाहती थी, कारण यह कि मैं विजयबहादुर से रुपये वसूल करने का साधन थी, परन्तु विजय ने मेरी माँ को मुझे भेज देने की सम्मति दी और मैं इनके घर चली गई। विजय के कहने पर मेरी मा ने रुपया चुराने पर मुझे विवश किया। इस पर मेरा इनसे झगड़ा हो गया। तब से फिर विजयबहादुर मेरे पर प्रभाव जमाये हुए है। मैं चाहती हू कि यह अपने घर मे रहे, परन्तु यह रुपये वापिस पाये बिना आना नहीं चाहते और इस प्रकार मुझे विजय के पंजे में छोड़े हुए हैं। मैं उससे घृणा करती हूँ, परन्तु मेरी रक्षा करने वाला भी तो कोई नहीं।"

यदि बेनी का कथन दुखदायक था, तो बेनी की स्त्री की कथा रोमाचकारी थी। बेनी ने भी अपनी स्त्री का वृत्तान्त सुना तो उसका मन काप उठा। वह अपनी स्त्री की विवशता को समझ गया। इस वृत्तान्त को सुनने के पूर्व जब उसकी स्त्री उसे घर बुलाती थी तो वह समझता था कि कोई षडयन्त्र रच रही है। वह समझता था कि जब तक पहला रुपया न निकल आये आगे विश्वास करना भयरहित नहीं। इस कथन से उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अपनी स्त्री को घर में अकेली छोड़कर उसे दुराचार की ओर धकेल रहा है। इतना सा भी अपना दोष जान लेने पर उसे अपने पाच सौ की चोरी वसूल करने का विचार भूल गया।

वह कहने लगा, "महाराज, इसने यह कथा मुझे पहले कभी नहीं बताई। मैं तो जब भी इससे रुपया मागता था यह गालिया देने लगती थी।"

पथिक ने कहा, "बेटी, तुम इसे गालियां देती थीं। अपना दोष जानते हुए भी तुम यह कैसे कर सकी थी?"

बेनी की स्त्री ने आखें नीची किये हुए कहा, "यह पुरुष है, मैं औरत हूँ। इसे मेरी रक्षा करनी चाहिये। जब मैं देखती थी कि यह मुझे अकेली, निःसहाय विजयबहादुर के पंजे में छोड़ रात को चला जाता है तो मेरा जी इसे गालियां देने को करता था।"

"ओह!" पथिक ने हैरानी प्रकट करते हुए पूछा, "यदि यह रात को तुम्हारे पास रहता और विजयबहादुर तुम्हारे पास आता तो तुम क्या करती?"

"इसकी सहायता से मैं वही करती जो विजय की सहायता से मा ने बापू का किया था।"

यह बात इतनी गम्भीरता से कही गई थी कि पथिक को विश्वास होगया कि वह मन से विजयबहादुर को घृणा करती है। इस पर बेनी ने कहा, "मैं न तो किसी की हत्या करना चाहता हूँ और न ही अपनी हत्या करवाना। मैं तो इस बात का विश्वास करना चाहता हूं कि तुम अपनी मा और विजयबहादुर से कोई सम्पर्क नहीं रखोगी।"

"परन्तु तुमने मुझे यह तो कभी कहा ही नहीं। सदा रुपया ही मागते रहे हो। वह तो अब चला गया है। वापिस नहीं आ सकता। मा के पास भी शायद नहीं है। विजय मा से उधार माग कर ले गया है।"

पथिक ने देखा कि रुपया वापिस आना तो कठिन है। इस कारण उसने बेनी से कहा, "बेनी भैया, रुपया हाथ का मैल है। औरत का मूल्य तो रुपयों में नहीं लग सकता। यह तो भगवान की देन है।"

"गुरुदेव, जैसी आप आज्ञा दें मैं करने को तैयार हूँ। हां, इसे आपके सम्मुख वचन देना होगा कि यह सती बनकर रहेगी।"

पथिक ने बेनी की स्त्री के सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा, "बेटी, यह तो करना ही होगा। जाओ भगवान तुम्हारी सहायता करे। बेनी के पावों पर सिर रखो और उससे पिछली बात के लिये क्षमा मागो।"

बेनी की स्त्री ने उसके पांवों पर सिर रख दिया। उसने उसे उठा कर उसका हाथ पकड़ लिया। जब वे जाने लगे तो पथिक ने कहा, "देखो, इसके पिता की चर्चा व्यर्थ है। विजयबहादुर और इसकी मा को सर्वथा भूल जाओ।"

वे दोनों चले गये। छत्रपालसिंह उन दोनों को, जो आते समय परस्पर गाली के बिना सम्बोधन नहीं करते थे, अब चुपचाप शान्ति से जाता देख विस्मय में डूब गया। उनके दूर निकल जाने पर उसने पथिक से कहा, "आपने कमाल की है। पर यह न्याय तो न हुआ।"

"काका, मैं न्यायाधीश बनकर यहां नहीं आया। मैं तो आप लोगों का सेवक हूं। मन, वचन और कर्म से आप लोगों की सेवा करने का प्रण लिया है, सो अपनी शक्ति के अनुसार करता रहता हूं।"

"परन्तु अन्यायी को छोड़कर आपने अन्याय को प्रोत्साहन दिया।"

"किसी रोग को मिटाने के लिये उसे परिपक्व अवस्था तक पहुंचने देना भी एक उपाय है।"

[६]

छत्रपालसिंह के चले जाने के पश्चात पथिक ने फिर तानपूरा उठाया और स्वर भरने लगा। तीसरे पहर का समय हो चला था। इस समय वहां नलिनी आ पहुँची। वह प्रायः नित्य आती थी और पथिक उसे संगीत सिखाता था। नलिनी के आने पर पथिक में एक विशेष आनन्द और उत्साह भर जाया करता था। वह अत्यंत लगन से उसे सिखाता। उधर नलिनी भी अब बिना नित्य का सबक लिये नहीं रह सकती थी। इस बालिका को इस पुरुष की संगति में वह सुख तथा आनन्द अनुभव होता था जो वह अपनी मा और भाई की संगति में नहीं पाती थी। वह आती तो शिष्या बनकर थी, परन्तु मन में समझती थी कि भूतनाथ, उसके मन में यही नाम अंकित था, एक बहुत बढ़िया व्यक्ति है और उसे खोज निकालने का श्रेय उसी पर है। वह उसे अपनी मिलकियत समझ उसके पास आती थी।

पथिक गा रहा था :—

हरि नाम सुमर सुख में दुख में।
मत मान करो सब नश्वर है॥

नलिनी ने पीछे से आकर उसकी आखें मूँद लीं। पथिक जानता था कि और किसी में इतना साहस नहीं। वह बोला, "तुम आगईं? नलिनी बहिन, लो आओ और सबक आरम्भ करो।"

"मैं आज गाना नहीं सीखूंगी।"

"क्यों?"

"मैं आज कहानी सुनूंगी।"

"अच्छा तो दोनों करना। पहिले थोड़ा गाने का अभ्यास कर लो और पीछे तुम्हें एक नई कहानी सुनाऊंगा।"

इस वचन पर वह राज़ी हो गई और अपने हाथ आंखों पर से उठाकर सम्मुख आ बैठी। तानपूरे से स्वर मिला, पहले एक दो बार स र ग म कह गई। अब पिछले दिन का सबक सुनाने लगी।

"ध प म ग स रे प—
ध प म ग मम—"

"हां ठीक है। अब इसके बोल सुनाओ।"

"रघुवीर तेरो ही दास कहाऊं।
तुमरो ही नाम जपूं निशि वासुर॥"

"बहुत ठीक। अब तुम ठीक गाने लगी हो।"

"कल मैंने यही गीत माता जी और भाई को सुनाया था।"

"हां, तो उन्होंने क्या कहा?"

"माता जी ने शाबाश दी, परन्तु भाई ने डांटकर पूछा, 'किससे सीखा है?' मैंने तुम्हारा नाम बता दिया। वह कहने लगा, 'मत सीखने जाया करो। वह तुम्हें एक दिन खा जायगा।'"

"फिर?"

"मुझे विश्वास नहीं आया। एक बार तो डर गई थी, परन्तु तुरंत

ही डर दूर हो गया और मैंने कहा, 'भूतनाथ लड़कियों को नहीं खाता।"

"वह बोला, 'वह तुम्हें खा जायगा'।"

पथिक ने मुस्कराते हुए पूछा, "फिर ?"

"फिर क्या ? वह कहता था तुम मुझे खा जाओगे और मैं कहती थी तुम नहीं खाओगे।"

"तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता ?"

"डर ? नहीं। मेरा यहा तुम्हारी बातें सुनने को जी चाहता है। माता जी भी पहले कहती थीं कि यहा न आया करूं। परन्तु एक दिन वह तुम्हारी कथा सुनने आई थीं। तब से वह नहीं रोकतीं। आज मैंने जब पूछा, 'माता जी, जाऊं?' वह बोलीं, 'हां जाओ। परन्तु जल्दी लौट आना'।"

"तब तो तुम जल्दी लौट जाओ।"

"मगर कहानी तो सुनाई नहीं। अभी कैसे जाऊंगी ?"

पथिक तानपूरे पर कपड़ा चढ़ा मन्दिर के अन्दर रखने चला गया। नलिनी भी उसके पीछे पीछे मन्दिर में पहुँच गई। वह कई दिन से यहा नहीं गई थी। आज उसने यहा एक मिट्टी की मूर्ति देखी। ऐसी पहले यहा नहीं थी। नलिनी बहुत ध्यान से उसे देखने लगी। मूर्ति ठीक उसी के कद की थी और बहुत सुन्दर थी। नलिनी ने देखा कि मूर्ति एक सिंहासन पर बैठी है। हाथ में वीणा है। सिर पर मुकुट है। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि सूरत किसी देखी हुई लड़की की है। उसने पथिक को पुकारा, 'भूतनाथ।' वह उसके पास आकर खड़ा होगया। नलिनी ने पूछा, "यह किस की मूर्ति है ?"

"मा सरस्वती की।"

"यह हाथ में क्या है ?"

"एक बाजा है। इसे वीणा कहते हैं।"

"तो मा सरस्वती गाती है ?"

"हा। यह सब कलाओं की देवी है। संगीत आदि कला सीखने वाले इसी देवी की पूजा करते हैं।"

"संगीत के अतिरिक्त और क्या २ सिखाती है ?"

"नाचना, चित्र खैंचना, मूर्ति बनाना और अन्य विद्यायें।"

"यह मूर्ति किसने बनाई है ?"

"मैंने।"

"तुम मूर्ति बनाना भी जानते हो ?"

"हा। अब यही मूर्ति एक पत्थर पर बनेगी। होगी वह इतनी बड़ी और बिलकुल ऐसी ही। मैं तस्वीर भी बनाता हूँ। मेरी बनी तस्वीर देखोगी ?"

"तुम तो बहुत कुछ जानते हो। एक मेरी तस्वीर भी बनाओ तो।"

पथिक ने कुछ उत्तर नहीं दिया। भीतर कमरे में से एक कागज़ का टुकड़ा उठा लाया। लाकर उसने नलिनी को दिखाया। यह नलिनी का चित्र था। इसे वह पहचान गयी। वही लैहंगा, वही चोली, बाल घूंघर वाले भी वैसे ही थे। मोहन के कमरे में एक आईना था और उसमें वह अपना मुख देखा करती थी। इस कागज पर बिलकुल वैसा ही रूप था, जैसा उसे आईने में दिखाई देता था।

"यह तो मेरा चित्र है," उसने कागज को देखते ही कहा।

"हां," पथिक का उत्तर था।

"यह मुझे दे दो। मैं माता जी को दिखाऊंगी।"

"हा, ले सकती हो।"

नलिनी और पथिक दोनों बाहर चले आये। वे साथ २ टहते हुए घाट पर पहुँच गये। घाट से आगे, नदी के किनारे, दोनों कुछ दूर जाकर एक स्थान पर बैठ गये।

पथिक ने कहानी सुनानी आरम्भ की ही थी कि जमींदार का एक नौकर वहा पहुच गया। पथिक की ओर देखकर बोला, "ओ पगले ! चल महाराज बुलाते हैं।"

पथिक इस प्रकार के सम्बोधन से चिढ़ गया। साथ ही वह इस समय नलिनी को कहानी सुना रहा था। इसको वह एक धनी की

रवारदारी करने से अधिक आवश्यक समझता था। अतएव इस समय लाये जाने से वह बहुत नाराज़ हो गया। इस पर भी उसने यही उचित समझा कि नौकर को कुछ उत्तर न दे।

उसने नलिनी को कहानी सुनानी आरम्भ कर दी, "एक राजा था। राजा की एक लड़की थी। लड़की का नाम सावित्री था। सावित्री का कोई भाई···"

जमींदार का नौकर और अधिक उपेक्षा सहन नहीं कर सका। कड़क कर बोला, "सावित्री के भाई के बच्चे! सुनता है या नहीं? महाराज बुलाते हैं।"

पथिक ने सोचा चुप रहने से काम न चलेगा। बोला "क्यों?"

"मैं क्या जानूँ।"

"तो कह दो, पागल नहीं आता। उसे फुरसत नहीं है।"

इस पर नौकर ने घूरकर उसकी ओर देखा और कहा, "तुम कर ही क्या रहे हो जो तुम्हें फुरसत नहीं है?"

"देखते नहीं हो। इस लड़की को कहानी सुना रहा हूँ।"

"ओह! बहुत भारी काम है। फुरसत नहीं है," नौकर ने मुख टेढ़ा कर व्यंग से कहा। "जानते हो, महाराज को भी शायद जरूरी काम है।"

"तो उनको कह दो, यहां चले आवें। तब तक कहानी समाप्त हो जायगी।"

जमींदार का नौकर बिना पथिक को लिये लौट गया। कोट (महल) में जमींदार की युवक-मण्डली उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। मोहन जो इस मंडली में गाने वाला था, उसके कुछ बीमार होने और गा न सकने के कारण सबकी इच्छा पथिक से गाना सुनने की हुई थी। विचार आते ही चपरासी को पथिक के पास भेज दिया था।

सुरेश ने अपनी प्रभुता स्थिर रखने के लिये नौकरों के सम्मुख अपनी मान-मर्यादा को बहुत ऊँचा बना रखा था। यदि गांव का कोई भी व्यक्ति उसकी किंचितमात्र इच्छा की भी अवहेलना करता तो पिटवा दिया जाता

था। यही कारण था कि उसके चपरासी बहुत ही बद-दिमाग़ हो रहे थे।

चपरासी बिना पथिक के लौट आया था। कारण पूछे जाने पर हाथ जोड़कर बोला, "महाराज, वह नहीं आता।"

"क्या कहता था?" विजयबहादुर ने पूछा।

"कहता था फ़ुरसत नहीं है।"

अब सुरेश ने पूछा, "क्या कर रहा था?"

चपरासी ने पथिक के दोष को अधिक से अधिक करके बताने के लिये कहा, "मोहन बाबू की बहिन से मीठी २ बातें कर रहा था।"

यद्यपि मोहन की बहिन नलिनी सात वर्ष की बालिका थी तो भी इस बात को सुन सब सन्न रह गये। मोहन ने इसको भारी अपमान समझा। उसने सबको अपनी ओर देखते हुए जान, उठकर दीवार पर लटके हुए हंटर को उतार लिया और एक भी शब्द बोले बिना बैठक से बाहर निकल आया।

युवक-मण्डली के सब सदस्य उसका अभिप्राय समझ, हाथ में छड़ी, लाठी, जो जिसको मिली, ले मोहन के पीछे हो लिये। सुरेश खाली हाथ था।

जब सब लोग नदी के किनारे पहुंचे तब भी पथिक नलिनी को बता रहा था, "सावित्री ने पति की सेवा की। उसके लिये भगवान से प्रार्थना की और अपनी पति-भक्ति के बल से होनी को भी टाल दिया। सावित्री देवी थी, सती थी और संसार उसके सम्मुख शिर···।"

इसके आगे वह नहीं कह सका। मोहन क्रोध में अन्धा हो रहा था। उसने वहां पहुंचते ही खट से हंटर की एक चोट पथिक की पीठ पर लगा दी।

"आह!" पथिक के मुख से आवाज़ निकल गयी। नलिनी चीख़ मारकर खड़ी हो गयी। इतने में मोहन ने एक और वार किया। पथिक अब उठ खड़ा हुआ। तीसरी बार मोहन का हाथ उठा ही था कि पथिक ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया। हाथ इतने जोर से पकड़ा कि

हंटर ज़मीन पर गिर गया। पथिक ने हंटर उठा लिया और मोहन को पीटने के लिये उसे उठाया। नलिनी यह सब देख रही थी। उसने देखा कि उसका भाई काप रहा है। उसने यह भी देखा कि अब वह पिटने वाला है। इस कारण स्वाभाविक तौर पर उसे दुख हुआ। वह पथिक के सम्मुख आ खड़ी हुई और उसके मुख से आवाज़ निकल गई, 'भूतनाथ !'

नलिनी के दोनों हाथ ऊपर उठे हुए थे और 'भूतनाथ' का शब्द चीख निकलने की भांति था। पथिक आवाज़ सुन नलिनी की ओर देखने लगा। नलिनी ने याचना के भाव में कहा, 'मेरा भाई'।

पथिक नलिनी की घबराई हुई शक्ल देख मुस्कराया और बोला, "तुम्हारा भाई मोहन ? बहुत अच्छा।"

इतना कह उसने हंटर को नीचे कर लिया और मोहन का हाथ छोड़ते हुए बोला, "नलिनी के भाई होने से बच गये हो। भाग जाओ, नहीं तो खैर नहीं।"

मोहन को पथिक की शारीरिक शक्ति का ज्ञान हो गया था। उसकी पकड़ लोहे के शिकंजे से कम नहीं थी। मोहन का क्रोध फेन की भांति बैठ गया। उसे अपने दुर्बल होने पर लज्जा आई।

सुरेश और उसके साथी अभी तक तमाशा देख रहे थे। उनका अनुमान था कि पथिक हंटर की चोट खाने से भाग खड़ा होगा। परन्तु मोहन को लज्जित और निस्सहाय खड़ा देख सब चकित रह गये। विजयबहादुर से नहीं रहा गया। वह आगे निकल आया और बोला, "अबे ओ ! सलाम करो।"

पथिक ने आज्ञाकर्ता के मुख की ओर देखकर कहा, "क्यों ?"

विजयबहादुर ने दांत पीसते हुए कहा, "क्यों ? साले देखता नहीं कि किससे बातें कर रहा है ?"

विजयबहादुर के हाथ में लाठी थी। उसने अपनी बात समाप्त करने के साथ ही लाठी का वार किया। परन्तु पथिक सचेत खड़ा था। उसने

पैंतरा बदलकर वार से अपने को बचा लिया। साथ ही उसने हंटर से विजयबहादुर की कलाई पर वार किया। लाठी उसके हाथ से गिर पड़ी। पूर्व इसके कि वह लाठी उठाने के लिये आगे बढ़े, पथिक ने लपककर लाठी उठा ली। अब उसके हाथ में भी लाठी थी। उसने हंटर को वेग से बहती हुई नदी के पानी में फेंक दिया और लाठी तानकर खड़ा हो गया। सुरेश समझता था कि पथिक कोई कोरा ब्राह्मण ही है। अब उसे उसमें एक चतुर लठैत के चिन्ह दिखाई देने लगे।

रामदीन आगे बढ़ा ही था कि पथिक की लाठी उसके कंधे पर लगी। अब किसी अन्य को आगे बढ़ के लड़ने का साहस नहीं हुआ। इस पर सुरेश ने बिगड़ते काम को बनाने के लिये अपने साथियों को कहा, "यह तो पागल है और पागल में विशेष शक्ति होती है। इससे झगड़ा करने में क्या लाभ?"

पथिक को सम्बोधन कर उसने कहा, "देखो जी, तुम लड़ते क्यों हो? फिर ऐसा किया तो पागलखाने भिजवा दिये जाओगे।"

पथिक इस धमकी को सुन हंसने लगा। सुरेश और उसके साथी अपना सा मुंह लिये लौट गये। मोहन ने जाते समय नलिनी को हाथ से पकड़ साथ कर लिया। वह यह सब झगड़ा देख सहम गई थी।

मोहन, सुरेश और दूसरे साथियों के साथ नहीं गया। वह नदी-किनारे से सीधा घर की ओर चला पड़ा। घर पर मां के सम्मुख पहुँच बोला, "मां, तुमने इसे फिर वहां भेज दिया था?"

मा मोहन का पीला मुख देखकर घबरा गयी। वह चिन्ता में बोल उठी, "क्या हुआ है मोहन? कहां से लाये हो इसे?"

"उस पागल के पास से। मैंने तुम्हें मना किया था, परन्तु तुमने इसे रोका नहीं।"

"आखिर हुआ क्या है? बताते क्यों नहीं?"

मोहन लज्जा और अपमान से मरा जा रहा था और उसके मुख से आवाज़ नहीं निकलती थी। नलिनी, जो लड़ाई देख सहम गई थी, मा

को देख उत्साहित हो कहने लगी, "मैं भूतनाथ के पास बैठी कहानी सुन रही थी कि भैया, राजा बाबू, बिज्जू भैया, रामू सब आये और भैया चाबुक से भूतनाथ को पीटने लगे।"

नलिनी की मा को अभी भी कुछ समझ नहीं पड़ा। उसने मोहन को अपने पास खाट पर बैठा लिया और पूछा, "मोहन, बताओ तुम सब मिलकर वहां क्यों गये थे और तुमने उस भले आदमी से झगड़ा क्यों किया?"

"मां, नलिनी के उसके पास नित्य जाने से हमारी भारी निन्दा होती है। उसे वहाँ मत भेजा करो।"

नलिनी अब समझी कि मोहन उसको भूतनाथ के पास जाने से रोक रहा है। इस पर उसने अपनी चतुराई और बहादुरी का परिचय देने के लिये कह दिया, "हूँ! यदि मैं वहाँ न होती तो भैया चाबुक से खूब पीटे जाते। मां, जब भूतनाथ ने भैया से चाबुक छीन ली और इसे पीटने लगा तो मैंने उसे कहा 'यह मोहन भैया हैं' तो उसने हंटर नीचे कर लिया और भैया को छोड़ दिया।"

मा ने नलिनी की बात अनसुनी कर मोहन से पूछा, "लोग क्या निन्दा करते हैं, और कौन लोग हैं जो निन्दा करते हैं? पथिक साधू है। सुना है आज उसने क्या किया है? बेनी और बेनी की स्त्री की सुलह करा दी है। बेनी अब अपने घर चला गया है। बेनी की मौसी अभी आई थी और कह रही थी कि वह कहता था, 'मैंने रुपया छोड़ दिया है। बहू पाच सौ रुपये से मंहगी नहीं है।' मोहन, ऐसे आदमी को तुम पीटने गये थे? किस लिये?"

"बेनी की स्त्री से सुलह होगई है? मा, यह ठीक नहीं हुआ। अब इस गाव में ऊधम मचे बिना नहीं रहेगा। बेनी की स्त्री बेनी को मिल गई। गज़ब होगया है मा!"

इतना कहते कहते मोहन घर से बाहर निकल गया। मां मोहन! मोहन! पुकारती रह गयी।

[७]

गाव भर में यह खबर फैल गयी थी कि सुरेश और उसके साथी पथिक को पीटने गये थे। लोगो में हलचल थी और वे बहुत बडी संख्या मे आज कथा में उपस्थित हुए थे। सब जानना चाहते थे कि पथिक को कितनी चोटे आई हैं। कुछ लोग तो मन में यह भी आशका कर रहे थे कि वह गाव छोड भाग गया होगा। पथिक को सही-सलामत आसन पर बैठे, कथा के लिये तैयार देख, लोग विस्मय और प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे।

पथिक ने कीर्तन के पश्चात् आज महाभारत का तत्व समझाया। वह कहने लगा, "आर्य-सभ्यता मे विदेशी सभ्यता का मिश्रण हो रहा था। चन्द्रवंशी उन लोगों में से थे जो किसी समय आदि आर्य लोगों के पश्चात् सीरिया और अरब देशों से भारतवर्ष में आये थे। इन लोगों ने आर्य-सभ्यता को स्वीकार तो कर लिया था फिर भी अपनी सभ्यता की छाप भी रखते थे। इनकी अपनी सभ्यता आदि आर्य लोगों की सभ्यता से निकृष्ट थी। इसके मिश्रण से आर्य-सभ्यता में अवनति ही हुई थी, उन्नति नहीं। परिणाम में उस समय के लोगों में चरित्रहीनता उत्पन्न हो गई।

"चन्द्रवंशी राजाओं में दुष्यंत का उल्लेख सब से पूर्व आता है। महाराजा भरत इसी की संतान था। दुष्यंत का शकुन्तला से गान्धर्व विवाह नियम-विरुद्ध था। कारण यह कि गान्धर्व विवाह आपत्ति-काल का धर्म है। अर्थात् युद्ध-काल मे यदि किसी के सन्तान न होने से बहुत हानि होने की आशंका हो और विवाह के सब रीति-रिवाज के लिये समय न हो तब गान्धर्व विवाह किया जा सकता है। दुष्यन्त के लिये ऐसी कोई आपत्ति नहीं थी। शुद्ध काम-लिप्सा के लिये ऐसे विवाह की स्वीकृति, विशेष रूप में एक राजा को, अनुचित थी। इस प्रकार पाप से बोया हुआ बीज कुछ समय पश्चात पाप का पेड़ बन गया। महाराजा शान्तनु का धीवर की लड़की से विवाह, राज्य के उचित और योग्य उत्तराधिकारी को राज्य से वचित कर, अनर्थ था। भीष्म पितामह का काशीराज की लड़कियों को बिना उनकी इच्छा के, धीवर की लड़की के लड़के से

विवाह करने के लिये, उठा लाना अन्याय की परिकाष्ठा थी। कौरवों का पाण्डवों से ईर्षा, द्वेष, धोखा, फरेब आर्य सभ्यता के पतित हो जाने के लक्षण थे। यह पाप का वृक्ष, जिसे दुष्यन्त ने बोया था और जिसे शान्तनु और भीष्म पितामह ने सींचा था, महाभारत युद्ध में काल-रूप बनकर प्रकट हुआ। यह आर्य लोगों के पतन का इतिहास है। जो लोग इसे इस प्रकार अध्ययन करते हैं उन्हें इन सब त्रुटियों से बचना चाहिये।

"रामायण एक उन्नति की ओर बढ़ती हुई जाति का इतिहास है, महाभारत पतन की ओर जानेवाली जाति का। रामायण को उसमें लिखे आचरण को ग्रहण करने के लिये पढ़ना चाहिये और महाभारत को उसमें लिखे आचरण को छोड़ने के लिये।

"महाभारत-काल में श्रीकृष्ण भगवान का आचरण और उनकी शिक्षा उस काल के कूड़ा-करकट को साफ करने के लिये थी। एक बार तो पतन की ओर जाती हुई जाति को रोककर पुनः उन्नति के मार्ग पर लाकर खड़ा कर देने का श्रेय गीता की शिक्षा को ही है। भगवान कृष्ण की महिमा इसी में है।"

पश्चात आरती हुई। सब मिलकर गाने लगे :—

जय अम्बे जगदम्बे जय भारत माता।
हम सब तव गुण गावें तू सकल विधाता॥
मणि माणिक्य मंढ़ित जड़ित, शीश पर हिम मुकुट।
भानु किरण हेम रङ्ग, शोभा बहु लाता॥
जय भारत माता।
हिमाचल विशाल भाल, मुख सुन्दर पञ्चाल।
अवध उदर बङ्ग प्राण, पग सिहल राता॥
जय भारत माता।
विन्दा में बन उपवन, जल प्रपात अनेक।
खनिज धन दौलत से, तव मूल्य बढ़ाता॥
जय भारत माता।

महावीर महाराष्ट्र, धीर वीर पञ्जाब।
मेधावी मद्रास, तव अङ्ग बनाता॥
जय भारत माता।
मारवाड गुजराती, बड़े व्योपारी।
संगीत कला प्रवीण, बङ्गाल सुहाता॥
जय भारत माता।
वीर भूमि पुण्य भूमि, सब सुखों की खान।
कीर्ति मान तुम्हारा, सभी जगत गाता॥
जय भारत माता।
सकल जगत की संस्कृति, कला ज्ञान विज्ञान।
विश्व विभूति की तुम, रही जन्म दाता॥
जय भारत माता।
निष्कलङ्क निर्विकार, अति सुन्दर आकार।
तव छवि रूप अपार, सबके मन भाता॥
जय भारत माता।

कथा समाप्त हुई। आज किसी ने भी शंका निवारणार्थ प्रश्न नहीं किये। सब के मन दूसरी बात में लगे थे। कथा समाप्त होने पर भी लोग वहा से नहीं हटे। सब पथिक को घेरे खड़े रहे। मुरली चमार आगे बढ़कर पूछने लगा, "गुरुदेव, लोग यह जानना चाहते हैं कि क्या आप देवा छोड़ रहे हैं?"

इस प्रश्न से पथिक को बहुत विस्मय हुआ। उसने पूछा, "कौन कहता है?"

मुरली ने कह दिया, "सब में चर्चा हो रही है।"

"और मैं क्यों जा रहा हूँ?"

"लोग कहते हैं जमींदार आप पर नाराज़ है।"

"यदि वह मेरा यहां रहना पसन्द नहीं करता तो उसे मुझे कहना चाहिये। उसने तो मुझे कुछ नहीं कहा।"

"वह और उसके साथी आज आपको पीटने जो आये थे।"

"हां। परन्तु जब एक पहलवान दूसरे से कुश्ती करने जाता है तो इससे यह अभिप्राय कैसे निकल सकता है कि वह उसे देश से बाहर निकालना चाहता है?"

"गुरुदेव यह बात दूसरी है। ये लोग तो आपको पीट और डराकर भगा देने आये थे।"

"परन्तु न तो मुझे पीट सके, न डरा सके। प्रत्युत स्वयं पिट गये और डरकर भाग गये। इससे तो यह सिद्ध हुआ कि यदि भागना चाहिये तो उनको, न कि मुझे।"

इससे सब हंसने लगे। इस पर भी सब लोगों को वहां से टलते न देख पथिक ने फिर कथा करने के स्थान पर खड़े होकर लोगों को सान्त्वना देने के लिये कहा, "मुझे कहा गया है कि यहां के ज़मींदार, सुरेश बाबू मुझे यहां से निकाल देना चाहते हैं। मैं नहीं जानता क्यों? मैंने अपनी जानबूझ में कोई पाप नहीं किया। मुझे ज़मींदार से कोई वास्ता नहीं। मैं उसके आश्रय नहीं हूँ। अतएव यदि आप चाहें तो मैं आज यहां से चला जाऊंगा। यहां के जल-वायु ने और उससे भी अधिक आप लोगों के प्रेम ने मुझे यहां बांध रखा है। मेरे यहां से चले जाने का निर्णय आपके हाथ में है।"

इस पर सब लोग बोल उठे, "हम नहीं चाहते। हम नहीं चाहते।"

[८]

रात का समय था। वेनी अपनी स्त्री के पास बैठा कह रहा था, "भली औरत, यदि यह बात तूने पहले बताई होती तो मैं तुझे इस गांव से कहीं बाहर ले गया होता, जहां यह दुष्ट विजयबहादुर तेरी खुर-खोज भी न पा सकता। मुझे तो यही ज्ञात था कि तेरा बापू बीमार होकर मरा है।"

"मैं तुमसे डरती थी कि तुम मेरे चुप रहने का कारण मेरा भी इस पाप-कर्म में शामिल होना समझोगे। सच्ची बात तो यह है कि मैं तुमको इतना उदार नहीं समझती थी। चाहे तो नाराज होओ और चाहे राज़ी,

मैं समझती थी कि यदि तुम जान गये कि मैं अपनी मां और विजयबहादुर को बापू का घातक जानते हुए भी उससे सम्बन्ध रखे हुए हूँ, तो तुम मुझे मार डालोगे। मेरी मां ने भी मुझे तुम्हारे पास भेजते समय यह समझा दिया था। और मैं चुप थी।"

"हां ठीक तो है। मैं सोचता था कि तूने रुपया चुराकर जब विजयबहादुर को दे दिया है तो तू किसी दिन मुझे मरवा भी देगी। रुपया मांगने वाले को मार्ग के कांटे की भांति दूर करना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। इस पर यदि मुझे यह ज्ञात हो जाता कि विजयबहादुर तेरे बाप का घातक भी है, तो मैं क्या कर बैठता कह नहीं सकता। परन्तु अब तूने यह सब बता क्यों दिया? क्या तुझे अब मुझसे भय नहीं लगता? मैं अब भी तो वही वेनी हूँ।"

"मेरे मन में पहले भी कई बार यह आया करता था कि अपनी सब बात खोलकर तुम्हारे सम्मुख रख दूँ, परन्तु तुम्हारे मुख पर क्रोध देखते ही मेरा मुख बन्द हो जाता था और मन की बात मन में ही रह जाती थी। क्या तुम समझ सकते हो कि मैं अपनी आंखों से बापू की हत्या देखकर हत्यारे से प्रेम कर सकती थी? वह मेरे शरीर का उपभोग करता था। मैं मजबूर थी। मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं था। मेरा मन सदैव उससे घृणा करता था। परन्तु एक औरत बेचारी क्या कर सकती है?

"गुरुदेव ने जब मुझे बेटी कहकर पुकारा तो मुझे बापू की याद आई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सत्य ही वह मेरा पिता है और वह मेरी रक्षा करेगा। मेरे मन में विश्वास सा हो गया था कि मेरे दोष स्वीकार कर लेने पर यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगे तो वह मेरी सहायता करेगा और मुझे तुमसे तथा विजय से बचायेगा। पिता अपनी लड़की को, चाहे वह कितनी भी पतित हो, त्याग नहीं सकता। गुरुदेव की आंखों में कुछ ऐसी शक्ति थी कि मैं उनके देखते हुए झूठ नहीं बोल सकी, न ही कोई बात छिपा सकी हूँ। अब तो मैं तुम्हारे हाथ में हूं। तुम मुझे मार भी डालोगे तो चुप रहूँगी।"

"परन्तु विजयबहादुर यहां तुझे कष्ट देगा। मैं सोच रहा हूँ कि एक-दो दिन में ही तुझे लेकर कहीं बाहर चला जाऊं।"

"जैसा मन करे करो। मैं अब तुमसे पृथक नहीं रहूँगी।"

अभी बातें हो ही रही थीं कि बाहर के दरवाजे के खटखटाने का शब्द हुआ। बेनी की स्त्री के मुख से निकल गया, "वह आगया है।"

बेनी ने कहा, "तू चुप बैठी रह। मैं निपट लूँगा।"

एक डंडा हाथ में लेकर वह वहा से उठकर बाहर दरवाजे के पास चला आया। उसने भीतर से आवाज़ दी, "कौन है?"

"दरवाज़ा खोलो," बाहर से उत्तर आया।

"भाई, तुम बताओ कौन हो और क्या काम है? क्यों दरवाज़ा खोला जाय?"

"अबे बेनी के बच्चे! दरवाजा खोल दे, नहीं मौत के घाट उतार दूंगा।"

"ओह! तो तुम लड़ने आये हो? लो आजाओ। यहा भी चूड़ी पहिने हुए नहीं है।" इतना कह बेनी ने दरवाजा खोल दिया।

ज्योंही आने वाले ने कदम भीतर रखा, बेनी ने, जो दरवाज़े से एक तरफ हटकर खड़ा था, खट से डंडे का एक वार कर दिया। दरवाज़े के पास अन्धेरा था। बेनी पहचान नहीं सका कि आने वाला कौन है। उसने एक और वार किया और आने वाला पिछले पाव बाहर भाग गया। बेनी की स्त्री ने, जो एक और डंडा लिये दरवाज़े के दूसरी ओर पहुँच गयी थी, झट से दरवाज़ा बन्द कर लिया। दरवाज़ा बन्द करते समय उसने देखा कि दो आदमी भागे चले जाते थे।

कुछ और समय के पश्चात् सोने की तैयारी हो गयी और बेनी प्रसन्न मन से गहरी नींद सो गया। बहुत रात गये पश्चात् उसकी नींद खुल गयी। उसकी स्त्री घबराई हुई उसे जगा रही थी।

मकान के चारों ओर आग धकधक जल रही थी। बाहर निकलने को कोई मार्ग नहीं था। दरवाज़े के ऊपर की छत तो जलकर गिर पड़ी थी

और मार्ग ज्वालामुखी पर्वत की भांति लपटें छोड़ रहा था। वह उठा, परन्तु धुँए से उसका गला घुट गया और वह अर्ध-चेतना की अवस्था में ही वहीं फर्श पर लेट गया। बेनी की स्त्री चीखें मारती हुई उसके ऊपर गिर गई।

अकस्मात बाहर की दीवार गिर गई। आग कुछ दब गई और एक मनुष्य ऊपर से नीचे तक गीला, मोटा कपड़ा लपेटे हुए, लपकता हुआ भीतर घुस आया। बेनी की स्त्री, जो अभी तक अचेत नहीं हुई थी, ज़ोर से बोल उठी, 'हम यहा हैं।'

आने वाला इस बुलाने पर वहा पहुंचा और बेनी को कंधे पर डालकर तथा बेनी की स्त्री को बगल में उठाकर ऐसे बाहर ले आया मानो बच्चों को उठाये हुए है। बाहर आते समय उसका गीला कपड़ा बेनी और उसकी स्त्री पर लिपटा हुआ था। परिणाम यह हुआ कि आग की लपटों ने उसके शरीर को कई स्थानों पर झुलसा दिया। धुंए के कारण अथवा आग में जल जाने के कारण वह घर से बाहर आते ही भूमि पर लेट गया और बेहोश हो गया।

[६]

रात के दो बजे के लगभग देवा के लोगों ने देखा कि बेनी का घर चारों ओर से धड़ाधड़ जल रहा है। पड़ोसी अपने अपने घरों से निकल आये। सबसे पहली बात जो उन्होंने देखी वह दो मनुष्यों का जलती आग पर तेल गिराना था। पड़ोसी उन्हें पकड़ने के लिये भागे। एक जो कुछ अधिक चुस्त था भाग गया। दूसरा पकड़ लिया गया। भागने वाले को लोगों ने पहचान लिया। वह विजयबहादुर था। पकडा जाने वाला मोहन था। जब तक लोग इन आग लगाने वालों को पकड़ते रहे आग ने मकान को चारों ओर से घेरे लिया था।

पड़ोसियों को मालूम था कि बेनी आज घर आया है, और वे विजयबहादुर का घर को आग लगाने का प्रयोजन भी समझते थे। उनको यह भी पता चल गया था कि बेनी और उसकी स्त्री दोनों घर के भीतर

हैं। उन्हें बचाने का कोई उपाय न जान लोग घड़े भर भरकर आग बुझाने लगे।

इस समय पथिक, जो आग का प्रकाश देख वहां चला आया था, पूछने लगा, "यह किस का मकान है?"

किसी समीप खड़े ने उत्तर दिया, "बेनी का। वह और उसकी स्त्री भीतर हैं। बाहर नहीं आ सके।"

यह सुनते ही पथिक सन्न रह गया। उसने ही बेनी को घर पर चले जाने की राय दी थी और शायद इसी का परिणाम यह आग है। पथिक ने अनुभव किया कि बेनी की मुसीबत का कुछ उत्तरदायित्व उस पर भी है। इसके अतिरिक्त भी उसकी आत्मा यह सहन न कर सकी कि दो मनुष्य जीते ही जल जायं और उनके बचाने का यत्न न किया जाय। उसने तुरन्त एक आदमी से, जो दुहर ओढ़े एक तरफ खड़ा था, दुहर ले ली। उसे जल में भिगो डाला और ओढ़कर भीतर जाने को तैयार हो गया। दैवी कृपा से इसी समय घर के एक ओर की दीवार गिर पड़ी। इससे उस ओर की आग कुछ दब गई। यह सुअवसर जान पथिक लपककर भीतर चला गया।

जब वह बेनी और उसकी स्त्री को लेकर बाहर निकला तो सब लोग उसके चारों ओर एकत्रित होगये। वह बेनी को कंधे से उतारता उतारता स्वयं अचेत होगया। छत्रपालसिंह समीप खड़ा था। उसने खाट मंगवा तीनों घायलों को उन पर डलवा मन्दिर में भिजवा दिया। एक आदमी को गांव के वैद्य को बुलाने के लिये भेज दिया।

[१०]

बेनी के पड़ोसी मोहन के हाथ-पाँव बाँध उसे थाने ले गये। अभी दिन निकला ही था। चौकीदार बरामदे में खाट पर कम्बल ओढ़े पड़ा था। लोगों के आने से उठ खड़ा हुआ। इतनी सुबह उठाये जाने पर ताव खा पूछने लगा, "क्या है? क्यों आये हो?"

लोगों ने बेनी के घर की आग का वृत्तान्त बताया और मोहन तथा

विजयबहादुर को आग लगाने वाला बताया। मोहन को घर पर तेल डालते हुए पकड़े जाने की बात भी बताई। चौकीदार ने देखा कि मामला सीधा नहीं। अतएव बोला,"वहाँ बरामदे में बैठ जाओ, अभी दारोगा साहब आयेंगे तो उन्हें कहना।"

जो लोग थाने में पहुँचे थे उनमें एक पंचम कोरी था। कांग्रेस खद्दर-भंडार वालों के लिये खद्दर तैयार कराने के सिलसिले में कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आने से वह कुछ स्वतंत्र विचारों का बन गया था। चौकीदार के इस शुष्क उत्तर से चिढ़कर बोला,"तो क्या इस समय थाना बन्द है? कोई भी आदमी ड्यूटी पर नहीं है?"

चौकीदार, जो बहुत मीठी नींद से जगा देने पर पहले ही क्रोध से भर रहा था, इस कथन से आपे से बाहर होगया। कहने लगा,"बहुत बकबक न करो। आराम से बैठ जाओ। तुम्हारे बाप के नौकर नहीं जो चौबीस घंटे बैठे रहें।"

इतना कह उसने कम्बल ओढ़ लिया और टांगें लम्बी कर खुर्राटे भरने लगा। विवश सब लोग अपने बीच में मोहन को बैठाकर उसके चारों ओर बैठ गये। पहले तो आग बुझाने में भाग-दौड़ करने में, फिर मोहन को पकड़ थाने में लाने में प्रायः सब थक चुके थे। अब उनको दारोगा की प्रतीक्षा करनी पड़ी।

दिन के छः बज गये। चौकीदार उठा, कम्बल लपेट अपनी बैठक में घुस गया। दूसरे सिपाही आ पहुँचे और अपने अपने काम में लग गये। किसी ने उन लोगों से नहीं पूछा कि वे वहाँ किस प्रयोजन से बैठे हैं। धीरे धीरे नौ बज गये। अभी भी दारोगा घर से बाहर नहीं आया था।

मोहन की अवस्था अति शोचनीय थी। वह सोचता था कि मुकदमा कहीं साबित होगया तो दो-तीन वर्ष का कठोर दंड तो अवश्य ही होगा। यह एक अत्यंत दुखदायक विचार था। वह मन में विजयबहादुर का साथ देने पर पश्चाताप भी करता था। एक आशा उसके मन में थी कि सुरेश उसे बचाने का यत्न अवश्य करेगा। वह धनी है, इलाके का ज़मींदार

है और यदि वह चाहेगा तो एक भी गवाह विपरीत नहीं हो सकेगा। इस पर भी क्या होगा और क्या नहीं होगा, वह नहीं कह सकता था। इस अनिश्चित अवस्था से ही वह परेशान था। सब से दुख की बात उसकी मा और बहिन के मन पर उसके कैद होने का दुष्प्रभाव था। घर में उसकी प्रतिष्ठा भंग होगी। गाव में तो वह बदनाम हो ही चुका था।

इन्हीं विचारों में वह डूबा हुआ था कि दारोगा, रात की पोशाक में, ऊपर लम्बा कोट पहने, मुख में लम्बी सी दातुन चबाते हुए, घर से बाहर निकल आया। पचम, जो अपने क्रोध को अभी तक भीतर ही भीतर दबाये हुए था, दारोगा को देख उसके सम्मुख सलाम कर खडा होगया। दारोगा ने धीरे धीरे टहलते हुए पूछा, "क्या है?"

"हजूर, गाव में बेनी कहार के घर को आग लगा दी गयी है और आग लगाने वाले को पकड़ लाये हैं।"

दारोगा आग की बात सुन कुछ सचेत हो पूछने लगा, "मकान जल गया या बच गया?"

"सब कुछ जल गया है। एक पैसे का भी सामान नहीं बचा। बेनी और उसकी स्त्री आग में फँस गये थे, परन्तु गुरुदेव की कृपा से बच गये हैं। उनको बचाने में गुरुदेव स्वयं, बेनी और उसकी स्त्री बुरी तरह जले हुए अब मन्दिर में पड़े हैं। उनकी चिकित्सा हो रही है।"

इस समाचार को सुन दारोगा विस्मय में पंचम का मुख देखने लगा। "आग कब लगी थी?" उसने पूछा।

"रात के दो बजे।"

"अब तो नौ बज गये हैं। अभी तक तुमने रपट क्यों नहीं लिखाई?"

"पहले तो आग बुझाने का यत्न करते रहे और पाच बजे से यहा आये हुए हैं। कोई सुनता ही नहीं।"

दारोगा कुछ क्रोध में आगया और जल्दी से दफ्तर में पहुंचकर मुन्शी से बोला, "मिया अब्दुलसमद, इनकी रिपोर्ट क्यों नहीं लिखते?"

अब्दुलसमद अपनी डैस्क के सम्मुख बैठा बीड़ी पी रहा था। दारोगा

को लाल-पीला होते देख, बीड़ी को एक तरफ रख, कहने लगा, "जनाब, ये लोग तो चुपचाप यहां बैठे थे। इन्होंने कुछ कहा ही नहीं।"

"तुम्हें मालूम है गांव में आग लग गई है?"

"नहीं तो हजूर, कहां लगी है?"

"इनकी रिपोर्ट लिख लो।"

इतना कह दारोगा ने पंचम से पूछा, "कौन आग लगाते पकड़ा गया है?"

पंचम ने मोहन को दिखाया। दारोगा ने उसे देख विस्मय से पंचम की ओर देखा और पश्चात उसे डाटकर कहा, "अबे पंचम के बच्चे, क्या मौत आई है जो इसे पकड़ लाया है? जानता है यह कौन है? जमींदार और उसके साथी मार मारकर जान निकाल देंगे। होश ठिकाने है या नहीं?"

पंचम को, दारोगा के मुख से ये कटु वचन सुन, वह सब क्रोध, जो वह मन में इतनी देर से दबाये हुए था, चढ़ आया। उसके नथुने फूलने लगे। आंखें लाल होगयीं। इस पर भी केवल उसने यह कहा, "देखो जी, रपट लिखनी हो तो लिखो, नहीं तो जवाब दे दो। तब हम सोच लेंगे कि क्या करें। जानते हो यह मोहन बाबू और विजयबहादुर दोनों आग लगा रहे थे। अगर ये ज़मींदार के मित्र हैं तो इनके विरुद्ध रपट भी नहीं लिखोगे क्या?"

"अबे उल्लू, तेरे ही लाभ की बात कहता हूँ। बड़े लोगों से माथा न पटको।"

"देखो जी उल्लू-वुल्लू मत कहो। सीधी तरह बात करो। सुबह चार बजे से जाड़े में ठिठर रहे हैं और जनाब सोये हुए अब उठकर आये हैं। इस पर भी उलटे हमें ही डाटने लगे हैं।"

"तो मुझे तुमने अपना नौकर समझ रखा है कि जब भी तुम्हें ज़रूरत हो तो भागा भागा चला आऊं?"

"हां, पब्लिक के नौकर तो हो ही। क्या चोरी करने वाला यह

सोचकर चोरी करने आयेगा कि दारोग़ा साहब जाग रहे हैं या नहीं ? आपके सोने के समय आपकी नींद ख़राब न करने के लिये चोरी करने से चोर रुक नहीं जायगा। वह तो किसी समय भी आ सकता है। जब चोर पकड़ा जायगा तभी तो थाने में लायेंगे।"

दारोग़ा जाति का ब्राह्मण था। नाम था चन्द्रशेखर। महकमे में मुसलमानों का जोर था और बेचारे की शिकायतें पहले ही बहुत हो चुकी थीं। अब इस जुलाहे को इस प्रकार बातें करते सुन कुछ डर गया। साथ ही वह समझता था कि ऐसे अवसर पर तो मौके पर हाजिर होकर आग बुझाने में मदद देनी चाहिये थी। अब ये लोग रिपोर्ट लिखाने आये भी तो छः घंटे तक बैठना पड़ा। उसने कुछ नरमी से कहा, "पंचम, काग्रेस में रहकर बहुत बातें सीख गये हो। मुबह-मुबह झगड़ा करना ठीक नहीं।" यह कह दारोग़ा दातुन करता करता फिर घर के भीतर चला गया।

अब्दुलसमद न तो हिन्दू था, न जाति का ब्राह्मण। वह जानता था कि वह मुसलमान है और उसके विरुद्ध शिकायत करने का कुछ प्रभाव नहीं होगा। दारोग़ा के चले जाने के पश्चात् जब लोग रिपोर्ट लिखाने उसके पास आये तो बोला, "हमारा मेहनताना।"

सब एक दूसरे का मुख देखने लगे। इतने भारी जुर्म की रिपोर्ट पर भी मेहनताना अर्थात् रिश्वत मागी जायगी, कोई नहीं जानता था। पंचम ने कहा, "मुन्शी जी, बेनी का तो मकान और सब कुछ जल गया है। वह स्वयं अधजला और बेहोश पड़ा है। जब वह ठीक हो जायगा तो उससे अपना मेहनताना मांग लेना। हमारे पास तो देने को कुछ नही।"

मुन्शी पंचम की बातों से घबराने वाला नहीं था। बोला, "बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ! यहा बैठो, मै अभी आकर तुम्हारी रिपोर्ट लिखता हूँ।" इतना कह उसने कलम को कान पर चढ़ा लिया और एक बीड़ी जेब से निकाल, जलाकर धुँआ छोड़ता हुआ, दफ्तर से बाहर निकल गया।

सब लोग परेशान थे कि क्या किया जाय। वे लोग दफ्तर से बाहर आगये। मोहन, जिसके पाव उन्होंने खोल दिये थे, परन्तु हाथ अभी बंधे

थे, उनके बीच वहाँ बहुत चिन्तातुर खड़ा था। उसने पंचम से कहा, "मुझे छोड़ दो। आख़िर पुलिस से आपको क्या मिलेगा?"

मोहन के पास चार-पाच आदमियों को छोड़, पंचम दूसरे लोगों को लेकर एक तरफ दूर जाकर विचार करने लगा। कुछ लोग कहते थे, "हमें क्या पड़ी है कि दूसरे के झगड़े में पड़ें? मोहन को छोड़ दें और घर का रास्ता पकड़ें।" कुछ दूसरे कहते थे, "अब जब यहा आगये हैं तो बात को किसी हद तक पहुंचा कर ही जाना चाहिये। रपट तो अब लिखवा ही देनी चाहिये। आख़िर मुन्शी कब तक रोक रखेगा?"

ये लोग अभी बातचीत कर ही रहे थे कि मुरली वहाँ पहुंच गया। पूछने लगा, "क्या बात है? अभी रपट नहीं लिखी गयी?"

पंचम ने उत्तर दिया, "नहीं भाई, मुन्शी मेहनताना मागता है।"

इस पर मुरली ने कहा, "मुझे गुरुदेव ने भेजा है। वह कहते हैं कि यदि रपट न लिखी गई हो तो मत लिखाओ और मन्दिर में चले आओ।"

"क्यों?"

"वहाँ पंचायत हो रही है। सब गांव इकट्ठा हुआ है और यह मामला उसमें तय होगा।"

जो लोग रिपोर्ट लिखाने के हक़ में थे वे भी पथिक की सम्मति सुनकर थाने से चले जाने पर राज़ी होगये।

पाँच-छः बीड़ी फूंककर मुन्शी ने विचार किया कि देखूँ वे लोग कुछ देने पर राज़ी हुए हैं या नहीं। वह दफ्तर में आया तो दफ्तर खाली था। उसने बाहर इधर-उधर देखा। उन लोगों में से वहाँ कोई नहीं था। वह अब कुछ चिन्तित हो सोचने लगा कि ये बदमाश के बच्चे कहाँ चले गये।

बाहर आ मुन्शी ने ड्यूटी पर के कानस्टेबल को बुलाया, "फतेमुहम्मद, फतेमुहम्मद! अबे देखना, देवा के लोग एक मुकदमा लेकर आये थे।"

"मुन्शी साहब, वे सब चले गये।"

"अबे, कहां चले गये?"

"अपने अपने घर को गये होंगे, मुझे मालूम नहीं।"

"अबे, ज़रा जाना, उनको बुला लाना।"

"हजूर, ड्यूटी पर हूँ। यहा से कैसे जा सकता हूँ?"

[११]

रात भर मोहन की मां मोहन की प्रतीक्षा करती रही। वह घर नहीं आया। नलिनी तो शीघ्र ही सो गई थी, परन्तु उसकी मां जागती रही। जब उसने गाव में बहुत हल्ले का शब्द सुना, वह उठकर मकान के दरवाज़े में आ खड़ी हुई। पहले तो कुछ पता नहीं चला, परन्तु कुछ ही देर बाद किसी के घर जलने का प्रकाश आकाश को लाल करता हुआ दिखाई दिया। लोग इधर-उधर भागे चले जाते थे। कुछ काल पश्चात् उसने लोगों को यह कहते सुना कि बेनी के घर को आग लग गई है और बेनी और उसकी स्त्री बीच में जलकर मर गये हैं। यह सुनते ही मोहन की मा के सिर में चक्कर आने लगे। उसे मोहन का यह कहना, कि अब इस गांव में ऊधम मचे बिना नहीं रहेगा, याद आने लगा। वह अपने मन में कहती थी, 'हे भगवन्! मोहन कहाँ होगा?'

वह कितनी ही देर तक, हाथों में सिर पकड़े हुए, दरवाज़े में बैठी रही। एक पडोसी, जो बेनी के घर की तरफ से आ रहा था, मोहन की मा को दरवाज़े में बैठा देख बोल उठा, "मोहन की मा, बहुत बुरा हुआ है। मोहन आग लगाते पकड़ा गया है और लोग उसे थाने ले गये हैं।"

मोहन की मा, जैसे यही सुनने के लिये वहां बैठी थी, उठकर भीतर चली आई। इस समय दिन चढ़ने वाला हो गया था। वह पूजा के कमरे में चली गई और आखें मूंद भगवान के सम्मुख हाथ जोड बैठ गई। इसी तरह बैठे २ दो घण्टे के लगभग व्यतीत हो गये। शायद उसे नींद आगई थी अथवा मन मे भ्रम हो गया था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान अपने आसन से उठकर खड़े हो गये हैं। वह चलकर समीप आगये हैं। उनके समीप आने पर मोहन की मा को ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान के रूप में पथिक खड़ा है। वह कह रहा है, "चिन्ता मत करो। नलिनी और तुम्हारे लिये मोहन की रक्षा करूंगा।"

इतने में मोहन की मां को झोंका आगया और वह गिरती गिरती बची। जब उसने आंखें खोलकर देखा तो भगवान वैसे ही दीवार के साथ अपने आसन पर, ओठों से मुरली लगाये, अचल बैठे थे। वह विस्मय में सोचने लगी कि यह केवल स्वप्न-मात्र था अथवा इसमें कुछ तत्व है।

इस विषय पर बहुत विचार करने पर उसको यही समझ पड़ा कि भगवान की प्रेरणा है कि पथिक से सहायता मांगी जाय। वह भगवान के सम्मुख से उठी। नलिनी अभी सो रही थी। उसने उसे जगाया, स्नानादि से निवृत्त करा, भगवान की मूर्ति के सम्मुख ले जाकर इस प्रकार समझाया, "तुम्हारा भाई मोहन आज पकड़ा गया है। पुलिस ने उसे पकड़ लिया है। तुम्हारे भाई को छुड़ाने के लिये मैंने भगवान से प्रार्थना की थी और उन्होंने मुझे कहा है कि पथिक मोहन को छुड़ा देने की शक्ति रखता है।"

नलिनी का छोटा सा मन यह समझ तो गया कि पथिक मोहन को किसी मुसीबत से, जिसे वह नहीं समझी, बचा देगा, परन्तु भगवान की बात उसे समझ में नहीं आई। उसने मा से पूछा, "भगवान कैसे बोलते हैं, मा?"

"बेटी, वे मुख से नहीं बोलते। सच्चे मन से यदि उनकी भक्ति की जाय तो वे मन में आकर बता जाते हैं। मैं जब उनसे प्रार्थना कर रही थी कि हमारी रक्षा करें तो उन्होंने मुझे बताया कि पथिक मोहन की रक्षा करेगा। अब तुम पथिक के पास चली जाओ और उससे कहना कि भगवान ने तुम्हें भेजा है। वे कहते हैं कि तुम मोहन को बचाओ।"

[१२]

लोग पथिक, बेनी और उसकी स्त्री को खाटों पर डालकर श्रापित मन्दिर में ले गये। बेनी और उसकी स्त्री को तो आग ने कुछ अधिक हानि नहीं पहुँचाई थी। केवल धुएँ के कारण वे बेहोश हो गये थे। हां पथिक की टांगे बुरी तरह जल गई थीं।

जब वैद्य वहां पहुंचा तो बेनी और उसकी स्त्री होश में आगये थे। उनके लिये तो वैद्य ने केवल दिल को ताक़त देने की औषधि दे दी।

पथिक अभी तक बेहोश था। उसे होश में लाने के लिये यत्न किया जाने लगा। दूसरी ओर जले हुए स्थानों पर लगाने के लिये तेल बनने लगा।

दो घण्टे के प्रयत्न के पश्चात पथिक को चेतनता हुई। तब तक तेल भी तैयार होगया था। वह घावों पर लगाया जाने लगा। पथिक को जब चेतनता हुई तो सब से पहला प्रश्न उसने बेनी और उसकी स्त्री की बाबत किया। छत्रपालसिंह, जो समीप ही खड़ा था, बताने लगा, "वे ठीक हैं। बेनी तो आपके लिये तेल बना रहा है और उसकी स्त्री आपके खाने की औषध घोट रही है।"

इससे पथिक को संतोष हुआ। उसके घावों में तीव्र वेदना हो रही थी। इस पर भी उसने कहा, "भगवान का धन्यवाद है, और विजयबहादुर?"

"वह तो भाग गया है, परन्तु उसका मित्र मोहन आग लगाते हुए पकड़ा गया है। लोग उसे थाने ले गये हैं।"

"मोहन?" पथिक ने बड़े अचम्भे में पूछा।

"हां महाराज, पड़ोसियों ने उसे पकड़ लिया था। अब तक तो वह हवालात में होगा।"

इससे पथिक गम्भीर विचार में डूब गया। तेल उसके घावों पर लगाया जाने लगा था। उसके लगाते ही पथिक को शान्ति अनुभव होने लगी। अब उसे नींद आगई। वैद्य ने उसे हिलने-डोलने से मना कर दिया और बता दिया कि जितना वह आराम से सोयेगा उतना ही शीघ्र स्वस्थ हो जायगा।

पथिक मन्दिर के एक कोने में खाट पर पड़ा सो रहा था। छत्रपालसिंह बगिया में एक गिरे पेड़ के तने पर बैठा लोगों से बातें कर रहा था। ये लोग पथिक की हालत जानने आये थे। नलिनी भी इन लोगों में खड़ी हो बातें सुनने लगी। छत्रपालसिंह कह रहा था, "भगवान की अपार दया है कि किसी की जान की हानि नहीं हुई। विजय और मोहन ने बहुत बुरा किया है और अपने किये का फल भोगेंगे।"

एक ने पूछा, "तो मोहन हवालात में दे दिया गया है?"

"यह तो मैं नहीं जानता। मैं थाने नहीं गया। हां, पंचम वगैरह उसे लेकर गये थे। ज़रूर अब तक हवालात में होगा। जो जैसा करता है वैसा ही भरता है।"

"इस मुकदमे में सुरेश बाबू क्या करते हैं, यही देखना है। वे लोग उसी के भरोसे ही तो अन्याय और अत्याचार करते हैं।"

"यदि सुरेश बाबू अब भी न समझे तो उनको स्मरण रखना चाहिये कि परमात्मा की ताकत सब से अधिक है और वह न्याय करता है।"

मुरली कहार घाट पर स्नान कर, घर जाने से पूर्व, पथिक की बात पूछने चला आया। छत्रपालसिंह के पास कुछ लोगों की भीड़ देख वह भी वहीं आ पहुँचा। वहा पहुंच पूछने लगा, "बाबू, गुरुदेव का क्या हाल है?"

"ठीक हो जायेंगे। अब सो रहे हैं।"

"विजयबहादुर पकड़ा गया है या नहीं? सब से बड़ा बदमाश तो वही है। बेनी की औरत पर तो वह अपना हक ही समझता है। रात वहां नहीं जाने पाया तो आग ही लगा दी है।"

छत्रपालसिंह ने मुरली के क्रोध को शान्त करने के लिये कह दिया, "भाई, जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। ईश्वर अपने नियमों का पालन बहुत ही विचित्र ढंग से करवाता है।"

मुरली किसी भी बात को परमात्मा के भरोसे छोड़ने वाला नहीं था। बोला, "भगवान तो जो करेगा सो करेगा। अब तो यह हमारे पर है कि डटकर गवाही देते हैं या नहीं। सुरेश बाबू गवाही तोड़ने की पूरी कोशिश करेंगे। मैं तो आज शाम को कथा के समय लोगों को कहने वाला हूँ कि हम लोग कसम खावें कि सच्ची बात कहने में नहीं डरेंगे। रुपये के लालच अथवा किसी भय से झूठ नहीं बोलेंगे।"

मुरली की बात सुन सब उपस्थित लोग जोश में आगये। घाट पर जो भी आता था, वह इसी टोली में सम्मिलित होता जाता था। दिन के नौ बजते बजते गाव के बहुत से लोग वहा एकत्रित हो गये। सब की इच्छा

थी कि पथिक को एक बार देख लें। आज रात जो जान-जोखम का काम उसने किया था वह उसे देवता की पदवी तक उठा ले गया था। लोग उसे भगवान का स्वरूप ही समझने लगे थे। इस समय बेनी छत्रपालसिंह को बुलाकर पथिक के पास ले गया। नलिनी और दूसरे एकत्रित लोग भी उसके पीछे मन्दिर में जा पहुँचे।

नलिनी को देख पथिक ने सब से पहले उसी से बात की। उसने कहा, "ओ नलिनी बहिन, तुम आज इतनी सवेरे ही आगई हो।"

"हां। मोहन भैया·····।"

इसके आगे वह भूल गई थी कि क्या कहना है। वह मन में समझती थी, परन्तु उसको प्रकट करने के लिये शब्द नहीं रखती थी। पथिक समझ गया। वह इस बालिका के मन की बातें, उसका मुख देखकर ही, समझ जाया करता था। वह उसे समझाना चाहता था कि बुरा काम करने वाले को बुरा फल मिलता है। परन्तु इसी समय सुरेश वहां पहुँच गया। सुरेश ने पथिक को नमस्कार किया। पथिक ने उठने का यत्न किया, परन्तु उठ नहीं सका। इस कारण लेटे लेटे ही क्षमा मांगकर उत्तर दे दिया।

एक दूसरी खाट पर सुरेश बैठ गया और कहने लगा, "आपके जल जाने का समाचार सुनकर बहुत ही शोक हुआ है। माताजी (अभिप्राय राजमाता से था) ने भी आपकी बहादुरी का समाचार सुना है और उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है कि आपका हाल-चाल मालूम करूं।"

पथिक ने मुस्कराते हुए कहा, "जो कुछ मैंने किया है, वह केवल अपने पागलपने के कारण ही कर सका हूँ। आप ही ने तो कहा था कि पागलों में विशेष शक्ति होती है। साधारण मनुष्य तो ऐसा काम कर नहीं सकता।"

सुरेश अपने आप में लज्जा अनुभव करने लगा। उसने क्षमा का भाव दिखलाते हुए कहा, "मुझसे कल भूल होगई थी। इसे पागलपन नहीं, बहादुरी कहना चाहिये। माताजी ने यह आज्ञा दी है कि आपके इस मन्दिर में मूर्ति-स्थापना के लिये जो कुछ खर्चा हो उसे राजकोष से दिया

जाय और आपके लिये तीस रुपया मासिक वज़ीफा बांध दिया जाय। माताजी की बहुत इच्छा है कि आप हमारे राज्य में रहें और इस प्रकार हमारे राज्य की शोभा बढ़ाये।"

पथिक यह सुन गम्भीर विचार में पड़ गया और चुप रहा। सुरेश ने अपना कहना जारी रखा, "यह जानकर कि आपने बेनी और उसकी स्त्री में सुलह करवा दी है, मुझे और माताजी को बहुत प्रसन्नता हुई है। बेनी की स्त्री का कोई दोष नहीं था। सब दोष बेनी की मास का था। वह दुराचारिणी बेटी से पेशा करवाकर धन पैदा करना चाहती थी। विजयबहादुर भी तो बेचारा इसी राड के षड़यन्त्र का शिकार होगया है। और मोहन तो अभी बच्चा है। वह तो मित्रता निभाते हुए फंस गया है।"

बातों का रंग ऐसे बदलता देख पथिक के मस्तक पर त्योरी चढ़ गई। उसने बीच में ही टोककर कहा, "तो क्या आप इन दोनों की वकालत करने आये हैं अथवा इनके लिये वायु-मण्डल सुधारने के लिये ही मुझे यह सब रिश्वत दी जा रही है?"

सुरेश ने तुरंत अपनी सफाई देने का यत्न करते हुए कहा, "नहीं, नहीं। मेरा यह अभिप्राय नहीं। मा को तो विजयबहादुर और मोहन के दोष का पता भी नहीं। जो कुछ उनकी आज्ञा है उसमें विजय और मोहन की बात का कोई सम्बन्ध नहीं। इनकी बाबत जो कुछ मैंने कहा है अपने अनुभव से कहा है।"

"आपके कहने का प्रयोजन मैं नहीं समझा। और जहां तक मन्दिर बनवाने तथा वजीफे का सम्बन्ध है, मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं एक बात आपको बता देना चाहता हूँ कि विजय और मोहन अब बच नहीं सकते। उन्हें दंड मिलना ही चाहिये।"

"उन्हें दंड मिलना ही चाहिये," छत्रपालसिंह ने भी पथिक की बात का समर्थन करते हुए कहा। इस समय बगिया में खड़े लोगों की भीड़ मन्दिर के चबूतरे पर जमा होगई थी। वे सब भी एक स्वर से बोल उठे, "उन्हें दंड मिलना ही चाहिये।"

सुरेश लोगों को इतना क्रोध में भरा हुआ देख भय से कांप उठा। वह यथार्थ में पथिक को अपने पक्ष में कर मुकदमा रोकने के लिये आया था। लोगों में विजयबहादुर और मोहन की करतूत पर रोष देख निराश चुप रह गया। नलिनी, जो अभी तक खड़ी लोगों की भीड़ में अपने आशय को भूल गई थी, चारों ओर से दंड की आवाज़ सुन सचेत होगई। उसे अपने यहाँ आने का प्रयोजन याद हो आया। वह आगे बढ़कर पथिक की खाट के समीप आ खड़ी हुई और उसके कान के पास मुख ले जाकर कहने लगी, "परन्तु भगवान तो कहते थे कि तुम मोहन को बचा लोगे।"

पथिक नलिनी के मुख पर देखने लगा। वह उसके कहने का अभिप्राय नहीं समझा। उसने नलिनी की ओर देखकर पूछा, "तुम क्या कहती हो नलिनी? फिर कहो तो।"

नलिनी ने अब तनिक ऊंची आवाज़ में कहा, "भगवान कहते थे, तुम उसकी रक्षा करोगे।"

"कौन भगवान? कब कहते थे?"

"वही जो हमारे घर पर हैं, जिनकी पूजा हम किया करते हैं।"

"ओह! तुम पूजा किया करती हो?"

"हां। मैं और मा हम दोनों सायंकाल घी का दीपक जलाकर उस मुरली वाले कृष्ण-मुरारी की पूजा करती हैं।"

"और उसने तुम्हें कहा है कि मै मोहन की रक्षा करूंगा। भला उसने कैसे कहा होगा? वह तो बोलता नहीं है।"

"नहीं, वह बोलता नहीं है; परन्तु जब कोई सच्चे मन से उसके सम्मुख प्रार्थना करे तो वह मन में बता देता है।"

"तो भगवान ने यह बात तुम्हारे मन में बताई है?"

"मैं तो सो रही थी। सुबह आज कई घण्टे तक मा भगवान से प्रार्थना करती रही थी और उसने कहा कि तुम यह काम करोगे।"

"और यदि मैं न कर सकूँ तो?"

"यह कैसे हो सकता है ? भगवान का कहना असत्य नहीं हो सकता।"

"परन्तु मेरी इच्छा तो उसको छुड़ाने की नहीं है।"

यह सुन नलिनी का मुख उदास हो गया। वह कांपते हुए हाथों से बोली, "भूतनाथ, तुम भैया को छुड़ा दो न। क्या मेरे कहने से भी नहीं करोगे ?"

पथिक हंस पड़ा। नलिनी और दूसरे लोग भी, जो इस लड़की की बातें सुन रहे थे, हंसने लगे। सब के हंसने का आशय एक समान नहीं था। पथिक तो यह सोचकर हंसा था कि यह लड़की उस पर अपना कितना अधिकार मानती है। नलिनी इस कारण हंसी थी कि पथिक हंस पड़ा है तो उसकी बात स्वीकार हो गई है। कुछ लोग उस लड़की की तोतली बातों पर हंसे थे और कुछ यह सोचकर हंसे थे कि मोहन को कितना दुर्बल वकील मिला है।

नलिनी ने अब पूछा, "तो मोहन भैया छूट जायेंगे ?"

बालिका का अपने पर इतना अगाध विश्वास देख पथिक गम्भीर विचार में डूब गया। वह कुछ देर तक सोचता रहा। पश्चात् नलिनी की ओर देखकर बोला, "मेरी छोटी बहिन, मैं क्या कर सकता हूँ ? तुम कहती हो इसलिये मैं यत्न करता हूँ, परन्तु वह छूटेगा या नहीं, मैं नहीं जानता।"

नलिनी ने बहुत ही भोलेपन से कह दिया, "मैं जानती हूँ कि वह छूट जायगा। भगवान ने जब कहा है कि तुम्हारे कहने से छूट जायगा तो वह अवश्य छूटेगा।"

पथिक हिम्मत कर उठकर खाट पर बैठ गया। उसने वेनी को बुलाया और कहा, "वेनी, यह लड़की चाहती है कि उसके भाई को क्षमा कर दिया जाय। बताओ, तुम क्षमा कर सकते हो ?"

वेनी ने हाथ जोड़कर कहा, "गुरुदेव, आपके कहने पर मैंने अपनी स्त्री को ग्रहण कर लिया था। अब तो आप मेरी जान के मालिक हैं। मैं आपके कहने पर क्या कुछ नहीं कर सकता।"

पथिक ने मुरली को बुलाया और कहा, "मुरली भैया, अभी इस गांव

की पञ्चायत होगी। जाओ पंचम इत्यादि को थाने से बुला लाओ। उन्होंने बयान दे दिया हो तब भी और यदि नहीं दिया तब भी उन्हें शीघ्र यहां ले आओ। मोहन यदि हवालात में न डाल दिया गया हो तो उसको भी लेते आना।"

मुरली यद्यपि चाहता था कि मोहन और विजयबहादुर पर मुकदमा चले और उन्हें दंड मिले, फिर भी उसमें पथिक के कहने को टालने की हिम्मत नहीं थी। वह सिर नीचा किये थाने चला गया।

शीघ्र ही पंचम और उसके साथी और मोहन, जिसके हाथ अभी तक बंधे थे, मुरली के पीछे पथिक के सम्मुख आकर खड़े हो गये।

मन्दिर के बाहर, चबूतरे पर, धूप में पथिक खाट पर बैठा था। एक दूसरी खाट पर सुरेश और छत्रपालसिंह बैठे थे। गांव के प्रायः सब लोग वहां एकत्रित हो गये और चबूतरे पर भूमि पर बैठ गये। मोहन सब लोगों के बीच नंगे सिर, पीठ के पीछे हाथ बंधे, अपराधी की भांति खड़ा था। नलिनी पथिक के समीप खाट पर बैठी लज्जा से पीला पड़ा हुआ मोहन का मुख देख रही थी।

जब सब चुप हो गये तो पथिक ने मोहन से कहा, "तुम्हारी बहिन नलिनी तुम्हारी सिफारिश करती है। वह गांव वालों को कहती है कि मोहन भैया को छुड़ा दिया जाय। यह तब ही हो सकता है जब तुम अपना दोष गांव की पञ्चायत के सम्मुख मान लो और भविष्य में अच्छा जीवन व्यतीत करने का वचन दो।"

मोहन बहुत डरा हुआ था, और साथ ही गांव के सब लोगों के सम्मुख अपने आपको अपराधी बना खड़ा देख बहुत ही लज्जा और संकोच में था। उसका गला रुंध गया और उसके मुख से शब्द नहीं निकला। पथिक ने उसके मन को तैयार करने के लिये फिर कहना आरम्भ किया, "देखो मोहन, ये लोग सब तुम्हारे अपराध को जानते हैं। इस पर भी ये तुम्हें अपना जानते हुए तुम्हारे साथ सहानुभूति रखते हैं। ये तुमसे बदला नहीं लेना चाहते। ये तो तुम्हें सुधारना चाहते हैं। दूसरी

ओर, कचहरी में मैजिस्ट्रेट तुम्हारा अपना नहीं होगा। वह सहानुभूति रखता हुआ भी उसका प्रदर्शन नहीं कर सकेगा। वह तो निष्ठुर, शुष्क, अचल और कठोर बने हुए कानून के आधीन होगा। उसका अभिप्राय सुधार करना होते हुए भी वह प्रायः बिगाड़ ही कर सकता है। वह ऐसे कानून के आधीन है जो अपराध के छोटा-बड़ा होने से छोटा-बड़ा दंड देता है, अर्थात अपराध को नाप-तोल कर बदला लेता है। इस कानून को अपराधी के मनोभावों और अपराध करने के प्रयोजन से कुछ वास्ता नहीं। वह कानून बदला लेने के विचार से बना है, परन्तु यहां बात दूसरी है। वहां तो तुम, अपना दोष मानो चाहे न मानो, प्रमाण मिल जाने पर दंड मिलता ही है, और यहां प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। सत्य बात सब जानते हैं। गवाहों की आवश्यकता नहीं है। प्रायः सब लोग गवाह हैं। इस पर भी तुम्हारे पश्चाताप करने पर तुम्हें मुक्त कर देने के लिये उत्सुक हैं। तुम उनके अपने हो। वे तुम्हें अपना समझते हैं।"

मोहन समझ गया। उसने मन को दृढ़ कर कहा, "मैं दोषी हूं। मैं क्षमा मांगता हूं। फिर ऐसा नहीं करूंगा।"

पथिक ने लोगों की ओर देखा। सब चुप थे। उसने लोगों से पूछा, "भाइयो, क्या तुम इसके कहने पर विश्वास करते हो? इसे छोड़ दिया जाय क्या?"

सब ने एक स्वर हो कहा, "हां छोड़ दिया जाय।"

पथिक ने बेनी को कहा, "इसके हाथ खोल दो।"

इसी समय भीड़ के पीछे से आवाज़ आई, "नहीं, अभी नहीं। मैं आगया हूं।"

सब लोगों की दृष्टि आवाज़ की तरफ चली गई। थाने का दारोग़ा, मुन्शी और दो-तीन कानस्टेबल लपकते हुए चबूतरे के ऊपर चढ़ते आ रहे थे। जब तक वे लोगों की भीड को लांघकर पथिक की खाट के समीप पहुँचे, मोहन के हाथ खुल चुके थे और बेनी उसको भीड़ से बाहर की ओर धकेल रहा था।

हस्ताक्षर करवा, सिपाही के हाथ भेज दी। यह गोवरधार ठाकुर छत्रपालसिंह देवा का मुखिया, बेनी कहार और पंचम कोरी के नाम थी। तीनों को फौरन थाने में हाज़िर होने की आज्ञा थी।

सब से पहले छत्रपालसिंह आया। आते ही दारोगा ने कहा, "बाबू साहब, यह गाव में अपनी ही हकूमत कर बैठे हो। जानते हो, अंग्रेज़ी सरकार का राज्य है।"

"हां हज़ूर, जानता हूं।"

"तो फिर घरों को आग लगाने वाले, आदमियों को जीते जी जला देने वाले मुजरिम को आप कैसे छोड़ सकते हो?"

"मैंने किसी ऐसे को छोड़ा नहीं।"

"छोड़ा क्यों नहीं? मोहन बाबू को जो छोड़ा है।"

"मोहन बाबू? उसने क्या जुरम किया है?"

"ओह! तो अब तुम जानते ही नहीं कि मोहन बाबू ने क्या जुरम किया है? अच्छी बात। ओ फतेमुहम्मद, यह बाबू साहब को जरा हवालात में बन्द कर देना।"

छत्रपालसिंह ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "मगर क्यों? मैंने क्या किया है?"

"जो मुजरिम की रक्षा करता है वह स्वयं भी मुजरिम होता है।"

इसके पश्चात् पंचम कोरी की बारी थी। उसके दफ्तर में दाखिल होते ही दारोगा तमककर बोला, "क्यों बे पंचम के बच्चे, रिपोर्ट लिखाये बिना ही भाग गया था।"

'हज़ूर, आपने ही तो कहा था कि मोहन बाबू को पकड़कर भूल की है।'

"अच्छा तो फिर मेरे कहने पर तुम यहां से चले गये थे?"

"आप बिलकुल ठीक कहते हैं, हज़ूर।"

"तो अब रिपोर्ट लिखाओ। रहा मोहन बाबू। हम उसको पकड़ लेंगे।"

"हां साहब लिखिये—बेनी के घर को आग लग गई थी। गाव के लोगों ने बुझाने का बहुत यत्न किया, पर बुझा न सके। सारा का सारा

घर जल गया। बेनी और उसकी स्त्री आग में फंस गये थे और गुरुदेव·····"

दारोग़ा ने उसे यहीं रोक दिया और कहा, "गुरुदेव नहीं, अब्दुलसमद मुन्शी ने उनको बचाया, ऐसा लिखवाओ।"

"ऐसा लिखाने के लिये मुझे क्या मिलेगा?"

"मिलेगा क्या? सच्ची रिपोर्ट लिखाने मे संकोच करते हो?"

"सच्ची रिपोर्ट तो यह नहीं है।"

"सच्ची नहीं तो क्या यह झूठी है?"

"बिलकुल हज़ूर। सच्ची बात तो यह है कि गुरुदेव ने उन्हें बचाया।"

"तुम झूठ बोलते हो। तुम्हें हवालात में बन्द कर दिया जायगा और तब तक नहीं छोड़ा जायगा जब तक तुम सच्चे बयान नहीं दोगे।"

पचम ने दृढ़ता से कहा, "सत्य क्या है यह आप भी जानते हैं और मैं भी। परन्तु मेरे मुख से आप मोहन के विपरीत कुछ कहलवा नहीं सकते।"

"अच्छी बात है। देखें तुम बोलते हो या नहीं।"

छत्रपालसिंह की कोठरी में पंचम को भी बन्द कर दिया गया। इसके पश्चात बेनी की बारी थी।

"क्यों भाई बेनी," दारोग़ा ने अब कठोरता को कुछ कम करके कहा, "तुम भी सत्य बोलोगे या नहीं?"

"आप मुझसे झूठ न बुलवायें तो मैं आपका अहसान मानूँगा।"

"परन्तु मै अपने फ़र्ज़ (कर्तव्य) का पालन कैसे कर सकूँगा? हम लोगों का काम है मुजरिम (अपराधी) को पकड़ना। उसे छोड़ना या दंड देना मैजिस्ट्रेट का काम है।"

"मैं कानून नहीं पढ़ा, हज़ूर। मैं एक बात जानता हूं और वह यह है कि जब एक बार किसी को वचन दे दिया तो दे दिया।"

दारोग़ा ने दांत पीसते हुए कहा, "तुम लोग कितने मूर्ख हो। वह जिसने तुम्हारी औरत को खराब किया, जिसने तुम्हारे घर को जलाकर

बरबाद किया है, जिसने तुम्हें ज़िन्दा जला देने का यत्न किया, उसी को बचाने के लिये तुम हट कर रहे हो।"

"हज़ूर, आप सब कुछ ठीक कहते हैं, परन्तु मैं तो उसका कहना मान रहा हूं जिसने मेरी औरत को मुझे वापिस दिलाया है, जिसने जलते मकान में अपने आपको डालकर मेरी और मेरी औरत की जान बचाई है। आपने तो उस मुसीबत के वक्त मेरी कुछ भी सहायता नहीं की। मैं तो एक ग़रीब और अपढ़ व्यक्ति हूं। आपको यहां की थानेदारी करते कितने ही वर्ष हो गये हैं। बताइये आपने हम लोगों से कब पहले सहानुभूति दिखाई है?"

थानेदार निरुत्तर था। इस पर भी उसने बेनी को भी हवालात में बन्द किये जाने के लिये भेज दिया। जब तीनों आदमी उसके कहने के अनुसार बयान देने के लिये तैयार नहीं हुए तो दारोग़ा ने मुन्शी से कहा, "मियां अब्दुलसमद, अब बताओ। यह पगला न जाने कहां से यहां आ टपका है कि हम लोगों की अब चलती ही नहीं है। कितने ही मुकदमे तो यह घर ही निर्णय कर देता है। कहीं दो-चार और गुरुदेव ज़िला में आजायें तो बस कचहरियां ही बन्द करनी पड़ जायें।"

"पंडित जी, यह है तो ठीक। मगर इसका इलाज यह नहीं जो आप कह रहे हैं। पहले तो आशा ही नहीं कि ये लोग बयान देने पर राज़ी हों, और मान लो कि इनको मारपीट कर आप मतलब के बयान लिखवा भी लें तो वह गुरुदेव तो यहां डटा रहेगा। हमें तो उसकी जड़ यहां से उखाड़नी चाहिये। उसकी वजह से तो मुकदमे आने ही बन्द हो गये हैं और सूखी तन्खाह पर तो अब जिया नहीं जा सकता।"

"मुन्शी साहब, आप कहते तो ठीक हैं, परन्तु यह हो कैसे? मैं यही तो चाहता हूं कि किसी तरह बेनी यह कह दे कि पथिक ने ज़बरदस्ती मोहन को भगा दिया है, तो सब काम बन जाय।"

"नहीं साहब, यह ऐसे नहीं होगा। आप मेरे कहने पर चलें तो मैं सब ठीक कर दूंगा।"

"हां बताओ तो क्या करूं ?"

"आपने कुछ नहीं करना। बस एक बात करें, कि जब मौका मिले तो फिर किसी का लिहाज़ नहीं करें।"

"मगर कुछ बताओ भी तो।"

"आप इन लोगों को छोड़ दें। मैं एक-दो दिन में ही पथिक को हवालात का पक्षी बना दूंगा।"

[१४]

जब बेनी, पंचम और छत्रपालसिंह हवालात से छूटकर आये तो लोगों ने समझा कि दारोगा ने अपने अफसरों को दिखाने के लिये यह झूठमूठ की पकड़-धकड़ की थी। लोग उससे प्रसन्न थे। दारोगा के छत्रपालसिंह इत्यादि को शीघ्र ही छोड़कर केस बन्द करने पर सुरेश ने थानेदार को धन्यवाद दिया।

कुछ ही दिनों में पथिक स्वस्थ हो गया और फिर कीर्तन-कथा आरम्भ हो गयी। परन्तु अब एक नई बात हुई। श्रापित बगिया के बाहर एक कोने की ओर एक छोटा सा चबूतरा था। यह किसी समय एक साधू ने तपस्या करने के लिये बैठने को बनवाया था। यह स्थान गाव से नदी पर आने के मार्ग में था और साधू का विचार था कि यहा दान-भिक्षा मिल जाया करेगी। किसी कारण से वह साधू तो चला गया, परन्तु चबूतरा टूटी-फूटी अवस्था में अभी भी उपस्थित था। एक दिन लोगों ने देखा कि वह चबूतरा मरम्मत कर दिया गया है। उन्होंने समझा कि वह साधू फिर आने वाला है। परन्तु लोगों के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने सायंकाल थाने के मुंशी और गाव के कुछ और मुसलमानों को वहां नमाज़ पढ़ते देखा।

लोगों ने इस बात को पथिक से बताया। पथिक ने कह दिया, "हमें मुसलमानों से बैर नहीं। यदि वे अपने ढंग से परमात्मा की भक्ति करना चाहते हैं तो हमें इस पर प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिये।"

जब सुरेश को यह मालूम हुआ तो उसने कहा, "मन्दिर तो बन ही

रहा है, एक छोटी सी मसजिद भी बन जाय तो क्या हानि है ?" सुरेश ने मसजिद बनाने लिये पचास रुपये चन्दा भी दे दिया। अगले दिन मसजिद-कमेटी की तरफ से पचास रुपये की रसीद और शुक्रिया की चिट्ठी सुरेश को मिल गई।

अब्दुलसमद एक दिन तहसील के हाकिम डिप्टी कलक्टर को वहां बुला लाया। वह एक मुसलमान था। उसके हाथ से मसजिद की नींव रखवा दी। इस समय श्रीमान राजा सुरेशचन्द्र की उदारता की प्रशंसा भी कर दी गई। इस प्रकार सुरेश बाबू के रुपये से चबूतरा पक्का बनवा दिया गया। पश्चिम की ओर महराब भी बनवा दी गई। उस चबूतरे को इस भांति एक मसजिद का रूप, आकार दे दिया गया।

इस प्रकार अब मसजिद में प्रति दिन शाम को नमाज पढ़ी जाने लगी। एक दिन पथिक की कथा के पश्चात नित्य की भांति आरती हो रही थी। पथिक आसन पर बैठा हाथों में करताल लिये 'जय अम्बे जगदम्बे,' गा रहा था। एकाएक वहां एक पत्थर आकर पथिक के सम्मुख गिरा। लोगों ने देखा कि पत्थर नई बनी मसजिद की ओर से आया है। सब लोगों की दृष्टि उस तरफ चली गई। वहां दस-पन्द्रह मुसलमान खड़े खड़े 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगा रहे थे। अभी लोग इस नई परिस्थिति पर विचार कर ही रहे थे कि कई और पत्थर के ढेले उन पर आकर पड़े। एक ढेला उपस्थित बालकों में से एक के मस्तक पर लगा। उसके माथे से रक्त की धारा बहने लगी।

रक्त बहता देख लोग उतावले हो गये। वे भी जोश में आ, 'हर-हर महादेव' के नारे लगाने लगे। पथिक ने बहुत कठिनाई से लोगों को शान्त किया। बेनी को मसजिद में भेज पूछा कि वे क्या चाहते हैं ? जो कुछ उनको करना है यहां आकर बतायें।

बेनी वहां गया और वहां से यह सन्देशा लाया कि वे नमाज़ पढ़ रहे हैं। नमाज़ पढ़ने के पश्चात् वे यहां आकर बतायेंगे। तब तक आरती न की जाय।

यह एक नई समस्या थी। पथिक का उस ओर कभी ध्यान भी नहीं गया था। लोगों ने वेनी की बात सुनी तो क्रोध से उबलने लगे। इस गांव में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। गाव के पिछवाड़े में एक मसजिद पहले भी थी। उस मसजिद के समीप कोई मन्दिर नहीं था और कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ था। लोग आरती करना चाहते थे, परन्तु पथिक के अनुरोध पर चुप थे। पथिक ने आज बिना आरती के ही कथा समाप्त कर दी।

जब नमाज़ी नमाज पढ़ चुके तो सब के सब वहां बाग में चले आये। उनमें से एक था कबीरदीन। वह सब उपस्थित लोगों को सम्बोधन कर कहने लगा, "नमाज़ के वक्त यहा आरती, भजन, कीर्तन नहीं होना चाहिये।"

हिन्दुओं मे से छत्रपालसिह, जो गाव का भी मुखिया था, कहने लगा, "हमारी आरती के वक्त तुम लोगों को नमाज़ ही नहीं पढ़नी चाहिये।"

"मगर हमारी नमाज़ का वक्त मुकर्रिर है। तुम्हारी आरती का समय बदल सकता है।"

"हम आरती पहले से करते हैं और नमाज़ तो आप लोगों ने अब शुरू की है।"

"सवाल पहले-पीछे का नहीं है। बात तो यह है कि नमाज का वक्त नहीं बदला जा सकता।"

इस पर पथिक ने अति नम्रता से कहा, "बात ठीक है। हम आपको नमाज़ का समय बदलने को नहीं कहते। हम तो यह कहते हैं कि यदि इस स्थान पर आपकी नमाज़ में और खुदा की इबादत में बाधा पड़ती है तो आप अपनी मसजिद किसी और जगह बना सकते हैं। हमसे दूर जहा हमारी आवाज़ आप तक न पहुँच सके।"

"हमने इतना रुपया जो खर्च कर दिया है।"

"रुपया तो सब सुरेश बाबू का खर्च हुआ है। मैं उनसे कहकर और रुपया दिलवा दूंगा।"

"मगर हम मसजिद नहीं छोड़ सकते।"

इस पर फिर किसी ने कह दिया, "और हम आरती नहीं छोड़ सकते।" अन्य कथा पर आये लोगों को सम्बोधन कर उसी ने कहा, "आओ जी, आरती गाओ।"

लोग गाने लगे, "जय अम्बे।....."

मुसलमान लोगों ने हल्ला करना आरम्भ कर दिया, 'अल्ला हो अकबर।'

पथिक ने दंगा होता देख आरती करने वालों को चुप करा दिया। उसने पुनः मुसलमानों से कहा, "भाईजान! अब तो आपकी नमाज खतम हो चुकी है। अब आप आरती में बाधा क्यों डालते हैं?"

इसका उत्तर मुसलमानों के पास नहीं था। साथ ही वे आरती भी नहीं होने देना चाहते थे। अतएव वे कुछ दूर हटकर फिर लोगों की भीड पर पत्थर फेंकने लगे। इधर हिन्दुओं ने जब यह देखा कि धड़ाधड़ पत्थरों से सिर फट रहे हैं तो वे लाठिया ले मुसलमानों के पीछे दौडे। मुसलमान मसजिद की ओर भागे। एकाएक बीस-पच्चीस पुलिस-कानस्टेबल, थानेदार और मुन्शी अब्दुलसमद वहा आ पहुँचे। इन्होंने हिन्दुओं पर लाठी-चार्ज कर बगिया की ओर भागा दिया।

लोगों पर लाठियां चलती देख पथिक ने आगे बढ़ लाठिया रोकने के लिये हाथ उठाकर संकेत किया। पुलिस ने लाठिया रोक दीं। पथिक थानेदार के पास जा पहुँचा और बोला, "यह आप क्या कर रहे हैं?"

"आपकी गैर कानूनी कार्यवाई को रोक रहा हूँ।"

इतना कह दारोगा ने हुक्म दिया, "पथिक, छत्रपालसिंह और बेनी को पकड़ लो। ये बलवा कर रहे हैं।"

पुलिस वालों ने इनको हथकड़ी लगा दी और थाने की ओर ले गये। वहां इनको हवालात में डाल दिया। इनसे छुट्टी पा दारोगा ने मुन्शी से कहा "मुन्शी अब्दुलसमद, तुम्हारी योजना सफल तो खूब हुई है। पर मेरा मन भीतर ही भीतर दबा जा रहा है।"

"क्यों?"

"अन्याय जो हो गया है।"

"वाह पंडित जी महाराज, आप बिल्ली का सा जिगर लेकर थानेदारी कर चुके। इसी लिये तो आपकी शिकायत हो जाती है।"

"मेरा दिल बिल्ली का सा नहीं है। दिल तो शेर का सा है, मगर साथ ही कुछ अक्ल भी रखता हूँ। बताओ, क्या यह सब दोष तुम्हारा और तुम्हारे साथी मुसलमानों का नहीं है? फसाद तो तुम लोगों ने खड़ा किया है, न कि पथिक और छत्रपालसिंह ने।"

"देखो दारोगा साहब, यह सब कुछ आपके हुक्म से हुआ है। मैं तो आपके मातहत हूं। यह भी याद रखो कि पथिक को पकड़कर आप अपने अफसरों को प्रसन्न कर रहे हैं। अगर आपने मेरी ओर नजर की तो आप अफसरों को नाराज़ कर देंगे। फिर आपकी बरखास्तगी के हुक्म में देरी नहीं रह जायगी।"

दारोगा बेचारा सहम गया और चुप कर गया।

[१५]

मुरली यह सब नाटक देख आग-बबूला हो रहा था। वह समझता था कि इस सब कार्यवाही में सुरेश का हाथ है। सुरेश का अपनी मित्र-मंडली को साथ ले पथिक को पीटने जाना, विजयबहादुर और मोहन का बेनी को, जो पथिक के मुख्य सहायकों में था, जीते जी जला देने का यत्न करना, पश्चात् सुरेश का मोहन और विजय को बचाने के लिये पथिक को लालच देना, पथिक का सुरेश की बात को दुत्कार देना— ये सब बातें साफ साफ यह प्रकट करती थीं कि सुरेश की आखों में पथिक खटकता है।

अब एक साधू महात्मा के अड्डे को मस्जिद बनने से न रोकना, प्रत्युत उसके बनने के लिये रुपया देना भी मुरली को सुरेश की तरफ से गुरुदेव को निकाल बाहर करने का उपाय ही प्रतीत होता था।

जब पुलिस वाले पथिक इत्यादि को लेकर चले गये तो मुरली ने सब लोगों को अपने विचार बताये और पश्चात् कहा, "हम लोगों को

सुरेश से तो कुछ आशा नहीं। हाँ यदि राजमाता को यह वृत्तान्त बताया जाय तो अवश्य कुछ सहायता की आशा की जा सकती है।"

इस पर गाव के तीन आदमी मुरली कहार के साथ राजमहल पहुँचे। राजमाता ने पहले तो सुरेश के पास जाने को कहा, परन्तु जब उसे पता लगा कि सुरेश बाबू की शिकायत लेकर ही लोग आये हैं, तो ड्योढ़ी में आगयी और पूछने लगी, "तुम कौन हो और क्या कहना चाहते हो?"

मुरली ने हाथ जोड़, सिर ज़मीन पर टेक कहा, "हज़ूर, हम सब लुट गये। हमारा सत्यानास हो गया और सुरेश बाबू के हाथों। हम गाव की पञ्चायत के भेजे आये हैं।"

"पर कुछ बताओ भी तो। सुरेश बाबू ने क्या किया है?"

राजमाता ने डाटकर ऐसा पूछ तो लिया, परन्तु उसका मन भीतर ही भीतर धकधक कर रहा था। वह सुरेश की कुसंगति को जानती थी और डर रही थी कि सुरेश ने कोई अन्याय अथवा अत्याचार किया है, जो ये लोग इस प्रकार आये हैं।

मुरली ने जमीन से मिट्टी उठाकर अपने सिर पर डालते हुए कहा, "माता जी, मै सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि जो कह रहा हूँ सच कह रहा हूँ। कई महीने से श्रापित बगिया में एक महात्मा आकर ठहरे हुए हैं। उनकी कृपा से लड़के-लड़कियों के पढ़ने का प्रबन्ध हो रहा है। धर्म-शास्त्र की कथा-वार्ता भी होती है। भजन-कीर्तन-आरती भी हो जाती है। हम लोगों का केवल आश्रय, भगवान की भक्ति, इस समय देवा के बच्चे बच्चे के मुख पर है। लोगों ने झूट बोलना छोड़ दिया है। अब देवा में मुकदमे नहीं होते। चोरी, डाका, ज़ना तो बिलकुल ही बन्द हो गये हैं। यह सब उन महात्मा जी की कृपा से हुआ है।

"परन्तु सुरेश बाबू को यह पसन्द नहीं। कुछ दिन की बात है कि बेनी कहार और उसकी स्त्री में गुरुदेव ने सुलह करवा दी। इस पर सुरेश बाबू अपने मित्रों को लेकर गुरुदेव को पीटने घाट पर जा पहुँचे। लाठी चली, परन्तु ईश्वर की कृपा से गुरुदेव बाल-बाल बच गये। इस प्रकार

वहां से असफल हो सुरेश बाबू के मित्र विजयबहादुर और मोहन बाबू बेनी के घर को आग लगाते देखे और पकड़े गये। बेनो और उसकी स्त्री तो घर के भीतर ही जलकर राख हो जाते अगर गुरुदेव ने अपनी जान को खतरे में डालकर उन्हें न बचा लिया होता। जब मोहन पकड़ा गया तो उसे छुड़ाने के लिये यत्न भी बिना गुरुदेव की सहायता के सफल न हो सकने से सुरेश बाबू चिढ़ गये हैं। अब गुरुदेव को निकाल बाहर करने के लिये, माता जी, सुरेश बाबू ने यवनों से सहायता ली है। कुछ कूँजड़ों और चिकवों (कसाइयों) को भड़काकर श्रापित बगिया की बगल में एक मसजिद बनवा दी है। उस मसजिद के लिये जगह तो दी ही थी, साथ बनवाने के लिये रुपया भी दिया है। परिणाम यह हुआ है कि मसजिद बनकर तैयार हो गई है और आज मुसलमानों ने कथा-कीर्तन करने वालों पर पत्थर फेंके हैं। वे कहते हैं कि नमाज के वक्त कीर्तन-आरती न की जाय। जब हम उनको समझाने लगे तो उन्होंने पत्थर फेंके। जब उन्हें बगिया से बाहर करने लगे तो पुलिस आ पहुँची और गुरुदेव, छत्रपालसिंह और बेनी कहार को पकड़ ले गई है। माता जी, यह अन्याय है। हम लोगों के लिये तो अब पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन भी बन्द है। यदि यह मसजिद वहां न बनती तो यह झगड़ा खड़ा न होता।"

"तुम कैसे कहते हो कि सुरेश ने यह करवाया है ?"

"सुरेश बाबू ने वहा मसजिद बनाने के लिये भूमि दी। फिर उस पर इमारत बनने को रुपया दिया। एक मन्दिर के पास मसजिद की इजाज़त देना ही यह प्रगट करता है कि बाबू साहब गुरुदेव को फंसाने का यत्न कर रहे हैं।"

"मुझे विश्वास नहीं आता। फिर भी मैं इस मामले में कोशिश करूंगी। सुरेश का कुछ दोष हो या न हो तब भी इस मसजिद को हटाने का प्रबन्ध कर दूंगी।"

राजमाता ने इस प्रकार कहकर मुरली इत्यादि को विदा कर दिया और फिर भीतर जा सुरेश को बुला भेजा। उसे बैठाकर पूछने लगी, "यह

बगिया के पास मसजिद क्यों बनने दी गई है ?"

"मैंने कोई हर्ज नहीं समझा।"

"एक मन्दिर के पास मसजिद तो कभी बनने नहीं दी जाती।"

"क्यों ?"

"इस कारण कि स्त्री-पुरुष बच्चे सब मन्दिर में जाते हैं। मार्ग में मसजिद होने से उनकी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती है।"

"नहीं मा, आजकल तो हिन्दू मुसलमानों में एकता की बातें हो रही हैं। हम छोटे दर्जे के लोगों से ऊपर उठना चाहिये। जहां हिन्दू हमारी प्रजा हैं वहां मुसलमान भी। हमें इन दोनों में भेदभाव नहीं रखना चाहिये।"

"इनमें भेद-भाव की क्या बात है ? सुना है, आज क्या हुआ है ?"

"नहीं तो।"

"मुसलमानों ने आरती और कीर्तन में बाधा डाली है। आरती करने वालों पर पत्थर फेंके हैं। इस पर पुलिस ने पथिक, छत्रपालसिंह और [illegible] को पकड़ लिया है।"

"[illegible] हुआ है मा ? मेरे पास थाने का मुन्शी आया था और कहता था कि [illegible] का पट्टा दे दिया जाय। मैनेजर साहब ने कहा था, 'झगड़ा [illegible] करना' और वह कहता था, 'आपसे झगड़ा कर कैसे यहां रह सकते हैं [illegible] उनको इजाजत दे दी गई थी।"

"और तुम [illegible] बनवाने को रुपया भी दे दिया ?"

"सिर्फ पत्थर [illegible] दिये थे।"

"तो मुन्ना [illegible] ठीक निकली कि तुमने ही फसाद की जड़ पैदा की है। देखो मां [illegible] मामला हिन्दुओं के धार्मिक अधिकारों का है। हम अपने मन्दिर [illegible] पर पड़ा हक छोड़ सकते। तुम दो अंग्रेज़ी के अक्षर पढ़कर अपने आपको भगवान से भी ऊपर समझ लो तो समझ लो, परन्तु जो करोड़ों हिन्दू अभी भी ईश्वर-भक्ति की लाठी का आश्रय लिये हुए हैं मर जायेंगे पर इसे बन्द नहीं कर सकेंगे। देखो अभी मैनेजर को जाकर

कह दो, मसजिद का पट्टा नहीं होगा। हो गया हो तो रद्द करना होगा। मसजिद यहां से उठ जायगी। पथिक और छत्रपाल इत्यादि को छुड़ाना होगा। यदि वह नहीं कर सकता तो अभी बता दे, मैं स्वयं प्रबन्ध करूंगी।"

सुरेश सिर झुकाये बाहर बैठक में चला आया। वह मुसलमानों के साथ रियायत करने के लिये लज्जित था। उसने तो अपनी उदारता के कारण ही मसजिद बनने की आज्ञा दी थी। जमींदारी के मैनेजर ने तो पट्टा देने से मना कर दिया था। सुरेश ने ही आग्रह कर उसको गर्ज़ किया था।

बैठक में पहुँचते ही उसने मैनेजर को बुल भेजा। एक दूसरे नौकर के हाथ मुरली को बुलाया। मुरली पंचम को साथ लिये हुए वहां पहुँच गया। मुरली डर रहा था कि राजमाता के पास शिकायत करने पर पिटवाया जायगा। इस कारण पंचम को साथ ले आया था। उसके वहां पहुँचते ही सुरेश ने पूछा, "तुमने मुझे क्यों नहीं कहा? माता जी के पास क्यों गये?"

मुरली को डर के मारे चुप देख पंचम ने कहा, "हजूर, क्षमा करें। हम लोगों ने यह समझा था कि मसजिद आपने गुरुदेव को यहां से भगा देने के लिये बनवाई है।"

"तुम लोगों ने यह अनुमान कैसे लगाया?"

"आपके पिता से एक बार मुसलमानों ने घाट के समीप मसजिद के लिये भूमि मांगी थी। उन्होंने साफ मना कर दिया था। वह कहते थे कि हमारी स्त्रियां वहां जल भरने और स्नान करने जाती हैं। वहां हम मुसलमानों का अड्डा नहीं बनने देंगे। आपने बिना किसी की राय लिये ही जब वहां भूमि दे दी तो लोगों को ऐसा ही सन्देह हो गया है।"

"तुम्हारा सन्देह ग़लत है।"

इसी समय मैनेजर वहां पहुंच गया। उसे बैठाकर सुरेश ने पंचम से घटना का पूरा वृत्तान्त सुनाने के लिये कहा। जब सब बात कही जा चुकी तो मैनेजर ने कहा, "मैंने तो आप से पहले ही अर्ज़ की थी। इन लोगों से रियायत करने के लिये आपने ही आग्रह किया था। यह तो हमारा सौभाग्य है कि पट्टा अभी मेरे दफ्तर में ही पड़ा है। मसजिद का प्रबन्ध

तो मैं आज रात ही कर दूंगा। रहा इन लोगों के छुड़ाने का। उसमें भी कोशिश करनी पड़ेगी।"

इसके पश्चात् उन्होंने पंचम और मुरली को सान्त्वना दे भेज दिया। अब इस मामले को तय करने के लिये योजना बनने लगी। सुरेश मैनेजर की बात सुन चकित रह गया। 'आखिर इतना झूठ' उसके मुख से निकल गया।

मैनेजर का उत्तर था, "जमींदारी का काम सच्चाई से नहीं चल सकता और विशेष रूप में जब विपक्षी प्रत्येक प्रकार की धूर्तता करने पर तुला हो। बताइये, इन लोगों ने कौन भलमनसाहत की बात की है?"

दूसरे दिन जब नमाज़ी मसजिद में नमाज़ पढ़ने गये तो वहां मसजिद का चिन्हमात्र भी नहीं था। न तो महराब थी और न ही चबूतरा। एक ईंट तक भी वहां पर नहीं थी ज़मीन समतल थी और जमीन पर हल जोता जा रहा था। बगिया की बगल में एक लम्बा-चौड़ा खेत था और वहां पर एक मुसलमान कलवार के लड़के अपने बैलों से हल जोत रहे थे। थाने का मुन्शी आज बहुत सुबह नमाज़ पढ़ने आया था। वहां कुछ लोगों को हैरानी से मसजिद के स्थान को ढूंढते हुए देख पूछने लगा, "क्या देख रहे हो?"

एक ने उत्तर दिया, "मुन्शी जी! मसजिद।"

मुन्शी ने खेत को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देख डाला। एक ईंट या कंकड़ भी नहीं था। उसने हल जोतने वालों को पुकारा। एक से पूछा, "तुम कौन हो?"

"असग़र कलवार का लड़का।"

"क्या कर रहे हो यहां?"

"दिखाई नहीं देता? हल जोत रहा हूँ।"

"अरे भाई, मसजिद की जगह पर।"

"रात की पी हुई अभी उतरी नहीं क्या?"

"मैं शराब पिये हूँ?"

"और नहीं तो क्या ? मसजिद तो गांव के पिछवाड़े में है। यहा कैसे आगई ?"

"अबे यह जमीन किस की है ?"

"राजा साहब से बाप ने पट्टे में ली है।"

"कब ?"

"दो महीने से ऊपर हो गये हैं।"

सब काम और प्रबन्ध इतनी सफाई से किया गया था कि मुन्शी और दूसरे लोग अपनी आखों और कानों पर सन्देह करने लगे थे।

नमाज़ी मुन्शी के साथ थाने की तरफ चल पड़े। एक ने पूछा, "मिया अब्दुलगमद, अब क्या होगा ?"

"भाई, ये काफिर लोग बड़े चालाक हैं। देखा न, हमारे मुकाबले में एक मुसलमान को खड़ा कर दिया है, ताकि हम लड़ें तो अपने भाई से ही।"

"यह तो है। पर किया क्या जायगा ?"

"अभी थाने में जाकर इस बदमाश कलवार को बुलता हूँ, और इसे सीधे रास्ते पर लाने की कोशिश करूंगा।"

दारोग़ा को जब पता चला कि मसजिद ही गायब है तो वह बहुत चकराया। पिछले दिन के बन्दियों को अब मुचलके और ज़मानत पर छोड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था। मुन्शी से दारोग़ा ने कहा, "मेरे विचार में इस मुकदमे में अब कुछ नहीं रहा। मसजिद ही नहीं तो आरती करने से नमाज़ में विघ्न-बाधा कैसी ?"

मुन्शी ने जरा जोश में कहा, "वाह ! मसजिद क्यों नहीं है ? खुद डिप्टीकलक्टर साहब ने इसकी नींव रखी थी।"

"सो तो ठीक है। परन्तु यह बयान कचहरी में देगा कौन ? सिवाय इन कुछ कुंजड़ों के और कौन कहेगा ? डिप्टी कलक्टर स्वयं तो मुकदमा करेंगे। वह गवाह कैसे बन सकेंगे ? यदि उन्होंने कुछ भी लिखा कि वह स्वयं वहां थे तो विपक्षी तुरन्त मुकदमा उनके यहा से बदलवा देंगे। फिर

भी तो हमारा पक्ष दुर्बल रहेगा।"

मुन्शी ने सिर हिलाते हुए कहा, "आप यह बात समझ लें कि यदि यह मुकदमा आप न बना सके तो आपकी बर्खास्तगी यकीनी है।"

इस पर दारोगा और मुन्शी सदर पहुँचे। डिप्टी कलक्टर वहीं रहता था। उससे राय करने के लिये ही वहां जाना जरूरी था। डिप्टी कलक्टर भी यह बात सुनकर आग-बबूला हो गया। मसजिद के न रहने का उसे कुछ भी शोक नहीं था। उसे तो पथिक को कैद न कर सकने का अफसोस था। बहुत सोच-विचार कर डिप्टीकलक्टर ने कहा, "इस बार हम चूक गये। फिर विचारकर कोई और उपाय किया जायगा।"

पथिक को जब हवालात से बाहर किया तो उसने दारोगा के पास जाकर पूछा, "क्यों?"

दारोगा ने कहा, "मुकदमा नहीं चलाया जायगा।"

"तो हम लोगों को व्यर्थ में इतना कष्ट क्यों दिया?"

"इलाके में अमन रखना मेरा काम है। आप लोग फसाद कर रहे थे। मैंने फसाद रोकने का सबसे अच्छा तरीका यह समझा कि आप लोगों को हवालात में बन्द कर दूं। आप जा सकते हैं।"

पथिक बहुत हैरान था। वह समझने का यत्न कर रहा था कि यह न्याय है अथवा अन्याय। जब दो आदमियों का झगड़ा हो जाय, एक दूसरे को पीट रहा हो, तो पिटने वाले को हवालात में देकर झगड़ा बन्द करने का उपाय कितना उचित और न्याययुक्त है? यह है तो सहज उपाय। जो झगड़ा करने में अग्रसर है उसे पकड़ना सहज नहीं। मार खाने वाले को पकड़कर झगड़े के मैदान से दूर ले जाना झगड़ा बन्द करने का सुगम उपाय है। परन्तु क्या इस नीति का परिणाम झगड़ा करने वाले को प्रोत्साहन देना नहीं है? यही प्रश्न था जो पथिक के मन में बार बार आ रहा था।

परन्तु जब पथिक बगिया में पहुँचा तो उसने देखा कि मसजिद लोप हो गई है। वह बगिया के किनारे पर पहुंचकर अपने भ्रम को दूर करने

गया। अब उसने देखा कि मसजिद के स्थान पर खेत बना है और उसमें हल जुत चुका है। वह इस समस्या को समझ नहीं सका।

उसी रात वह रियासत के मैनेजर के पास पहुंचा। मैनेजर अपने बंगले में बैठा चुरुट पी रहा था। पथिक को वहां आया देख उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत कर पूछने लगा, "क्यों पंडित जी, कैसे आये हैं? आपका इस मास का वजीफा तो आपको मिल चुका होगा।"

"मैं वज़ीफे के लिये नहीं आया। मैं तो उस मसजिद के विषय में पूछने आया हूँ।"

"मसजिद तो वहा न थी, न है।"

"ओह! तो यह केवल स्वप्नमात्र था?"

"स्वप्न ही समझ लो।"

"परन्तु मैनेजर साहब, यह असत्य, अन्याय और धींगा-मस्ती नहीं है क्या?"

मैनेजर ने पथिक की आंखों में अपनी आंखे गाड़कर देखते हुए कहा, "क्या असत्य और अन्याय? पंडित तुम पागल हो। तुम सत्य ही पागल हो। मैं तो समझता था कि लोग मज़ाक करते हैं। मगर नहीं वे ठीक ही कहते हैं। तुम बिलकुल पागल हो।"

पथिक को मैनेजर के कथन से दुख भी हुआ और विस्मय भी। दुख इसलिये कि वह अपने आपको पागल नहीं समझता था और विस्मय इसलिये कि वह मसजिद को गायब कर देना और फिर उसके प्रमाण मिटा देने को भारी धोका मानता था। उसने नम्रता से कहा, "हो सकता है कि मैं पागल हूँ, परन्तु आपके कथन में कुछ युक्ति नही है। यह ठीक है कि मुसलमानों का व्यवहार अयुक्तिसंगत था, परन्तु आप गांव भर के लोगों को जबरदस्ती झूठ बोलने के लिये कह रहे हैं। आप चाहते हैं कि वे कहें कि यहां मसजिद थी ही नहीं। कितना भारी झूठ है।"

"पण्डित, तुम बहुत कथा किया करते हो। मगर कथा का सार नहीं समझते मालूम होते। देखो, एक महाभारत की घटना मैं तुम्हें बताता हूं:—

"महाभारत का युद्ध हो रहा था। द्रोणाचार्य दुर्योधन की सेना का नायक था। उसे मार डालने या परास्त करने की शक्ति किसी में नहीं थी। वह पाडवों की सेना के परखे के परखे उतार रहा था। उसके बाणों की वर्षा से हजारों के सिर धड से पृथक हो रहे थे। पाडवों में भगदड़ मचने ही वाली थी कि कृष्ण को एक बात स्मरण हो आई। कृष्ण जानता था कि अश्वत्थामा से द्रोणाचार्य का अगाध प्रेम है। कृष्ण ने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा, 'आचार्य, तुम लड रहे हो और तुम्हारे लड़के का मृत शरीर भूमि पर मट्टी में लुढ़क रहा है।'

"द्रोणाचार्य को विश्वास नहीं आया। उसने कहा, 'तुम झूठ बोलते हो।'

"कृष्ण ने कहा, 'युधिष्ठिर से पूछ लो।'

"युधिष्ठिर से झूठ बोलते नहीं बनता था। इस कारण एक अश्वत्थामा नामक हाथी को मरवाकर कृष्ण युधिष्ठिर को उसके सामने लेगया। जब द्रोणाचार्य ने पूछा कि क्या अश्वत्थामा मारा गया है, तो युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, 'हां, अश्वत्थामा मारा गया है परन्तु वह अश्वत्थामा हाथी था, मनुष्य नहीं'। कृष्ण ने अर्जुन इत्यादि को सिखा रखा था। युधिष्ठिर के वाक्य के पहले भाग को तो शान्ति से द्रोणाचार्य को सुनने दिया, परन्तु ज्योंही युधिष्ठिर कहने लगा, 'परन्तु वह···' कृष्ण और अर्जुन आदि ने अपने शंख बजा दिये। शंखों के नाद में द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के वाक्य का अन्तिम भाग न सुन सका। वह पुत्र की मृत्यु का समाचार सुन उदास हो धनुष-बाण को रख लड़ाई छोड़ बैठा। अर्जुन ने अवसर जान एक बाण से ही द्रोणाचार्य का सिर धड़ से पृथक कर दिया।

"पंडित जी महाराज, अब बताइये, क्या कृष्ण ने झूठ बोला था?"

पथिक ने कहा, "परन्तु कौरव अति दुष्ट थे। मैं मुसलमानों को ऐसा नहीं समझता।"

दूसरा भाग

चुनाव

विजयबहादुर और मोहन देवा से भागे तो लखनऊ पहुँचे। मोहन पथिक के अहसान में दबा हुआ था। उसने उसे कैद होने और गाँव भर वालों से लज्जित होने से बचाया था। मोहन पंचायत का दृश्य भूल नहीं सकता था। उसके मन पर क्रोध से भरे हुए लोगों की आँखों का चित्र चित्रित था। फिर कैसे पथिक के कहने पर लोग उसके शत्रु होने के स्थान उससे सहानुभूति प्रकट करने लगे थे। वही बेनी, जिसके घर को आग लगाते हुए वह पकड़ा गया था, उसके पंचायत में क्षमा मागने के पश्चात् उसे थानेदार से बचाने के लिये भीड़ से धक्के देकर बाहर कर रहा था। ये सब बाते उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं।

परन्तु विजयबहादुर के मन में अभी भी विष भरा था। वह समझता था कि पथिक देवा में रहकर देवा वालो का भारी अनिष्ट कर रहा है। वह मोहन को दुर्बल आत्मा कहता था। वह कहता था कि पथिक बड़ा धूर्त है और अपने प्रभाव को सुरेश इत्यादि पर जमाने के लिये ही उसने मोहन को छुड़ा दिया है। यथार्थ मे वह इतना अच्छा आदमी नहीं है।

लखनऊ में मोहन और विजयबहादुर की नहीं बनी। मोहन तो यह ख़बर पाते ही कि उस पर कोई मुकदमा नहीं बना देवा वापिस आगया। परन्तु विजयबहादुर वहीं पड़ा रहा। वह पथिक से बदला लेने के उपायों पर विचार कर रहा था।

इन दिनों प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव की चर्चा आरम्भ होगई थी। भिन्न भिन्न पार्टियां चुनाव के मैदान में उतरने के लिये लंगर-लंगोटे

कस रही थीं। हिन्दू महासभा, मुस्लिम संस्थाओं और कांग्रेस-कमेटियों के जलसे हो रहे थे और सब पार्टियों के लोग अपने अपने सिद्धान्तों को सर्व-साधारण के सम्मुख स्पष्ट कर रहे थे।

विजयबहादुर लखनऊ में राजा साहब पिपरागंज की कोठी में ठहरा हुआ था। राजा साहब हिन्दू महासभा की स्थानीय ब्राच के प्रधान थे। वह हिन्दू महासभा की ओर से चुनाव में खड़े करने के लिये हिन्दू प्रतिनिधियों का प्रबन्ध कर रहे थे। भिन्न भिन्न हलकों से लोग हिन्दू महासभा का टिकट लेने के लिये आरहे थे। विजयबहादुर ने सुरेश के विषय में राजा साहब से कहा। वह सुरेश को हिन्दू महासभा के टिकट पर प्रान्तीय धारा-सभा की सदस्यता के लिये खड़ा करने पर राज़ी हो गये।

सुरेश के मन पर मोहन के मामले ने भारी प्रभाव डाला था। पथिक को वह पहले एक नीम पागल समझता था, परन्तु इस घटना के पश्चात् वह उसका हृदय से मान करने लगा। इस परिवर्तन में मोहन का भी हाथ था। सुरेश अब प्रायः बगिया में जाया करता था और पथिक के सम्पर्क में आया करता था। वहां कथा-कीर्तन से उसके विचारों में परिवर्तन हो रहा था। सबसे अधिक प्रभाव उसके मन पर मसजिद के मामले ने डाला था।

इस पर भी वह किसी एक निश्चित विचार-धारा में नहीं पड़ा था। एक ओर तो ज़मीदारी की गन्ध उसके मस्तिष्क में बस रही थी। दूसरी ओर ताल्लुक़दार-स्कूल की शिक्षा का अराष्ट्रीयता उत्पन्न करने वाला प्रभाव भी था। इधर पथिक अपने कथा-कीर्तन से हिन्दुत्व की छाप लगा रहा था।

ऐसे समय पर विजयबहादुर का पत्र लखनऊ से आया। लिखा था, "पं० अवधनाराण तिवारी, प्रान्तीय हिन्दू महासभा के मंत्री और राजा साहब पिपरागंज, स्थानीय हिन्दू सभा के प्रधान चाहते हैं कि होने वाले प्रान्तीय धारा-सभा के चुनाव में आप खड़े हो जाये। दादा! दुनिया में बड़ा होने का ऐसा अवसर बार बार नहीं मिलता। पहले तो विरोध में कोई खड़ा ही नहीं होगा, यदि कोई हुआ तो उसे परास्त कर देना कुछ कठिन नहीं।

आपने लिखा है कि मोहन के मामले के पश्चात् पथिक का प्रभाव इलाके में दूर दूर तक फैल गया है और आपकी मैत्री उससे बढ़ती जाती है। ऐसी परिस्थिति में आपका कौंसिल का सदस्य बन जाना कुछ भी कठिन नहीं। आप एक बार लखनऊ आकर हिन्दू महासभा के कार्ड पर हस्ताक्षर कर दें तो हिन्दू महासभा की ओर से आपका नाम निकल जायगा।"

सुरेश को पत्र मिलने पर रात भर नींद नहीं आई। उसने सार्वजनिक कार्यों में कभी भाग नहीं लिया था, फिर भी वह यह तो जानता था कि देश के बड़े बड़े नेता और वकील, हज़ारों व्यय कर, धारा-सभा के सदस्य बनते हैं। वह अपने आपको उन लोगों में बैठने का अनुमान कर खुशी से उतावला हो उठता था। ऐसे सुख-स्वप्नों में नींद असम्भव थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही वह अपनी माता के पास पहुँचा। मा ने जब आने का कारण जाना तो पूछा, "तिवारी जी का पत्र आया है या विजयबहादुर का?"

"मां, तुम तो ऐसे ही संशय करती रहती हो। विजयबहादुर बेचारे को इतनी बुद्धि ही कहाँ है कि ऐसे प्रस्ताव कर सके। मा, तुम कहो तो खड़ा हो जाऊं।"

"तो क्या आज तक तुम सब काम मुझसे पूछ कर ही करते रहे हो? जैसा मन करे करो।"

"परन्तु मा, इसमें तो रुपया खर्च होगा। रियासत का तो यह हाल है कि अभी तक मालगुज़ारी अदा नहीं हुई। कलक्टर साहब की चिट्ठी कल भी आई थी। वसूली हो रही है पर इलाके में अकाल पड़ा है। सोलह आने वसूली की आशा नहीं। और चुनाव में तो लगभग बीस-तीस हज़ार खर्चा होगा। सो सब इसी वर्ष की आय में से निकल नहीं सकेगा। यदि मां, तुम घर में से कुछ रुपया दे दो, तो कुछ इस वर्ष और कुछ अगले वर्ष में दे दूंगा।"

"देखो बेटा, जितनी चादर हो उतना ही पाव पसारना चाहिये। यदि इतना रुपया नहीं है तो चुप रहो। फिर पाच वर्ष को जब चुनाव होगा

तब तक रुपया एकत्रित कर लेना और मन की लालसा पूरी कर लेना।"

"नहीं मा, इतनी देर में तो न जाने क्या हो जाय ? कौन जियेगा, कौन मरेगा ? न, मैं तो इसी बार सदस्य बनूगा।"

मा जानती थी कि सुरेश से बहस करना व्यर्थ है। वह मन में आई बात करके छोड़ता है। अतएव स्वीकृति दे दी और कहा, "परन्तु खर्च करने के लिये किसी योग्य आदमी को नियत करना ताकि खर्चा सीमा से बाहर न हो जाय।"

अब सुरेश पथिक के पास पहुँचा। जयपुर से मूर्ति गढ़ने वाले आये हुए थे और वे सरस्वती की वैसी ही मूर्ति जैसी पथिक ने मिट्टी की बनाई थी बना चुके थे। मन्दिर की इमारत की आवश्यक मरम्मत हो चुकी थी।

पथिक प्रातःकाल की पूजा इत्यादि कर संगीत का अभ्यास कर रहा था। यह उसका नित्य प्रति का काम था। लोग जो स्नान इत्यादि के लिये नदी पर आते थे प्रायः स्नान के पश्चात् पथिक के दर्शन कर घर जाते थे। कई लोग तो कुछ फल-फूल और पैसे भी चढ़ा जाते थे।

जब पथिक ने अपना नियमित संगीत का अभ्यास समाप्त कर तानपूरा और करताल भूमि पर रखीं तो सुरेश ने अपना वहा पहुंचने का प्रयोजन बताया। उसने कहा,"गुरुदेव, अगले वर्ष के आरम्भ में ही कौंसिलों के नये चुनाव होंगे।"

"हूँ" पथिक ने केवल इतना ही कहा।

"यह नई राज्य-प्रणाली यद्यपि आदर्श नहीं तो भी प्रान्तों में तो बहुत अधिकार लोगों को मिल ही गये हैं।"

"हूँ।"

इस 'हूँ हूँ' से सुरेश कुछ उत्साहित नहीं हुआ। इस पर भी साहस बांधकर बोला,"कांग्रेस के लोग यद्यपि सन पैंतीस के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट को स्वीकार नहीं करते, तो भी चुनाव के लिये खड़े हो रहे हैं।"

"हूँ।"

"यह जनता से अन्याय है, गुरुदेव। वे लोग जनता से राय लेकर

तो मैम्बर बनेंगे, परन्तु कौंसिलों में हाज़िर नहीं होंगे, और लोगों का जो कुछ भी भला मैम्बर कर सकते हैं वे न स्वयं करेंगे और न दूसरों को करने देंगे।"

"हूँ"

अब तो सुरेश से नहीं रहा गया। वह इस 'हूँ हूँ' से तंग आगया था। कहने लगा, "गुरुदेव, यह आपकी 'हूँ हूँ' का अर्थ नहीं समझ सका।"

पथिक हंस पडा। कहने लगा, "सुरेश बाबू, पहले अपने मन का आशय पूर्ण रूप से बता दो, तो फिर मैं अपनी सम्मति दूंगा।"

सुरेश अपने मन की बात बताने के लिये विवश हो गया। उसने कहा, "हिन्दू महासभा के कुछ लोगों की इच्छा है कि मैं इस इलाके से धारा-सभा के लिये खड़ा हो जाऊं। इसमें मैं आपकी सम्मति चाहता हूँ।"

"यह बात यदि तुमने पहले ही बताई होती तो मैं अब तक अपनी सम्मति दे चुका होता।"

"हां, तो आपकी क्या राय है?"

"हिन्दू महासभा के टिकट पर खड़ा होना ठीक नहीं।"

"क्यों?"

"हिन्दू महासभा है भानुमती का पिटारा। इसमें एक सिद्धान्त पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति सम्मिलित नहीं हैं। हिन्दू महासभा, यथार्थ में, राजनैतिक संस्था न थी और न है।"

"आपको इस सभा के विषय में बहुत कम ज्ञान है। यह यथार्थ में एक राजनैतिक संस्था है। इसकी नीति है हिन्दू-राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करना।"

"क्या हिन्दुओं के राजनीतिक अधिकार अन्य हिन्दुस्तानियों के अधिकारों से विलक्षण हैं? जब सब हिन्दुस्तानी एक समान दास हैं तो हिन्दुओं की विशेष रक्षा के क्या अर्थ हैं? यथार्थ में हिन्दू महासभा के लोगों के मस्तिष्क में न तो राजनीतिक विचारों में एकता है, न ही

राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के साधनों में एकमत। यही कारण है कि हिन्दू महासभा न तो कभी कोई कार्यक्रम बना सकी है और न ही बना सकेगी।"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

"मेरा मतलब स्पष्ट है। राजनैतिक दृष्टि से भिन्न भिन्न विचारों के लोग हिन्दू महासभा में सम्मिलित हैं। इन लोगों का इस विषय में ध्येय एक नहीं। अच्छा देखो, राजा साहब पिपरागंज हैं। वह ब्रिटिश राज्य का यहा रहना अत्यावश्यक और भारतवर्ष के लाभ की बात समझते हैं। वह लखनऊ हिन्दू-सभा के प्रधान हैं। दूसरी ओर पंजाब में और अन्य स्थानों पर ऐसे सदस्य हैं जो हिन्दू महासभा का ध्येय ब्रिटिश राज्य से मुक्ति पाना तो मानते हैं, इस पर भी वे इस समय सरकार को सहयोग देना अपना कर्तव्य समझते हैं। इन लोगों से विपरीत पं० मालवीय जी हैं। वह सरकार का पग पग पर नियमानुकूल विरोध करने के लिये कहते हैं। सब से बढ़कर हिन्दू महासभा में वीर सावरकर जैसे भी लोग हैं जो जिस किस भांति भी हो सके ब्रिटिश राज्य को भारतवर्ष से उखाड़ बाहर करना चाहते हैं। हिन्दू महासभा में वे लोग भी हैं जो हिन्दुस्तान में शुद्ध हिन्दू राज्य स्थापित करना अपना ध्येय समझते हैं और वे लोग भी हैं जो दूसरे सम्प्रदायों से समझौता करने पर सदैव तैयार हैं। जिस सभा के लोगों का राजनीतिक मत एक नहीं वह सभा कैसे राजनैतिक सभा हो सकती है? मेरी सम्मति में या तो इस सभा वालों को राजनीतिक क्षेत्र से अपना हाथ खैंच लेना चाहिये या अपने में संशोधन कर एक ही विचार के लोगों को अपने भीतर रखना चाहिये।"

"तो क्या आप मेरा स्वतंत्र रूप से खड़ा होना पसन्द करेंगे?"

"कदापि नहीं। मै तुमको धारा-सभा में जाने योग्य नहीं समझता।"

सुरेश इतनी मुँहफट बात से चकित रह गया। फिर भी पथिक को मनाने की आशा में उसने कहा, "आप कैसे मुझे अयोग्य समझते हैं?"

"आपकी आयु, अनुभव, शिक्षा और ज्ञान अभी बहुत कम हैं।

सबसे बडी बात जो एक धारा-सभा के सदस्य में होनी चाहिये वह भी आप में नहीं है।"

"और वह क्या है ? क्या मैं जान सकता हूं ?"

"हा, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो। तुम में चरित्र नहीं है।"

इससे तो सुरेश का मुख क्रोध से लाल होगया। पथिक ने अपने कथन को समझाते हुए कहा, "चरित्र के अर्थ इस शब्द के विस्तृत अर्थों में समझना। मै कहता हूँ कि जिस व्यक्ति में अपने दोष और त्रुटियों के मानने का स्वभाव नही वह चरित्रहीन है। तुम में भी यही दोष है।"

सुरेश का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। उसने आवेश में कहा, "मुझ-में दोष हैं और मैं मानता नहीं, यह कैसे ?"

"मेरा अभिप्राय त्रुटियों से है। तुमने आज तक धारा-सभा की सदस्यता करने के लिये अपने में योग्यता पैदा करने का यत्न तक भी नहीं किया। तुमने न तो राजनीति की शिक्षा प्राप्त की और न ही कभी विचार किया है कि धारा-सभा में सदस्य होने पर तुम्हारे क्या क्या उत्तरदायित्व हो जायेंगे। तुम अयोग्य हो। इस पर भी [illegible] के लालच में उस पद के पाने की इच्छा कर रहे हो। यही चरित्रहीनता है। अपनी त्रुटियों को न मानना है।"

यद्यपि इससे भी सुरेश का क्रोध शान्त नहीं हुआ था, परन्तु पथिक को अपने पक्ष में कर लेने के लोभ में उसने एक और युक्ति दी। उसने कहा, "मैं तो समझता हूँ कि मैं किसी भाति भी सदस्य बनने के अयोग्य नहीं हूँ। सरकार ने जो योग्यताएँ सदस्य बनने वाले के लिये नियत की हैं वे सब मुझ में हैं। मैं कई लाख रुपया सालाना कर देता हूं। मेरी आयु पच्चीस वर्ष की होगई है। मेरा नाम वोटरों की सूची में है। इनके अतिरिक्त सरकार ने और कोई योग्यता नियत नहीं की है। केवल सरकार ही नहीं, प्रत्युत हिन्दू महासभा भी मुझे सब प्रकार से योग्य समझती है। यदि मैं चाहूँ तो काग्रेस-टिकट भी प्राप्त कर सकता हूँ। तो क्या ये लोग एक अयोग्य व्यक्ति को टिकट देरहे हैं ?"

"सुरेश बाबू, तुमने तो मेरी सम्मति मांगी है, न कि सरकार की अथवा हिन्दू महासभा की या काग्रेस-कमेटी की। वे भले ही तुम जैसे लोगों को धारा-सभा की सदस्यता के योग्य समझें, मैं तो ऐसा नहीं समझता। मैंने तुमको अयोग्य समझने का कारण भी बता दिया है।"

"आपके विचारानुकूल तो बहुत ही कम लोग इन सभाओं के सदस्य बनने की योग्यता रखते होंगे। यदि आपका पैमाना प्रयोग में लाया जाय तो सभायें खाली रह जायेंगी।"

"रहनी ही चाहियें। दो-चार बुद्धिमान, अनुभवी, शिक्षित, चरित्रवान व्यक्ति हज़ारों तुम जैसों से अच्छे होंगे।"

"यदि मैं खड़ा हो जाऊं तो आप मेरी सहायता नहीं करेंगे क्या?"

"यदि तुम स्वतंत्र रूप से खड़े होगे तो मैं अपने प्रिय जनों से कह दूँगा कि जिसको उचित समझें वोट दें। हाँ, यदि तुम किसी पार्टी की ओर से खड़े होगे तो मैं या तो विरोध करूंगा या सहायता। क्या करूंगा अभी नहीं बता सकता। इसमें कारण है। पार्टियों ने अभी अपना कार्यक्रम निश्चय नहीं किया। हिन्दू महासभा में अनुशासन नहीं है। हिन्दू महासभा राजनीति में एक मत रखने वाली सभा नहीं है। इसे राजनीतिक पार्टी बनाने के लिये इसमें भारी संशोधन की आवश्यकता है।"

"खैर जैसे आपकी इच्छा हो करें। मैं तो आज लखनऊ जा रहा हूँ और वहां जाकर निश्चय करूंगा। इस पर भी एक बात आपसे पूछना चाहता हूं कि आप पार्टियों के विषय में इतना कड़ा व्यवहार क्यों रखेंगे?"

"सुरेश बाबू, बात सीधी ही है। यदि तुम स्वतंत्र रूप में खड़े होगे तो मैं तुम्हें अयोग्य समझता हुआ भी तुम्हारा विरोध नहीं करूंगा। लोग तुम्हारे विषय में अपना अपना अनुमान स्वयं लगा लेंगे। हां यदि तुम किसी पार्टी के टिकट पर खड़े होगे, तो लोगों को पार्टी के गुण-अवगुण बताने की आवश्यकता रहेगी। पार्टी में यदि अनुशासन ठीक हो तो एक व्यक्ति की योग्यता व अयोग्यता का प्रश्न नहीं रह जाता। तब तो एक अयोग्य आदमी भी पार्टी के नियम से बँधा हुआ पार्टी के कार्यक्रम के

अनुकूल अपना आचरण रख सकता है। ऐसे अवसर पर देखना यह होता है कि पार्टी का कार्यक्रम क्या है और उस पार्टी का अपने सदस्यों पर कितना अधिकार है। जिस पार्टी का कार्यक्रम ठीक है और जिस पार्टी के सदस्य पार्टी के लिये अपने परम स्वार्थ को भी त्याग सकते हैं, वह पार्टी हमारे वोट की हकदार हो सकती है।"

"यदि आपकी सहायता हो तो ठीक है, नहीं तो मैं समझता हूँ कि आपकी सहायता के बिना भी मैं सफल हो सकूँगा।"

"मैं तुम्हारा विरोध नहीं करूंगा।"

"धन्यवाद।"

[२]

सुरेश को हिन्दू महासभा का टिकट लेने में कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ी। एक हज़ार रुपया पार्टी-फंड में देना पड़ा। पश्चात् सुरेश ने एक मिस्टर आर० सी० सिन्हा बी० ए०, एलएल० बी० को अपना इलैक्शन-एजेन्ट नियत कर लिया। यह सिन्हा भी विजयबहादुर का ढूँढा हुआ आदमी था।

अपने पर हिन्दू-पार्टी का लेबिल लगाकर सुरेश ने ज़िला कचहरी में 'नौमीनेशन' के पर्चे दाख़िल कर दिये। कांग्रेस की ओर से एक मिस्टर अवधबिहारी माथुर, लखनऊ के प्रसिद्ध वकील, खड़े किये गये। मि० माथुर बहुत धनी वकील थे। रुपये-पैसे का उन्हें विचार नहीं था। वह चाहते तो लाखों रुपया चुनाव पर ख़र्च कर सकते थे, परन्तु काग्रेस-पार्टी में उन्होंने स्पष्ट कह दिया था, "मैं पांच सौ रुपये से अधिक ख़र्च नहीं करूंगा। मुझे सदस्य बनने का लालच नहीं है। यदि लोग मुझे चुनेंगे तो भला उनका होगा, और यदि उन्होंने मुझे नहीं चुना तो वे जानें। मुझे शोक न होगा।"

काग्रेस के नेता माथुर बाबू जैसे योग्य आदमी को अपनी पार्टी में लेकर फूले नहीं समाते थे। वे यह तो समझते थे कि बाबू साहब रुपये की कंजूसी कर कोई अच्छी बात नहीं कर रहे। फिर भी वे चाहते थे कि

माथुर बाबू सफल हो जायें, और उन्होंने ज़िला भर की कांग्रेस-संस्थाओं को पूरे मन से यत्न करने के लिये आदेश भिजवा दिया था।

जांच के दिन सुरेश आधी दर्जन वकील लेकर कचहरी पहुँचा था, परन्तु मिस्टर माथुर अकेले ही थे। सुरेश के वकीलों ने भरसक यत्न किया कि माथुर बाबू का पर्चा रद्द हो जाय। परन्तु ऐसा न हो सका। इसके विपरीत जब सुरेश के पर्चे की जांच आरम्भ हुई तब माथुर बाबू ने कह दिया, "मुझे राजा साहब के 'नौमीनेशन' के पर्चे पर कुछ भी आपत्ति नहीं। मैं चाहता हूँ कि राजा साहब मैदान में आकर दो-दो हाथ दिखायें।"

परिणाम यह हुआ कि देवा के इलाके में जंग छिड़ गई। हिन्दू महासभा और कांग्रेस का मुकाबिला था। इलाके के राजा और उसके रुपयों से लदे कोष का एक खाली हाथ वकील से मुकाबिला था। एक ओर सरकार के अफसरों की पूर्ण शक्ति से सहायता थी। दूसरी ओर दो टके की खद्दर की टोपी पहने कांग्रेस के कार्यकर्ताओं का सहयोग था। जबरदस्ती, धोखा, रिश्वत, सरकारी अफसरों की धमकियां एक तरफ थीं और रूखी-सूखी महात्मा गांधी की जय विपक्ष में थी।

तीन मास तक गांव-गांव, घर-घर, खेत-खेत में, कुँवों पर, घाटों पर, खेत की मेढ़ों पर अभिप्राय यह कि जहां भी दो आदमी मिलते थे चुनाव की ही बात होती थी। कोई कहता था 'महात्मा गांधी यह कहते हैं'। दूसरा कहता था 'पं० मदनमोहन मालवीय जी का वक्तव्य इस प्रकार है'। एक और बोल उठता था, 'वीर सावरकर यह कहते हैं।' अधिक गंवार आदमी यह कह देते थे, 'कांग्रेसी सब झूठे हैं।' 'हिन्दू महासभा देश-द्रोहियों की सभा है।'

स्थान स्थान पर सभायें हो रही थीं। कांग्रेस का संगठन बड़ा प्रबल था। ज़िला-ज़िला, तहसील-तहसील और प्रायः गाव-गांव में कांग्रेस-कमेटियां बनी हुई थीं और सैकड़ों कार्यकर्ता अवैतनिक और कुछ साधारण वेतन लेकर कांग्रेसी उम्मीदवार की सहायता कर रहे थे। दूसरी ओर हिन्दू महासभा का कोई संगठन नहीं था। अतएव सुरेश को कार्यकर्ताओं की एक

फौज नौकर रखनी पड़ी। ये लोग उचित वेतन पाने पर भी उस लगन से काम नहीं कर सकते थे जिससे कांग्रेसी कार्यकर्ता करते थे। बात भी ठीक थी। भाड़े के टट्टू कहा तक चल सकते थे। रुपया धड़ाधड़ व्यय हो रहा था। राजमाता ने पहले दस हजार पर उंगली रखी। जब वह समाप्त हो गया तो दस हजार और दिया। यह भी गरम तवे पर पानी की बूँद के समान भस्म हो गया। चुनाव में अभी एक मास शेष था। राज-माता ने पूछा, "बेटा, अभी और कितने की आवश्यकता होगी?"

"मा, बीस हज़ार और चाहिये। मुकाबिले में सारी कांग्रेस है और इधर मैं अकेला हूँ। हार गया तो बहुत लज्जा की बात होगी और बीस हजार खर्च किया हुआ भी विफल जायगा।"

"बेटा, एक दिन लखनऊ चले जाओ और तिवारी इत्यादि एक-दो नेताओं को तुम भी ले आओ। उन्हें ज़रा इलाके में घुमा दो और व्याख्यान दिलवा दो न।"

"परन्तु मा, इसमें भी तो खर्चा होगा। यदि यह बदमाश पथिक मान जाता तो इलाके का एक वोट भी कांग्रेस को न मिलता। वह बहुत प्रभावशाली वक्ता है और अब तो बेनी की जान बचाने के पश्चात् देवता माना जाने लगा है। सुना है वह भी कांग्रेस के पक्ष में इलाके का दौरा करने वाला है। परसों ही प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के प्रधान उसके पास आये थे। घंटों बातें होती रहीं और नहीं मालूम क्या निश्चय हुआ है।"

"बेटा, तुमने पथिक की बात मानी नहीं। यदि तुम कांग्रेस की ओर से खड़े हो जाते तो न तो इतना धन व्यय होता और न ही लोग, जो अब तुम्हारे विरोध में घूम रहे हैं, तुम्हारे विरोध में होते।"

"मां, है तो ठीक। मेरे लिये तो कांग्रेस और हिन्दू महासभा में कोई अन्तर नहीं। लखनऊ जाकर मेरी भी राय हुई थी कि कांग्रेस के प्रधान से मिल लूँ। परन्तु विजयबहादुर और अन्य हित-चिन्तकों ने बताया कि सरकारी अफसर नाराज़ हो जायेंगे। लाखों की मालगुजारी में छूट जो अकाल के कारण होने वाली है फिर न हो सकेगी और रियासत

कोर्ट आफ वार्ड में हो जायगी।"

मां इन युक्तियों के सम्मुख चुप थी। सुरेश ने कहा,"मां, एक बार तुम पथिक को यहाँ बुलाकर समझा क्यों नहीं देतीं? अभी भी चुनाव में एक मास शेष है। यदि वह मेरी सहायता करनी स्वीकार कर ले तो मैं एक मोटर गाड़ी उसकी सवारी में दे दूँगा। मुझे पूर्ण आशा है कि यदि वह हमारी ओर आजाय तो कुछ ही दिनों में पासा पलट जायगा।"

राजमाता गम्भीर विचारों में डूब गयी। एकाएक खड़ी हो गई और कहने लगी, "यदि कुछ कहना ही है तो यहा बुलाने के स्थान उसके यहाँ जाकर कहना अधिक ठीक रहेगा। तुम्हारे पिता के देहान्त के पश्चात् जब मैं राज्य का प्रबन्ध करती थी, तब भी तो बाहर निकला करती थी। अब तो तुमने जंग छेड़ दी है। मुझे परदे में रहना नहीं सुहाता। तुमने ठीक किया है या ख़राब, कुछ भी हो जीत तुम्हारी होनी चाहिये।"

[३]

जब राजमाता वहां पहुंची तो पथिक नलिनी को संगीत की शिक्षा दे रहा था। नलिनी गा रही थी। राजमाता पालकी से निकल पथिक के सम्मुख बिछी चटाई पर बैठ गयी। नलिनी ने गाना बन्द कर दिया। वह लज्जा अनुभव करने लगी थी। उसने नलिनी की पीठ पर हाथ फेरकर उसका उत्साह बढ़ाते हुए कहा,"गाओ। गाती जाओ बेटी। तुम तो बड़ा अच्छा गाती हो।"

"हां! हां! नलिनी, माता जी को सुनाओ न।" पथिक ने भी प्रोत्साहन देते हुए कहा।

नलिनी ने फिर गाना आरम्भ कर दिया :—

भज मन रामचरण सुखदाई।
जिहिं चरणन से निकसी सुरसरी, शंकर जटा समाई।
जटा शंकरी नाम पड़ो है, त्रिभुवन तारन आई॥
जिहिं चरणन की चरण पादुका, भरत रेहु लवलाई।
तिहि चरणन संतन जन सेवे, प्रभु हरी नाम जपाई॥

राजमाता नलिनी को सुर, ताल और लयसहित गाते देख चकित रह गयी। वह मुग्ध हो उसका गीत सुनती रही। कुछ कुछ तानालाप भी वह करने लगी थी। जब वह समाप्त कर चुकी तो पथिक को ऐसी अच्छी प्रतिभाशाली शिष्या पाने पर बधाई दी। पथिक ने अति आनन्दित हो कहा, "यह लड़की मुझे बहुत प्यारी लगती है। इसकी बुद्धि और चतुराई सराहनीय है।"

अब राजमाता ने अपने वहाँ आने का प्रयोजन बताने के लिये बात आरम्भ की, "आपसे एक अत्यावश्यक काम है। कई दिन से आने का विचार कर रही थी। आज कुछ अवकाश मिला है। आप तो जानते ही हैं कि सुरेश धारा-सभा के लिये खड़ा हुआ है। वह अभी बालक है। उसकी सहायता तो आपको करनी ही चाहिये।"

"माता! मैं उसका विरोध नहीं कर रहा।"

"यह ठीक है। मैं उसकी सहायता करवाना चाहती हूँ।"

"उसकी सहायता का अर्थ है सरकार के सहायकों की सहायता करना। प्रान्त भर के सरकारी अफसरों का यह यत्न हो रहा है कि कांग्रेसी उम्मीदवार असफल रहें। यह केवल इस कारण कि वे परिवर्तन नहीं चाहते। यही मैजिस्ट्रेट, कलक्टर, कमिश्नर इत्यादि कांग्रेस वालों को प्रायः अन्याय से कष्ट देते रहे हैं। अब वे यह पसन्द नहीं करते कि वही कल के कैदी आज उन पर अफसर बन जायें। उनके अपने ही पाप उनके सम्मुख आ रहे हैं। अतएव ये अफसर जी तोड़ यत्न कर रहे हैं कि कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि भी धारा-सभा में न पहुँच सके।"

"तो आप कांग्रेस वालों की सहायता करना चाहते हैं?"

"नहीं, मैं सरकार का विरोध करना चाहता हूँ। विदेशी राज्य भारतवर्ष में सब पापों का मूल है। इससे हम अपनी आत्मा तक को खो रहे हैं। जो भी विदेशियों से मुक्ति प्राप्त करने का यत्न करते हैं मैं उनकी सहायता करना चाहता हूं।"

"हिन्दू महासभा का भी तो यही उद्देश्य है। वह भी तो भारतवर्ष में

स्वतन्त्रता चाहती है।"

"उद्देश्यमात्र से तो काम नहीं चल सकता। उद्देश्य-प्राप्ति के लिये उपाय और प्रयत्न भी तो होने चाहिये। हिन्दू महासभा की वर्तमान नीति विदेशी सरकार से सहयोग की है। हिन्दू महासभा के नेता समझते हैं कि यदि सरकार का विरोध किया गया तो वह मुसलमानों को अच्छी अच्छी पदवियों पर नियुक्त कर हिन्दुओं को दुर्बल कर देगी। इस कारण वे सरकार के आधीन उन ओहदों को पाने के लिये सरकार की बातों में सहयोग देने की सम्मति देते हैं। फलस्वरूप, सुरेश जैसे सरकार के आश्रित लोग हिन्दू महासभा में पहुंच नेता बन गये हैं। इन लोगों के मन में देशोन्नति तथा देश और जाति की स्वतन्त्रता का विचार तक नहीं है। हिन्दू महासभा का उद्देश्य अच्छा है, परन्तु विदेशी सरकार के आश्रय पर पलने वाले लोग इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकेंगे।"

"सुरेश को भला आप कैसे सरकार के आश्रय कह सकते हैं?"

"सुरेश ताल्लुकदार है। किंचितमात्र बात का बहाना कर सरकार उसकी जमींदारी कोर्ट आफ़ वार्ड में ले सकती है। क्या सुरेश अपनी जमींदारी को देश की स्वतन्त्रता के लिये त्याग सकता है? यदि नहीं तो उसे सरकार के आधीन ही समझना चाहिये।"

राजमाता को सुरेश का कहना स्मरण हो गया। सुरेश ने कहा था कि अफ़सर नाराज़ हो गये तो रियासत कोर्ट आफ वार्ड में कर लेंगे।

पथिक ने अपनी बात को कुछ और स्पष्ट करने के लिये कहना जारी रखा, "माता जी, यदि धारा-सभा में गवर्नर की नीति अथवा अनुचित हस्ताक्षेप के विरोध का प्रश्न उपस्थित हुआ तो हिन्दू महासभा से भेजे जाने वाले सदस्य इस विरोध में सम्मिलित नहीं हो सकेंगे। सुरेश, गर्वनर तो दूर रहा, एक डिप्टी-कमिश्नर को भी नाराज नहीं कर सकता। तब देश को स्वतंत्र करने का उद्देश्य कैसे पूरा कर सकता है?"

राजमाता निराश घर लौट गयी। इस पर भी पथिक के विपरीत उसके मन में रोष नहीं था। उसे पथिक की युक्तियां अकाट्य प्रतीत होती थीं।

सुरेश के पूछने पर उसने कह दिया, "पथिक को कुछ मत कहो, उसे चुप रहने दो।"

विजयबहादुर सुरेश की चुनाव में सहायता करने के लिये लखनऊ से देवा वापिस आगया था। उसने जब सुना कि राजमाता पथिक को समझाने गयी थी और इस पर भी वह नहीं माना तो वह क्रोध से उबल उठा। उसने पथिक को शिक्षा देने का निश्चय कर लिया।

[४]

लखनऊ से हिन्दू महासभा के महामंत्री तिवारी जी सुरेश की सहायतार्थ प्रचार करने के लिये आये हुए थे। वह पूरे इलाके का दौरा कर देवा में ठीक उस दिन पहुँचे जिस दिन कांग्रेस के कई प्रमुख नेता मिस्टर माथुर की सहायता के लिये देवा में उपस्थित थे। ऐसे अवसर पर बीसियों गावों के लोग देवा में एकत्रित होगये। दो लाख से ऊपर की भीड़ रही होगी। आपित बगिया एक कोने से दूसरे कोने तक खचाखच लोगों से भर रही थी। लाउड-स्पीकर लगाये गये थे और दोनों पार्टियों में समझौता होगया था कि बारी बारी से बोलेंगे। इस समझौते का कराने वाला पथिक था। वह अभी भी किसी एक पार्टी का सहायक बनना पसन्द नहीं करता था। इसीलिये उसे सभा का प्रधान बनाया गया था। सुरेश की पार्टी वालों की इच्छा के अनुकूल पहले तिवारी जी को अपना पक्ष समर्थन करने का अवसर दिया गया। पूरे डेढ़ घंटे तक तिवारी जी का भाषण होता रहा। लोग चुपचाप उनकी युक्तियों और विचारों को सुनते रहे। यद्यपि लोगों में बहुमत कांग्रेस के पक्ष में था तो भी पथिक के अनुरोध और कांग्रेसी नेताओं के कहने पर सब दत्तचित्त होकर बैठे रहे। तिवारी जी ने भी बहुत सभ्यता और योग्यता से अपने पक्ष का प्रतिपादन किया। उन्होंने यह भी बताया कि सुरेश यद्यपि राजनैतिक बातों में कुशल नहीं, तो भी उसका वचन है कि वह पार्टी के नियंत्रण में रहेगा। यह उस पर भरोसा करने के लिये काफ़ी गारन्टी हो सकती है।

तिवारी जी के व्याख्यान के पश्चात्, पूर्व निर्णय के अनुसार, एक

काग्रेसी नेता का व्याख्यान होने वाला था, परन्तु विजयबहादुर ने स्वयं कुछ कहने के लिये आग्रह किया। पथिक ने इस बात की स्वीकृति नहीं दी। सुरेश और तिवारी जी ने विजयबहादुर को रोका भी, परन्तु वह बोलने के लिये हठ करता ही रहा। वह मंच पर खड़ा होकर बिना प्रधान की आज्ञा के बोलने लगा। लोग उसकी बात सुनने के लिये तैयार नहीं थे। लोगों ने 'बैठ जाओ' 'बैठ जाओ' का शोर करना आरम्भ कर दिया। विजयबहादुर कहता जारहा था। जब उसने देखा कि लोग उसकी बात सुनने को तैयार नहीं, तो उसने लोगों को गालिया देनो आरम्भ कर दीं। "बदमाश ! साले ! अपने राजा के खिलाफ बगावत करते हो। याद रखो सब के साथ, एक एक करके....."बहुत अश्लील बातें कहनी आरम्भ कर दीं।

विजयबहादुर की उदंडता को रोकने के लिये पथिक ने लाउड-स्पीकरों का सम्बन्ध बैटरी से विच्छेद करवा दिया। अब भीड़ के शोर में विजयबहादुर की बात दब गई। उसे इस बात पर भारी क्रोध चढ़ आया और उसने पथिक के मुख पर एक घूसा लगा दिया। इस पर विजयबहादुर और पथिक गुत्थमगुत्था हो गये। सब लोग उठ खड़े हुए। अकस्मात् इस समय कुछ लोग बगिया के चारों कोनों पर से जनता पर लाठियों से प्रहार करने लगे। यह सब कुछ इतना अकस्मात् और कायदे से किया गया कि लोग घबड़ाकर भाग उठे। यह सब विजयबहादुर का षड़यंत्र था।

कुछ लोग लाठियां लिये हुए मंच पर टूट पड़े। पथिक और काग्रेसी नेताओं को लठैतों ने घेर लिया। इस समय लोगों को विदित होगया कि पथिक और काग्रेसी नेताओं की जान का भय है। वे लौट पड़े और बड़ी कठिनाई से नेताओं को छुड़ाया।

सभा भग होगई। लाउड-स्पीकर इत्यादि चकनाचूर होगये। मंच और मेज़-कुर्सियां सब टूट-फूट गयीं। पथिक के एक हलका सा घाव मुख पर आँख के नीचे होगया। काग्रेसियों को भी चोटें आई थी। केवल संतोष इस बात का था कि जान किसी की नहीं गयी।

लखनऊ के तिवारी जी तथा अन्य सुरेश के सहायक सभा मे कोट में पहुँचे तो तिवारी जी ने विजयबहादुर को इस उद्दंडता के लिये बहुत डांटा। परन्तु उसने कहा, "पंडित जी, मेरा तो दोष केवल इतना ही था कि मैंने अपने विचार लोगों को बताने का यत्न किया। झगड़ा करने वाले तो काग्रेसी थे।"

"तुमने गालियां क्यों दीं?"

"यह तो साहब, हम देहातियों के कहने का ढंग है। ऐसी ही बातों को यहा के लोग ठीक ठीक समझते हैं।"

"मैं इन बातो को नहीं मानता। तुमने जो कुछ किया है वह अपने मित्र मिस्टर सुरेश के लिये अच्छा नही किया। जनता पर इसका उलटा प्रभाव पड़ेगा।"

सुरेश विजयबहादुर की उच्छृङ्खलता से डर गया था। वह सोचने लगा था कि अब पथिक खुल्लमखुल्ला उसके विरुद्ध प्रचार करने लगेगा। वह गम्भीर विचार में मग्न था। अब जब तिवारी जी को भी आशंका प्रकट करते सुना तो उसने विजयबहादुर से कहा, "परन्तु तुमने पथिक को घूंसा क्यों मारा?"

"उसने लाउड-स्पीकर क्यो बन्द कर दिया था?"

"केवल इसलिये कि लोग तुम्हारी गालिया न सुन सकें। और वे तो पहले ही से भड़क रहे थे।"

"सुरेश, तुम देखना कि आज के फ़साद का बहुत अच्छा प्रभाव होगा। कांग्रेस के जलसों में अब इतनी भीड़ नहीं होगी, और हम जीत जायेंगे। मेरी तो राय है कि काग्रेस के सब जलसों पर लाठी चलवा दी जाय, ताकि लोगों में आतंक फैल जाय और वोट देने के लिये कोई उपस्थित ही न हो सके।"

इस पर तिवारी जी ने कहा, "तुम्हारी यह नीति मुझे पसन्द नहीं।"

"पंडित जी, आप चुप रहें और देखते जायें कि मैं कैसी सफाई से प्रबन्ध करता हूँ। झगड़ा करने वाले सदैव खद्दर पहने, गांधी टोपियां लिये

हुए होंगे।"

जब विजयबहादुर चला गया और दूसरे लोग भी विदा हो गये तो सुरेश ने तिवारी जी से कहा, "पण्डित जी, मुझे तो निराशा हो रही है।"

"तुम्हारा काम करने वालों का चुनाव ग़लत है। पथिक को यदि तुम राजी कर लेते तो तुम्हारी सफलता निश्चित थी।"

सुरेश ने लज्जा से आखें नीची कर कहा, "परन्तु अब तो उसे राजी करने की कुछ भी आशा नहीं। इस समय तो वह अपनी आंख सेक रहा होगा।"

"यह विजयबहादुर बहुत ही उद्दंड व्यक्ति है। तुमने उसे इस काम से बाहर क्यों नहीं रखा?"

"मेरे रखने अथवा कहने से क्या होता है। वह स्वयं ही सब कुछ कर रहा है। वह किसी की मानता थोड़े ही है।"

"मेरी इच्छा कल पथिक से मिलकर उसे अपने पक्ष में करने की है।"

"अच्छी बात। पर स्मरण रहे कि सफलता की आशा नहीं।"

तिवारी जी रात भर उस सायंकाल की घटना और अगले दिन के कार्यक्रम पर विचार करते रहे। दूसरे दिन बहुत सबेरे सुरेश को साथ लेकर पथिक से मिलने मन्दिर की ओर चल पड़े। तिवारी जी पिछले दिन की घटना के लिये पथिक से क्षमा मांगना अत्यावश्यक समझते थे।

परन्तु दैव विपरीत था। बगिया में पहुंचते ही इन्होंने देखा कि बेनी एक बैलगाड़ी पर सामान लादे लिये जा रहा है। सुरेश ने पूछा, "बेनी, यह किस का सामान है?"

"महाराज, यह कांग्रेसी व्याख्यान देने वालों का है।"

"गुरुदेव जाग गये हैं?"

"जाकर देख ले।"

इस उत्तर से सुरेश का माथा ठनका। वह समझ गया कि दाल में कुछ काला है। लम्बे लम्बे पांव उठाते हुए वे दोनों मन्दिर में पहुँचे। वहां की अवस्था अति भयानक थी। ऐसा प्रतीत होता था कि भारी

फ़साद हुआ है। संगमरमर की मूर्ति और दूसरे सामान के टुकड़े-टुकड़े उड चुके थे। संगमरमर की सरस्वती की मूर्ति पर कई हज़ार रुपया व्यय हो चुका था। वह टूट-फूटकर टुकडे-टुकड़े हुए इधर-उधर बिखरी पड़ी थी। मट्टी की मूर्ति जो पथिक ने अपने हाथ से बनाई थी वह मट्टी का ढेर हो गई थी। केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत खून के छींटे और दाग़ फर्श और दीवारों पर थे। मन्दिर के एक तरफ एक कोठरी थी। उसमें पथिक स्वयं रहता था। उस कोठरी का सब सामान टूटा-फूटा पड़ा था।

वहा पर कोई नहीं था जिससे पता चल सकता कि यह सब किसने किया है। सुरेश और तिवारी जी बाहर निकल आये और बेनी को, जो अब दूर निकल गया था, पुकारने लगे।

सुरेश उसके पीछे भाग खड़ा हुआ। एक फर्लांग तक पीछे जाने पर वह बेनी को पकड़ पाया। तिवारी जी भी हापते हुए उसके पीछे पीछे आ रहे थे।

"क्यों बे! बताये बिना किधर भागा जाता है? कहा हैं गुरुदेव?"

"मैंने समझा था कि आपको सब मालूम है।"

"क्या मालूम है? मालूम होता तो तुझसे पूछते ही क्यों?"

"तो क्या विजयबहादुर ने आपको बताया नहीं?"

"विजयबहादुर ने? अबे! क्या बकता है? सीधी तरह से क्यों नहीं बताता?"

बेनी कुछ देर तक सुरेश का मुख देखता रहा। वह सोच रहा था कि सुरेश सत्य कह रहा है या झूठ। आखिर उसने कहना आरम्भ किया, "रात के दो बजे, एक सौ से ऊपर लोग लाठियां लिये हुए मन्दिर में पहुंचे। गुरुदेव और काग्रेसी लोग खाटो पर बरामदे और चबूतरे पर सो रहे थे। आने वालों ने न आव देखा न ताव धड़ाधड़ लातों और मुक्कों से सोये हुओं को पीटना आरम्भ किया। मैं अपनी झोंपड़ी में था। हल्ला सुन वहाँ पहुँचा तो देखा कि मन्दिर में हाथापाई हो रही है। विजयबहादुर चबूतरे पर खड़ा कह रहा था, 'देखो कोई मरने न पाये।' इस समय भीतर

लठिया चलने का शब्द होने लगा। गुरुदेव लड़ते लड़ते बाहर चबूतरे पर आगये। उनके सिर पर से घाव में से बहता हुआ रक्त चाद की चादनी में स्पष्ट दिखाई दे रहा था। वह लाठी घुमा रहे थे। मालूम होता है कि वह उसमें बहुत कुशल थे। ज्योंही खुली जगह पर निकल उन्होंने लाठी घुमानी आरम्भ की कि विजयबहादुर के आदमी घायल हो होकर भागने लगे। विजयबहादुर ने जब यह देखा तो उसने साथियों को कहा, 'भाग जाओ! भाग जाओ' और सब लोग सिर पर पाव रख भाग खड़े हुए।

"विजयबहादुर और उसके आदमियों के भाग जाने के पश्चात् मैं भागकर मिट्टी के तेल की कुप्पी जला लाया। मैंने और गुरुदेव ने भीतर बरामदे में जाकर देखा कि सब लोग घायल हुए कराह रहे हैं। गुरुदेव को भी चोटें आई थी। आखिर मैं और मेरी स्त्री ने सब के घावों पर पट्टी की और गुरुदेव के कहने पर सब को दो बैल-गाड़ियों पर लाद पहले भेज दिया है। मैं उनका सामान लेकर जारहा हूँ। गुरुदेव और मेरी स्त्री भी उनके साथ ही चले गये हैं।"

सुरेश यह वृत्तान्त सुन बहुत समय तक सिर नीचे किये सोचता रहा। उसका मुख लज्जा और रोष से फीका पड़ गया था। तिवारी जी की हिम्मत टूट गई मालूम होती थी। उन्होंने सुरेश के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "चलो भाई, चलें।"

जाने से पूर्व सुरेश ने पूछा, "ये लोग किधर गये हैं?"

"आपके इलाके से शीघ्रातिशीघ्र निकल जाने का विचार था।"

"क्यों?"

"मैं नहीं जानता। कांग्रेस के लोग तो चिकित्सा के लिये लखनऊ चले जायेंगे। गुरुदेव का पता नहीं।"

"तुम कहा जा रहे हो?"

"मुझे तो रेल के स्टेशन पर सब सामान लेकर पहुँचने की आज्ञा हुई है।"

सुरेश और तिवारी जी वहां से लौट कोट में आगये।

[५]

पथिक सुरेश की जमींदारी से बाहर चला गया। देवा से बीस मील के अन्तर पर एक छोटे से गाव में, जिसका नाम शिवपुर है, उसने एक साधारण सी झोंपडी में निवास बना लिया। पथिक की ख्याति उसके साथ थी और वही कीर्तन-कथा आरम्भ हो गये। अन्तर यह था कि यह गाव मुसलमानों का था। जहां देवा में दस-बीस घर मुसलमानों के थे, वहा शिवपुर में दस-बीस हिन्दुओं के। कथा-कीर्तन में भी मुसलमानों की संख्या पर्याप्त होती थी।

पथिक की संगीत-कला में प्रवीणता उसे सर्व प्रिय बनाने में बहुत सहायता देती थी। इस गाव का जमींदार भी एक मुसलमान था। नाम था जाहिदअली। यह जमींदारी इतनी बड़ी नहीं थी जितनी कि देवा की। फिर भी वह नवाब के नाम से पुकारा जाता था।

नवाब ज़ाहिदअली संगीत के बड़े शौकीन थे। जब एक बार उन्होंने पथिक को गाते सुना तो वह लट्टू हो गये। प्रति दिन सायंकाल वह अपने दोस्तों और मशीरों के साथ पथिक की झोंपड़ी में आजाते थे और घण्टों ही उसे कीर्तन करते देखा करते थे। इसी कारण और मुसलमान भी वहां शामिल हो जाते थे।

पथिक को वहा आये अभी कुछ दिन ही हुए थे कि एक दिन नवाब ज़ाहिदअली के मकान पर शिवपुर की एक मसजिद का मुल्ला पहुँच शिकायत करने लगा, "हजूर, जब से यह गाने-बजाने वाला पंडित शिवपुर में आया है मसजिद में शाम की नमाज़ मे कम लोग आने लगे हैं।"

नवाब साहब ने कुछ बेपरवाही दिखाते हुए कहा, "अच्छी बात है। क्या दिन में एक बार नमाज़ पढ़ लेनी काफी नहीं?"

"लाहौल विला! आप कैसी बात करते हैं? किताबे-पाक में तो हज़रत सुलाउल इस्लाम तो दिन में पाच बार नमाज़ पढ़ने को कह गये हैं।"

"तो तुम जरा नमाज का वक्त पीछे क्यों नहीं कर देते, ताकि वहां गाना सुनकर भी नमाज़ पढ़ने का वक्त रह जाये?"

"हज़ूर, यह मेरे बस से बाहर की बात है।"

"तो फिर तुम ही बताओ क्या किया जाय?"

"हज़ूर, थानेदार से कहकर उसे शिवपुर से बाहर हो जाने का हुक्म दिलाया जाय।"

"ओह! यह बात है हजरत। आप यहां से तशरीफ ले जा सकते हैं। और फिर यहां न आना, नहीं तो जूतों से पिटवा दूँगा।"

मुल्ला मुंह लटकाये मसजिद में लौट आया। वहां मसजिद के पिछवाड़े के कमरे में, जहां वह रहता था, विजयबहादुर उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। मुल्ला ने जब सब बात बताई तो उसने कहा, "तो नवाब साहब उसके विपरीत थाने में रिपोर्ट लिखाने को तैयार नहीं हैं?"

"नहीं! बिलकुल नहीं।"

"अच्छी बात है। तुम यहां के दूसरे बड़े बड़े आदमियों को लेकर स्वयं वहां रिपोर्ट करा दो कि पथिक के भजन-कीर्तन से उनके मज़हबी अधिकारों में गड़बड़ मचती है। शेष मैं समझ लूंगा।"

"बात तो आपकी ठीक है। मगर एक बात है। यदि मैंने कुछ भी किया तो नवाब साहब नाराज़ हो जायेंगे और मेरा यहां रहना दूभर हो जायगा।"

"नवाब साहब कुछ न कहेंगे। जब उनको पता चलेगा कि बड़े साहब (डिप्टी-कलक्टर) भी यही चाहते थे तो वह चुप कर जायेंगे।"

"मगर मुझे क्या मिलेगा?"

"तुम्हें पांच सौ रुपया नकद दिलवा दूंगा। यदि पथिक की ज़मानत हो गई या वह यहां से निकाल दिया गया तो इनाम और भी अधिक कर दिया जायगा।"

दूसरे दिन ही मुल्ला ने एक रिपोर्ट थाने में लिखवा दी। यह इस प्रकार थी :—"शिवपुर मुसलमानों का गांव है। गांव भर में दस मसजिदें हैं। सब में सायंकाल नमाज़ी नमाज़ पढ़ने एकत्रित होते हैं। पथिक और उसके साथी हिन्दू लोग ठीक उसी वक़्त गाना और कीर्तन करते हैं। इससे

नमाज़ियों की नमाज़ में ख़लल पड़ता है। मुसलमान इससे बहुत नाराज़ हैं और फसाद हो जाने की सम्भावना है।"

उसी दिन दोपहर को डिप्टी-कलक्टर ने जाब्ता फौजदारी की दफा दो सौ दो की कार्यवाही कर दी। यह वही डिप्टी-कलक्टर था जिसने देवा में बगिया के समीप मसजिद की नींव रखी थी। पिछली बार पथिक के साफ साफ बच जाने से वह चिढ़ा हुआ था। इस बार वह ऐसी कार्यवाही करना चाहता था कि पथिक बिना जमानत के न बच सके। दफा दो सौ दो में प्रारम्भिक जाच होती है। डिप्टी-कलक्टर ने मुल्ला की सहायता से पाच-दस मुसलमानों को बुला, खाली कागज पर, उनसे दस्तखत करवा लिये। उनको केवल यह बताया कि उनके मज़हबी हक़ूक की रक्षा के लिये यह किया जा रहा है।

फ़ौरन ही इस जाच के बाद पथिक और बेनी को ज़ाब्ता फौजदारी की दफा एक सौ सात में गिरफ्तार कर लिया गया। जब थानेदार उनके वारन्ट लेकर आया तो विजयबहादुर साथ था। बेनी को जब हिरासत में लिया जा रहा था तो विजयबहादुर ने बेनी की स्त्री के कान में कह दिया, "क्यों बे राड, अब देखूगा तू कहा जाती है?"

ज्योंही थानेदार और विजयबहादुर पथिक और बेनी को लेकर थाने की तरफ गये, बेनी की स्त्री ने अपनी झोंपड़ी को बंद कर देवा का रास्ता पकड़ा। वह वहा से पैदल ही चल पड़ी।

सायंकाल नवाब ज़ाहिदअली जब गाना सुनने पथिक की झोंपड़ी पर आये तो उसे वीरान पा चकित रह गये। लोगों से पूछने पर उन्हें मालूम हुआ कि पथिक और बेनी को थानेदार पकड़कर ले गया है। नवाब साहब ने अपने नौकर को थाने भेजकर खबर मंगवाई। उन्हें पता चला कि वे डिप्टी साहब के हुकम से पकड़े गये हैं और उन्हीं की अदालत मे चाराजोई हो सकती है। यद्यपि नवाब ज़ाहिदअली को पथिक से कोई विशेष लगन नहीं थी तो भी इसमें मसजिद के मुल्ला का हाथ समझ उसे छुकाने के लिये कुछ करने के विचार से उन्होंने कलक्टर की कचहरी में अपने एक

वकील को भेज दिया।

वकील को सब बात मालूम हो गई। उसने तमाम मिसल पढ़ी। इसके पश्चात् जमानत पर रिहाई का प्रार्थना-पत्र उपस्थित कर दिया। उस प्रार्थना-पत्र पर विचार करने के लिये एक सप्ताह की तारीख दे दी गई। यद्यपि वकील ने बहुत कहा कि दफा एक सौ सात का मुकदमा है, इसलिये जमानत तुरन्त हो जानी चाहिये परन्तु डिप्टी-कलक्टर ने कह दिया कि इससे पूर्व उसे अवकाश ही नहीं।

जिस दिन पथिक और बेनी पकड़े गये थे उसी शाम को विजयबहादुर अपने इस विपुल प्रयत्न का फल पाने के लिये बेनी की झोंपडी मे पहुँचा। उसका विचार उसे वहा से ले भागने का था। परन्तु पक्षी पिंजरे से निकल भागा था।

[६]

राजमाता को लाठी चलने का समाचार मिला और पश्चात् पथिक के घायल हो देवा छोड़ जाने की बात मालूम हुई। वह इन घटनाओं से सुरेश के अनिष्ट की ही सम्भावना कर सकती थी। परन्तु अब क्या होसकता था। चुनाव का युद्ध हो रहा था। वह कोई ऐसी बात सुनना अथवा करना नहीं चाहती थी कि जिससे सुरेश के चुनाव सम्बन्धी प्रयत्न में ढीलापन आजाय। उसे पथिक के साथ दुर्व्यवहार पर बहुत शोक हुआ, परन्तु इस विषय में इस समय वह कुछ करना नहीं चाहती थी। वह चुनाव के झमेले के समाप्त होने की प्रतीक्षा में थी।

चुनाव के दिन से दो दिन पहले की बात है। बेनी की स्त्री पाव से सिर तक धूल-मट्टी में लथपथ और बहुत थकी हुई राजमाता के सम्मुख आ खड़ी हुई। वह शिवपुर से पैदल भागती हुई ही देवा पहुँची थी और पहुंचते ही राजमाता के सम्मुख आ पहुंची।

राजमाता ने उसे ऐसी अस्त-व्यस्त अवस्था में देख पूछा, "कौन हो और क्या चाहती हो?"

"मै बेनी कहार की स्त्री हूँ।"

"यहां क्यों आई हो ?"

इस पर उसने शिवपुर में जो कुछ हुआ था वर्णन कर दिया और साथ ही विजयबहादुर का थानेदार के साथ होना और उसका उससे बदला लेने की धमकी देना भी बता दिया। अंत में उसने कहा, "अपनी जान बचाने के लिये मैं कल तीसरे पहर वहा से अकेली पैदल चल पडी थी, ताकि आपके चरणों का आश्रय पासकू।"

राजमाता यह एक नया झझट देख घबडा उठी। बेनी की स्त्री को कोट में दूसरी नौकरानियों के साथ रहने को कह वह सुरेश को मिलने बाहर बैठक में चली आई।

सुरेश भिन्न भिन्न पोलिंग-स्टेशनों पर अपने कारिन्दे भेजने का प्रबन्ध कर रहा था। मा का मुख क्रोध से लाल देख काप उठा। इतने क्रोध में उसने मा को पहले कभी नहीं देखा था। वह सब काम वहीं छोड़ मा के साथ भीतर चला आया।

"क्या बात है मा ?" सुरेश ने बहुत ही नम्रता से पूछा।

मा ने पूछा, "विजय कहा है ?"

"कल शिवपुर गया था। अभी लौटा नहीं है।"

"शिवपुर किस काम गया था ?"

"वहा बाबू नरेशबहादुर से पोलिंग के दिन के लिये कुछ खेमे मागने।"

"और खेमे मिल गये ?"

"ज़रूर मिल गये होंगे।"

"सुरेश, तुमने मा से झूठ बोलना कब से सीखा है ?"

"झूठ ? नहीं मां, झूठ नहीं। मुझे तो वह यही कहकर वहा गया था।"

"यह विजयबहादुर तुम्हारे पीछे अपशकुन होकर चिपटा है और तुम्हारी सफलता तो दूर रही तुम्हें कहीं का भी नहीं छोड़ेगा।"

"क्या हुआ मा ?"

इस पर राजमाता ने शिवपुर की घटना, जैसी उसने बेनी की स्त्री से

सुनी थी, सुना दी।

"परन्तु यह कैसे जानती हो कि विजयबहादुर ने ही उसे पकड़वाया है?"

"और शिवपुर वालों का क्या दिमाग खराब हो गया है कि पथिक और वेनी को कैद करा देंगे?"

"मगर मुझे कुछ पता नहीं," सुरेश ने कुछ लापरवाही दिखाते हुए कहा।

"तुम्हें चुनाव में सफल भी होना है या नहीं? अभी यह समाचार कि पथिक पकड़ा गया है इलाके भर में फैल जायगा और सब लोग यही संदेह करेंगे कि तुमने अफसरों से मिलकर पकड़वाया है। परिणाम यह होगा कि तुम्हारी पर्ची डालने कोई नहीं जायगा।"

"पर मा, अब क्या हो सकता है?"

"यदि कर सकते हो तो करो। उसको ज्यों-त्यों कर छुड़ा लाओ और अपने साथ मोटर में बैठाकर सब इलाके में घूम आओ।"

"सुरेश को युक्ति तो पसन्द आई, परन्तु अब इसे कार्यरूप में लाने के लिये समय नहीं था। आज शनिवार था। कचहरी दो बजे बन्द हो जायगी। उस समय बारह बज चुके थे और ज़िला देवा से तीस मील के फासले पर है। अगले दिन रविवार था। सुरेश ने पोलिस-स्टेशनों पर कारिन्दे भेजने का प्रबन्ध मोहन के हाथ में दे मोटर ली और सदर (जिला शहर) की तरफ चल पड़ा। जब वह वहां पहुँचा तो डिप्टी-कलक्टर और कलक्टर दोनों दौरे पर शिवपुर गये हुए थे। शिवपुर को सीधा रास्ता नहीं था। रास्ता देवा होकर जाता था। अतएव सुरेश वापिस देवा पहुँचा और सायंकाल पांच बजे शिवपुर पहुँच गया। वहां जा उसे पता चला कि पथिक तो जिला जेल में है और कलक्टर और डिप्टी-कलक्टर मुर्गाबियों का शिकार खेलने वहां से चालीस मील पर एक बड़े सरोवर पर चले गये हैं।

सुरेश ने अभी भी आशा नहीं छोड़ी। पथिक को साथ लेने का यह अन्तिम यत्न था। वह सरोवर पर कलक्टर के खेमे में रात आठ बजे पहुँच गया। उसके वहां पहुँचते ही कलक्टर ने भीतर बुला लिया। पूछा, "सुरेश

बाबू, क्या बात है ?"

"हजूर, पथिक और बेनी दो आदमी कल शिवपुर में पकड़े गये हैं। मैं चाहता हूँ कि उन्हें जिस-किस भांति भी छोड़ने की आज्ञा मिल जाय।"

"वह बहुत खतरनाक आदमी है। तुम्हारा दोस्त विजय बाबू ही बताता था। वह कहता था कि अगर वह चुनाव के दिन बाहर रहा तो तुम्हारे बहुत से वोटरों को बहका देगा।"

विजयबहादुर का नाम सुन सुरेश हैरान रह गया। उसने पूछा, "हजूर, विजयबहादुर कब यहां आया था ?"

"परसों वह मुझे शिवपुर में मिला था। उसने बताया था कि पथिक क्रान्तिकारी है और तुम्हारे विरुद्ध काम कर रहा है। उसके खिलाफ कोई शिकायत नहीं थी। इस पर भी हिन्दू-मुसलमानों में बलवा कराने के इलजाम में उसे पकड़वा जिला जेल में भेज दिया है। यह मुकदमा कायम करने के लिये शिवपुर के मुसलमानों को झड़काना पड़ा है। उन्होंने गवाहियां दी हैं और अब यह सब कुछ हो जाने पर तुम उसे छुड़ाने चले आये हो।"

"उसके छूट जाने से मेरा बहुत काम बन सकता है।"

"मिस्टर सुरेश, मुझे बहुत अफसोस है कि इस समय कुछ नहीं हो सकता। मुकदमे की फाइल हमारे पास नहीं है। आज सुबह नवाब ज़ाहिदअली का वकील पथिक की जमानत के लिये बहुत यत्न करता रहा था। हमने उसे इन्कार कर दिया है और एक सप्ताह की तारीख डाल दी है। अगर अब उसे छोड़ दें तो भारी भद्द होगी।"

[७]

देवा में जिस दिन सभा पर लाठी चली थी उसी दिन से ही वहां और तमाम इलाके में, जहां से सुरेश खड़ा हुआ था, सर्वथा शान्ति थी। उस सभा के पश्चात् कोई सभा नहीं हुई, न ही कोई नेता फिर दौरा करने के लिये इस इलाके में आया। इस शान्ति को विजयबहादुर ने अपनी जीत समझी। इस समय सुरेश की ओर से कार्यकर्ता चुपके चुपके लोगों

के घरों में जाते थे और उनको सुरेश के नाम पर वोट देने के लिये कहते थे। लोग बिना बहस सुरेश के कार्यकर्ताओं का कहना मान जाते थे और कह देते थे, "हां, अपने राजा को छोड़ भला कैसे बाहर के आदमी को वोट दिया जा सकता है?"

मिस्टर अवधबिहारी माथुर का प्रचार भी हो रहा था। लोग कानों-कान कहते थे, "माथुर साहब को वोट देना। ऊपर से चाहे सुरेश का नाम लो, परन्तु वोट के समय माथुर बाबू का नाम ठीक रहेगा।"

इस प्रकार चुनाव का दिन आ पहुँचा। बीसियों वोट डालने के स्थान नियत किये गये थे। सब पर लोगों की भीड़ अथाह थी। सब से विचित्र बात यह थी कि उपस्थित लोगों के हाथ में एक-एक छपा हुआ पत्र था। उसमें लिखा था, "हिन्दू महासभा के टिकट पर खड़े होने वाले ने हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध प्रचारक श्री पथिक को जेल भिजवा दिया है। पहले उसे मारपीटकर देवा से बाहर किया, पश्चात् उसे झूठ-मूठ के लाछन लगवाकर पकड़वा दिया।"

ये पत्र कहा छपे थे, किसने बंटवाये थे, लोगों को कौन बाट रहा था, किसी को पता नहीं था। एक से दूसरा और दूसरे से तीसरा ले लेकर पढ़ रहा था। इस पत्र ने तमाम पोलिंग-स्टेशनों पर हलचल मचा दी। सुरेश के कार्यकर्ता घबड़ा उठे।

वोट डालने वालों के मुख गम्भीर हो उठे थे, परन्तु कोई कुछ भी मुख से नहीं कहता था। प्रायः लोग सुरेश के कैम्पों में एकत्रित थे। वहा मिठाई, पूरी, चबैना, तम्बाकू, सिगरेट, चरस और भाग बंट रही थी। वोटरों को घर से लाने के लिये सुरेश की लारियां चल रही थीं।

मिस्टर माथुर ने वोटरों के लिये कैम्प तो लगवाये थे, मगर इसके अतिरिक्त और कुछ भी खर्चा नहीं किया था। मिस्टर माथुर के इलैक्शन एजेन्ट तथा काग्रेस-कार्यकर्ता अपनी जेब से खर्चा कर चबेना खा, पानी पीकर काम कर रहे थे। बहुत कम वोटर इस तरफ आते थे।

वोटर मोटर और बसों में लदे आते थे और सुरेश के कैम्प में दाखिल

ो जाते थे। वहां उनको खाने को मिलता था। पश्चात् एक पर्ची पर उनका नाम और वोटर नम्बर लिखकर दे दिया जाता था, जिसे लेकर वे पोलिंग-बूथ में चले जाते। वहा पहले उनके नाम-नम्बर की परीक्षा होती, पश्चात् वे पोलिंग-अफसर के सम्मुख उपस्थित हो चुनाव के पर्चे पर निशान लगवा दूसरे मार्ग से बाहर आजाते थे। बाहर आने पर जब लोग उनसे पूछते कि किसको वोट दिया है तो वे निस्संकोच कह देते, 'राजा साहब को और किस को?'

यह नहीं कि माथुर साहब के कैम्प में कोई गया ही न हो। कोई कोई विरला व्यक्ति उस कैम्प से भी वोट देने जाता देखा गया। जब ऐसा कोई देखा जाता तो सुरेश के कारिन्दे शोर मचा देते थे, "क्यों अपनी पर्ची व्यर्थ खोने जा रहे हो? हिन्दू धर्म का ध्यान रखो। अपने राजा की इज्ज़त का ध्यान रखो" इत्यादि। वे लोग जो मिस्टर माथुर के कैम्प से निकलते वे प्रायः गम्भीर, दृढ़ निश्चय और अविचलित मन वाले होते थे। ये लोग जब पोलिंग-बूथ से बाहर निकलते तो उनसे पूछा जाता, "वोट किस को देया है?" वे माथे पर त्योरी चढ़ाकर उत्तर देते, "तुम्हारा प्रयोजन?" पूछने वाले चुप हो जाते।

सुरेश के कैम्पों से जितनी पर्चियां गयी थीं उनसे अनुमान लगाया गया था कि सुरेश को नब्बे प्रति शत वोट मिले हैं। सुरेश, विजयबहादुर और अन्य कार्यकर्ता खुशी से बल्लियों कूद रहे थे। कोट में बधाई देने वालों के आने-जाने की चहल-पहल थी।

राजमाता इन सब शुभ सूचनाओं से प्रसन्न नहीं थी। उनके मस्तिष्क में पथिक के जेल में बन्द होने से भारी उथल-पुथल मच रही थी। सुरेश जब मां को अपनी सफलता की सूचना देने आया तो माँ ने कहा, "बस! ये बच्चों की बातें छोड़ो। मान लो कि तुम चुनाव जीत जाओगे, परन्तु कितना खर्चा हुआ है, कितना झूठ, दगा और अन्याय करना पड़ा है।"

सुरेश इस मीमांसा को सुन चुप कर गया। खर्चे का अनुमान लगाया गया तो प्रतीत हुआ कि सत्तर हजार से ऊपर खर्च हो गया है।

राजमाता के आग्रह पर सुरेश ने वकील भेज पथिक और बेनी की जमानत पर रिहाई करवा ली। पथिक छूट तो गया पर देवा वापिस नहीं आया। जमानत के समय नवाब ज़ाहिदअली का वकील भी उपस्थित था। जब सुरेश के आग्रह करने पर भी पथिक ने देवा जाना स्वीकार नहीं किया तो नवाब साहब के वकील ने उसे नवाब साहब की ओर से निमन्त्रण देते हुए कहा, "आप हमारे यहा चलिये। वहां आपकी क़दर की जायगी।"

"मगर वहा के मुसलमान जो नहीं चाहते।"

"यह सब विजयबहादुर की चालाकी थी। उसने कुछ मुसलमानों को लालच देकर आपके विरुद्ध खड़ा कर दिया था।"

पथिक के लिये और कहीं ठिकाना नहीं था। बेनी और उसकी स्त्री का प्रबन्ध भी करना था। अतएव उसने कुछ दिन के लिये शिवपुर में रहना स्वीकार कर लिया।

[८]

शिवपुर में पथिक के लौट आने से नवाब ज़ाहिदअली को बहुत प्रसन्नता हुई। जब वह पथिक से मिलने उसकी झोंपड़ी में आये तो पथिक ने अपना निर्णय बताया कि वह कुछ दिन तक ही वहा रहेगा। इस पर उन्होंने कहा, "यह आपकी खुशी पर है। मैंने तो सिरफ इसलिये आपको यहां आने के लिये दावत दी थी, ताकि आपको विश्वास हो जाय कि आपके पकड़े जाने में मेरा हाथ नहीं था। कुछ मुसलमानों ने आपके विरुद्ध बयान दिये जरूर हैं, मगर यह सब मुसलमानों की बात नहीं है। ऐसे बहुत हैं जो आपके शिवपुर में रहने और भजन-कीर्तन पर कुछ भी एतराज नहीं करते।"

"शुकिया," पथिक ने केवल इतना ही कहा। वह स्वयं नहीं समझ सका था कि उसके निष्पक्ष रहने पर भी सुरेश और विजयबहादुर क्यों उसके पीछे पड़ गये थे। एक ओर तो वे उसे पिटवाते थे, दूसरी ओर उसे पुनः देवा चलने को कहते थे। शिवपुर में भी उसे विलक्षण समस्या से सामना पड़ा था। नवाब साहब और दूसरे मुसलमान उसका कीर्तन

सुनने आते थे और उसकी प्रशंसा करते थे और फिर कुछ ऐसे भी थे जो उसके कीर्तन को फसाद की जड़ बताकर उसे वहां से भगा देना भी चाहते थे। वह इस दुरंगी से तंग आगया था और इसका अर्थ समझना चाहता था।

राजमाता ने सुरेश को जब बिना पथिक के लौटा देखा तो स्वयं जाकर उसे देवा में लाने का विचार किया। अगले दिन वह शिवपुर गयी और पथिक को देवा वापिस चलने के लिये कहा। पथिक ने बहुत मान और सत्कार से उसे बैठाया और पश्चात् कहा,"मेरा देवा में क्या है? मैं वहां क्यों जाऊँ? इन प्रश्नों का उत्तर मेरे मन में नहीं है।"

राजमाता ने कहा,"मन्दिर में मूर्ति की स्थापना अभी शेष है। वह आपके बिना अति कठिन है।"

"जो कुछ मैं चाहता था नहीं हो सका। शायद इसमें भी भगवान का हाथ है। यदि भगवान को मंजूर होता तो बनी मूर्ति ही न टूटती। सुरेश राजा है। वह सैकड़ों मुझसे विद्वान पण्डितों को नौकर रख सकता है। मन्दिर आबाद करने के लिये मेरी आवश्यकता अनिवार्य नहीं।"

राजमाता ने बहुत समझाया, परन्तु पथिक चट्टान की भांति दृढ़ रहा और देवा जाने के लिये तैयार नहीं हुआ।

राजमाता जब देवा लौटी तो उसे एक युक्ति सूझी। उसने अगले दिन अपनी मोटर-गाड़ी में नलिनी और उसकी मा को पथिक को बुलाने के लिये भेज दिया।

पथिक नलिनी को देख अति प्रसन्न हुआ। उसके आनन्द का वारापार नहीं रहा। शिष्टाचार के पश्चात् मोहन की मा ने कहा,"आप देवा नहीं चलेंगे?"

"मेरा वहां कौन है?"

नलिनी ने बीच में ही बोलकर उत्तर दे दिया,"मैं।"

पथिक ने अपने उत्तर और नलिनी के प्रत्युत्तर पर विस्मय प्रकट करते हुए कहा,"तुम! नलिनी, तुम मेरी कौन हो?"

इस प्रश्न से नलिनी गम्भीर विचार में पड़ गयी। वह यह तो समझती थी कि उसका पथिक से विशेष सम्बन्ध है, मगर क्या सम्बन्ध है वह नहीं जानती थी। मन के भावों को वह शब्दों का रूप नहीं दे सकती थी। उसने शब्दों से जो कुछ अनुभव किया था वह ही बता दिया, "मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ।"

"ओह!" पथिक हंस पड़ा। "ठीक, याद आगया है। परन्तु जब मोहन पकड़ा गया था तो तुमने उसे छुड़ाने के लिये यत्न किया था न? क्या तुम मुझे अपमान और दुर्व्यवहार से बचाने के लिये भी उतनी ही उत्सुक हो?"

नलिनी की मा ने बात बीच में टोककर कहा, "बिटिया को इन बातों का पता नहीं है। विजयबहादुर ने अपना निजी क्रोध निकालने के लिये आपके साथ दुर्व्यवहार किया था। आपने बेनी की स्त्री को उसके चुँगुल से निकाला है। वह इस बात को भूल नहीं सका। ये बातें नलिनी बेचारी क्या जाने। इस समय तो देवा के सब लोग और राज-परिवार भी आपको वहाँ वापिस देखकर प्रसन्न होंगे। यह नलिनी और मोहन तो जन्म भर आपका अहसान नहीं भूल सकते।"

"परन्तु माता जी!" पथिक ने आखें नीची किये हुए कहा, "कल मैंने राजमाता से इन्कार कर दिया था। उस दिन सुरेश की बात भी नहीं मानी। साथ ही मेरे वहा जाने से मेरे साथ सहानुभूति और प्रेम करने वालों को भी कष्ट होता है।"

नलिनी की मा बार २ अनुरोध करती थी, परन्तु पथिक इन्कार करता जाता था। नलिनी ने जब समझा कि वह देवा वापिस जाने को तैयार नहीं होता तो उसने आंखों में आंसू भरकर कहा, "भूतनाथ दादा, तुम बड़े कठोर हो।"

"कैसे?"

"मा मिन्नत करती है और तुम मानते हो नहीं।"

"तुम्हारा मोहन भैया मां की सब बातें मान लेता है क्या?"

पथिक का कटाक्ष बहुत ही तीखा सिद्ध हुआ। नलिनी की माँ की आंखें आसुओं से डबडबा आईं। नलिनी ने कहा, "मोहन क्रूर है और तुम निर्दयी।"

नलिनी की मा ने यत्न से आँसुओं को रोकते हुए कहा, "बेटा, तुम ठीक कहते हो। अपनी कोख से उत्पन्न हुआ बेटा जब कहना नहीं मानता तो ऐसी अभागिन दूसरों से क्या आशा कर सकती है?"

इतना कह वह उठ खड़ी हुई। नलिनी का हाथ पकड़ लड़खड़ाते हुए पावों से मोटर की तरफ, जो कुटिया के बाहर खड़ी थी, चल पड़ी। पथिक को अपनी कठोरता का ज्ञान हो गया। वह बोल उठा, "मा! मा! ठहरो!" परन्तु नलिनी की मा चलती ही गई। पथिक भागकर नलिनी की मा के पास जा पहुचा। वह मोटर में सवार हो रही थी। उसने विनय से कहा, "मा, तनिक ठहरो।"

"क्यों?"

"मैं साथ चलूँगा।"

"तुम चलोगे?" नलिनी ने कूदते हुए पूछा।

"हा।"

नलिनी कूदकर पथिक के गले से लटक गई। पथिक ने उसे सिर पर प्यार देते हुए मोटर में बैठा दिया। पश्चात् बेनी को पुकारकर बुलाया और कहा, "बेनी, मै देवा जा रहा हूँ। तुम यह सब सामान लेकर चले आना।"

बेनी ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "गुरुदेव, देवा अब फिर?"

"हा, नलिनी की संगीत-शिक्षा अधूरी रह गई है।"

[६]

कांग्रेस को सन सैंतीस के चुनावों में आशातीत सफलता मिली। पश्चिमोत्तर सीमा प्राँत, संयुक्त प्राँत, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्राँत, मद्रास और बम्बई प्रान्त में कांग्रेस पार्टी के सफल सदस्यों का निश्चित बहुमत था।

देवा में तो कांग्रेस के सदस्य अवधबिहारी माथुर की सफलता

कर बहुत हानि उठा चुका हूँ।"

विजयबहादुर सुरेश की लाल लाल आखें देख चुप कर गया।

[१०]

पथिक देवा में पहुंच तो गया, परन्तु उसका मन अभी भी स्थिर नहीं हुआ था। कथा-कीर्तन पुनः आरम्भ हो गया था, परन्तु मन्दिर में मूर्ति-स्थापन का काम आरम्भ नहीं हो सका। नलिनी पहले की भांति संगीत सीखने आती थी और अब वह इस कला में बहुत प्रवीण भी हो चली थी। इस पर भी पथिक वहां पर ऐसे था जैसे उसका कुछ खो गया हो। वह घण्टो ही पद्मा के किनारे एकान्त में बैठा अपने भूत और भविष्य पर मनन करता रहता था। देवा के लोग, सुरेश और राजमाता, उससे मिलते रहते थे। हिन्दू समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं पर बातचीत होती थी और वह अपनी बातों को अकाट्य युक्तियों से उपस्थित किया करता था। इस पर भी कभी-कभी बातों के बीच में ही वह चुप कर जाता था, मानों वह मार्ग खोगया हो। उसे इस प्रकार विचारों में विलीन होते देख सब चकित हो उसका मुख देखने लगते थे।

एक दिन सुरेश के घर पर पथिक, राजमाता, सुरेश, मोहन और नलिनी उपस्थित थे। राजमाता सुरेश को विजयबहादुर की संगत से दूर रखने के लिये प्रायः इन लोगों को भोजन के समय आमंत्रित कर लिया करती थी। विजयबहादुर पथिक का नाम सुन वहां से भाग जाया करता था। उसे पथिक से घृणा थी।

राजमाता के किसी प्रश्न पर पथिक कह रहा था, "भारतवर्ष में हम पैंतीस करोड़ से ऊपर बसते हैं, परन्तु हम कितने निःसहाय हैं। इतनी भारी संख्या में होते हुए भी हम विदेशियों के पांव-तले रौंदे जा रहे हैं। हम हिन्दुस्तान जैसे हरे भरे देश में रहते हुए भी भूखों मरते हैं। दर्शन और उपनिषदों का ज्ञान रखते हुए भी कुत्तों की भांति परस्पर लड़ते हैं। गीता जैसी ज्ञान की पुस्तक रखते हुए भी भीरु बन कष्टों से भागते हैं। हम क्या थे और क्या हो रहे हैं। उफ़·····" पथिक आंखें मूद कुछ

सोचने लगा। सब चुप हो उसे बात समाप्त करने का अवसर दे रहे थे। परन्तु वह ऐसे चुप हुआ था मानो कुछ कहना चाहता है और उसे कहने को उसके पास शब्द नहीं।

एक और अवसर पर अवधबिहारी माथुर से बातचीत हो रही थी। वह लखनऊ से देवा में होनेवाले राजनीतिक सम्मेलन में सम्मिलित होने आया था। वह इस इलाके से धारा-सभा में सदस्य बनकर गया था और उसका यहां आना स्वाभाविक ही था। सम्मेलन में पथिक का व्याख्यान विशेष रूप से रखा गया था। इस व्याख्यान में पथिक ने काग्रेस-नीति की निन्दा की। उसने कहा, "काग्रेस एक सुधारक संस्था हो तो हो, यह एक राजनीतिक संस्था नहीं हो सकती। शान्तिमय असहयोग और फिर शान्तिमय कानून-भंग आदोलनों में शान्ति शब्द के विशेष अर्थ किये गये हैं। उस अर्थ में आत्मोन्नति को विशेष रूप से लक्ष्य रखा गया है और भारत की भौतिक उन्नति को गौण कर दिया है। भारतवर्ष का यह रोग पुराना है। यहाँ आत्मोन्नति को सांसारिक उन्नति से केवल ऊँची पदवी ही नहीं दी जाती, प्रत्युत उसी को सब कुछ समझा जाता है। महात्मा बुद्ध से लेकर दादू और कबीर तक सब संसार को झूठा बताते आये हैं। यही बात काग्रेस ने राजनीतिक क्षेत्र में लाकर उन महात्माओं का अनुसरण किया है। इन महात्माओं के कारण कितने भारतवासी मोक्ष-सिद्धि प्राप्त कर सके हैं मैं नहीं कह सकता। हां, यह कि सासारिक उन्नति को निकृष्ट और तुच्छ मानने से भारतवर्ष लगभग एक सहस्त्र वर्ष से दासता की बेड़ियों में पडा है, सर्वथा स्पष्ट है। काग्रेस अपने अहिसात्मक आन्दोलन से और अहिसा की विशेष व्याख्या से कितनी आत्माओं को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कर सकी है और कर सकेगी कहना कठिन है। हाँ, इतना तो देखने वालों को प्रतीत ही हो रहा है कि भारतवर्ष की राजनीतिक परिस्थिति इस शान्तिमय आन्दोलन से अधिक और अधिक जटिल हो रही है।"

इसी लय में काग्रेस के मच पर से काग्रेस की निन्दा सुन लोग चकित

थे। प्रधान था सुरेश और मिस्टर माथुर थे प्रतिष्ठित उपस्थित जनों में।

सायंकाल, जब सब लोग चले गये और सुरेश के घर में केवल इनेगिने बड़े बड़े लोग रह गये तो उसने व्याख्यान के विषय पर चर्चा आरम्भ कर दी। वह कहने लगा, "गुरुदेव, आपने आज कांग्रेस की नीति का विरोध किया है, परन्तु चुनाव के दिनों में आपने हिन्दू महासभा वालों का सहायता नहीं दी थी। ये परस्पर विरोधी बातें क्यों?"

"हिन्दू महासभा के विषय में मैं आपको समझा चुका हूँ कि वह राजनीतिक संस्था नहीं है। उसमें सम्मिलित होने के लिये किसी भी राजनीतिक विषय पर कोई विशेष मत रखना आवश्यक नहीं। पूँजीपति और साम्यवादी, प्रजातंत्रवादी और एकाकी राज्य सत्ता को मानने वाले, विदेशी सरकार के भक्त और विदेशी सरकार से विद्रोह करने वाले, सब इस सभा में सम्मिलित हो सकते हैं। ऐसी सभा जिसका किसी भी राजनीतिक सिद्धान्त पर एक मत नहीं वह कैसे राजनीतिक सभा हो सकती है? किसी राजनीतिक कार्य का सम्पादन करने के लिये कैसे ऐसी सभा प्रयत्न कर सकती है और प्रयत्न कर सफलता प्राप्त कर सकती है?

"अब कांग्रेस की बात सुन लीजिये। यह संस्था इस रूप में तो राजनीतिक संस्था कही जा सकती है, परन्तु इसकी राजनीति एक ऐसे सिद्धान्त की पुट से प्रस्तुत की गई है कि जिसकी सत्यता में न तो कोई प्रमाण है और न सफलता में आशा। मैं तो कांग्रेस के अहिंसात्मक सिद्धान्त को देश की परिस्थिति में हानिकर समझता हूँ।"

मिस्टर माथुर, जो इस देहाती ब्राह्मण की युक्तियां बहुत ध्यान से सुन रहे थे, पूछने लगे, "हानिकर कैसे है?"

पथिक ने मिस्टर माथुर की ओर घूमकर कहा, "विशुद्ध अहिंसा अन्यायी को अन्याय करने पर उत्साहित करती है। जब अन्यायी यह जान जाता है कि प्रतिपक्षी उसके अन्याय को चुपचाप सहन करने को तैयार है तो उसको अन्याय करने में भय नहीं रह जाता। एक-आध व्यक्ति तो ऐसा कर सकता है कि वह अन्याय को शान्तिपूर्वक सहन करे। ऐसे

एक-आध व्यक्ति पर अन्याय करने वाला डर जाता है, यदि वह जान ले कि उस व्यक्ति के सम्बन्धी अथवा सजातीय अहिंसा का व्रत नहीं लिये हुए हैं। वह उनकी हिंसा से डरकर अपना अन्याय अथवा अत्याचार रोक देता है। परन्तु जब सब कोई, पूरी की पूरी जाति अथवा देश, अहिंसा का व्रत ले ले तो आततायी को खुली छुट्टी मिल जाती है। उसे किसी का डर नहीं रह जाता।"

मिस्टर माथुर एक धुरंधर वकील थे। वह केवल एक सिद्धांत के प्रतिपादन से मान जाने वाले नहीं थे। सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिये प्रमाण आवश्यक समझते थे। उन्होंने पूछा, "इस सोलह-सत्रह साल के अहिंसात्मक आन्दोलन ने देश की परिस्थिति में कौन अवनति उत्पन्न की है?"

"भारतवर्ष पर अन्याय करने वाले प्रत्येक व्यक्ति अथवा जाति को अपने अन्यायपूर्ण आचरण में प्रोत्साहन मिला है। एक अहिंसावादी सदैव यह यत्न करता रहता है कि वह अपने विपक्षी को समझावे और सीधे मार्ग पर लावे। यदि वह न आवे तो उसके उलटे मार्ग पर चलने से जो दुःख और कष्ट उत्पन्न हो उसे शान्ति से सहन करे। मुसलमानों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मांग इसी नीति का सीधा परिणाम है। कांग्रेस नीति सन १६१५ से यही रही है कि मुसलमानों को अपनी मांगों का अन्याय-युक्त होना बतावे। वे जब नहीं मानते तो कांग्रेस स्वयं उन मांगों के अन्याय को सहन करने पर तैयार हो जाती है। इसका सीधा परिणाम यह होता है कि मुसलमान अपनी मांगों को न्याययुक्त समझने लगते हैं। जैसे एक गधे पर बोझा लादने वाला बोझे का परिमाण बोझे के तोल से नहीं निश्चय करता प्रत्युत गधे की सहनशक्ति से करता है, वैसे ही मुसलमानों की मांगों का परिमाण मांगों के न्याययुक्त अथवा अन्याययुक्त होने से नहीं लग रहा प्रत्युत कांग्रेसियों की सहनशक्ति से आंका जाता है।"

"मुसलमानों की मांगें तो ब्रिटिश सरकार के प्रोत्साहन से बढ़ रही हैं।"

"ब्रिटिश सरकार तो उनकी अयुक्तियुक्त मांगों को प्रोत्साहन देगी

ही। सरकार अपने घर से तो कुछ देती नहीं। इन्कार तो उन लोगों को करना चाहिये जिनके घर से वे अन्यायपूर्ण मांगे पूरी होती हैं।"

"क्या आप राज-कार्य में नीति का अवलम्बन उचित नहीं समझते? क्या आप मुसलमानों को साथ मिलाये रखने के लिये उनको कुछ नौकरियां इत्यादि अधिक देना बहुत ज्यादा समझते हैं?"

"नीति किसे कहते हैं?"

"नीति का अर्थ, बिना साधनों की ओर ध्यान दिये, ध्येय की प्राप्ति का यत्न करना है।"

"ठीक है। साधन चाहे कुछ भी हों, ध्येय की प्राप्ति तो मुख्य है। जहां लोग ध्येय की प्राप्ति भी भूल जायें वहां नीति कुनीति नहीं हो जायगी क्या?"

"इस समय ध्येय है ब्रिटिश सरकार के पंजे से भारतवर्ष को मुक्त करना। ऐसा करने के लिये यदि मुसलमानों से समझौता करने में उनकी कोई अनधिकार मांग स्वीकार कर ली जाय तो क्या हानि है?"

"मेरा विचार है कि आप ध्येय को नहीं समझते। ध्येय ब्रिटिश सरकार से मुक्त होना नहीं, प्रत्युत भारतवर्ष में भारतवासियों का राज्य स्थापित करना है। अंग्रेज़ी सरकार को हटाकर किसी अन्य जाति का अथवा अल्प संख्यक जाति का राज्य स्थापित करना ध्येय नहीं है। मुसलमान बहुत कम संख्या में होते हुए भी अधिक संख्या वाली जाति पर राज्य करते रहे हैं। क्या ब्रिटिश सरकार को हटाकर पुनः उनके हाथ राज्य की बागडोर देना ध्येय है?"

"क्या यह उचित नहीं कि पहले अंग्रेज़ी राज्य से स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली जाय, पीछे मुसलमानों से निपट लिया जाय?"

"आपके कहने में और इस कहने में कुछ भी अन्तर नहीं कि अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता पाने के लिये जापानियों की आधीनता स्वीकार कर ली जाय और पीछे जापानियों से निपट लिया जाय। यह कितनी दूषित नीति है। हमें तो स्वतंत्रता चाहिये, न कि मालिकों का अदल-बदल।"

"परन्तु जापानियों और मुसलमानों में भारी अन्तर है। जापानी विदेशी हैं, मुसलमान हमारे देश के रहने वाले हैं।"

"यह तो आप कहते हैं न, या यों कहिये कि यह बात हम लोग चाहते हैं। हम चाहते हैं कि मुसलमान और हिन्दू परस्पर एक देश में रहने वाले भाइयों की भाति रहें। दोनों मत वाले एक दूसरे के बराबर बराबर अधिकार रखें। एक मुसलमान और एक हिन्दू के अधिकारों में अन्तर न रहे। परन्तु मुसलमान तो अपने आपको ऐसा नहीं समझते। वे विशेष अधिकार मागते हैं। वे अल्प संख्या में होने पर भी अधिक संख्या वालों से अधिक अधिकार चाहते हैं। कोई ऐसा अधिकार जो किसी हिन्दू को प्राप्त हो किस मुसलमान को प्राप्त नहीं?"

"मान लीजिये कि मुसलमान कुछ विशेष अधिकार चाहते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ कैसे होगा कि वे हिन्दुस्तान में अपना राज्य स्थापित करना चाहते हैं?"

"विशेष अधिकार क्या भाड़ झोंकने के लिये मागे जाते हैं? वे चाहते हैं कि खास-खास पदवियों पर, खास-खास महकमों में मुसलमान अवश्य रखे जायं, चाहे वे योग्य हों चाहे न।"

इस पर सुरेश ने एक प्रश्न बीच में कर दिया। वह पूछने लगा, "क्या हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हमारे पराधीन होने का एक बड़ा कारण नहीं है?"

पथिक का स्पष्ट उत्तर था, "नहीं, हम पच्चीस करोड़ ब्रिटिश सरकार से वैमनस्य रखते हुए भी ब्रिटिश सरकार को हानि नहीं पहुँचा सकते। इसी प्रकार सात करोड़ मुसलमान भी हमसे झगड़ा कर हमारा कुछ नहीं बिगाड सकेंगे। यथार्थ में यदि इस समय हम पराधीन हैं और मुसलमान हमें हानि पहुचा सकते हैं तो वे केवल हमारे सुसंगठित न होने के कारण है। हमारा कार्य करने का ढंग ग़लत है। यह तो अच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान परस्पर मिलजुल कर रहें। परन्तु यदि वे हिन्दुओं से मिलकर नहीं रहना चाहते तो क्या किया जाय? स्वराज्य-प्राप्ति तो करनी ही होगी, चाहे मुसलमान इसमें सहयोग दें और चाहे न दें।"

"तो फिर मुसलमानों के साथ स्वराज्य-प्राप्ति पर कैसा बर्ताव होगा ?"

"स्वराज्य-प्राप्ति पर और स्वराज्य-प्राप्ति से पूर्व भी हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिये जिससे सब राजनीतिक अधिकार देश के सब लोगों के बराबर २ और साझे में हों। देश के लोग वे हैं जो देश में देशवासियों के बराबर अधिकार प्राप्त कर संतुष्ट हों। वे लोग जो देश के किसी भी व्यक्ति अथवा मत वाले को अपने से छोटा अथवा कम अधिकार वाला समझते हैं अथवा बनाना चाहते हैं वे देशवासियों के शत्रु समझे जाने चाहिये।"

"तो आपका अभिप्राय यह है कि मुसलमान यदि अपने लिये कुछ विशेष अधिकार मांगे तो वे विदेशी हैं तथा देश के शत्रु हैं।"

"निःसन्देह ! हिन्दू हो या मुसलमान, यदि वह देश के किसी भी व्यक्ति से बढ़कर अधिकार मांगता है तो वह देश का हितचिंतक कैसे हो सकता है ?"

"तो आप सात करोड़ मुसलमानों को अपना शत्रु समझते हैं ?"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता। मैं तो देशवासियों को मुसलमान और हिन्दू कोटियों में बांटना नहीं चाहता। मैं तो देशी और विदेशियों की कोटियां बनाना चाहता हूँ। देशी वे हैं जो इस देश की उन्नति को प्रथम स्थान देते हैं, जो सब देशवासियों के बराबर होकर रहना चाहते हैं। विदेशी वे हैं जो देश से ऊंची कोई और बात मानते हैं। वे देशवासियों से बढ़कर अधिकार चाहते हैं।"

अब फिर मिस्टर माथुर ने बातों को घुमाव देकर पूछा, "बात तो यह है साहब कि जैसे आप हिन्दुओं को मुसलमानों के आधीन नहीं देखना चाहते, वैसे ही वे भी हिन्दुओं के आधीन नहीं रहना चाहते।"

"ठीक है, परन्तु इसके साथ यह भी हो कि जैसे हम हिन्दू मुसलमानों को अपने आधीन नहीं रखना चाहते, ऐसे ही वे भी हमें अपने आधीन रखना न चाहें।"

"इन सब बातों का परिणाम तो यह होगा कि हिन्दू-मुसलमान

लड़ते रहेंगे और अनन्तकाल तक हम स्वतंत्रता से वंचित रहेंगे।"

"एक बात आपकी सर्वथा ठीक है। वह यह कि यदि हिन्दू और मुसलमान विशेष अधिकारों की माग उपस्थित करते रहेंगे तो हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा रहेगा। परन्तु आपकी दूसरी बात ठीक नहीं। स्वतंत्रता-प्राप्ति का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। मुसलमानों के विरोधी होने पर भी भारतवासी स्वतंत्र हो सकेंगे।"

"भारतवासी से आपका क्या अभिप्राय है? क्या इसमें मुसलमान भी सम्मिलित हैं?"

"निःसन्देह! मैं तो इस समय भारतवर्ष में रहने वालों को दो कोटियों में बाटता हूं। भारतवासी और विदेशी। भारत में भारतवासियों का राज्य हो सकता है, चाहे विदेशियों की संख्या कितनी भी हो। भारतवासियों में हिन्दू-मतावलम्बी भी हो सकते हैं और मुसलमान मतवादी भी। इसी प्रकार विदेशियों में भी हिन्दू और मुसलमान दोनों हो सकते हैं।"

"विदेशी और स्वदेशी में भेदभाव कैसे होगा? क्या भारतवर्ष में रहने वालों को आप भारतवासी नहीं मानते?"

"केवलमात्र भारत में रहना भारतवासी माने जाने के लिये पर्याप्त नहीं। भारतीय समाज में रहकर, भारतीय समाज के हित के लिये यत्न करना भारतवासी माने जाने के लिये आवश्यक है।"

यों तो किसी बात के लिये वाद-विवाद अनन्तकाल तक चल सकता है। हा, प्रत्येक बात का न्यूनाधिक प्रभाव सुनने वाले के और कहने वाले के मन पर हुए बिना नहीं रह सकता। मिस्टर माथुर के मन पर तो यह प्रभाव उत्पन्न हुआ कि हिन्दू-मुसलमानों की समस्या को वह सरल समझने लगे थे। उनके मन में यह बात स्पष्ट हो गई थी कि केवल समझौतों से यह समस्या हल नहीं होगी। समझौते में तो हठी का हठ पूरा करना पड़ता है। समझौते को पुष्ट करने के लिये और समझौते को न्याय तथा युक्ति-युक्त रखने के लिये शक्ति की आवश्यकता है। दूसरी ओर पथिक एक देहात में निष्क्रिय पड़े रहना जीवन को व्यर्थ खोना मानने लगा था।

देवा में एक वर्ष के ऊपर निवास से पथिक के स्वास्थ्य में बहुत सुधार हुआ था। ज्यों-ज्यों उसका स्वास्थ्य सुधरता जाता था त्यों-त्यों वह अपनी शक्ति का अनुमान पाता जाता था। साथ ही उसे देश की यथार्थ परिस्थिति का ज्ञान होता जाता था। अपने देश को विदेशियों के बन्धन में जकड़े हुए देख और उस बन्धन को अपने ही देशवासियों को, अनजाने अथवा जान-बूझकर, दृढ़ करते हुए देख वह बेचैन हो उठता था। वह मन में सोचता था कि क्या यह भी किसी को बताने की आवश्यकता है कि भारतवर्ष में भारतवासियों का राज्य होना चाहिये? क्या यह भी किसी को बताने की जरूरत है कि राज्य की रीढ़ की हड्डी फौज और पुलिस है? बिना फौज और पुलिस को अपने आधीन किये क्या कोई स्वराज्य प्राप्त किया हुआ मान सकता है? परन्तु यह भारतवर्ष है जहां नरम दल वाले सन १९२१ के विधान को स्वराज्य मानते थे। यह भारतवर्ष है जहां बिना फौजी-शक्ति उत्पन्न किये स्वराज्य के आन्दोलन चलाये जाते हैं। यह भारतवर्ष है जहां डेपुटेशन ले जाकर, तारों द्वारा प्रार्थनाएँ कर अथवा सभाओं में प्रस्ताव पास कर स्वराज्य-प्राप्ति के लिये यत्न किया जाता है। पथिक समझता था सत्य ही यह देश या तो मूर्खों से भरा है या धूर्तों से।

इन दिनों जब भी वह कथा, कीर्तन व भजन करने बैठता था, तो वह सोचा करता था कि समाज के रोग की वह ठीक चिकित्सा कर रहा है क्या? आज मिस्टर माथुर ने बातों में उससे कहा था, "आप बातें बहुत बनाते हैं परन्तु उनको कार्यरूप में कैसे लाया जाय, यह न तो आप बताते हैं और न स्वयं करके दिखाते हैं।"

इस बात ने उसके मन में भारी उथल-पुथल मचा दी थी। वह सोचने लगा था कि देवा के कूप-क्षेत्र में बैठकर वह देश को स्वतन्त्रता के पथ पर आरूढ़ करने में कुछ भी नहीं कर सकेगा।

[११]

"नलिनी बहिन, मैं देवा से बाहर जा रहा हूँ।" पथिक संगीत की शिक्षा के पश्चात् अपना निर्णय नलिनी से कह रहा था। नलिनी यह

समाचार सुन भौंचक्की हो उसका मुख देखने लगी। वह कितनी ही देर तक इसका आशय समझने का यत्न करती रही। वह समझी कि भूतनाथ का फिर लोगो से झगड़ा हो गया है। वह पूछने लगी, "अब किसने झगड़ा किया है?"

"झगड़ा किसी ने नहीं किया। मा भारी कष्ट में है और वह मुझे बुला रही है।"

पथिक नलिनी की मां को भी मां कहकर पुकारता था। इस कारण उसने तुरन्त कह दिया, "नहीं, मां अति प्रसन्न है। मैं अभी अभी उसके पास से ही आ रही हूँ।"

"तुम नहीं समझ सकती, नलिनी। तुम अभी बहुत छोटी हो। मां सत्य ही कष्ट में है। तुम्हारी मा नहीं। मेरा अभिप्राय भारतमाता से है।"

"परन्तु तुम तो कहते थे, कि भारतमाता सब जगह है। उसकी सेवा यहां से नहीं हो सकती क्या?"

"सेवा तो हो सकती है, परन्तु अब तो कष्ट-निवारण करने के लिये चिकित्सा करनी होगी। चिकित्सा यहा बैठे नहीं हो सकेगी।"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"तुम कैसे जा सकती हो? तुम्हारी मा है, भाई है। उनको तुम्हारे जाने से दुख होगा और फिर जाकर करोगी भी क्या?"

"मैं तो तुम्हारे साथ जाऊंगी। यहा कोई पढ़ाने वाला भी तो नहीं है। तुम तो कहते थे कि अब नाचना सिखाओगे।"

"अब कुछ दिन के लिये पढ़ाई बन्द करनी होगी।"

"कब जाओगे?"

"एक दो दिन में।"

"और कब आओगे?"

"नहीं बता सकता। यों तो बीच-बीच में एक-आध दिन के लिये आता रहूँगा, परन्तु पक्का यहां रहने का नहीं बता सकता।"

नलिनी चुप थी। उसके मन में एक विशेष प्रकार की हलचल मच

रही थी। वह इस हलचल का अर्थ नहीं समझ सकती थी, न ही इसे वर्णन कर सकती थी। उस दिन उसका चित्त अधिक बातचीत में नहीं लग सका। वह चुपचाप पथिक के सम्मुख हाथ पर ठुड्डी रखे बैठी रही।

पथिक के मन में एक विचार आया। वह उठा और भीतर से रंगों का डिब्बा और कागज़ उठा लाया। कागज़ को बोर्ड पर लगा नलिनी की तसवीर खींचने लगा। नलिनी कुछ सोच रही थी। उसके मन में भांति भांति के विचार उठते थे। वह उन्हें पथिक को बताना चाहती थी, परन्तु उसके पास उन विचारों को प्रकट करने के लिये शब्द न होने से चुप रह जाती थी और फिर गहरे विचारों में डूब जाती थी।

धीरे धीरे समय व्यतीत होने लगा। सूर्य पश्चिम की ओर चल पड़ा था। पथिक नलिनी का चित्र बनाने में लीन था। नलिनी अपने विचारों में लीन थी। दोनों सूर्य की पश्चिम-यात्रा का अनुभव नहीं कर रहे थे।

तसवीर अभी समाप्त नहीं हुई थी कि बेनी आया और कहने लगा, "गुरुदेव, कथा का समय हो गया।"

पथिक का स्वप्न भंग हुआ। उसने अधूरी तसवीर पर से दृष्टि उठाई और सायंकाल हुआ जान नलिनी से कहने लगा, "बहिन, देर हो गई है। अब तुम जाओ।"

नलिनी ने उठते हुए कहा, "भूतनाथ, क्या मा बहुत बीमार है?"

"हां, बहुत कष्ट में है।"

"तो मैं उसकी सेवा क्यों नहीं कर सकती?"

"तुम? हां, तुम भी कर सकती हो, परन्तु मेरे साथ जाकर नहीं। तुम यहीं रहकर मा के स्वस्थ और सबल होने के लिये प्रार्थना कर सकती हो।"

"प्रार्थना?"

"हाँ, तुम्हारे घर तो भगवान हैं न! प्रातः-सायं तुम उनके सम्मुख प्रार्थना किया करो।"

"क्या मांगा करूं?"

"हाथ जोडकर यह कहा करो 'भगवान, भारतमाता के कष्ट शीघ्र दूर करो। उसे बुद्धि दो, शक्ति दो और सुभीता दो कि वह पुनः पहले की भांति स्वतन्त्र और सबल हो सके'।"

"तो तुम ऐसा क्यों नहीं करते ? तुम भी हमारे घर आकर भगवान से प्रार्थना कर लिया करो।"

"उसी ने तो मुझे कहा है कि मैं यहां से बाहर जाकर मां के लिये यत्न करूं।"

"अच्छी बात है। मैं भी भगवान से कहूँगी कि मुझे भी तुम्हारे साथ जाने के लिये कहे।" इतना कह वह गम्भीर विचार में डूबी हुई घर की ओर चल पड़ी।

आज पथिक ने कथा के पश्चात घोषणा कर दी कि वह कुछ काल के लिये देवा से बाहर जा रहा है। उसने अपने वहा से जाने का प्रयोजन भी बताया। लोग प्रयोजन को कितना समझे और कितना नहीं समझे, कहना कठिन है। हां, उस सायंकाल देवा में पथिक के जाने की बात के अतिरिक्त और कुछ भी चर्चा नहीं थी।

पथिक के देवा से जाने का समाचार सुरेश और राजमाता को भी मिला। सायंकाल सुरेश अपने मित्रों के साथ शतरंज खेल रहा था। विजयबहादुर प्रसन्न-वदन बाहर से बैठक में आया। आते ही उसने कहा, "दादा, लो मिठाई खिलाओ।"

सुरेश चौकन्ना हो पूछने लगा, "क्या तुम्हारे घर लड़का हुआ है ?"

सब मित्रवर्ग खिलखिलाकर हंसने लगे। विजयबहादुर ने सफाई पेश करते हुए कहा, "शादी ही नहीं हुई, तो लड़का कैसे हो सकता है ?"

"क्या लड़का पैदा करने के लिये शादी आवश्यक है ?"

विजयबहादुर ने बात को पुनः ठीक मार्ग पर लाते हुए कहा, "दादा, छोड़ो इस बात को। एक बहुत बढ़िया समाचार लाया हूँ। मिठाई का प्रबन्ध करो तो बताऊं।"

"हां ! अच्छा तो बताओ मिठाई मिलेगी।"

विजयबहादुर ने प्रसन्नता से उबलते हुए कहा, "वह पगला पथिक देवा छोड़ जा रहा है।"

"जा रहा है?"

"हा, कहता है मैं अपना कार्य-क्षेत्र विस्तृत करूंगा। मैं देश भर में स्वदेश-प्रेम की प्रचण्ड अग्नि जला दूँगा। विदेशी राज्य-सत्ता को उस अग्नि में भस्म कर दूँगा, इत्यादि।"

"तो इसमें मिठाई खाने की कौन बात है?"

"वाह, अब बदल गये न। देवा से यह बला टली। क्या यह प्रसन्नता की बात नहीं? और खुशी में मिठाई नहीं खाते क्या?"

"तुम इसको खुशी की बात समझते हो, विजयबहादुर भैया। मैं एक बात आज तक नहीं समझ सका। वह यह कि तुम्हारा इस पथिक ने क्या बिगाड़ा है कि तुम सदैव उसके विरुद्ध रहते हो?"

विजयबहादुर आज बहुत प्रसन्न था। इस कारण अपने मन के भावों को छिपाकर नहीं रख सका। वह बोल उठा, "तो तुम मेरी नाराज़गी का कारण नहीं जानते क्या? देखो दादा, बात स्पष्ट है। उसने बेनी की स्त्री को मेरे ख़िलाफ कर दिया है। बेनी को उसे फिर घर रखने के लिये राज़ी कर दिया है। उसे इन बातों में हस्ताक्षेप करने की आवश्यकता नहीं थी। जब दूसरों के मामले में वह दख़ल देता है तो दूसरों को भी उसकी बातों में दख़ल देने का अधिकार है।"

सुरेश के सब मित्र विजयबहादुर के कथन पर उसकी वाह वाह करने लगे। केवल मोहन इस वाह वाह में सम्मिलित नहीं हुआ। सुरेश को तो विजयबहादुर की बात बहुत घृणित प्रतीत हुई। उसने मस्तक पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "मुझे नहीं मालूम था कि तुम मन में इतना विष रखते हो। क्या बेनी की स्त्री से तुम्हारा इतना लगाव है कि तुम उसे भूल नहीं सकते? तुम तो कहा करते थे कि स्त्रियां तो खिलौना हैं। एक टूट गया तो दूसरा मोल लिया जा सकता है।"

"मैं अब भी यही मानता हूँ। मेरी आपत्ति तो इस बात पर है कि

पथिक को मेरा खिलौना छीन लेने का अधिकार नहीं है।"

"पर वह तुम्हारा था, यह कैसे सिद्ध होगया?"

"मेरे पास था, इस कारण मेरा था।"

"तो अब दूसरे के पास है, इस कारण दूसरे का है।"

"मैं उसे दूसरे से छीन लेता यदि पगला बीच में न पड़ जाता।"

"वह बीच में क्यों न पड़ता? उसे बेनी की स्त्री पर तुम्हारा कोई अधिकार प्रतीत नहीं होता। तुम्हारा उसे अपने अधिकार में रखना अन्याय प्रतीत होता है, और उसने अन्याय को रोका है।"

सुरेश और विजयबहादुर में कभी इतनी लम्बी तकरार नहीं हुई थी। सुरेश प्रायः विजयबहादुर से सहमत न होता हुआ भी उसके अनुकूल हो जाया करता था। धारा-सभा के चुनाव की घटनाओं से और पथिक की संगत में अधिक आने से उसे विजयबहादुर की युक्तियां साररहित प्रतीत होने लगी थी। वह पथिक को अति विद्वान और बुद्धिमान समझने लगा था। उसकी बहादुरी और न्याय-परायणता का वह पहले ही भक्त हो चुका था। ऐसी अवस्था में वह विजयबहादुर की बातों को सहन नहीं कर सका। विजयबहादुर को सुरेश की इस नवीन मानोवृत्ति से क्रोध आगया। उसने पूछा, "तो दादा, तुम भी ऐसा ही समझते हो?"

"क्या ऐसा समझता हूँ?"

"कि पथिक ने बेनी की स्त्री के मामले में ठीक किया है?"

"हां बिलकुल ठीक किया है। पथिक के पास कोई पुलिस या फौज तो है नहीं जो जबरदस्ती अपनी बात मना ले। उसने बेनी और उसकी स्त्री को समझाया कि वे पति-पत्नी हैं। उनका विवाह हो चुका है और उन्हें परस्पर प्रेम से रहना चाहिये। वे मान गये। बेनी ने अपना पांच सौ रुपया छोड़ दिया और उसकी स्त्री ने उसके पास रहना स्वीकार कर लिया। यदि वे दोनों अपनी इच्छा से ऐसा न करते तो पथिक उनको कैसे बाध्य कर सकता था? उसने तो केवल समझा दिया था। इसमें कुछ भी अनुचित नहीं।"

"दादा, अनुचित बात यह है कि जब मैं अपने बल से बेनी से प्रबल हूँ और बेनी की स्त्री को उठाकर ला सकता हूं तो पथिक इसमें क्यों दखल देता है ? यदि बेनी अपनी स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता तो उसका अधिकार उस पर कैसे हो सकता है ?"

"किसी बात में न्याय अथवा अन्याय बल से सिद्ध नहीं होता। यदि बलवान होने से अधिकार की तुम्हारी युक्ति मान भी ली जाय तब भी तो तुम झूठे हो। बेनी अपने मित्रों सहित तुमसे अधिक बलवान सिद्ध हुआ है।"

विजयबहादुर ने व्यंग से कह दिया, "हाँ, तुम्हारे जैसे दग़ाबाज़ मित्रों को रखने से मैं दुर्बल हूँ।"

विजयबहादुर के ये मूर्खतापूर्ण वाक्य सुन सब लोग सन्न रह गये। यद्यपि बहुत से मित्र विजयबहादुर के पक्ष में थे, तो भी सुरेश को दग़ाबाज कहे जाने पर प्रसन्न नहीं हुए। सुरेश को इस कथन से अत्यन्त दुःख हुआ। उसे इससे भारी सदमा पहुँचा। उसने विजयबहादुर के मनोरंजन पर हजारों रुपये व्यय कर दिये थे। उसकी मूर्खता के कारण वह धारा-सभा के चुनाव में बहुत बुरी तरह परास्त हुआ था। इस पर भी उसने कभी शिकायत नहीं की थी। अपनी माता से वह विजयबहादुर का पक्ष लेकर झगड़ा किया करता था। इस पर भी वह दगाबाज़ कहा गया।

उसे अब क्रोध नहीं था। क्रोध तो तब तक ही किया जाता है जब तक क्रोध करने से प्रयोजन-सिद्धि की आशा हो। परन्तु जब कुछ प्रयोजन ही न रहे तो क्रोध के लिये मन में स्थान नहीं रह जाता। मन में पश्चाताप आ विराजमान होता है। सुरेश ने आखें नीची किये हुए कहा, "भैया, तो तुम अपने वफादार मित्रों के पास जाओ। दग़ाबाजों के पास आने की आवश्यकता नहीं है।"

सुरेश के कुछ मित्रों ने बीच में पड़कर सुलह करवाने का यत्न किया, परन्तु विजयबहादुर हवाई घोड़े पर सवार था। वह उठकर वहां से चला ही गया। सुरेश शतरंज पर से उठ खड़ा हुआ और बैठक से घर के भीतर चला गया।

कोई समय था कि मोहन और विजयबहादुर में बहुत मित्रता मानी जाती थी। इस कारण मित्र-मंडली ने मोहन को विजयबहादुर को समझाने के लिये भेजना चाहा। परन्तु मोहन ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। उसने कहा, "मैं उससे कुछ नहीं कहना चाहता। वह प्रकृति से उजड्ड और दुष्ट है। मेरी उससे सहानुभूति नहीं और मैं पथिक के अहसान से दबा हुआ हूँ।"

मोहन के आग लगाते हुए पकड़े जाने पर पथिक ने उसे छुड़ाया था। यह बात सब को स्मरण थी। सब चुप रह गये।

[१२]

राजमाता सुरेश में परिवर्तन देख रही थी। वह समझती थी कि इस परिवर्तन में पथिक का भारी हाथ है। इसी कारण वह पथिक को देवा से चले जाने से रोकना चाहती थी। उसने जब सुना कि पथिक जा रहा है तो उसे बुला भेजा।

"तुम देवा छोड रहे हो, बेटा?"

"छोड़ तो नहीं रहा, मा जी। केवल क्षेत्र को विस्तृत करना चाहता हूँ, इससे प्रायः बाहर रहना होगा। आशा करता हूँ कभी कभी यहां रहने का अवसर मिल जाया करेगा।"

"बेटा, इतना झगड़ा मोल लेने की क्या आवश्यकता है? यहा सुख से जीवन व्यतीत हो रहा है। खाने, पहरने और रहने का तुमको कुछ भी कष्ट नहीं है। यहा सब लोग तुम्हारा मान करते हैं और तुम्हारी बातों को मानते हैं। क्या तुम्हें इतने में संतोष नहीं?"

"मां जी, यह झगड़ा अपने लिये नहीं कर रहा। अपने पैंतीस करोड़ भाइयों के सुख, शाति और मानयुक्त जीवन के लिये कर रहा हूँ। इस देश में औसत आय एक आना रोज़ है। यहां के लोगों की औसत आयु पच्चीस वर्ष है। यहा पढ़े-लिखे एक या दो प्रति शत हैं। यहां लोगों में चरित्र नहीं, ज्ञान नहीं, मान-अपमान को अनुभव करने की समझ नहीं है। यहा लोग हिंसक जन्तुओं की भाति लड़ते-झगड़ते हैं। अभिप्राय यह

कि संसार का कोई भी दुर्गुण नहीं जो भारतवासियों में उपस्थित नहीं।

"इनको दूर कर भारतवासियों को उन्नति के शिखर पर ले जाने के लिये मैं अपनी शक्ति लगा देना चाहता हूँ।"

"परन्तु महात्मा, इस झगड़े से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम्हें संसार के पतित जीवों के झगड़े में पड़कर अपना मुँह काला करना पड़ेगा। वे जैसा करते हैं वैसा भोग रहे हैं और भोगेंगे। तुम अपनी उन्नति और मुक्ति-प्राप्ति में बाधा क्यों डाल रहे हो? देखिये, भगवान की मूर्ति अथवा जिस इष्ट-देव की मूर्ति आपके मन भावे, इस मन्दिर में स्थापित करिये। जितना भी जीवन शेष है भगवत् भजन में लगा दीजिये। इससे आपका भला होगा और हमारी आत्माओं को भी शांति मिलेगी। अपनी आत्मा का हनन कर दूसरों के लिये यह करना कुछ ठीक नहीं जचता और फिर इसमें सफलता की कुछ विशेष आशा भी नहीं।"

"आप अपने विचार से ठीक कहती हैं। आप हिन्दू हैं और आपके विचार तुलसी, कबीर, दादू इत्यादि भक्तों की शिक्षा से बने हैं। आपकी तमाम युक्तियों को तो कबीर के एक दोहे में कहा जा सकता है:—

कबीरा तेरी झोंपड़ी गल कटयों के पास।
जो करन गे सो भरन गे तुम क्यों भये उदास॥

"परन्तु मेरे विचार उन भक्तों के से नहीं हैं। मैं उनको उलटे मार्ग की शिक्षा देने वाला समझता हूँ। उन भक्तों की उलटी शिक्षा का ही परिणाम है कि भारतवर्ष लगभग एक सहस्र वर्ष से दासता की बेड़ियों में बंधा है। भक्त लोग व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग अंकित कर गये हैं। मैं समझता हूँ कि समाज की सामूहिक उन्नति ही वास्तविक उन्नति है। व्यक्तिगत उन्नति मृग-तृष्णा है। यह उन्नति का भासमात्र है, उन्नति नहीं। मनुष्य को जिस वातावरण में रहना है, उसका सुधार किये बिना वह स्वस्थ और सुखी नहीं रह सकता। जहां झूठ, ठगी, चोरी, दुराचार, मूर्खता और अज्ञानता भरी पड़ी है, वहाँ रहता हुआ क्या कोई कभी आत्मोन्नति कर सकता है?"

"यदि तुम्हारी बात ठीक भी मान ली जाय, तब भी यह तो स्पष्ट ही है कि तुम इस जीवन में तो भारतवर्ष का सुधार करने से रहे, और अगले जन्म में तुम भारतवर्ष में जन्म लोगे अथवा किसी अन्य देश में, कौन बता सकता है? ऐसी अवस्था में पूर्ण देश के लोगों को उन्नत करने से क्या लाभ होगा? तुम अपने निकट रहने वालों का सुधार करो। यह तुम अपने जीवन भर में कर लोगे। इससे तुम्हारा भी कल्याण होगा और हमारा भी।"

"परन्तु देश के लोगों के पतन का कारण भी तो देश की पराधीनता है। बिना देश को स्वाधीन किये देश भर के अथवा देश के किसी भाग के भी लोग सुधर नहीं सकेंगे।"

"राज्य-सत्ता से लोगों के सुधार अथवा बिगाड़ का क्या सम्बन्ध है?"

"भारी सम्बन्ध है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत सर्वथा सत्य है। अपने देश में अंग्रेज कैसे हैं, उनसे हमें कुछ भी वास्ता नहीं। हमारे देश में वे कैसा आचार-व्यवहार रखते हैं उसके प्रभाव से हम बच नहीं सकते। ये भारतवर्ष में इस कारण नहीं आये हुए कि हम लोगों पर दया कर हमारी भलाई करेंगे। इनके यहां आने में केवल एक कारण है और वह कारण है स्वार्थ। प्रत्येक अंग्रेज जातीय-स्वार्थ से ओतप्रोत होकर ही भारत में आता है, रहता है और विचरता है। इसका आभास हम लोगों पर भी हो जाता है और हम लोग भी दिन प्रति दिन स्वार्थ में लिप्त होते जाते हैं। शासक लोगों को सदैव यह शंका बनी रहती है कि वे यहां से निकाल दिये जायेंगे। इसलिये वे कुनीति से, प्रलोभनों से और विकृत मनोवृत्ति उत्पन्न कर देश के लोगों को पतित करते रहते हैं। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवनति जो हमारी पिछले एक सौ वर्ष में हुई है वह किसी भी जाति की इतने कम काल में नहीं हुई। सात सौ वर्षों के मुसलमानों के शासन ने भी यहां के लोगों में इतना पतन पैदा नहीं किया था, जितना अंग्रेजों के एक सौ वर्ष के राज्य ने किया है। स्वार्थ, दगा, झूठ, फरेब, कामुकता, रिश्वत, देश और जाति से द्रोह ये सब बुरी बातें

हम में अभी अभी आई हैं, और इनके आने का कारण यह है कि हम पर शासन करने वाले, अपने शासन को स्थिर रखने के लिये, नित्य यही करते रहते हैं। इन्होंने झूठ और फरेब को नीति का नाम दे रखा है। पूँजिपतियों के शासन को प्रजातन्त्र का नाम दे रखा है। काले लोगों को नीच कामों के लिये सीमित कर अपनी कार्यपटुता को सिद्ध किया है। अभिप्राय यह कि संसार भर के सब उलटे उपायों को प्रयोग कर हम लोगों पर शासन जमाये हुए हैं। शासकों की इस पतित करने वाली नीति का ही प्रभाव है कि हम भी अपने से छोटों को ऐसे ही अपने आधीन रखने का यत्न करते हैं जैसे वे हमें आधीन रखने का करते हैं।"

"मैं तो स्त्री हूँ और तुम जितना पढ़ी भी नहीं। इस पर भी यह तो मैं समझ ही सकती हूँ कि यदि हम सत्य, धर्म और न्याय का अवलम्बन करना चाहें तो हमें कोई रोक नहीं सकता। कोई ज़माना था जब मुसलमान जबरदस्ती हिन्दुओं को मुसलमान बनाते थे और उनका कहना न मानने वालों को मार डालते थे। अब तो वैसी बात नहीं है।"

"इन कामों की स्वतन्त्रता तो हमें है, परन्तु हम में यह शक्ति और भावना भी नहीं रहने दी गई, जिससे हम अच्छे काम कर सकें अथवा करने की इच्छा करें। यह कैसे किया जाता है एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा :—

"विलायत से एक गोरा साधारण सी शिक्षा प्राप्त कर यहां आजाता है और उसे उच्च पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। उसमें न तो काम करने की बुद्धि होती है और न ही योग्यता। इस पर भी वह भारी वेतन लेता है। काम तो छोटे छोटे वेतन लेने वाले हिन्दुस्तानी चलाते हैं। अब हम भी इसी बात का अनुकरण करते हैं। हम भी जहां हमारा बस चलता है अपने सम्बंधियों अथवा मित्रों को, बिना उनकी योग्यता का अनुमान लगाये, अच्छे वेतन पर लगाने का यत्न करते हैं। इसे सिफारिश से काम प्राप्त करना कहते हैं। यह धोखाधड़ी सरकार से आरम्भ हुई है। सरकार ने गोरों के साथ रियायत की। बिना उनकी योग्यता देखे उन्हें

ऊँचे पद पर नियुक्त किया। हम भी ऐसा ही करते हैं। परिणाम यह है कि सरकार के प्रत्येक महकमे में चपरासी से लेकर सरकार के सेक्रेटरी तक नियुक्ति और उन्नति सिफारिश के आधार पर होगई है। सरकारी दफ्तर सिफारिशी टट्टुओं की मंडी होगई है। सिफारिश खुशामद करने से मिलती है न कि भगवत् भजन अथवा सत्य, न्याय और धर्मयुक्त आचरण रखने से। परिणाम यह है कि बड़े बड़े ओहदों पर पहुंचने के लिये योग्यता, महनत, सत्य और धर्म-परायणता नहीं चाहिये, प्रत्युत खुशामद और सिफारिश।

"और भी अनेकों ढंग हैं जिनसे विदेशी सरकार भारतवर्ष के लोगों के पतन का कारण बन रही है। वाइसराय और गवर्नर राजों-महाराजों से नज़राने लेते हैं। अफ़सर ठेकेदारों और दूकानदारों से कमीशन लेते हैं। बाबू, चपरासी और आधीन क्लर्कों से निजी काम लेते हैं। चपरासी अफ़सरों से मिलने आने वालों से बखशीश पाते हैं। ग्राहक दुकानदार से झगा मागते हैं और दुकानदार कम तोलते हैं। यह एक ऐसा पापमय दौर चल गया है कि इससे कोई भी बचा हुआ प्रतीत नहीं होता। इस दौर का आरम्भ हुआ है सरकार के बड़े से बड़े अफसरों से और पहुँचा है छोटे से छोटे कर्मचारी और स्वतंत्र पेशे वालों तक। हिन्दुस्तान में अपनी उचित आय से ऊपर की आय (रिश्वत) अर्थात् घूस खाने वालों की भरमार है। पतन इस हद तक हो गया है कि कोई भी काम रिश्वत के बिना नहीं हो सकता और रिश्वत से कोई भी काम हो सकता है।

"आप पूजा-पाठ, दान-धर्म की बात कहती हैं न। यह भी इसी प्रकार छूटा है जैसे चरित्र और नेक काम। बात यह है कि राज्य में मान, प्रतिष्ठा, उन्नति उनकी होती है जो सरकार को लाभ पहुँचायें न कि जो सत्य और न्याय का आचरण रखें। शासक सप्ताह में एक घण्टे के लिये गिरजाघर जाते हैं और वह भी पूजा-पाठ अथवा आत्मोन्नति के लिये नहीं, प्रत्युत केवल मित्र, सम्बन्धियों तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं को एक नये आवरण और वातावरण में देखने के लिये। यही बात हम में भी घुसी आ रही

है। जब शासक बिना दया, धर्म और चरित्र के शासक हैं तो शासित को भी इनकी आवश्यकता नहीं है।"

यथार्थ में राजमाता इन बातों को पहले ही समझती थी। यह सब तो पथिक को देवा छोड़ने से विचलित करने के लिये था। उसका यह सब प्रयास सुरेश को पथिक के प्रभावाधीन रखने के लिये था।

सुरेश भी पास बैठा यह वार्तालाप सुन रहा था। वह पथिक के सरकारी अफसरों और मुलाजिमों के चरित्र-चित्रण से चकित था। वह इसे अपने अनुभव से सत्य समझता था। अभी तक तो वह रिश्वत की प्रथा को अच्छा समझता था। उसके पास रुपया था। इस कारण वह रुपये के बल से जो काम चाहे करवा सकता था। परन्तु आज उसे ज्ञात हुआ कि यह प्रथा कितनी घृणित और हानिकर है।

पथिक ने अपनी बात को समाप्त करने से पूर्व कहा, "माता जी, देवा भी उसी राज्य के आधीन है जो भारतवर्ष में दूसरे स्थानों पर है। देवा में सुधार, हिन्दुस्तान के पराधीन और पतित रहते हुए, असम्भव है। जो विष अन्य स्थानों पर फैल रहा है, वही विष देवा में भी विराजमान है। अन्यथा यह मसजिद और नमाज़ का झगड़ा यहां उपस्थित ही न होता।"

[१३]

पथिक का राजमाता और सुरेश से विदा लेना तो केवल मस्तिष्क का काम था। राजमाता युक्ति से उसे रोकने का यत्न करती थी, परन्तु उसकी युक्ति निर्बल सिद्ध हुई। वह पथिक को रोक नहीं सकी। इसके विपरीत वह स्वयं पथिक की योजना में सहायक बन गयी। परन्तु नलिनी से विदा लेनी इतनी सुगम नहीं थी। वहां युक्तियों की आवश्यकता नहीं थी। युक्तियां कुंद थीं। एक वर्ष से ऊपर के मेल-मिलाप ने हृदय को बांध लिया था।

उस दिन जब नलिनी अपना नित्य का पाठ लेने आयी तो एक छोटा सा बिस्तर और सूटकेस बंधा देख निस्तब्ध वहीं की वहीं खड़ी रह गयी। पथिक गांव में किसी कार्यवश गया हुआ था। बिस्तर के पास

करताल और तम्बूरा रखा था। नलिनी के मन में आया कि वह इस सब सामान को उठाकर नदी में फेंक दे, मानो यह सामान ही उसे परदेश लिये जा रहा है। उसने क्रोध में तम्बूरे को उठाया, परन्तु कुछ सोच पुनः उसे वहीं रख दिया। शायद वह यह सोच रही थी कि भूतनाथ नाराज़ हो गया तो ठीक न होगा। अभी तो वह कभी कभी आने को कहता है। क्या जाने अप्रसन्न हो वह बिलकुल ही न आवे। परन्तु पथिक को रोकने के लिये उसे और कोई उपाय भी तो नहीं सूझ पड़ता था। वह अपने रोष को प्रकट करना चाहती थी। अतएव उसने अब के दृढ़ निश्चय कर तम्बूरे को उठाया और भूमि पर पटककर तोड़ देने का विचार कर लिया। उसने उसे अभी ऊपर उठाया ही था कि पथिक वहां आ पहुँचा। वह नलिनी को देख बोला, "तो तुम आगयी हो? बहुत अच्छा किया है।"

नलिनी झेंप गयी। उसने तम्बूरा फिर भूमि पर रख दिया और चुपचाप पथिक की ओर देखने लगी। पथिक एक खाट पर बैठ गया और उसने नलिनी को समीप बैठा लिया। नलिनी ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा, "तो तुम जा रहे हो?"

"हाँ, परन्तु सदा के लिये नहीं। फिर लौटकर आऊंगा।"

"कब आओगे?"

"यह नहीं बता सकता। एक मास में, दो मास में। सम्भव है एक-दो वर्ष में। यह भी हो सकता है कि मेरे आने तक तुम बड़ी हो जाओ, मुझे भूल जाओ और अपनी ससुराल चली जाओ, और तब यहां आने पर भी तुमको न मिल सकूँ।"

यह सुन नलिनी की आँखों में आँसू भर आये। पथिक ने, जो दूर पहाड़ की ऊंची ऊंची चोटियों की ओर देख रहा था, कहना जारी रखा, "जानती हो नलिनी, मैं क्यों जा रहा हूँ?"

"मां के दुःख मिटाने के लिये," नलिनी ने रोते हुए कहा। उसकी रोनी आवाज़ को सुन पथिक ने उसकी ओर देखा। उसकी आंखों से आसुओं की धारा-प्रवाह बहते देख वह घबराकर बोला, "अरे! यह क्या

करती हो ? तुम तो रो रही हो। मेरी पगली बहिन, संसार में जो आते हैं वे जाते भी हैं। आना-जाना तो बना ही है और फिर मैं तो लौट आऊंगा। देखो माँ के दुःख से कराहने की आवाज़ मेरे कानों में होरही है। यह आर्तनाद असह्य होरहा है। अब और नहीं सुना जाता। माँ को शान्त और प्रसन्न करना मेरा धर्म है। क्या तुम यह नहीं चाहती ?"

"मैं क्या जानूं, तुम्हारी मा कहा है और कैसी है ? मुझे तो उसके रोने का शब्द सुनाई नहीं देता। तुम कहते हो वह दुखी है। होगी। मेरा तो जी चाहता है कि मैं तुम्हारे साथ चली चलूं। मा जाने नहीं देती। वह कहती है कि तुम मुझे साथ नहीं ले जाओगे। मैंने मा से कहा था कि तुम मुझे ले जाओगे। परन्तु तुम तो मुझे चलने को कहते ही नहीं।"

"नलिनी बहिन, मां ठीक कहती है। मैं जहा जा रहा हूँ वहा बहुत झगड़ा है, कष्ट है। वहा मुसीबतों का सामना करना होगा। क्या जाने जेलखाने में जाना पड़े या गोली मारकर इस जीवन की यंत्रणा से छुटकारा दिला दिया जाय। जन्म भर कैद या फांसी पाना तो सहज सी बात है। भला ऐसे स्थान पर तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ ?"

नलिनी इतनी भयंकर बात सुनकर चुप कर गयी। उसके आँसू तो थम गये, परन्तु क्रोध और भय से गाल विवर्ण होगयीं, ओठ सूख गये और गले से आवाज़ नहीं निकल सकी। यत्न कर वह बोली, "तो ऐसे भय वाले स्थान पर तुम क्यों जाते हो ? तुम्हें मरने से डर नहीं लगता ?"

"लगता है। मैं मरना नहीं चाहता, परन्तु कभी मरने से भी अधिक दुःख वाली बात हो सकती है। ऐसी बात अब हो रही है। मा, भारत-माता जो तुम्हारी, मेरी, हम सब लोगों की मा है दुःख में है। आततायी दुःशासन उसके वस्त्र उतारकर उसे नग्न कर भिखारिन बनाना चाहता है। उसे संसार की अन्य समृद्धि-सम्पन्न जातियों के सम्मुख हाथ पसारकर भिक्षा मांगने के लिये बाध्य किया जारहा है। यह अब नहीं देखा जाता। इस लज्जास्पद दृश्य को देखकर मरना कष्टप्रद नहीं रह जाता।"

नलिनी ने पथिक का हाथ पकड़ लिया और कहा, "तुम क्या कहते

हो, मेरी समझ में नहीं आता ? मैं तो एक बात जानती हूँ। वह यह कि तुम्हें मरने देना नहीं चाहती। मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। मैं तुम्हें पकड़े रखूंगी। नहीं छोड़ूंगी। जाना हो तो छुड़ाकर चले जाओ। देखू तो तुम कैसे छुड़ाकर जासकते हो ?"

नलिनी ने जोर से पथिक का हाथ पकड लिया। वह इस युक्ति के सम्मुख निरुत्तर था। वह इस भोली बालिका के मन को दुखी करना नही चाहता था और उसे समझाना तो अति कठिन था। उसने कहा, "तो तुमने मुझे पकड़ लिया है ?"

"हा" नलिनी ने और भी जोर से उसका हाथ पकड़ते हुए कहा।

"इतने ज़ोर से ? यह तो मै छुड़ा नहीं सकूँगा। अच्छी बात, मैं नहीं जाऊँगा, पर तुम मुझे छोड़ना नहीं, पकड़े रखना।"

नलिनी ने और भी ज़ोर से पकड़ लिया। इस समय गाव के लोग मिलने के लिये आने लगे थे। आज कथा न तो कहने की और न ही किसी को सुनने की रुचि थी। लोग आते थे और अपनी अपनी श्रद्धा-भक्ति के फूल उसके सम्मुख चढ़ाते थे। प्रत्येक के मन में यह आशंका बनी थी कि पथिक पुनः लौट नहीं सकेगा। पथिक एक एक को नाम ले बुला विदा ले रहा था।

"सुनाओ, भैया मनोहर !"

"हाँ गुरुदेव।"

"देखो भाई, भूलना नहीं।"

"राम, राम, गुरुदेव ! क्या कहते हैं ? जब से जाने की बात सुनी है आखों में नींद नहीं। यह भजन, कीर्तन, कथा और हम गरीबो से सहानुभूति कहा पायेंगे ? ये भूलने की बातें नहीं, गुरुदेव। यदि बाल-बच्चों का झंझट न होता तो आपके चरण न छोड़ता।"

"ठीक है ! ठीक है ! यह भी बहुत आवश्यक है। अच्छा भैया, मेरे लिये भगवान से प्रार्थना करना। अब तुम जाओ। बहुत देर हो गई है तुम्हें।"

इसी प्रकार एक एक कर सब को विदा कर दिया। यह विदा कभी कभी तो अति हृदय-विदारक हो उठती थी। बातें करते करते लोग रोने लगते थे। जिन लोगों के झगड़े निपटाने में पथिक सहायक हुआ था, वे उसके चले जाने को बहुत अनुभव कर रहे थे। अपनी पहली अवस्था और उसको सुधारने में पथिक की सहायता का वर्णन करते थे और आंखें भर-भर कर रोते थे। कुछ लोग पथिक का देवा में आना शुभ मानते थे। वे समझते थे कि आपत्ति बगिया के आप को मिटाने वाला बड़ा है। अब उसके बड़ा से जाने को अशकुन मानते थे। उन्हें भविष्य पूर्ण चन्द्रमा का काला घटाओं में छिप जाना सा प्रतीत होता था।

राजमाता के कहने पर पथिक को सुरेश ने गुप्त रूप से आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। मोहन तो पथिक के साथ जाने के लिये बिलकुल तैयार था। बेना और बेनी की स्त्री पहले से ही देवा से रवाना हो चुके थे। इस प्रकार पथिक को अपने भविष्य के काम की योजना बनाने में और उसे कार्यरूप में लाने के लिये कुछ रुपये का वचन और दो श्रद्धालु भक्त भी मिल गये।

इस तमाम विदाई के समय नलिनी पथिक का आंचल पकड़े बैठी रही। लोगों को वापिस घर भेजते हुए रात बहुत गुजर गई थी। नलिनी आंचल पकड़े २ सो गई। मोहन उसे उठाकर घर ले गया।

[१४]

प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव में कांग्रेस ने भाग लिया और उसे आशातीत सफलता हुई। इस सफलता को देख सरकार भी घबराई। कांग्रेस की ओर से धारा-सभाओं में भेजे हुए सदस्यों का एक सम्मेलन दिल्ली में हुआ और उसमें यह निश्चित हुआ कि यदि सरकार यह आश्वासन दिलाये कि गवर्नर प्रान्त के प्रबन्ध में मंत्रियों के कामों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तो कांग्रेस उन प्रान्तों में जहां उनका बहुमत है मन्त्री-मण्डल बनायेगी, और यदि यह आश्वासन न मिला तो कांग्रेस धारा-सभाओं में बहुमत रखते हुए भी विरोधी-दल बनायेगी।

यह परिस्थिति ऐसी थी कि प्रान्तीय धारा-सभायें बिना इस आश्वासन के चल नहीं सकती थीं। विवश वाइसराय को यह आश्वासन देना पड़ा। यद्यपि सन १९३५ के विधान में ऐसे आश्वासन देने की बात नहीं थी, तो भी धारा-सभाओं को बनने से पूर्व टूट जाने से बचाने के लिये यह आवश्यक हो गया। भारतवर्ष में ग्यारह प्रांत थे। इनमें से सात में तुरन्त काग्रेसी मंत्री-मण्डल बन गये और काम आरम्भ हुआ।

इन मन्त्री-मंडलों ने सब से पहला काम यह किया कि राजनीतिक कैदियों को छोड़ दिया। गवर्नर इस नीति का विरोध करते रहे, परन्तु मंत्री लोग अपने इस कार्यक्रम पर डटे रहे। दो प्रान्तों में तो मन्त्री-मंडलों को त्याग-पत्र तक देने की धमकी देनी पड़ी।

पश्चात कृषकों के विषय में आर्थिक सुधार के साधारण कानून बनने लगे। इसके साथ शराब-बन्दी के कार्यक्रम पर भी कानून बने।

वे लोग जो सन पैंतीस के विधान को भारतवर्ष की वैधानिक उन्नति की अन्तिम अवस्था नहीं समझते थे, और यह समझते थे कि सरकार से अभी फिर एक भारी टक्कर होने वाली है, वे काग्रेस मन्त्री-मण्डलों के इन कानूनी कार्यक्रमों को बहुत ही घटिया समझते थे। यह पत्तों को पानी देने के समान था। कानून अच्छे से अच्छे भी केवल पुस्तकों में लिखे रह जाते हैं यदि कानून चलाने वाले घटिया आदमी हों। ये लोग काग्रेस मन्त्री-मण्डलों को महीनों और वर्षों इन व्यर्थ के कानूनों को बनाने में व्यय करते देख बेचैन हो रहे थे।

पथिक इन लोगों में से एक था। उसने कलकत्ते के एक अंग्रेजी मासिक में लेख छपवाया था, जिसने विचारशील लोगों में हलचल मचा दी थी। लेख का शीर्षक था, 'काँग्रेस मन्त्री-मण्डलों के सामने रचनात्मक कार्यक्रम।'

काँग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम अर्थात् खद्दर, हिंदू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार और शराबखोरी बन्द करने का इस लेख में उल्लेख नहीं था। पथिक ने इनको एक समाज-सुधार का कार्यक्रम बताया था। यह

राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। इसके स्थान पर पथिक का कार्यक्रम था : (१) स्कूलों और कॉलेजों की शिक्षा में सुधार किया जाय। (२) सरकार के वे कर्मचारी जो बिना किसी मुकाबिले की परीक्षा पास किये नौकरी पर लगाये गये हैं, तुरन्त मुकाबिले की परीक्षा में भेजे जायें। जो रियायती, किसी सिफारिश से अथवा किसी विशेष बिरादरी से सम्बन्ध रखने से नौकर हुए हैं, उन्हें मुकाबिले की परीक्षा में बैठने को कहा जाय। (३) किसी भी आदमी को, जो स्वयं या जिसके परिवार के लोग कभी देश-द्रोही रहे हैं, सरकारी नौकरी नहीं दी जाय। (४) उन परिवारों के लोगों को, जो कभी किसी भी देश को आजाद करने के आंदोलन में सम्मिलित हो चुके हैं अथवा हानि उठा चुके हैं, जिम्मेदारी के पदों पर नियुक्त किया जाय। (५) उन अफसरों तथा सरकारी कर्मचारियों पर, जिन्होंने पहले किये गये स्वतन्त्रता के आन्दोलनों में सामयिक कानून से बढ़कर कठोरता का व्यवहार किया है, अथवा ऐसा करने का जिन पर सन्देह है उन पर हाईकोर्ट के जजों की एक तहकीकात-कमेटी बैठाई जाय। (६) राष्ट्रीय रक्षक-दल की नींव डाली जाय।

इस लेख के अन्त में लिखा था कि कांग्रेसी मन्त्री-मण्डलों को कांग्रेस-पार्टी मण्डल न बनकर इस कार्यक्रम में सहयोग देने वाले सदस्यों का मण्डल बन जाना चाहिये।

मिस्टर अवधबिहारी माथुर को कहीं से यह कार्यक्रम हाथ लग गया। वह इसे रद्दी की टोकरी में फेंकने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि लेखक के नाम पर जा पड़ी। नाम था पथिक। पथिक से उन्हें देवा के पथिक का स्मरण हो आया।

अब उन्होंने इस लेख को अधिक ध्यानपूर्वक पढ़ा। पथिक ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम की व्याख्या भी की थी। मिस्टर माथुर इसे पढ़कर गम्भीर विचार में पड़ गये।

अगले दिन वह प्रधान मन्त्री से मिले और उसे पथिक का लेख पढ़ने के लिये दे दिया। कई दिन पश्चात् मिस्टर माथुर को प्रधान मंत्री

से मिलने का अवसर मिला। मिस्टर माथुर ने पथिक के लेख के विषय में पूछा। उसने क्षमा मागते हुए कहा, "मिस्टर माथुर, मुझे अवकाश नहीं मिला।"

"परन्तु वह तो आपको अवश्य पढ़ना चाहिये और शीघ्र ही।"

"अच्छी बात, आज पढ़ने का यत्न करूंगा।"

कई बार याद दिलाने पर प्रधान मन्त्री ने लेख पढ़ा। अगली बार जब वह मिस्टर माथुर से मिला तो कहने लगा, "इस लेख का लिखने वाला कौन है?"

"क्यों?"

"कोई पागल प्रतीत होता है।"

मिस्टर माथुर ने मुस्कराते हुए कहा, "हा, विशेष बात बताने वाले पागल ही तो होते है।"

"राजनीति में कोई नवीन पट्ठा है। इसने मनोविज्ञान का अध्ययन नहीं किया प्रतीत होता।"

मिस्टर माथुर ने कहा, "यह आदमी कौन है और कौन नहीं, इससे कोई मतलब नहीं। मैं तो आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि उसके कार्यक्रम में आपने कौन बात ग़लत देखी है?"

"वह कार्यक्रम असम्भव है।"

"क्यों?"

"गवर्नर चलने नहीं देंगे। वाइसराय बाधा डालेगा। सरकारी मुलाज़िम नाराज़ हो जायेंगे।"

"तो गवर्नर, वाइसराय और सरकारी मुलाज़िमों को प्रसन्न करने के लिये आपने मन्त्री-मण्डल बनाये हैं?"

"सो तो नहीं। परन्तु इस व्यर्थ की बात के लिये उनसे झगड़ा करना ठीक नहीं।"

"ये बाते व्यर्थ की हैं या देशोन्नति का आधार।"

"मैं ऐसा नहीं समझता।"

"क्या पथिक का यह लिखना सर्वथा ठीक नहीं कि एक अफसर जो देश को बेचकर अफसर की पदवी पर पहुँचा है वह सरकारी दफ्तर में रहकर सदैव राष्ट्रीयता के लिये हानिकर सिद्ध होगा ?"

"सिद्धान्त-रूप से तो यह बात ठीक है, परन्तु अफसर लोग तो प्रायः सरकार की नीति के चलाने वाले हैं। जब हम नीति ही बदल देंगे तो सरकारी अफसर हमारी नीति चलायेंगे।"

"और जब आप मन्त्री-मंडल से बाहर होंगे तो वही अफसर फिर इंगलैंड के हित के लिये जी तोड़ यत्न करेंगे।"

"मगर हम कर ही क्या सकते हैं ? ज्योंही हम ऐसा करेंगे गवर्नर हमें निकाल बाहर करेगा।"

"श्रीमान जी" मिस्टर माथुर ने कहा, "जब तक आप उन लोगों का बहिष्कार नहीं करते जिन्होंने देश-द्रोह किया है और उन लोगों को ज़िम्मेदार पदवियां नहीं देते जिन लोगों के रक्त से स्वाधीनता का पथ रंजित है तब तक आप समय और शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं।"

"मगर हमें यह करने कौन देगा ?"

"तो फिर मन्त्री-मंडल बनाने का लाभ ही क्या है ? ये किसान-सम्बन्धी कानून और शराब-बन्दी तो आपके त्यागपत्र देने के चौबीस घण्टे पश्चात रद्द कर दिये जायेंगे। सरकार ने एक सौ वर्ष के राज्य में एक तो यह किया है कि स्कूल और कॉलेजों में अपने ढंग की शिक्षा चलाकर देश-द्रोहियों की फौज तैयार कर ली है। ये पढ़े-लिखे नौ-जवान तीस रुपया मासिक की नौकरी के लिये देश को बेचने को तैयार हो जाते हैं। दूसरी बात जो सरकार ने की है वह यह है कि देश भर के गद्दारों को सरकारी महकमे में एकत्रित कर लिया है। यदि ये गद्दार किसी पदवी के योग्य नहीं होते तो इन्हें बिना योग्यता की परीक्षा के ही रख लिया जाता है। आखिर जब तक ये बातें हैं आपका मन्त्री-मंडल क्या कर सकता है और जो कुछ कानून आप बना रहे हैं वे कब तक चालू रह सकते हैं ?"

"मगर हम तो महात्मा गान्धी का रचनात्मक काम छोड़ नहीं सकते।"

मिस्टर माथुर को बहुत निराशा हुई। घर लौटते ही उन्होंने काग्रेस-कमेटी से, काग्रेस-पार्टी से और धारा-सभा की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया।

देवा में फिर चुनाव हुआ, मगर इस बार सुरेश खड़ा नहीं हुआ। ज़िले के एक साधारण से वकील मिस्टर श्रीवास्तव काग्रेस-टिकट ले, बिना मुकाबिले के सदस्य हो गये।

*

*

तीसरा भाग

स्टूडैंट्स फैडरेशन

हजरतगंज के एक रेस्टोरेंट में कुछ नवयुवक बैठे चाय पी रहे थे।

एक युवक, जो दुबला-पतला शरीर रखता था और बहुत ही फैशनेबल अंग्रेजी ढंग के कपड़े पहिने था, चाय की सरूकी लगाते हुए बोला, "वह नहीं जा रही।"

इस मण्डली में मोटे खद्दर का कुर्ता और धोती तथा चप्पल पहिने हुए एक युवक बैठा था। वह अपने विचार में मग्न, पेस्ट्री का एक टुकड़ा दाहिने हाथ में पकड़े हुए देख रहा था। एकाएक बोल उठा, "वह कौन?"

"सलीमा," पहले बोलने वाले ने उत्तर दिया।

"भाई विनोद, तुम सदा उसकी ही चर्चा में क्यों लगे रहते हो? वह यह नहीं कर रही और यह कर रही है। वह वहां जा रही है और वहां नहीं जा रही। आखिर क्या उसके बिना संसार चल नहीं सकता?"

"दादा, तुम नहीं समझ सकते। संसार उसके बिना चले या न चले, मगर मैं उसके बिना नहीं चल सकता।"

"तो तुम भी मत जाओ। लखनऊ से तीन प्रतिनिधि क्या पर्याप्त नहीं होंगे?"

इस पर एक और बोल उठा, "वाह! इतनी बड़ी युनिवर्सिटी से केवल तीन प्रतिनिधि? और फिर दादा, हमारा पक्ष समर्थन करने के लिये किसी वक्ता की भी तो आवश्यकता है। मिस्टर विनोद को छोड़कर हम में से और बोल ही कौन सकता है?"

"तो फिर मिस्टर विनोद चलें और अपनी धारा-प्रवाह अंग्रेजी बोलने

की योग्यता का प्रदर्शन करें। मैंने कब कहा है कि वह न चले ?"

"परन्तु बिना सलीमा के तो इनमें बोलने की स्फूर्ति ही नहीं होती। यदि वह न गई तो इनकी वक्तृता फीकी पड़ जायगी।"

"तो फिर क्या किया जाय ?" खद्दरपोश दादा ने निराशा का भाव दिखाते हुए कहा।

इस पर विनोद ने कहा, "मेरी सम्मति है कि हम में से तीन उसके पास डेपुटेशन लेकर चलें। शायद चलने के लिये मान जाय।"

विनोद का प्रस्ताव स्वीकार हो गया। यह निर्णय हुआ कि विनोद, दादा और एक और युवक, जिसे श्यामकुमार के नाम से पुकारा जा रहा था, सलीमा के पास यह प्रार्थना करने के लिये जायें कि वह अखिल भारतवर्षीय विद्यार्थी-संघ के वार्षिक अधिवेशन पर लखनऊ के विद्यार्थी-मण्डल की प्रतिनिधि बनकर जाने से इनकार न करे। अधिवेशन देहली में होने वाला था।

सलीमा नवाब मुर्तज़ाअली ख़ाँ बाराबंकी के एक जमींदार की लड़की थी। वह लखनऊ के मैडिकल कॉलेज के दूसरे वर्ष में पढ़ती थी। यों तो कितने ही विद्यार्थी अपनी प्रेम-सामग्री सलीमा के चरणों में स्वाहा किया करते थे, परन्तु विनोदकुमार इस भक्ति में सबसे आगे बढ़ा हुआ था। विनोद भी मैडिकल कॉलेज का विद्यार्थी था। वह चौथे वर्ष में पढ़ता था। लखनऊ के प्रसिद्ध वकील बाबू अवधविहारी माथुर का लड़का था।

मिस्टर माथुर बहुत ही स्वतन्त्र विचारों के आदमी थे। यद्यपि वह काग्रेस-आन्दोलन में कभी कैद नहीं हुए थे। इस पर भी कुछ मित्रों के आग्रह पर देवा से काग्रेस-टिकट पर धारा-सभा की सदस्यता के लिये खड़े हो गये थे। परन्तु ज्योंही उन्हें काग्रेस-कार्यक्रम का खोखलापन ज्ञात हुआ वह सदस्यता छोड़ बैठे।

व्यक्तिगत बातों में भी वह अति स्वतन्त्र विचार रखते थे। उनकी बैठक लखनऊ नगर भर के स्वतन्त्र विचार वालों का अड्डा थी। राजनीति, समाज-सुधार, साहित्य, [illegible] सब ऐसे विषय बैठक में तीव्र वाद-

विवाद और हंसी-मज़ाक के विषय होते थे। विवाह-बन्धन, जातपांत के बन्धन, धर्मिक प्रतिबन्ध और खान-पान के झगड़ों की कड़ी आलोचना हुआ करती थी।

एक बार इस बैठक में एकत्रित होने वाले लोगों में कई दिन तक विवाह-बन्धन के विषय पर वाद-विवाद चलता रहा। उस समय एक आविष्कारक प्रतिभा रखने वाले मित्र ने इस मण्डली को असन्तुष्ट पतियों की मंडली (Society of discontented husbands) का नाम दे दिया। मण्डली के प्रधान बाबू अवधबिहारी माथुर, एम० ए०, एल एल० बी० माने गये। यह विनोदकुमार के पिता थे।

ऐसे पिता का पुत्र होकर विनोदकुमार विचारों की विशालता में कुछ आगे ही बढ़ा था। आरम्भ से ही राजनीतिक सभाओं में जाना, वहां व्याख्यान देना, जलसे-जलूसों का प्रबन्ध करना, कॉलेज में किंचितमात्र भी असन्तोषजनक बात होने पर डेपुटेशन बनाना और हड़ताल करानी उसके बायें हाथ के खेल थे। भावुकता से भरपूर, उग्र विचार रखने वाला विनोद प्रोफेसरों के लिये एक समस्या बना हुआ था। वह प्रतिभाशाली था। अपना बहुत सा समय सार्वजनिक कामों में व्यय करने पर भी अपनी श्रेणी में सबसे अच्छे नम्बर लेकर पास हुआ करता था।

विनोद के लिये सार्वजनिक काम मनोरञ्जन थे। कुछ घण्टे ऐसे काम कर वह अपनी पढ़ाई में भली भांति मन लगा सकता था। उसके पढ़ने का समय प्रायः रात के ग्यारह बजे से रात के तीन बजे तक होता था। यह बात उसने अपने पिता से सीखी थी। वह भी रात के साढ़े दस बजे बैठक से उठ अपने मुकदमे देखने के लिये दफ्तर में चला जाता था और बैठक में आये हुए मित्र विदा हो जाते थे। वही समय विनोद को शान्ति से घर पर पढ़ने के लिये मिल जाता था।

तीन बजे रात को सोकर विनोद प्रातः आठ बजे उठा करता था। स्नान और सुबह का नाश्ता कर दस बजे से पूर्व कॉलेज जा पहुँचता था। लंच कॉलेज में ही होता था। सायंकाल को चाय के पश्चात् सभा,

समाज, मित्र-मण्डली, पब्लिक जलसों इत्यादि में सम्मिलित होना और फिर रात का खाना खाकर एक-दो घण्टे सोना। इस प्रकार काम चलता था।

पोशाक पहनने का उसे खूब ढंग आता था। घटिया कपड़े भी उसके शरीर पर सज जाते थे। वह चुस्त, परन्तु हलका शरीर रखने वाला युवक था। छोटे से मुख में बड़ी बड़ी आखें, विशाल मस्तक और सिर पर घुँघराले बाल, उसकी पहिचान थे।

जब से सलीमा मैडिकल कॉलेज में दाखिल हुई थी, विनोद का ध्यान उसकी ओर खिच गया था। उसका सौन्दर्य तो सब को दिखाई देता था, परन्तु विनोद को उसके बाहरी सौन्दर्य के भीतर, कुछ और अति उज्ज्वल, चमत्कारक और साधारण स्त्रियों में अनुपस्थित वस्तु दिखाई देती थी। विनोद अपने इस छोटे से जीवन मे अनेकों पुरुषों और स्त्रियों के सम्पर्क में आ चुका था। उसके परिचितों में अच्छे लोग भी थे और बुरे भी। सलीमा को वह इन दोनों श्रेणियों से विलक्षण समझता था। वह उसके लिये देवी थी।

एक दिन कॉलेज के विद्यार्थी-मण्डल के साप्ताहिक अधिवेशन मे सलीमा व्याख्यान देने के लिये उठी। उसने कहना था कि पुरुष स्त्रियों को छोटा समझकर भूल करते हैं और इस प्रकार वे अपने परिवार की और जाति की हानि, अवनति और पतन का कारण होते हैं। परन्तु जब वह बोलने लगी तो एक दो वाक्य बोलकर ही चुप कर गई। लडकों ने तालिया पीट दीं और वह बिना कुछ कहे बैठ गई। विनोद ने उठकर सलीमा के स्थान पर बोलना आरम्भ कर दिया। उस दिन उसका नाम कार्यक्रम में नहीं था। प्रधान ने सलीमा का समय उसको देने में आपत्ति नहीं की। उसने सलीमा के विषय पर ही कहा। यों तो विनोद एक अच्छा खासा वक्ता था, इस पर भी जिस सरलता, सरसता और विद्वत्ता से वह उस दिन बोला वह अतुल थी। प्रोफेसर भी चकाचौंध हो उसका मुख देखते रह गये। सलीमा ने दस मिनट तक बोलना था, परन्तु विनोद के

भाषण में सब लोग इतने लीन हुए कि समय का प्रतिबन्ध नहीं रह सका। वह घण्टा भर बोलता रहा। यह वक्तृता आग बरसाने वाली थी। कभी तो वह नारी जाति के मनुष्य जाति पर अहसानों का वर्णन करता था, कभी उसके उत्तरदायित्व का उल्लेख करता था। एक ओर सीता-सावित्री की स्वतन्त्रता का वर्णन था, दूसरी ओर युरोपियन महिलाओं के कारनामों का उल्लेख था। अन्त में मनु को, जिसने स्त्रियों को सदा पुरुषों के आधीन रहने की व्यवस्था दी है, आधुनिक जगत के सर्वमान्य मत की वेदी पर फाँसी चढ़ाने योग्य बताकर, हॉल को गुँजा देने वाली करतल-ध्वनि में, बैठ गया।

सभा के पश्चात् प्रिंसिपल ने उसकी बहुत बढ़िया वक्तृता पर उसे बधाई दी। विनोद ने सलीमा की ओर संकेत कर कहा, "यह सब इनकी कृपा है। इन्होंने ही मुझ में इसके लिये स्फूर्ति पैदा की है।"

सलीमा, जो व्याख्यान न दे सकने से लज्जा अनुभव कर रही थी, अपने ही पक्ष को अपने से अधिक बलपूर्वक और अधिक सुन्दर भाषा में प्रतिपादित होते देख प्रसन्न हो गयी। अब व्याख्यान के पश्चात् वह आगे बढ़कर कहने लगी, "धन्यवाद, मिस्टर विनोद। मैं अपने पक्ष को इतनी सुन्दरता से उपस्थित नहीं कर सकती थी। आपने तो कमाल ही कर दिया है। आपका कहना, कि मनु उन्नति की वेदी पर फाँसी चढ़ाने योग्य है, कैसा सुन्दर है।"

यह विनोद का सलीमा से पहिला परिचय था, जो धीरे धीरे बढ़ता ही गया। यहा तक कि कॉलेज में प्रसिद्ध हो गया कि विनोद की वक्तृता देने की शक्ति को स्फूर्ति देने के लिये सलीमा का होना अत्यावश्यक है।

परिचय के परिपक्क होने पर विनोद और सलीमा का मिलना-जुलना बढ़ने लगा। प्रायः सभा-समाज में दोनों इकट्ठे जाते थे। घण्टों ही अनेकानेक विषयों पर बातें करते रहते और जिस दिन कोई काम न होता अथवा करने को कोई बात न होती तो दोनों कालेज के अन्य विद्यार्थियों के यहा अथवा बोर्डिंग-हाउस में चले जाते।

धीरे धीरे यह बात फैलने लगी कि विनोद और सलीमा का विवाह होगा और यह बात सलीमा के पिता नवाब साहब के कानों तक पहुँची। विनोद के पिता बाबू अवधबिहारी का नाम लखनऊ में बहुत मान से लिया जाता था। वह यद्यपि कोई जमींदार नहीं थे तो भी बड़े बड़े जमींदारों की आय के बराबर वकालत से ही पैदा कर लेते थे। लाखों रुपये साल की आय थी और विनोद बाप का एक ही पुत्र था। नवाब साहब सलीमा का चुनाव सुन 'लाहौल विला' बोल उठे।

सलीमा रात देर से घर आई थी। यह उस रात की बात थी जिस रात विद्यार्थी-मण्डल की कार्यकारिणी की बैठक ने अखिल भारतवर्षीय विद्यार्थी महा-मण्डल के लिये प्रतिनिधि चुने थे। सलीमा की मा और बाप दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। लम्बी सी नाल वाले हुक्के से कश लगाते हुए नवाब साहब ने सलीमा को आया देख कहा, "बेटी, आज बहुत देरी कर दी है। तुम्हारी मा तुम्हें एक जगह ले जाना चाहती थी।"

"स्टूडैन्ट्स यूनियन की इन्तज़ामिया कमेटी की मीटिंग थी। अम्मी ने मुझे पहले तो बताया नहीं था।"

"तो तुम उसकी इन्तज़ामिया कमेटी में चली गयी हो? बहुत खूब! बहुत जल्दी जल्दी तरक्की कर रही हो।"

"हा अब्बाजान, हमारे कालेज के दो प्रतिनिधि ही लिये गये हैं। उनमें एक मैं हूँ और दूसरे मिस्टर विनोद।"

"विनोद? वही बाबू अवधबिहारी माथुर का लड़का?"

"हा, वही। गजब का बोलने वाला है। असल में तो उसकी ही कोशिश से मेरा चुनाव हुआ है। और अब्बाजान, स्टूडैंट्स फैडरेशन के देहली में होने वाले इज़लास के लिये लखनऊ भर के तुलबा के नुमायिन्दे भी हम ही चुने गये हैं। विनोद ने तो आज गज़ब ही कर दिया। ऐसे ढंग से बात की कि पाच डेलीगेटों में दो तो हम ही चुने गये और बाकी सब कॉलेजों में से तीन।"

इस बात ने नवाब साहब को गहरे विचार में डाल दिया। वह जल्दी

जल्दी हुक्के को गुड़गुड़ाने लगे। कुछ सोचकर फिर पूछने लगे, "यह फैडरेशन का जलसा कब होगा ?"

"अगले हफ्ते में।"

"क्या और लड़कियां भी जा रही हैं ?"

"जहां तक मुझे मालूम है, नहीं।"

"तो तुम अकेली कैसे जाओगी ? वहां कहां ठहरोगी ?"

"इसका प्रबन्ध भी हो गया है। मिस्टर विनोद के एक सम्बन्धी वहां रहते हैं। उनकी बीवी है, लड़कियां हैं जो कालेज में पढ़ती हैं। वहीं ठहरने का इन्तज़ाम होगा।"

"उनको तो हम नहीं जानते।"

"तो फिर क्या हुआ ? मैं तो ऐसे ही जाकर होटल में ठहरने को तैयार थी।"

"होटल में ? अकेली ?"

"नहीं, अकेली नहीं। हम पांच तो डैलीगेट बनकर जा रहे हैं और कुछ तुलबा विज़िटर्ज़ बनकर जायेंगे। वैसे अगर दो चार होते तो होटल में ही ठीक रहता। मगर सब का होटल में खर्चा बहुत उठेगा। इसलिये प्राइवेट प्रबन्ध किया है। मैं और विनोद नई दिल्ली ठहरेंगे।"

"लेकिन बेटी, तुम अकेली विनोद के साथ ?"

"तो क्या हुआ ? विनोद बहुत अच्छा लड़का है।"

"तो तुम उसे पसन्द करती हो ?"

इस प्रश्न का आशय सलीमा नहीं समझी। वह पसन्द शब्द को साधारण अर्थों में ही समझती थी। उसने तुरंत ही कह दिया, "हां, बहुत। वह बहुत ही लायक डाक्टर बनेगा।"

"लेकिन क्या वह मुसलमान हो जायगा ?"

सलीमा को अभी भी अपने पिता की बातों का अर्थ समझ में नहीं आया। वह इस प्रश्न पर अचम्भा प्रकट करते हुए बोली, "इसकी क्या ज़रूरत है ?"

"तो फिर यह कैसे होगा ?"

"तो क्या एक मुसलमान के साथ मैं अकेली जा सकती हूँ और एक के साथ नहीं ?"

सलीमा की मा ने बात साफ करने के लिये कह दिया, "दिल्ली जाने त नहीं। अब तो तेरे पसन्द करने की बात हो रही है।"

"तो क्या मैं मुसलमानों को ही पसन्द कर सकती हूँ ? क्या हिन्दू अच्छे हो सकते हैं ?"

सलीमा की मां ने बात को और स्पष्ट करने का यत्न किया, "बिटिया, इसे भोलेपन की बात करती हो ? क्या तुम यह भी नहीं समझ सकती तुम्हारे अब्बाजान तुम्हारे होने वाले शौहर की बात कर रहे हैं ?"

सलीमा शौहर का नाम सुनते ही सोफे पर से, जिस पर वह बैठी थी, र उठ खड़ी हुई और एकाएक अपने पिता के कहने का आशय , विस्मय, खुशी और अविश्वास का भाव बनाती हुई पूछने लगी, र विनोद बाबू ? ओ, गुड गॉड, आपको यह किसने बताया है ?"

ता और बाप इस खुशी के प्रदर्शन को समझ नहीं सके। सलीमा को याद था कि जब उसकी नवाब साहब से शादी की सूचना उसे पहल मालूम हुई थी तो वह लज्जा में डूब गयी थी। नवाब साहब न खुशी को व्यंग के भाव में समझ रहे थे। वह नहीं समझ सकते एक लड़की अपनी शादी के विषय में अपने माता-पिता के सम्मुख खुशी प्रकट कर सकती है। दोनों अचम्भे में सलीमा की ओर देख । सलीमा ने फिर सोफे पर बैठते हुए कहा, "अब्बाजान, आपकी नरी में पसन्द लफ्ज़ के सिरफ एक ही माने हैं, यानी शौहर पसन्द । मैं तो इस लफ्ज़ को ज्यादा वसीह मायनों में समझ रही थी।"

"तो तुम उसे बतौर शौहर पसन्द नहीं करती ?"

"मेरे शौहर, विनोद बाबू ? नहीं, मैं नहीं जानती। हक़ीकत यह है ने अभी तक इस मज़मून पर सोचा ही नहीं। इसके लिये मुझे न ही कहा है ?"

इस पर नवाब साहब ने हुक्के की नली मुँह से निकाल एक तरफ कर दी और अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करते हुए कहा, "इस मज़मून पर सोचने की मुझे फ़ुरसत है। लोग इस बात की चर्चा करने लगे हैं और मैं आज ही विनोद के बाप से मिलकर इसका फ़ैसला कर लेना चाहता हूँ।"

सलीमा चुप रही। वह निश्चय नहीं कर सकी कि इसमें अपने पिता को रोके या न रोके। वह जानती थी कि उसके पिता विनोद के पिता को जानते हैं और दोनों में पुरानी मुलाकात है। वह सोफे से उठ खड़ी हुई और यह कहकर कि उसे कल का पाठ तैयार करना है अपने कमरे में चली गयी।

अपने पिता की बात उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी। पढ़ाई तो क्या हो सकती थी, वह पलग पर लेट गयी और मन में इस प्रस्ताव पर मनन करने लगी। उसने विनोद को अपने उम्मीदवार पति के रूप में कभी नहीं देखा था। वह तो केवल एक कॉलेज का साथी था। पढ़ा-लिखा, बात करने में अति चतुर, जलसे-जलूसों के प्रबन्ध करने में सिद्धहस्त और पार्टियां देने में विशाल हृदय। इस पर भी वह उसका पति हो सकता है, या यों कहो कि वह विनोद की पत्नी हो सकती है, यह एक विकट समस्या थी। आज वह मित्र, साथी और पति शब्दों के अर्थों में भेद और समानता पर विचार करने लगी।

मित्र से हम मिलते हैं, बराबरी का व्यवहार करते हैं और किये जाने की इच्छा करते हैं। मित्रों से हमारी विचार-समानता होती है। यदि किसी मित्र के साथ मत-भेद बहुत गहरा हो जाय तो मित्रता शिथिल हो जाती है। पति-पत्नी का सम्बन्ध तो ऐसा नहीं होता। उसमें विचार-समानता का बन्धन नहीं होता। मतभेद होते हुए भी एक दूसरे से सहयोग और व्यवहार रहता है। मतभेद सहन किया जाता है और इसे सहन करने में आनन्द अनुभव होता है।

तो क्या पति साथी है? कहने वाले पति को जीवन-साथी कहते हैं। साथी एक बहुत छोटा शब्द है। यह चिरस्थाई नहीं है। जब तक एक

दूसरे का साथ रहे अर्थात एक दूसरे के काम निकल सके तब तक तो साथी, नहीं तो साथ बिछुड़ जाता है। जीवन के पग पग पर नये साथी बनते है और बिछुड़ते हैं। बचपन के साथी, स्कूल और कॉलेज के साथी, सैर करने के साथी, शतरंज खेलने के साथी और कई तो गप-शप करने के साथी होते हैं। सब अपने अपने समय और अवसर पर आते हैं और बिछुड जाते हैं। कभी मालिक का साथी नौकर भी होता है। कभी मनुष्य कुत्ते-बिल्ली को साथी बनाता है। अभिप्राय यह कि साथी और पति-पत्नी के सम्बन्ध में भारी अन्तर है। पति-पत्नी के सम्बन्ध में केवल एक दूसरे के आश्रय जीवन व्यतीत करने अथवा समय बिताने की बात नहीं है। इसमें तो परस्पर श्रद्धा और भक्ति का समावेश है।

पति-पत्नी मित्र नहीं, साथी नहीं, तो फिर क्या हैं यह विचारते २ बहुत रात चली गयी। इन सब विचारों के तराजू पर विनोद तोला जा रहा था और वह तोल में कम ठहरता था।

[२]

सलीमा के पिता ने इस विषय में तुरन्त ही निश्चय कर लेना ठीक समझा। वह अवधबिहारी माथुर से रिश्ता करना ठीक ही समझता था, परन्तु मुसलमान लड़की का पति मुसलमान ही होना चाहिये, ऐसी उसकी धारणा थी। यह ठीक था कि विनोद का पिता बहुत ही स्वतंत्र विचार रखता था, परन्तु क्या वह अपने इकलौते बेटे को एक नवाब की लड़की से विवाह के लिये मुसलमान-मत स्वीकार कर लेने देगा? यही जानने के लिये और पश्चात् कुछ दूसरी बातों का निर्णय करने के लिये वह उसी शाम मिस्टर माथुर की बैठक में जा पहुंचा।

मित्र-मंडली ब्रिज खेल रही थी। नवाब साहब की इत्तला होते ही मिस्टर माथुर उठे और नवाब साहब को एक बग़ल के कमरे में लेगये आदर-सत्कार से हाथ मिलाकर एक सोफे पर बैठाकर कहने लगे, "नवाब साहब, बहुत अर्से के बाद दीदार नसीब हुए हैं। आपसे मिलकर बहुत खुशी हासिल हुई है। आप तो मेरे पुराने मेहरबानो में से हैं। बताइये

क्या नोश फरमाइयेगा, चाय या शर्बत ?"

नवाब साहब ने जवाब में कहा, "शुक्रिया, बहुत शुक्रिया। शर्बत का तो मौसम नहीं और चाय मैं इस वक्त पीता नहीं। चन्दा कुछ जरूरत नहीं। आपने पुराने ताल्लुकात को याद रखा, आपकी इनायत है।"

मिस्टर माथुर ने अब सिगरेट-केस खोलकर सिगरेट पेश करते हुए कहा, "खैर, इसमें तो एतराज नहीं हो सकता। आप इस नाचीज़ के घर तशरीफ लाये तो यही थोडी सी खातिर कबूल कर ली जाय।"

इस पर दोनों ने सिगरेट सुलगाये। अब निश्चिन्त हो नवाब साहब ने मतलब की बात आरम्भ की। वे कहने लगे "मैं एक निहायत जरूरी काम से आया हूँ। आपके साहबजादे मेडिकल कॉलेज में पढ़ते हैं न ?"

"हां. इस साल फोर्थ इयर (चौथे वर्ष) में गया है।"

"उसकी शादी के मुतल्लिक आपका क्या ख्याल है ?"

मिस्टर माथुर ने निश्चिन्तता प्रकट करते हुए कहा, "मेरे ख्याल में उसकी उमर अभी शादी के लायक नहीं है। इस पर भी मैं इस मामले मे दखल नहीं दूंगा। उसे इसमें पूरी आजादी है।"

"तो आप उसे अपनी शादी करने की इजाज़त दे देंगे चाहे वह कब, कहां और किन्हीं शर्तों पर करे ?"

"इजाज़त ? मैं इजाज़त देने वाला कौन हूँ ? देखिये नवाब साहब, लड़का पढ़-लिखकर होशियार हो गया है। स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई के अलावा मैंने उसे दुनियादारी की भी तालीम दी है। उसके लिये मेरी बैठक, जो दुनियादारी की तालीमगाह है, हमेशा खुली रही है। इतना करने के बाद मैं समझता हूँ कि वह अपने भले-बुरे में तमीज कर सकता है। मेरा इजाज़त देना तो दूर रहा मैं इसमें राय देना भी पसन्द नहीं करूंगा।"

अब नवाब साहब ने खासकर जरा गले को साफ कर और सिगरेट को ऐश-ट्रे में रखकर, सावधान हो, कहना शुरू किया, "मिस्टर माथुर, बात यह है कि लड़के की दोस्ती अपनी लड़की से दिन ब दिन बढ़ रही

है। वह भी उसी के कॉलेज में पढ़ती है। ऐसी हालत में हम लोगों को समझ लेना चाहिये कि एक लड़के-लड़की की दोस्ती का नतीजा क्या हो सकता है ? मैं यही जानना चाहता था कि आपका इसकी बाबत क्या ख्याल है ? भाई, हम हिन्दुस्तान में रहते हैं और इत्तफाक से आप हिन्दू हैं और मैं मुसलमान। सिरफ इतना ही नहीं। हम चाहे कितने आज़ाद ख्याल क्यों न हों फिर भी हम मज़हब को एक ऊँचा रुतबा देते हैं और खाविन्द-बीबी जुदा जुदा मजहब रख नहीं सकते।"

मिस्टर माथुर बातों के प्रभाव से नवाब साहब की इस भूमिका का आशय समझ गये। इस पर भी उन्होंने विशेष व्यग्रता प्रकट किये बिना कह दिया, "ये बातें मेरे से ताल्लुक नहीं रखतीं। मेरा मज़हब मेरा है। मेरा लड़का अपने लिये अपना मज़हब चुन सकता है। उसकी उमर अब बाईस साल की है। कानून की रू से भी वह अब बालिग है। मैं उसके मज़हब में दख़ल नहीं रखता।"

"क्या वह हर हालत में आपकी जायदाद का वारिस हो सकता है ?"

"वारिस ? मैं विरासत के उसूल को नहीं मानता। किसी लड़के या लड़की का हक़ नहीं कि वह अपने मा-बाप की जायदाद पर नज़र रखे। मेरे वालिद साहब ने अपनी सब जायदाद मेरी सौतेली मा को दे दी थी। मेरी जायदाद मेरी अपनी पैदा शुदा है। और अभी नहीं बताना चाहता कि यह मैं किस को दूंगा ?"

"तो आपका मतलब यह है कि लड़के को पढ़ने के बाद गरीबी की हालत से कारोबार शुरू करना होगा ?"

"क्या डाक्टरी की आला तालीम हासिल किया हुआ लड़का गरीब कहा जा सकता है ?"

"काम चलाने में तो कुछ देरी लगेगी। और क्या जाने इस जद्दोजेहद के जमाने में कब तक हालत पतली रहे ?"

"हर एक को अपना रास्ता खुद बनाना चाहिये। मैंने उसे आला तालीम दी है और मैं समझता हूँ मैंने अपना फर्ज़ अदा कर दिया है।"

"यह तो कुछ भी नहीं।"

अब मिस्टर माथुर ने नवाब साहब पर जिरह आरम्भ कर दी, "लेकिन नवाब साहब, एक बात तो मै समझा ही नही। क्या मेरे लड़के की शादी आपकी लड़की से तय हो गयी है?"

"तय तो नहीं समझिये, हा तय होने वाली मालूम होती है।"

"क्या आपने अपनी लड़की से इसकी बाबत पूछा है?"

"बज़ाहिर उसे कोई एतराज मालूम नहीं होता।"

"क्या वह हिन्दू होने को तैयार है?"

"लाहौल विला! यह कैसे हो सकता है?"

"क्या मेरे लड़के ने मुसलमान होना कबूल कर लिया है?"

"उसे करना होगा, अगर वह मेरी लड़की से शादी करना चाहता है।"

"क्या आपने यह दरियाफ्त कर लिया है?"

"नहीं, अभी नहीं।"

"तो आप दरियाफ्त कर ले। अगर वह सलीमा से शादी करना चाहता है और मुसलमान बनना कबूल करता है तो कर ले। रही कारोबार के शुरू मे मदद, तो मेरा ख्याल है कि यह आप इन्तजाम कर देगे। आप जागीरदार है। लाखों की आमदनी बिना मेहनत के होती है। दो-चार लाख आप अपने दामाद को दे दीजियेगा तो आपकी लड़की आपकी मशकूर होगी।"

"लेकिन, आप भी तो कुछ करियेगा या नही?"

"मै जरूरत नहीं समझता।"

इतना कह मिस्टर माथुर ने बातों का विषय बदल दिया, "हां तो आपकी रियासत का क्या हाल है? मिस्टर दास अभी भी मैनेजर हैं क्या? आपके साहबज़ादे अब क्या कर रहे हैं?"

"वह तो विलायत में है। कल चिट्ठी आई थी कि जर्मनी जाने की सोच रहा है। आप भी एक बार युरोप की सैर कर आते तो जिन्दगी का लुत्फ पा जाते।"

इस प्रकार कुछ और इधर-उधर की बातों के बाद मुलाकात खतम हुई। नवाब साहब को इस मुलाकात से सन्तोष नहीं हुआ। वह जो चाहते थे, उन्हें वह नहीं मिला।

[३]

नवाब साहब जब घर आये तो बेगम साहिबा, जो प्रतीक्षा कर रही थीं, उत्सुकता से पूछने लगीं, "क्या हुआ?"

"बड़ा काईयां है। आखिर वकील है न। बोला लड़के से पूछ लो। मैं इस मामले में दखल नहीं दूंगा। मगर उसके चेहरे से मालूम होता था कि रात ही लड़के को डाट-फटकारकर सीधा कर देगा।"

"आजकल के लड़के वालदैन की नहीं मानते। मेरा ख्याल है, घबराने की वजह नहीं है। मुसलमान बनने की बाबत क्या कहा?"

"यही कि लड़का जाने, उसका मज़हब जाने। मेरा इस बात में कोई ताल्लुक नहीं।"

"तो ठीक तो कहता है। शादी तो लड़के की होगी। बाप को इससे क्या मतलब? हज़रत, लड़का मुसलमान हो जायेगा, यही बड़ी बात है। वकील साहब की लाखों की गैर मनकूला जायदाद तो कहीं जायेगी नहीं।"

"यही तो सब बात थी। वह कहता था, 'मेरी अपनी कमाई जायदाद है। मैं लड़के का इस पर हक नहीं समझता। यह जायदाद किस को दूंगा, अभी नहीं बताऊंगा'।"

बेगम साहिबा, नवाब साहब की भांति, निराश होने वाली नहीं थीं। बोलीं, "घबराने की बात नहीं है। आखिर बाप बेटे का रिश्ता तो है ही। कुछ अर्से के बाद सब ठीक हो जायगा। कौन बाप है जो अपने बेटे को सुखी नहीं देखना चाहेगा?"

नवाब साहब ने अभी भी संशय प्रकट करते हुए कहा, "यह अवधबिहारी उस बाप का बेटा है जिसने अपनी सब जायदाद अपने लड़के को न देकर लड़के की सौतेली मा को दे दी थी।"

"मगर विनोद की तो कोई सौतेली मां नहीं है।"

नवाब साहब को यद्यपि सन्तोष नहीं हुआ था, तो भी रात ज़्यादा गुजर जाने से सो जाना उचित समझ अपने कमरे में चले गये।

अगले दिन कॉलेज के समय से पूर्व सलीमा की मा सलीमा के कमरे में पहुँच गयी। वह अभी गहरी नींद सो रही थी। मा ने उसे जगाकर कहा, "आज कॉलेज नहीं जाना क्या?"

सलीमा घबराकर उठी और घड़ी में वक्त देख जल्दी-जल्दी तैयार होने लगी। सलीमा की मा ने अपने वहा पहुँचने का प्रयोजन बताने के लिये कहा, "बेटी, रात तुम्हारे वालिद शरीफ विनोद के बाप को मिलने गये थे।"

सलीमा इस समाचार से घबड़ा उठी। उसने सब कुछ छोड़ मा की ओर देखते हुए पूछा, "क्यों गये थे?"

"यही, तुम्हारी शादी का तय करने।"

"मेरा शादी?" सलीमा ने, जो मेज़ के पास खड़ी कपड़े पहन रही थी, मा के पास आ, कुर्सी के बाजू पर बैठते हुए पूछा, "मेरी शादी? किस से?"

"किस से? किस से क्या? वही विनोद से। रात ही तुमसे बात हो रही थी न।"

"लेकिन मैंने तो कह दिया था कि मैंने अभी सोचा नहीं है। मुझे सोचने की फ़ुरसत नहीं है।"

"तुम्हें फ़ुरसत न सही, पर तुम्हारे अब्बाजान को तो है। सुनो, वह वहा गये थे और तुम्हारी बाबत बातचीत भी हुई थी। विनोद के बाप को तुम्हारी उससे शादी में और विनोद के मुसलमान होने में कोई एतराज़ नहीं है।"

"ओह! मगर....."

"मगर-वगर कुछ नहीं। अब तुम उससे सब तय कर लो। अगर तुम नहीं कर सकतीं तो मैं ही उसे बुलाकर बात कर लूंगी। देखो बेटी, अगर यह फैसला हो जाय तो तुम्हारा उसके साथ घूमना ठीक है। वरना

तुम्हें कोई भी उसके साथ घूमने नहीं देगा।"

"मगर अम्मी, मैंने अभी शादी कराने का फैसला नहीं किया।"

"शादी तो अभी एक-दो साल बाद हो सकती है, मगर फैसला अभी हो जाना चाहिये।"

"नहीं अम्मी," सलीमा ने मा के गले में बांह डालते हुए कहा; "नहीं, अभी बात भी नहीं हो सकती। मैंने अभी फैसला नहीं किया कि विनोद से शादी करूंगी या नहीं। मुझे कुछ सोचने का मौका दो, मॉ।"

सलीमा की मा इस आग्रह से हैरान रह गयी। उसने रात सलीमा के चुप रहने से यही समझा था कि वह इसके लिये राजी है। अब यह रात में क्या होगया है। उसने फिर सलीमा को समझाया, "बेटी, तुम्हारे कॉलेज के प्रोफेसर और लड़के तुम्हारी ही चर्चा करते हैं और इसमें भारी बदनामी होती है। अगर उससे तुम्हारी शादी होनी हो तो बात कुछ नहीं, वरना यह ठीक नहीं है।"

"मेरी उससे शादी होनी तय न हुई तो क्या ठीक नहीं है?"

"तुम्हारा उसके साथ घूमना।"

"और अगर विनोद बाबू से शादी के लिये कहा गया और उसने मंजूर कर लिया तो।"

"तो यह बात लोगों में ज़ाहिर कर दी जायगी। विनोद बाबू से इस्लाम कबूल करने को कहा जायगा। इस पर तुम मिलजुल सकोगे।"

"पहले तो मैं विनोद से शादी के लिये तैयार नहीं। दूसरे किसी का मज़हब तबदील करना मेरी कीमत मुकर्रिर की जाय, मुझे मंजूर नहीं। साथ ही मेरा ख्याल है कि विनोद मेरी खातिर भी मज़हब तबदील करना मंजूर नहीं करेगा। वह मेरा दोस्त है, मगर एक बार भी तो उसने मुझसे मुहब्बत का इज़हार नहीं किया। अम्मी, आप लोगों को किसी ने बहका दिया है। हममें शादी का बिलकुल ख्याल नहीं है।"

"ठीक है। ज़बरदस्ती तो शादी हो नहीं सकेगी। मगर एक बात मैं और तुम्हारे बाप चाहते हैं कि विनोद से तुम बिलकुल ताल्लुक न रखो।"

"जब तक मैं कॉलेज में पढ़ती हूँ यह कैसे हो सकता है ?"

"तो तुम्हारा कॉलेज में पढ़ना बन्द कर दिया जायगा।"

सलीमा बहुत हैरान थी कि क्या करे। उसने एक बार फिर मां को मनाने के लिये कहा, "अम्मी !"

"बस अम्मी ! अम्मी ! कुछ नहीं। अगर तुमने कॉलेज जाना है तो विनोद से ताल्लुक छोड़ना होगा।"

सलीमा अपनी मा को मन की बात समझा सकने में अशक्त थी। वह समझती थी कि मा की शिक्षा बहुत कम है और वह उन्नत समाज की बातों को समझ नहीं सकती। इस कारण वक्त टालने के लिये उसने कह दिया, "अच्छी बात। मगर यह आहिस्ता २ होगा। एकदम तो हो नहीं सकता।"

"एक बात तो एकदम हो सकती है, कि तुम दिल्ली नहीं जा सकती।"

"क्या अब्बाजान का भी यही फरमान है ?"

"हां," सलीमा का बाप, जो कमरे के बाहर खड़ा सब बातें सुन रहा था, भीतर आते हुए बोला, 'हां, मैं भी यही चाहता हूँ।"

यथार्थ में वह रात भर एक धनी-मानी हिन्दू के होनहार लड़के को मुसलमान बनाने के सुख-स्वप्न देख रहा था। उस स्वप्न को भंग करने वाली उसकी अपनी ही लड़की सिद्ध हो रही थी। वह सोचता था कि सलीमा ने शादी तो करनी ही है। विनोद धनी है, योग्य है, सुन्दर है, चतुर है, अभिप्राय यह कि प्रत्येक प्रकार से सलीमा के योग्य है। इस पर तबलीग का काम, एक काफिर को मोमिन बनाने का वसीला। यह मौका बार बार हाथ में नहीं आयेगा। सलीमा ने बाप के मस्तक पर त्योरी चढ़ी देखी तो बोली, "अब्बाजान, आप नाराज़ क्यों हैं ?"

"तुम्हारी बातों से खुश ही कैसे हो सकता हूँ ?"

"मैंने क्या किया है ?"

"तुम विनोद से शादी करने से इनकार जो कर रही हो।"

"मैंने तो रात ही आपसे कहा था कि मैंने इसके मुतल्लिक नहीं

सोचा। मैं अब सोच रही हूँ कि मैं उससे शादी नहीं कर सकती। दो साल से मेरी उससे दोस्ती है ज़रूर, मगर एक बार भी न उसने मुझसे न मैंने उससे इस मजमून पर बातचीत की है। कैसे मैं समझूँ कि वह मुझसे शादी के लिये राज़ी होगा?"

"उसकी बात हम निपटा लेंगे। हम तो तुम्हारी मन्शा जानना चाहते हैं।"

"मेरी उससे शादी करने की मन्शा नहीं है।"

"तो फिर उसके साथ इतना घूमती क्यों रहती हो?"

"तो क्या जिनकी आपस में शादी होनी हो वही इकट्ठे घूम सकते हैं?"

"और क्या? औरत और मर्द, जब भाई-बहिन या मा-बेटे के रिश्ते से बंधे न हों, तो शादी करने के लिये ही घूमते हैं। आखिर तुम घण्टों क्या बातें करते रहते हो?"

"यह बात आपके ज़माने के लोगों के लिये ठीक हो तो हो। आप चन्द शायरों के कलाम ही तो पढ़े हैं न। और आगे बस। शायर भी ऐसे जिन्हें दुनिया के मुताल्लिक इल्म नहीं था। यह हाली और ज़ौक़ सिवाय ग़ज़लों के लिखने के और जानते ही क्या थे? यहां तो सैंकड़ों मज़मून हैं जिनमें दिमाग चक्कर खाता रहता है। कहीं एनाटोमी है, तो कहीं फिज़ियोलोज़ी। कहीं पैथालोजी, तो कहीं बैक्टीरियोलोज़ी। ज़िन्दगी की थ्योरियों की भरमार भी कुछ कम नहीं। इनको छोड़कर सोशियोलोज़ी, कम्युनिज़्म, कैपिटलिज़्म, डैमोक्रेसी, वगैरह २ इतनी बातें हैं जो सोचने और बताने लगें तो उम्र भर शादी की याद नहीं आती। बताइये अब्बा-जान, मुल्क की आज़ादी ही क्या कोई छोटा सा मजमून है? इस पर घण्टों क्या, ज़िन्दगी भर बातें हो सकती हैं।"

"लेकिन लोग तो ऐसा नहीं समझते। तुम्हें अपने बाप-दादा का नाम बदनाम होते देख शरम नहीं आती। तुम्हारा उसके साथ अकेले घूमना हमारे लिये शरम का बायस है।"

इस बात को सलीमा कोरा वहम समझती थी। इस पर भी वहम करना उचित न जान उसने वही बात, जो मा से कही थी, बाप से भी कह दी, "आहिस्ता, आहिस्ता छोड़ दूंगी।"

"हां और दिल्ली नहीं जा सकती।"

"अच्छी बात।"

उस दिन सलीमा ने क्लास में बैठे बैठे एक पर्चे पर लिखकर, कि वह दिल्ली नहीं जायगी, चपरासी के हाथ विनोद के पास भेज दिया और पूर्व इसके कि वह आकर आग्रह करे घर चली आई।

उसी सायंकाल हज़रतगंज में एक रेस्टोरेंट में चाय पीते हुए विनोद और उसके साथियों में वह बातचीत हुई थी जो हम इस भाग के आरम्भ में लिख चुके हैं।

[४]

रेस्टोरेंट से वे लोग सीधे सलीमा के घर पहुँचे। विनोद के पहुंचने पर नौकर सलीमा को सूचना दिया करता था और वह तुरन्त नीचे आ खड़ी होती थी। इस दिन नौकर इत्तला करने गया मगर सलीमा नहीं आई। नौकर ने आकर कहा, "आप भीतर तशरीफ ले आइये।"

नौकर सबको साथ लेकर नवाब साहब के कमरे में जा पहुँचा। नवाब साहब उनको बैठने का संकेत कर उनका मुख देखने लगे। विनोद एक क्षण के लिये घबराया। वह नवाब साहब से मिलने नहीं आया था। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था। इस पर भी उसने सावधान हो कहा, "साहब, हम तो मिस सलीमा के पास एक डैपुटेशन लेकर आये हैं। आप मेहरबानी कर उन्हें बुला दीजिये।"

नवाब साहब ने अकड़कर बैठे हुए पूछा, "आपकी तारीफ।"

विनोद ने इसके उत्तर में कहा, "जनाब, यह पं० शेखरानन्द लॉ पढ़ते हैं। यह ज़िला रायबरेली के पं० बल्लभदास के सुपुत्र हैं।" इतना कह खद्दर पहने दादा की ओर संकेत कर दिया। इस पर दादा ने उठकर नवाब साहब से हाथ मिलाने के लिये हाथ आगे बढ़ा दिया। यद्यपि

नवाब साहब इतनी बे तकल्लुफी नहीं चाहते थे, इस पर भी लड़के को मिलाने के लिये हाथ बढ़ाते देख हाथ मिलाने पर बाध्य हो गये। दादा ने दिल खोलकर हाथ मिलाया।

इसके पश्चात् विनोद ने श्यामकुमार का परिचय दिया। "मिस्टर श्यामकुमार, सीतापुर के बाबू मोहनसिंह के लड़के, एम० ए० फाइनल में पढ़ते हैं।"

श्यामकुमार ने अपनी जगह पर ही खड़े होकर कुछ झुककर, दाहिने हाथ को तीन बार हिलाकर, सलाम अर्ज़ कर दी। नवाब साहब ठीक यही चाहते थे।

अन्त में विनोद ने अपना परिचय दिया, "और मैं, हजूर के पुराने ख़ादिम, बा० अवधबिहारी माथुर का हक़ीर लड़का हूँ।"

इतना कह विनोद कुर्सी पर बैठ गया और नवाब साहब के कहने की प्रतीक्षा करने लगा। नवाब साहब कुछ कहने पर मजबूर हो गये। "क्या मैं आपके आने का मक़सद जान सकता हूँ?" उन्होंने पूछा।

विनोद ने कहा, "हां जनाब, बात यह है कि लखनऊ युनिवर्सिटी की स्टूडैन्ट्स यूनियन ने मिस सलीमा को देहली में होने वाले स्टूडैन्ट्स फेडरेशन के लिये डैलीगेट चुना है। कल तो उन्होंने डैलीगेट बनना स्वीकार कर लिया था। मगर आज उन्होंने लिखा है कि वह देहली नहीं जा सकतीं। हम लोग उनसे दरख़्वास्त करने आये हैं कि वह वहा जाना मंजूर कर लें।"

"जब उसने लिख दिया है कि वह नहीं जा सकती तो फिर उससे झगड़ा करने की क्या जरूरत है?"

"साहब, ज़रूरत यों हुई कि स्टूडैन्ट्स यूनियन की एक्ज़ीक्यूटिव की अब और बैठक नहीं हो सकती। अगर उन्होंने जाना मंजूर न किया तो कैसे उनकी जगह पुर की जा सकेगी? उन्हें कल ही इनकार कर देना चाहिये था।"

"क्या वह तुम्हारी यूनियन की नौकर है जो उसके कहने को टाल

नहीं सकती ?"

"नौकर ? नहीं, यहां नौकरी और मालिक का सवाल नहीं। यहां तो इकरार करने की बात है।"

"वह अभी नाबालिग है। उसका इकरार कानून की निगाह में भी उस पर आईद नहीं होता।"

"जनाब, यहा कानून की बात नहीं हो रही। यहा तो सिरफ इज्ज़त का सवाल है।"

"मैं समझता हूँ कि उसकी इज्जत तुम्हारे साथ दिल्ली न जाने में ज्यादा महफूज है। आप लोगों के साथ घूमने में उसकी ज्यादा बेइज्ज़ती और बदनामी होती है।"

विनोद अब समझा था कि काटा कहाँ है और कैसा है। वह बहुत ही नम्रता से बोला, "आखिर हम लोगों में आपने क्या ऐब देखा है ?"

नवाब साहब ने अब खड़े होकर कहा, "तुम सलीमा के साथ बहुत घूमते-फिरते रहते हो। दुनिया इसको पसन्द नहीं करती।"

अब विनोद इत्यादि भी खड़े हो गये। विनोद ने इसके उत्तर में केवल यह कहा, "चाद पर थूकने वालो से बहस करना फज़ूल है।"

यह कह विनोद-पार्टी वहा से बिना साहब-सलामत के बाहर निकल आयी।

वे अभी कोठी के अहाते में ही थे कि विनोद ने शेखरानन्द से कहा, "शायद मैं भी दिल्ली न जा सकूंगा।"

दादा ने ऊँची हँसी हंसते हुए कहा, "बहुत खूब ! माना उस्ताद। प्रेम अलापने के भी कई ढंग होते हैं।"

यह हंसी की आवाज़ सुन, मकान की ऊपर की छत से खिड़की खोल सलीमा ने देखा। श्यामकुमार जो सब के आगे २ जा रहा था पीछे घूमकर कुछ कहने ही वाला था कि उसने खिड़की को खुलते और सलीमा को झांकते हुए देख लिया। उसने विनोद के कथन पर टीका-टिप्पणी करने के स्थान पर कह दिया, 'चांद निकल आया।' वह खिड़की की

ओर देख रहा था। विनोद और दादा दोनों घूमकर खिड़की की ओर देखने लगे। सलीमा ने रूमाल हिलाकर सबका अभिवादन किया।

[५]

विनोद का सायंकाल का समय प्रायः सलीमा से बातें करने में, उसके साथ घूमने मे, दोस्तों को मिलने जाने में, सभा-समाजों में हाज़िर होने में व्यय होता था। आज उसका मन उदास था। वह कहीं नहीं गया और सीधा घर की ओर चल पड़ा।

मिस्टर माथुर अपनी बैठक में बैठे मित्रों से नवाब साहब से पिछली रात वाली मुलाकात का वृत्तान्त बता रहे थे। "हज़रत कहने लगे, 'लाहौल विला, यह कैसे हो सकता है ?'

"मैंने पूछा, 'तो क्या विनोद ने मुसलमान होना स्वीकार कर लिया है ?' उत्तर दिया 'वह तो होगा ही'।"

सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े। एक मित्र ने पूछा, "आपने बिनू से पूछा तो होगा।" यह विनोद का लाड़ला नाम था। घर के सब आदमी उसे इसी नाम से पुकारा करते थे।

मिस्टर माथुर ने कहा, "नहीं, मौका नहीं मिला। जब वह रात आया था तो मै दफ्तर में काम कर रहा था।"

ठीक इसी समय विनोद बैठक में आ पहुँचा। वह आज वहा ठहरना नहीं चाहता था, परन्तु उसके पिता के मित्रों ने जब उसे भीगी बिल्ली की भाति चुपचाप सीढ़ियों की ओर जाते देखा तो सब के सब ज़ोर से खिलखिलाकर हंस पड़े। विनोद उस हंसने का प्रयोजन नहीं समझा और घूमकर हंसने वालों को ध्यानपूर्वक और विस्मय में देखने लगा। उसे परेशान देख पिता ने बुला लिया, "बिनू, इधर आओ तो।"

विनोद लौट आया और मित्र-मंडली के पास आकर खड़ा हो गया। पिता ने कहा, "बैठ जाओ।"

विनोद बैठ गया और पिता के कहने की प्रतीक्षा करने लगा। मिस्टर माथुर ने कहा, "आज अखबार में लखनऊ विद्यार्थी-संघ की ओर से

दिल्ली जाने वाले प्रतिनिधियों के नाम छपे हैं।"

"जी, मेरा नाम उनमें है।"

"कुछ और नाम भी तो हैं।"

"पांच डेलीगेट चुने गये थे। एक मैं, एक पं० शेखरानन्द लॉ स्टूडेन्ट, तीसरा मिस्टर श्यामकुमार, चौथा मिस्टर कृष्णकुमार और पाचवीं मिस सलीमा।"

अब मित्र-मंडली मे से एक ने पूछा, "क्यों साहब, यह सलीमा कौन है?"

विनोद को अब समझ पड़ा कि ये लोग सलीमा के विषय मे कुछ जान गये हैं। सलीमा के बाप से वह फटकार खाकर आया था। वह अपने पिता को नवाब साहब की भाति अविवेकी नहीं समझता था और उसे विश्वास था कि साफ साफ सब बात बता देने से वह अपनी सफाई सफलतापूर्वक दे सकेगा। वह मुस्कराकर बोला, "तो आपके हँसने का यही कारण था।"

इस पर सब लोग फिर हँसने लगे। प्रश्नकर्ता ने फिर प्रश्न किया, "हां भैया बिनू, यह सलीमा कौन है? सुना है तुमसे उसकी बड़ी मित्रता है।"

विनोद ने हँसने वालों के साथ सम्मिलित हो हँसते हुए कहा, "नवाब मुर्तज़ाअली खा की लड़की है। हमारे कॉलेज में पढ़ती है।"

"बहुत उन्नत विचारों की मालूम होती है। पर्दा तो नहीं करती है वह?"

"पर्दा! अजी बिलकुल नहीं करती। बौब्ड हेयर रखती है। साड़ी पहनती है, क्लबों और पार्टियों में जाती है, मगर·····।" इतना कह वह ठहर गया। उसे नवाब साहब की बातें याद आगई थीं।

मिस्टर माथुर ने पूछा, "हां, मगर क्या?"

"जी यही, मालूम होता है कि नवाब साहब ने उसे इस प्रकार का स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने से मना कर दिया है।"

"कब से ?"

"मालूम होता है आज ही से। उसने दिल्ली जाने से इनकार कर दिया है। कल जब चुनाव हुआ था, वह स्वयं मीटिंग में उपस्थित थी और जाने को तैयार थी।"

"इसी कारण शायद तुम उदास हो। ठीक है न ?"

"जी हां। बात यह है कि हम दिल्ली लिख चुके हैं। मैंने तो चाचा जी को सलीमा के ठहरने के लिये चिट्ठी भी लिख दी है। अब वह नहीं गयी तो सब बात बदमजा हो जायगी।"

"क्या सलीमा के न जाने से फैडरेशन का अधिवेशन तो स्थगित न हो जायगा ?"

विनोद इस प्रश्न से चौंका। उसे विश्वास होता जारहा था कि सलीमा के विषय में उसके पिता और दूसरे लोगों को कुछ मालूम है। इस पर भी उसने बिना बनावट के ही उत्तर देना उचित समझा, "जी नहीं। यह क्यों होगा ? इस समय जो हमारा प्रोग्राम है वह एक सलीमा क्या बीस सलीमा जैसी लड़कियां भी रोक नहीं सकतीं।"

"तो तुम उदास क्यों हो ? क्या तुम्हारा कुछ निजी लगाव है उससे ?"

विनोद ने अपने पिता से आँखें मिलाते हुए कहा, "हाँ, पिता जी, मगर आप मुझे बताते क्यों नहीं कि क्या बात है ?"

"शाबाश," मिस्टर माथुर ने कहा, "तुम मेरे बेटे हो। मैं तुमसे ऐसी ही आशा करता था। परन्तु क्या मैं जान सकता हूँ कि बात कहां तक पहुँच चुकी है ?"

विनोद ने वैसे ही अपने पिता के मुख पर देखते हुए कहा, "बात तो कुछ भी नहीं है। सलीमा से मेरी मित्रता लगभग दो वर्ष से है। वह अति सुन्दर लड़की है। उसका मन अति स्वच्छ और बुद्धि निर्मल है। वह स्वतन्त्र विचार रखती है। मैं उसे पसन्द करता हूँ और वह मेरे विचारों और कामों को पसन्द करती है। हमने कई बार अनेकानेक विषयों पर परस्पर वार्तालाप भी किया है और हममें विचार-ऐक्यता है।"

"तो तुमने उससे विवाह का फैसला कर लिया है ?"

"विवाह !" विनोद भौंचक्का हो देखता रह गया। मुख की दृढ़ मुद्रा बना उसने कहा, "जी नहीं। इस विषय पर मेरी उससे कभी बातचीत नहीं हुई। मेरे मन में कई बार यह बात आई है, मगर इतनी बड़ी बात करने का मुझे साहस नहीं हुआ। आज मै और दूसरे डैलीगेट उसके घर गये थे। मालूम होता है कि नवाब साहब ने उसे हमसे मिलने से मना कर दिया है।"

"तो तुम उससे विवाह करना चाहते हो ?"

"जी, मैं यही निवेदन कर रहा था कि सलीमा का स्वभाव, चरित्र, बुद्धि और सौन्दर्य ऐसा है कि उससे विवाह किया जा सकता है।"

एक साहब, विनोद के इस नवाबी ढंग से बातचीत करने पर, बोलने से नहीं रह सके। बोल उठे, "शाबाश बिनू !"

विनोद अभी भी हैरान था। वह नहीं समझ सका था कि किस रहस्य के प्रकट होने की यह भूमिका बाधी जा रही है। वह शाबाश देने वाले की ओर कुछ अन्यमन्यस्क भाव से देखने लगा। मिस्टर माथुर ने कहा, "बिनू, घबराओ नहीं। हा तो वह ऐसी है कि हजूर उससे विवाह करने की कृपा कर सकते हैं और कुछ या बस।"

विनोद को 'शाबाश' का अर्थ अब समझ में आया। अब उसने अपने कहने का अभिप्राय स्पष्ट करने के लिये कहा, "मेरा अभिप्राय यह था कि सलीमा तो विवाह करने के योग्य है, परन्तु नवाब साहब श्वसुर बनने के योग्य नहीं।"

इससे तो लोग हँसते-हँसते दुहरे होने लगे। उपस्थित लोगों ने समझ लिया था कि मज़ाक करने और ज़िदादिली में विनोद अपने पिता से कम नहीं होगा। जब हँसी कुछ कम हुई तो मिस्टर माथुर ने पूछा, "हां, तो नवाब साहब तुम्हारे श्वसुर बनने योग्य नहीं, मगर क्यों ? क्या मैं जान सकता हूँ ?"

आज हम कुछ विद्यार्थी सलीमा को दिल्ली चलने के लिये राज़ी करने

गये थे। सलीमा के स्थान पर नवाब साहब से भेंट हो गई। इस भेट से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वह अपने को एक विशेष व्यक्ति समझते हैं। उन्होंने हमारा भारी अपमान किया है। हम में से एक ने उनके साथ हाथ मिलाने को बढ़ाया तो वह घबरा गये। वह हाथ मिलाना पसन्द नहीं करते थे। और फिर हाथ मिलाने के पश्चात् जेब से रूमाल निकाल हाथ साफ करने लगे। वह दरबारी ढंग की सलाम को बहुत पसन्द करते हैं। मुझ जैसे स्वतन्त्र प्रजातन्त्रवादी और साम्यवादी के लिये ऐसा श्वसुर उपयुक्त नहीं हो सकता।"

"देखो बिनू," मिस्टर माथुर ने एकदम गम्भीर होकर कहा, "तुम सलीमा से विवाह कर सकते हो। मेरी तरफ से तुम्हें खुली छुट्टी है। मगर तुम्हें इस मामले में और आगे बढ़ने से पूर्व इस विवाह की कीमत जान लेनी चाहिये। कल रात नवाब साहब मुझे मिले थे और वह बता गये हैं कि सलीमा का खाविद मुसलमान होगा। मैं इसमें तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा। तुम्हारा मज़हब तुम्हारी वस्तु है। तुम और तुम्हारी औलाद का मुसलमान होना सलीमा की ठीक कीमत है या नहीं, यह तुम जानो, तुम्हारी आत्मा। मेरे लिये तुम मेरे बिनू ही रहोगे। हां, एक बात नवाब साहब और कह गये हैं। इसका मेरे साथ सम्बन्ध है। वह चाहते हैं कि अपनी जायदाद का, कम से कम मुख्य भाग, तुम्हारे नाम करके मरूं। यह तो तुम जानते हो कि यह जायदाद मेरी अपनी कमाई है। मैं इसे किसको दूंगा मैंने निर्णय नहीं किया। यद्यपि सलीमा से तुम्हारे विवाह का मेरे निर्णय पर कुछ प्रभाव नहीं होगा, इस पर भी मैं चाहता हूँ कि यदि तुम इस आशा में हो कि तुम एक धनी बाप के बेटे हो और बिना महनत के धनी रहोगे तो यह झूठी आशा है। मैंने कल नवाब साहब को भी यही कह दिया था।"

नवाब साहब की धृष्टता, कि वह सलीमा के विवाह का प्रस्ताव लेकर उसके पिता के पास आवें और फिर इतना मंहगा सौदा करने की बात करें, उसे हैरानी में डालने के लिये पर्याप्त थी। वह अवाक मुख पिता

के कथन को सुनता रहा। मिस्टर माथुर के कहना समाप्त करने पर भी कितनी देर वह अचल बैठा रहा। मिस्टर माथुर और मित्र-मंडली विनोद पर इस वक्तव्य का प्रभाव देखने के लिये चुपचाप उसके मुख पर देखते रहे। वे विनोद के उत्तर की प्रतीक्षा में थे। विनोद भी समझ रहा था कि उसे पिता की बात का उत्तर देना चाहिये। वह यथार्थ में सलीमा से प्रेम करता था। परन्तु यह प्रेम बच्चे के एक सुन्दर खिलौने के साथ प्रेम की भाति नहीं था। सलीमा सुन्दर थी, अति सुन्दर थी; परन्तु वह बाह्य सौन्दर्य को चाहते हुए कुछ और चाहता था। वह सुन्दर मन, विचार और भावनाओं का उपासक था। वह समझता था कि ये बाते सलीमा मे हैं। परन्तु अब वह अपने मन में सोच रहा था कि क्या सलीमा भी अपने पिता के साथ इस सौदे में सम्मिलित है? यदि नहीं तब तो ठीक है और यदि है तो उसके सुन्दर विचार और भावनाएँ इस सौदे के आवरण मे असत्य हो जाती है। यह भी हो सकता है कि मीठी-मीठी बाते, उदार विचार और उच्च आकांक्षाएँ केवल दिखाने के दात हो और यथार्थ में मन वैसा ही कलुषित हो, जैसा किसी भी अपढ़, अशिष्ट और मज़हबी दीवाने का हो सकता है। ये सब बाते विनोद के मन में भर रही थीं। अन्त में उसने मन कड़ा कर अपनी दृढ़ धारणा अपने पिता को बता दी। वह कहने लगा, "मेरा विचार है कि सलीमा की अनुमति के बिना ये प्रस्ताव किये गये हैं। यदि सलीमा का भी यही विचार है कि बिना मुसलमान हुए मैं उससे विवाह नहीं कर सकता तो उसे अपना पति कहीं अन्य स्थान पर ढूंढना होगा। यह नहीं कि मै कट्टर हिन्दू हूँ। नहीं, मैं मज़हबी अर्थों में हिन्दू नहीं हूँ। मैं परमात्मा के अस्तित्व को नहीं मानता। तो उसके रसूल हज़रत मुहम्मद को कैसे मान सकता हूं? मैं मन से, हृदय की सत्यता से, कलमा 'ला इलाहा इलिल्ला मुहम्मद रसूल अल्ला' उच्चारण नहीं कर सकता। मैं नास्तिक हूं। यदि मै अपनी आत्मा की वाणी के विरुद्ध कहूँ तो अपनी दृष्टि में ही पतित हो जाऊँगा। धोखा देकर, झूठ बोलकर कि मै परमात्मा को मानता हूँ, मै सलीमा

पाना अपना अपमान समझता हूँ। रही, पिता जी, आपकी सम्पत्ति। इसकी मैंने कभी आशा नहीं लगाई। आपकी कृपा से उच्च शिक्षा पाई है, मैं इसे कम नहीं समझता।"

इतना कह वह उठ खड़ा हुआ और बिना किसी से कुछ और कहे अपने कमरे में चला गया। सब लोग चुपचाप उसे जाता देखते रहे।

[६]

दूसरे दिन कॉलेज में जाकर चिट्ठी लिखने की बारी विनोद की थी। उसने लिखा:—

प्रिय मिस सलीमा! आपकी कल की चिट्ठी मिली और कल शाम को आपसे मिलने के यत्न में आपके वालिद शरीफ से भेंट हुई। परिणाम सन्तोषजनक नहीं निकला। यह तो हुआ आपका दिल्ली जाने का किस्सा। आपके पिता जी आपके वहां जाने के खिलाफ हैं।

एक बात और है। दो दिन हुए आपके पिता जी मेरे पिता जी से मिले थे और कह आये हैं कि तुम्हारा मेरा विवाह तब हो सकता है जब मैं मुसलमान हो जाऊं और जब मेरे पिता अपनी सम्पत्ति मुझे देनी स्वीकार कर लें। यह विवाह की बात किसने आपके पिता से कही है मैं नहीं जानता। मेरे और आपके भीतर तो कभी इस विषय पर बात नहीं हुई। हां, मेरे मन में कई बार ऐसा विचार उत्पन्न होता रहा है। मेरी यह उत्कट इच्छा रही है कि हम अपने साथीपन को और विस्तृत कर लें। हो सके तो जीवनपर्यन्त के लिये सम्बन्ध उत्पन्न कर लें। मगर अभी, जब मैं पढ़ रहा हूँ, जब आप पढ़ रही हैं, जब देश के लिये भी मेरा कुछ करने का विचार है, और आप भी चूड़ियां पहन घर बैठ रहने के स्थान पर अपने देश और जाति के प्रति ऋण चुकाने का विचार रखती हैं, विवाह का प्रस्ताव कुछ समय के पूर्व नहीं है क्या?

मैं आपको बहुत पसन्द करता हूं। आपके विचार और लगन के विषयों को पसन्द करता हूं, परन्तु विवाह के सम्बन्ध में न तो मैंने आपको कभी कहा है, न अब कह रहा हूं। हां, एक बात जानना चाहता हूं कि क्या

आपके पिता जी आपकी अनुमति से विवाह का प्रस्ताव लेकर गये थे और क्या यह भी आपकी राय से है कि विवाह के लिये मुझे दीने-इस्लाम स्वीकार करना पड़ेगा ? मज़हब और परमात्मा के विषय में मेरे विचार आपको भली भाति विदित हैं। जिसके अस्तित्व को नहीं मानता, तो फिर उसके रसूल को मानने की तो बात ही नही हो सकती। क्या मुझे अपनी आत्मा के विरुद्ध यह मानना पड़ेगा, ताकि आपसे विवाह के लिये इच्छा कर सकूँ ? मैं झूठ नही बोलूंगा। आपसे विवाह के लिये भी नहीं। मेरी दृष्टि में मज़हब एक ढोंग है। देश, जाति, मनुष्य जाति ही सब कुछ है। मैं उसका एक अंग हूं। उसी की सुख-शांति के लिये यत्न करना मेरा मज़हब है। मैं इसको तबदील नहीं कर सकता।

मै चाहता हू कि आपके और मेरे पुराने सम्बन्ध बने रहें। परन्तु यह मेरे अकेले के आधीन नहीं है। सम्बन्ध तो दोनो ओर से रखने से रहता है। क्या मैं आपकी इच्छा इस विषय में जान सकता हूं ?

मित्र, विनोद

यह चिट्ठी विनोद ने स्वयं सलीमा को जाकर दी। वह इसे किसी दूसरे के हाथ भेजना उचित नहीं समझता था। सलीमा ने चिट्ठी हाथ में लेते हुए पूछा, "यह क्या है ?"

"पढ़कर देख लीजियेगा। क्या आज आप क्लब चलेंगी ?"

"नहीं।"

"तो क्या शाम को सैर करने चलना होगा या सिनेमा ?"

"मिस्टर विनोद, मुझे वालिद साहब ने आपसे मिलने, बोलने और घूमने के लिये मना कर दिया है।"

"तो अब आप अकेली जाया करेंगी ?"

"नहीं, नौकरानी साथ रहा करेगी।"

"खूब ! उम्मीद है मेरे साथ से उसका साथ आपके लिये अधिक पुरलुत्फ होगा।"

"ट्रायल ले रही हूं।"

"मेरी दिली ख्वाहिश है कि आपका ट्रायल कामयाब रहे।"

विनोद ने आदाबअर्ज़ कर, जाने के लिये मुख मोड़ लिया। मगर सलीमा ने बुला लिया, "मिस्टर विनोद!"

विनोद ने घूमकर कहा, "मगर आपके वालिद साहब ने तो मना किया है न?"

"हां, मगर चिट्ठी लिखकर बातचीत करने से मना नहीं किया। सिरफ मिलने, बोलने और घूमने से मना किया है।"

"तो फिर?"

"फिर यह कि इस चिट्ठी का जवाब कल दूंगी।"

"जैसा मन करे।"

[७]

सायंकाल शेखरानन्द ने स्टूडैंट्स फैडरेशन में जाने वाले डैलीगेटों को चायपार्टी दी थी। यह निमन्त्रण सलीमा को भी मिला था। वह वहां नहीं पहुंची। उसने लिख भेजा था, "चूंकि मैं दिल्ली नहीं जा रही, इस कारण मेरा इस पार्टी में सम्मिलित होना व्यर्थ है।"

विनोद इस पार्टी में उपस्थित था। शेखरानन्द ने सलीमा की चिट्ठी सब को सुनाई। पश्चात् विनोद से पूछा, "अब बताइये कि जनाब दिल्ली जा रहे हैं या नहीं?"

"जा रहा हूं," विनोद का उत्तर था।

"हुर्रे! हुर्रे!!" मिस्टर कृष्ण ने ताली पीटते हुए कहा, "क्या प्रेम की गम्भीरता की थाह मिल गयी?"

विनोद ने हलकी मुस्कराहट से कहा, "कृष्ण भैया, प्रेम की नहीं, प्रत्युत हिन्दुस्तानी चरित्र की थाह मिल गयी है।"

शेखरानन्द, जो चाय का सामान मेज़ पर सजा रहा था, बोला, "क्या तुम इस छोकरी के चरित्र से हिन्दुस्तान भर की थाह पा गये?"

"हंडिया में से एक दाना देखने से सारी हंडिया की अवस्था प्रतीत हो जाती है।"

इस पर श्यामकुमार शेखरानन्द को सम्बोधन कर बोला, "दादा, चोट गहरी है। ज्यादा मत छेड़ो, खून बहने लगेगा।"

विनोद ने लम्बी सांस खैंचकर कहा, "तुम सब घोंघा हो। तुम इस हृदय की जलती आग को नहीं समझ सकते। प्रेम का सार प्रेमी ही जानता है। तुम क्या समझते हो कि मैं सलीमा के वियोग में व्याकुल हो रहा हूं? मेरा प्रेम, मेरा मज़हब, मेरा धर्म-ईमान सब कुछ मेरा देश है। जो भी देश-सेवा में मेरा सहायक होता है, वह मेरा मित्र, प्रिय और प्रेम-भाजन है। जब कोई छोटे-मोटे मूर्खतापूर्ण रिवाजों को इस महान आदर्श-प्राप्ति में बन्धन बनाता है तो उसे मैं चरित्रहीन मानता हूँ।

"कल मैं अपने मन की अवस्था को ठीक-ठीक समझ नहीं सका था। मैं सलीमा को चाहता हूं। मैं उसे देश-सेवा में अपना साथी समझ कर ही प्रेम करने लगा था। मुझे कल ही विदित हुआ है कि बाहिरी विचार-स्वतन्त्रा के ढोल में प्राचीन रूढ़ियों और विकारों का मैला भरा है।"

इस समय चाय का सामान तैयार हो गया था और चारों मित्र कुर्सियों पर मेज़ के चारों ओर बैठ गये। शेखरानन्द ने चाय बनानी आरम्भ कर दी। विनोद ने पेस्ट्री के एक टुकड़े को उठा, हाथ में पकड़, मुख में डालने से पूर्व कहा, "हम जो प्रस्ताव यहाँ से ले जा रहे हैं वह कौन उपस्थित करेगा?"

"तुम और कौन?" शेखरानन्द ने कहा।

"दादा, तुम।"

"मगर मुझे तो इस बात में कुछ विशेष उत्साह नहीं।"

कृष्ण, जो चाय की सरूकिया लगा रहा था, अचम्भे में शेखरानन्द का मुख देखने लगा। शेखरानन्द ने आखें नीची किये हुए चाय पीनी आरम्भ कर दी। कृष्ण ने बात स्पष्ट करने के लिये कहा, "दादा, तुम तो डैलीगेशन के मुखिया हो।"

इसका उत्तर विनोद ने दिया, "पूर्ण रूप से तो मैं भी इससे सहमत नहीं हूँ। मैं समझता हूं शिक्षा-ग्रहण करने के लिये अभी विलायत जाने

से कुछ लाभ नहीं है। मैं देश का रुपया ऐसे कामों के लिये व्यय करना व्यर्थ समझता हूं।"

"परन्तु दूसरे देशों ने तो ऐसे ही उन्नति की है।"

"ठीक है। परन्तु एक बात हम भूल जाते हैं। किसी भी गुलाम देश ने अपने पर राज्य करने वालों से कोई गुण की बात नहीं सीखी। जब कुछ प्राप्त हुआ है तो मित्र-राष्ट्रों से प्राप्त हुआ है। गुलामों का मित्र संसार में कौन है?"

शेखरानन्द ने कहा, "ठीक मेरा भी यही विचार है। कुछ लोग आशा लगाये हुए हैं कि प्रान्तीय सरकारें हमारे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगी और हम में से कुछ को विलायत जाकर घूमने का अवसर मिल जायगा। मैं यह समझता हूं कि मैं तो कुछ सीखने जाऊंगा नहीं। यदि दूसरों को यह अवसर मिले तो मैं बाधा क्यों डालूं?"

"यदि इस विषय में आप दोनों के विचार इतने ढीले हैं तो इस प्रस्ताव को लेकर वहां जाने की आवश्यकता ही क्या है?"

इसके उत्तर में विनोद ने कहा, "क्या सरकार से विलायत जाने के लिये वज़ीफे मांगने के लिये फैडरेशन बनाई गयी है? मेरे मन में तो फैडरेशन बनाने और उसमें जाने का केवल एक ही प्रयोजन है—वह है देश को स्वतन्त्र करने में विद्यार्थियों का भाग।"

"देखो भैया कृष्ण, हम नौजवान हैं। हमारे बीबी-बच्चे नहीं। हमें किसी को कुछ देना-लेना नहीं। हम में बल है, बुद्धि है, शिक्षा और साहस है। हम भारतवर्ष की उच्चतम विभूति हैं। यदि हम देश की दासता की जंजीर तोड़ने का यत्न नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? यह महान कार्य बूढ़े, शिथिल, दुर्बल, बाल-बच्चों के बोझ से दबे हुए निष्वीर्य लोगों के हाथ में सौंप देने से कैसे हो सकेगा? मैं तो समझता हूं कि यह हमारा काम है और स्टूडेंट्स फैडरेशन इस काम को करे।"

कृष्णकुमार के मन में फैडरेशन का यह उद्देश्य नहीं था। वह चाहता था कि व्यवहारिक राजनीति विद्यार्थी-मण्डल से बाहर रहे। उसने

चाय पी ली थी और प्याली मेज पर रखते हुए पूछा, "क्या उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपने में अधिक और अधिक योग्यता उत्पन्न करना देश-सेवा नहीं है ? क्या अपने को शिक्षा-प्राप्ति में संलग्न रखना देश को उन्नत करने का सर्वोत्तम साधन नहीं है ?"

शेखरानन्द का उत्तर था, "देश को इस उन्नति से लाभ के स्थान पर हानि होती है। यदि हमारी योग्यता को प्रयोग करने वाला हमारे देश के लाभ के लिये प्रयोग करे तब तो देश को लाभ होगा। वर्तमान परिस्थिति में योग्य पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी का प्रयोग तो सरकार ही करती है। सरकार की नीति हिन्दुस्तान के लाभ के लिये नहीं है। परिणाम यह हो रहा है कि हिन्दुस्तानी नौजवानों की योग्यता उस तेज़ तलवार की भांति है जो दुश्मन के हाथ में चली जाती है।"

इस पर विनोद ने कहा, "हमें पढ़ने और योग्यता प्राप्त करने में आपत्ति नहीं। हम तो ऐसा कार्यक्रम उपस्थित करना चाहते हैं कि जिससे विद्यार्थी कॉलिजों में पढ़ाई करते हुए भी देश को स्वतन्त्र करने में सहायक बन सकें।"

"तो आपका कार्यक्रम असहयोग अथवा कानून-भंग का नहीं होगा ?"

"नहीं ! नहीं ! बिलकुल नहीं। हमारा कार्यक्रम तो रचनात्मक है।"

"खद्दर इत्यादि का प्रचार करना ?"

"मिस्टर कृष्णकुमार, यह कूड़ा-करकट तुम्हारे दिमाग़ में कहां से आगया है ?"

"तो हिन्दू-मुसलमानों में एकता पैदा करना है ?"

"ओह ! हो ! मालूम होता है कांग्रेसी अखबारों को पढ़कर तुम्हारी भी विचार-शक्ति लोप हो गयी है। देखो, मैं बताऊं यह अछूतोद्धार, हिन्दू-मुसलमान में एकता और खद्दर इत्यादि जो कार्यक्रम है यह बहुत अच्छा होते हुए भी देश को स्वतन्त्र नहीं कर सकेगा। हम तो राजनीतिक कार्य-क्रम का रचनात्मक अंग लेना चाहते हैं। यद्यपि विस्तार से कार्यक्रम तो वहां ही बनेगा, फिर भी कुछ संकेतमात्र मैं यहां बता देता हूं। कार्यक्रम

का एक अंग प्रत्येक भारतवासी को अपनी राजनीतिक परिस्थिति से असन्तुष्ट कर देना है। दूसरा अंग भारत में अंग्रेजी राज की जड़ों का लोगों को ज्ञान कराना। तीसरा अंग है भारतवासियों में लोगों को दो श्रेणियों में बांटना और सब को दो श्रेणियों में देखना—देश-हितैषी और देश द्रोही। चौथा अंग है अनुशासन उत्पन्न करना।"

यद्यपि कृष्णकुमार को यह कार्यक्रम कुछ आकर्षक प्रतीत नहीं हुआ, फिर भी उसने पूछा, "किन्तु विद्यार्थी इसको करेंगे कैसे?"

"हां, यह हम बता सकते हैं। हिन्दुस्तान भर में सब कॉलेजों में तीन-तीन महीनों की लम्बी छुट्टियां होती हैं। हम चाहते हैं कि विद्यार्थियों का यह समय देश-सेवा के लिये प्रयोग में लाया जाय।"

उस दिन जब चाय-पार्टी समाप्त हुई तो सब के मन में यह योजना भर रही थी।

[८]

सलीमा ने घर पहुँचते ही विनोद की चिट्ठी पढ़ी और उसे यह जानकर बहुत खेद हुआ कि उसके पिता एक हिन्दू को मुसलमान बनाने के बदले में अपनी लड़की न्योछावर करने को तैयार हैं। जब उसने बता दिया था कि वह विनोद से विवाह करना स्वीकार नहीं करती तो यह सब झगड़ा क्यों खड़ा किया गया। यदि वह विनोद से विवाह के लिये राजी भी होती तो भी वह उसे मुसलमान बनने के लिये बाध्य करने के लिये राज़ी न होती। मज़हब को वह मनुष्य की निज की बात मानती थी। वह सोचती थी कि एक घर में पति हिन्दू और पत्नी मुसलमान क्यों नहीं हो सकते। क्यों हिन्दू मुसलमान को हिन्दू बनाने में और मुसलमान हिन्दू को मुसलमान बनाने में हठ करते हैं। उसके मन में विद्रोह उठ रहा था। वह इन प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ फेंकने के लिए बेचैन हो रही थी। यदि उसके मन में विनोद के साथ विवाह करने का किंचितमात्र भी विचार होता तो वह मा और बाप के इस पुराने, जर्जरीभूत विचारों और भावों को पाव तले रौंदकर विवाह कर लेती, परन्तु विनोद ने उसके मन में इस

भाव को उत्पन्न ही नहीं किया था। वह उसे एक मित्र समझती थी और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

वह लिखने की मेज़ के समीप बैठ चिट्ठी का उत्तर लिखने लगी :—

प्रिय विनोद,

आपकी चिट्ठी को पढ़कर बहुत अचम्भा हुआ। मेरे पिताजी आपके पिताजी से मिले और हमारे विवाह की शर्तें तय करने लगे। इससे आप परेशान और नाराज़ हो गये। मैं समझती हूँ आपके नाराज होने की कोई वजह नहीं। विवाह तो, यदि होना होगा तो, मेरा और आपका होगा। शर्तें तो हमें तय करनी चाहिये न कि आपके और मेरे पिता को। उनका विवाह तो होगा नहीं। आपको नाराज होने से पहले मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करनी चाहिये थी।

मैं आपसे विवाह नहीं करना चाहती। सिर्फ इसलिये कि मैंने अभी विवाह नहीं करना। जब विवाह ही नहीं होना तो उसके लिये शर्तों का सवाल ही पैदा नहीं होता। मैं मुसलमान, सही मायनों में, नहीं हूँ। मैं खुदा को नहीं मानती। खुदा को रसूल की जरूरत होती है यह मेरे दिमाग में नहीं आता। मशरक और मग़रब मे मुझे कुछ फरक मालूम नहीं होत सूअर और बकरे के गोश्त में सिवाय स्वाद के और कोई फर्क नहीं है। जब मैं ऐसे विचार रखती हूँ तो आपको भला मै मुसलमान होने के लिये कहूँ, यह कैसे हो सकता है ?

मैं समझती हूँ कि इस सफाई के बाद मेरा आपका मेल-जोल कायम रह सकता है। तब तक

आपकी मित्र, सलीमा

उसने चिट्ठी लिफाफे में बन्द कर, पता लिख, नौकर को दे दी कि जाकर डाक में डाल आये।

दूसरे दिन कॉलेज में सलीमा इस प्रतीक्षा में थी कि विनोद उससे मिलने आवेगा। परन्तु वह नहीं आया। एक बार उसने कॉलेज-हॉल के एक कोने में विनोद और शेखरानन्द को गंभीरता से बातचीत करते देखा

था। वह विनोद से बातें समाप्त होने के बाद मिलने आने की आशा में थी कि पढ़ाई की घण्टी बज गयी। वह पढ़ने चली गयी। जब पढ़ने के पश्चात् हॉल में आई तो विनोद वहा से चला गया था। यह समझ कि विनोद का उत्तर डाक से आवेगा वह घर लौट आई। उसके नाम की कोई चिट्ठी नहीं थी।

वह रात भर दिन चढ़ने की प्रतीक्षा करती रही। दिन हुआ और वह समय से पूर्व ही कॉलेज जा पहुँची। विनोद अभी नहीं आया था। उसकी पढ़ाई पौने ग्यारह बजे आरम्भ होती थी, और वह ठीक समय पर पहुँचा। वह हॉल के बाहर अपनी बाइसिकल को ताला लगा रहा था कि घण्टा बज गया। सलीमा अपनी श्रेणी में जा बैठी।

उस दिन पढ़ाई समाप्त होते होते वह विनोद से मिलने के लिये अधीर हो उठी। विनोद प्रिन्सिपल के साथ कमरे में खड़ा बातें कर रहा था। कितनी ही देर तक सलीमा उसकी प्रतीक्षा में खड़ी रही। वह बाहर नहीं आया। धीरे-धीरे कॉलेज के सब विद्यार्थी चले गये। वह अकेली रह गयी। अब उसे अपना वहा खड़ा होना अयुक्तिसंगत जंचने लगा। अन्त में निराश हो घर को चल पडी।

अगले दिन विनोद कॉलेज में नहीं आया। तीन बजे की डाक-गाड़ी से देहली जाना था और इसी की तैयारी के कारण वह कॉलेज हाजिर नहीं हुआ। यह सलीमा को दफ्तर में क्लर्क से ज्ञात हुआ। वह जब विनोद को नहीं पा सकी तो विनोद की हाज़री लगी है अथवा ग़ैरहाज़री जानने के लिए दफ्तर गयी। वहा क्लर्क से पता चला कि विनोद का पाच दिन की छुट्टी के लिये प्रार्थना-पत्र आया है।

इस बात ने उसके मन को भारी ठेस पहुँचाई। वह सोचती थी कि क्या विनोद इतना निष्ठुर हो सकता है कि जाने पूर्व मिलकर भी न जाय। यह अच्छी मित्रता है। उस समय दो बजकर पचीस मिनट हो चुके थे। उसे स्टेशन जाकर मिलने को समय बहुत कम था। यह सोच कि गाड़ी देर से भी आ सकती है वह कॉलेज से बाहर निकल आई। सौभाग्य

से एक तांगा खड़ा था। पूछा, "खाली है ?"

'हा हजूर' का उत्तर पाते ही कूदकर टागे में बैठ गयी।

"बड़े स्टेशन पर ले चलो। अगर गाड़ी छूटने से पहले पहुँचा दोगे तो इनाम दूंगी।"

तागे वाले ने घोडे के चाबुक लगाई और तागा हवा मे बातें करने लगा। अन्तर बहुत अधिक था और मार्ग भी सर्वथा साफ नहीं था। इस पर भी तागे वाले ने कमाल की। जब तागा स्टेशन की ड्योढ़ी मे पहुँचा तो गार्ड सीटी बजा रहा था। सलीमा एक रुपया, जो पहले ही निकाल हाथ मे पकड़े हुए थी, तागे वाले के सम्मुख फेंक प्लेटफार्म की तरफ भागी, मगर गाड़ी छूट गयी थी और वह गाड़ी को वेग से गति पकड़ते देखती रह गयी।

कई मिनट तक वह प्लेटफार्म पर भौंचक्की सी खडी रही। उसके मन में आया कि शायद विनोद भी गाड़ी से रह गया हो और रात की गाड़ी से जाने का विचार रखता हो। इसी प्रकार सोचते हुए स्टेशन से बाहर निकल आई। तागे में सवार हो, तागे वाले को हिवैट रोड, जहा विनोद का मकान था, चलने के लिये कह दिया। हिवैट रोड पर पहुंचने से पहले ही उसे अपने उन्माद का ज्ञान हो आया। लाटूश रोड से ही उसने तागे को अपने घर की तरफ लौटा लिया। मन में सोच रही थी कि यह क्या पागलपन था। आखिर वह मिलकर नहीं गया तो कौन गज़ब की बात है। साधारण मित्रता ही तो है। कॉलेज के दो विद्यार्थियों की मित्रता एक रेल के डिब्बे में सफर करने वाले दो मुसाफिरों से अधिक क्या हो सकती है ?

वह पिछले चार दिन की घटनाओं को मन में स्मरण कर रही थी। उसके पिता की विनोद के पिता से उसके विवाह की चर्चा, फिर विनोद से बोलने और मिलने पर प्रतिबन्ध, विनोद की चिट्ठी और उसका उत्तर देना, पश्चात् विनोद की एकदम लापरवाही—ये सब घटनायें ऐसी थीं जिनमें वह अपना कुछ भी दोष नहीं समझती थी। वह सोचती थी कि विनोद को जब उसने पत्र में सफाई दे दी है तो फिर उसके नाराज़ होने का कोई

कारण नहीं रहा।

इसी प्रकार के विचारों में वह तांगे में घर पहुँची। तांगे को विदा कर अपने मकान की ड्योढ़ी पर जा पहुँची। वहां एक नौकर खड़ा मुस्करा रहा था। यह केवल भासमात्र था अथवा यथार्थ, कहना कठिन है। सलीमा को ऐसा प्रतीत हुआ था और इससे उसके माथे पर त्योरी चढ़ गयी। वह खड़ी हो गयी और पूछने लगी, "क्या है?"

"कुछ नहीं, हजूर," ऐसा कहते हुए उसकी मुस्कराहट तो लोप हो गयी, परन्तु सलीमा को ऐसा जान पड़ा कि उसकी आखों की चमक बढ़ गयी है। सलीमा कुछ नहीं समझी और मकान के भीतर जाने ही वाली थी कि उसे स्मरण हो आया कि विनोद के नाम की चिट्ठी इसी नौकर को डाक में डालने को दी थी। वह फिर लौट आई और पूछने लगी, "वह चिट्ठी डाल दी थी?'

नौकर ने सतर्कता से उत्तर दिया, "डाली क्यों नहीं, हजूर? कौन कहता है नहीं डाली?"

इस उत्तर ने सलीमा को संशय में डाल दिया। उसने दोषारोपण तो किया नहीं था फिर यह निर्दोषता सिद्ध करने का यत्न क्यों। उसने घूरकर नौकर की ओर देखते हुए कहा, "बेवकूफ, तेरी आखें कह रही हैं।"

"नहीं हजूर! हम तो आपके गुलाम हैं। कैसे आपका हुक्म नहीं मानेंगे?"

सलीमा ने यह उत्तर आधा ही सुना था। वह मकान के भीतर चली गयी। नौकर की सफाई ने उसके मन को विश्वास दिलाने के स्थान संशय ही उत्पन्न किया था। वह सोच रही थी कि उसकी मुस्कराहट, उसकी आखों का बिलबिलाना और सबसे अधिक अकारण अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने का यत्न, क्या यह प्रकट नहीं करता कि चिट्ठी डाली नहीं गयी। क्या इस नौकर का इतना साहस हो गया है कि उसके पत्र को रोक ले? इस बात की खोज करनी चाहिये। यह खोज तो विनोद के लौटने पर ही हो सकती थी। परन्तु उसे उसकी चिट्ठी रोकने में क्या प्रयोजन हो सकता है?

इस प्रश्न के मन में उठते ही इसका उत्तर भी आया और वह निर्णय करने के लिये बेचैन हो उठी। उसने नौकरानी से जो उसके लिये चाय और नाश्ता लाई थी पूछा, "अम्मी और अब्बाजान घर पर हैं?"

"नहीं, दोनों मोटर-गाड़ी में कहीं गये हैं।"

"कुछ कह गये हैं कब लौटेंगे?"

"हा हजूर, कह गये हैं, शाम की चाय बाहर करेंगे।"

चाय समाप्त हुई। नौकरानी बर्तन उठा चली गयी। अब फिर चिट्ठी की बात उनके मन में आई और वह अपने संशय की परीक्षा करने के लिये अपने पिता के लिखने-पढ़ने के कमरे में चली गयी। मेज पर बहुत से काग़ज़ बिखरे पड़े थे। उसने काग़ज़ों को उलट-पलट कर देखना आरम्भ किया। मेज पर का एक-एक काग़ज़ देख डाला। उसकी चिट्ठी वहा नहीं थी। उसने मेज के दाराजों की तलाशी ली, कुछ परिणाम नहीं निकला।

अब उसे अपने पिता पर सन्देह करने पर पश्चाताप होने लगा। अपने आपको बहुत ओछे विचार की समझ अपने पर घृणा करने लगी। उसने मेज़ पर सब काग़ज़ वैसे ही बिखेर दिये जैसे पहले बिखरे हुए थे और अपने पिता पर सन्देह करने पर संताप करती हुई बाहर आने लगी कि उसकी साड़ी का किनारा रद्दी कगज़ों की टोकरी से उलझ गया। टोकरी उलट गयी और रद्दी काग़ज़ फर्श पर बिखर गये। वह नहीं चाहती थी कि उसका पिता जान जाये कि किसी ने वहा की तलाशी ली है। अतएव वह वहीं बैठ गयी और बिखरे काग़ज़ों को उठा २ कर टोकरी में भरने लगी। इन रद्दी काग़ज़ों में उसकी दृष्टि एक लिफाफे पर पड़ी जिसको फाड़कर चिट्ठी निकाल ली प्रतीत होती थी। यह वही लिफाफा था जिसमें उसने विनोद को चिट्ठी भेजी थी। उसकी अपनी लिखावट में लिफाफे पर पता लिखा था।

अपने पिता पर सन्देह करने पर जो संताप हो रहा था वह अब क्रोध में बदल गया। मेरी चिट्ठी अब्बाजान ने मार्ग में रोक ली और मुझे बताया भी नहीं, इसी आवेश में वह खाली लिफाफे को हाथ में लिये हुए

अपने कमरे में चली आई।

वह भली भांति जानती थी कि उसने अभी तक कोई ऐसा काम नहीं किया जो किसी भांति भी उसके अपने लिये अथवा उसके माता-पिता के लिये लज्जा का कारण हो सके। तो फिर उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध क्यों लगा दिया है, ऐसा सोचते हुए उसके दिमाग़ में चक्कर आने लगा। वह इस प्रतिबन्ध को सहन करने में अपने आपको अशक्त पाती थी। उसके मन में विद्रोह उत्पन्न हो रहा था और वह अपने विद्रोह को सफल और प्रभावशाली बनाने की योजना सोचते हुए पलंग पर लेट गयी। दिन भर की परेशानी से उसका दिमाग़ थक गया था। उसे नींद आगयी और वह सो गई।

उसकी नींद तब खुली जब उसकी मा ने जोर से पुकारा, "सलीमा, सलीमा कहा हो?"

सलीमा ने जागकर आवाज़ दी, "हां अम्मी जान, सोने के कमरे में हूं।"

सलीमा की मां उसी कमरे में चली आई। पीछे पीछे नवाब साहब थे।

"क्या बात है बेटी, आज इस वक़्त सो रही हो?"

"थक गयी थी। नाश्ता किया और ज़रा आराम करने के लिये लेटी थी कि आंख लग गयी। अम्मी, कहा गयी थीं?"

इसका उत्तर नवाब साहब ने दिया, "तुम्हारे लिये कुछ खरीदने।"

"मुझसे राय लिये बिना।"

"यह एक तोफा है। तोफा देने वाले की मर्जी का होता है न कि लेने वाले की पसन्द का।"

"पर मेरी सालगिरह तो अभी दूर है। आज कौन खास बात है?"

अब सलीमा की माँ ने कहना आरम्भ किया। दोनों सलीमा के पलंग पर बैठ गये थे। वह बोली "बेटी जब बड़ी हो जाती है तो मां-बाप को एक भारी फिकर लग जाती है। उन पर एक फ़र्ज़ होता है और जब तक वे अपना फ़र्ज़ अदा नहीं कर लेते उन्हें सकूनत हासिल नहीं होती। यह काम वालदैन का है कि वे अपनी बेटी के लिये एक शरीफ़, लायक,

बारसूख और बसर-आबुर्दा शौहर तलाश करें। जब वे ऐसा करने में कामयाब हो जाते हैं तो उनकी खुशी की इन्तहा नहीं रहती। आज वही हालत हम दोनों की है। हम बहुत खुश हैं।

सलीमा का माथा ठनका। इस पर भी जानने के लिये कि वह कौन महानुभाव हैं जिन्हें उसका पति बनने के योग्य समझा गया है उसने पूछा, "और वह हज़रत, शरीफ, लायक, बारसूख़ और अमीर कौन हैं?"

अब नवाब साहब ने बताने का यत्न किया, "रियासत हैदराबाद में औरंगाबाद के करीब एक जागीर है। जागीर के मालिक हैं नवाब सर मुहम्मद असलम साहब, बहादुर। दूर का शाही खानदान के साथ रिश्ता भी है। नवाब साहब की शादी लखनऊ में यहा के पुराने नवाबों के खानदान में हुई है। उनका साहबज़ादा अभी विलायत से तालीम हासिल कर लौटा है। उसी को हमने पसन्द किया है।"

"विलायत में क्या पढ़ते थे?"

"यह तो हमने पूछा नहीं। शायद बैरिस्टरी पास किये होंगे।"

"कितने साल विलायत में रहे हैं।"

"हा, बताते थे कि दस साल वहा रहे हैं और अस्सी हज़ार उनकी तालीम पर खर्च हुआ है।"

सलीमा इतनी बड़ी रकम सुन विस्मय में लीन हो गयी। उसे विचार में लीन देख मा-बाप ने समझा कि लज्जा के मारे चुप है। नवाब साहब ने बात को जारी रखते हुए कहा, "हमने लड़का देखा है। अच्छा खासा जवान है। हम उसकी फोटो भी लाये हैं।"

सलीमा की मां ने एक लिफ़ाफे से फोटो निकालकर सलीमा के सामने कर दी। सलीमा ने सरसरी तौर से तसवीर देख ली। तसवीर से तो बाहरी रूप देखा जा सकता है और वह भी कुछ अंशों में ही। इसमें भी फोटोग्राफर बहुत कुछ चालाकी कर सकता है। इस सरसरी निगाह में भी जो कुछ उसने देखा वह अति भयानक था। लम्बी लम्बी अकड़ी हुई मूछें, चपटा नाक, रूखसार की हड्डी उभरी हुई, ठुड्डी दृढ़ और आगे को

उभरी हुई। हां यह ठीक था कि तसवीर में कमख्वाब की अचकन, बनारसी साफा और तिल्लेदार लखनवी जूता खूब चमक रहा था।

सलीमा ने नाक चढ़ा, मुख मोड़ लिया। सलीमा की मां ने केवल यह नखरा समझा और कहने लगी, "उसने तुम्हें देखा है। अगरचे वह तुम्हें पर्दे में रखना पसन्द करेगा, मगर तुम्हारे पर्दा न करने से ही वह तुम्हें पसन्द कर सका है। कुछ दिन हुए तुम सिनेमा देखने गयी थी। वहा उसने तुम्हें देखा था। पीछे पता लगाकर आज उसने हमारे पास तजवीज भेजी थी। मैं और तुम्हारे वालिद शरीफ बातचीत करने गये थे। हमने सब तरह इतमिनान कर लिया है और बात पक्की हो गई है। अगले नये चाद के दिन तुम्हारी सगाई होगी। तुम्हारे वालिद साहब यह रसम औरंगाबाद जाकर अदा करेंगे।"

अब सलीमा से न रहा गया। उसने पूछ ही लिया, "यह जानवर शरीफ है और लायक है, यह आपने कुछ मिनटों की मुलाकात से कैसे जान लिया?"

"जानवर?" नवाब साहब ने हैरानी में पूछा, "नवाब सर मुहम्मद असलम के० सी० आई० ई० के साहबजादे, नवाबज़ादा इफ्तिखार अहमद को तुम जानवर कहती हो?"

"तसवीर से तो इसके सिवा और कुछ मालूम नहीं हुआ। उसकी काबलियत, शराफत, इन्सानियत और दूसरे औसाफ़ तो मिलकर ही जाने जा सकते हैं। आपने ये सब बाते इतने कम अर्से में कैसे जान लीं?"

"इनके जानने की जरूरत ही क्या है? नवाब वाजिदअली शाह के और फख़रेदीन हज़ूर के खानदान में होना क्या इन तमाम बातों की गारन्टी नहीं है? आख़िर इससे ज्यादा तुम क्या चाहती हो?"

"मैं क्या चाहती हूँ यह आपने कभी जानने की कोशिश की है?"

"तुम क्या चाहती हो बताओ?" नवाब साहब ने कुछ तेजी में पूछा।

"मैं इस जानवर की शकल के आदमी से शादी करना नहीं चाहती।"

"तो तुम किससे शादी करना चाहती हो ?"

"मैंने फैसला नहीं किया। अभी तो मैं डाक्टरी पढ़ना चाहती हूं।"

इतना कह सलीमा वहा से उठ खड़ी हुई। वह बाहर अपने पढ़ने के कमरे में जाना चाहती थी कि नवाब साहब ने उसे रोकते हुए कहा, "ठहरो, कहां जारही हो ?"

सलीमा घूमकर, माता-पिता की ओर जो अभी पलंग पर बैठे थे, देखने लगी। नवाब साहब ने बैठे-बैठे ही कहा, "डाक्टर बनकर क्या करोगी ?"

"आप हाली का दीवान पढ़ते रहते हैं। इससे क्या होता है ?"

"इसके पढ़ने में लुत्फ आता है।"

"बस तो यही बात डाक्टरी में है।"

"मगर हाली के दीवान ने मुझे शादी करने से रोका नहीं था।"

"वह इसलिये कि आप की शादी ने भी हाली को पढ़ने से रोका नहीं होगा। मगर यहां तो शादी डाक्टरी को रोक देगी।"

नवाब साहब निरुत्तर हो गये। अब उन्होंने डाटकर काम निकालने के विचार से कहा, "हा, तुम्हें डाक्टरी छोड़नी होगी। इतना अच्छा रिश्ता कहीं और मिलना मुश्किल है।"

"आपने कैसे जान लिया कि यह बन्दर की शक्ल का आदमी बहुत अच्छा है ?"

"इनके खानदान, इनके रसूख और लड़के की आला तालीम से।"

"खानदान और रसूख की बात तो मैं जानती नहीं। हां इसकी आला तालीम का अन्दाज तो इसी से मिलता है कि विलायत में दस साल रह आया है, हिन्दुस्तान का अस्सी हज़ार रुपया खर्च कर आया है और अभी तक कमख्वाब के कपड़े पहनता है, औरतों को पर्दे में रखना चाहता है और शायद खुद चूड़िया और बालियां पहनेगा। अब्बाजान, मैं इससे शादी नहीं करूँगी।"

"तुम विनोद से शादी नहीं करोगी और इससे भी नहीं, तो आखिर

तुम करोगी क्या ?"

सलीमा ने केवल यह कहा, "मुझे अब कॉलेज का काम करना है।" और वह बाहर पढ़ने के कमरे में चली गयी। वहा एक बड़ी सी किताब निकाल अपने सामने रख पढ़ने का बहाना करने लगी। सलीमा के माता-पिता विचार-मग्न नीचे उतर गये।

सलीमा किताब को सामने रखे हुए सोच रही थी कि अब विद्रोह किये बिना रहा नहीं जायगा। वह विनोद से विवाह के लिये उत्सुक नहीं थी, परन्तु सोचती थी कि इस नवाब के बेटे से तो विनोद कितना ही अच्छा है। कम से कम उसके गुण-दोष वह जानती थी। इस नवाबजादे की जो बात वह अभी तक जान सकी थी उससे उसके प्रति घृणा ही उत्पन्न हुई थी। सबसे बढ़ कर उसे अपनी मा का यह कहना कि वह उसे पर्दे में रखना पसन्द करेगा, अत्यन्त मूर्खतापूर्ण प्रतीत हुआ था। एक लड़की जो आज लड़कों के साथ बैठकर पढ़ती है, उनसे वाद-विवाद करती है, उनसे टैनिस, बेडमिंटन खेलती है, उनमें लेक्चर देती है और सिनेमा देखती है वह पर्दे में डाल दी जायगी। बेहूदा है। यह नहीं हो सकता।

सलीमा ने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अगर उसके मां-बाप ने जबरदस्ती इस नवाबज़ादे से उसका विवाह करना चाहा तो वह फौरन विनोद से विवाह कर लेगी।

[६]

देहली में अखिल भारतवर्षीय विद्यार्थी-महा-मण्डल का अधिवेशन बड़े सामारोह से हो रहा था। विद्यार्थी-प्रतिनिधियों के लिये ठहरने का प्रबन्ध कॉलेज-होस्टलों में किया गया था। लगभग एक सहस्र प्रतिनिधि बाहर से आये थे। कोचीन और त्रावणकोर से लेकर गोहाटी, कलकत्ता और दूसरी ओर कराची और पेशावर तक के विद्यार्थी उपस्थित थे। देहली के विद्यार्थियों की भारी संख्या स्वागतकारिणी में थी और नगर के रईस तथा अन्य पढ़े-लिखे विद्वान भी दर्शकों के घेरे में आये हुए थे। अधिवेशन का प्रधान एम० सी० सरकार कलकत्ता प्रेज़िडेंसी

कॉलेज का एक विद्यार्थी था।

देहली के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज की लड़कियों ने वन्देमातरम् के गीत से सभा का आरम्भ किया। स्वागताध्यक्ष के स्वागतार्थ भाषण के पश्चात सभापति का भाषण हुआ। इसमें उसने विद्यार्थी-मण्डल की आवश्यकता और काम पर एक बहुत सुन्दर निबन्ध पढ़कर सुनाया। विद्यार्थियों के युनिवर्सिटी-सिंडीकेट में आवाज पहुँचाने की आवश्यकता पर और कॉलेजों के प्रबन्ध में अपनी राय भेजने पर बहुत जोर दिया था।

प्रधान के भाषण के पश्चात सभा विसर्जन हुई और विषय-निर्धारिणी की बैठक आरम्भ हुई। बीसियों प्रस्ताव और सम्मतियां आई हुई थीं। इनमें शेखरानन्द की ओर से लड़कों को वजीफे देकर विलायत भेजने का प्रस्ताव भी था। अन्य प्रस्ताव जो वहां पहले पहुँच चुके थे विद्यार्थियों की पोशाक और खान-पान से लेकर नौकरियों तक की बातों पर थे।

जब प्रधान मन्त्री इन प्रस्तावों को श्रेणी-बद्ध कर रहा था, विनोद, कुछ निवेदन करने के बहाने, प्रधान से आज्ञा लेकर, खड़ा हो, फैडरेशन के उद्देश्य के विषय में कहने लगा, "मिस्टर प्रेज़िडैंट, ये बच्चों की बातों को मण्डल के अन्तिम दिन के लिये स्थगित कर दीजिये। हम हजारों मीलों का सफर तय कर यूनिफार्मों या भोजन-व्यवस्था पर प्रस्ताव पास करने नहीं आये। हमें मण्डल को क्रियाशील संस्था बनाना चाहिये। इस कारण मैं यह प्रस्ताव करता हूँ:—

"यह मण्डल भारतवर्ष के विद्यार्थियों से अनुरोध करता है कि वे अपने लम्बे अवकाश के दिनों को देश में रचनात्मक काम करने के लिये व्यय करें।"

इस प्रस्ताव को उपस्थित कर विनोद ने रचनात्मक काम की व्याख्या कर दी। उसने कहा, "देश में विदेशी राज्य, सभ्यता और रस्मों-रिवाज से असन्तोष उत्पन्न करना हमारा पहला काम होना चाहिये। देश में राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न करना दूसरा काम होना चाहिये। देश में साम्यता का प्रचार करना हमारा तीसरा काम है। खान-पान, जात-पात के

झगड़ों को दूर करना यह एक और काम है। और सबसे अन्तिम परन्तु सबसे आवश्यक काम यह है कि जनसाधारण को ज्ञान करा दिया जाय कि भारतवर्ष में विदेशी राज्य की नींव क्या है और इसको किस प्रकार उखाड़ फेंका जा सकता है।"

इस पर प्रधान ने कहा, "विद्यार्थी-मण्डल एक अराजनीतिक (non-political) संस्था है। इसमें राजनीतिक बातों पर विचार नहीं हो सकता।"

विनोद ने कहा, "क्या इस देश में कोई भी काम है जो राजनीति से सम्बन्ध नहीं रखता? हम लोगों का सम्बन्ध शिक्षा से है न। क्या कोई भी ऐसा सज्जन उपस्थित है जो यह कहता है कि हम लोगों की शिक्षा पर हमारी राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव नहीं? क्या यह सत्य नहीं कि यूनिवर्सिटियों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भी राजनीतिक लक्ष्य से ही बना है? क्या यह सत्य नहीं कि दुनिया के सब दूसरे देश स्वतन्त्र होने से बड़े वेग से उन्नति कर रहे हैं और हमारे यहां वही बैलगाड़िया चलती हैं?"

इस पर एक सदस्य बोल उठा, "हमारी शिक्षा में बाधा पड़ेगी।"

विनोद ने उत्तर दिया, "सिनेमा, थियेटर, गप्पबाजी से बाधा नहीं पड़ती। केवल अवकाश के दिनों में लोगों को स्वतन्त्रता की शिक्षा देने से बाधा पड़ती है"

प्रधान ने उठकर कहा, "मिस्टर विनोद का प्रस्ताव ऐसा है कि इससे फैडरेशन सरकार से संघर्ष में पड़ जायगा और वह टूट जायगा।"

विनोद ने पूछा, "फैडरेशन लक्ष्य है या साधन। यदि साधन है तो लक्ष्य को छोड़कर साधन रखने की आवश्यकता ही क्या है? क्या देश को विदेशियों की फास से बचना देश का उपकार नहीं? और क्या देश के उपकार के प्रयत्न को छोड़कर किसी संस्था के अस्तित्व के कुछ अर्थ हैं?"

"देश के काम के अतिरिक्त और भी काम हैं। हमें वे करने चाहियें।"

"मेरा निवेदन है कि हम बिना देश को स्वतन्त्र किये कुछ भी नहीं कर सकते। यहां तक कि हम शिक्षा भी ठीक और उचित मात्रा में प्राप्त

कारण नहीं रहा।

इसी प्रकार के विचारों में वह तागे में घर पहुँची। तागे को विदा कर अपने मकान की ड्योढ़ी पर जा पहुँची। वहा एक नौकर खड़ा मुस्करा रहा था। यह केवल भासमात्र था अथवा यथार्थ, कहना कठिन है। सलीमा को ऐसा प्रतीत हुआ था और इससे उसके माथे पर त्योरी चढ़ गयी। वह खड़ी हो गयी और पूछने लगी, "क्या है ?"

"कुछ नहीं, हजूर," ऐसा कहते हुए उसकी मुस्कराहट तो लोप हो गयी, परन्तु सलीमा को ऐसा जान पड़ा कि उसकी आखों की चमक बढ़ गयी है। सलीमा कुछ नहीं समझी और मकान के भीतर जाने ही वाली थी कि उसे स्मरण हो आया कि विनोद के नाम की चिट्ठी इसी नौकर को डाक में डालने को दी थी। वह फिर लौट आई और पूछने लगी, "वह चिट्ठी डाल दी थी ?'

नौकर ने सतर्कता से उत्तर दिया, "डाली क्यो नहीं, हजूर ? कौन कहता है नही डाली ?"

इस उत्तर ने सलीमा को संशय में डाल दिया। उसने दोषारोपण तो किया नहीं था फिर यह निर्दोषता सिद्ध करने का यत्न क्यों। उसने घूरकर नौकर की ओर देखते हुए कहा, "बेवकूफ, तेरी आखें कह रही हैं।"

"नहीं हजूर ! हम तो आपके गुलाम हैं। कैसे आपका हुक्म नहीं मानेगे ?"

सलीमा ने यह उत्तर आधा ही सुना था। वह मकान के भीतर चली गयी। नौकर की सफाई ने उसके मन को विश्वास दिलाने के स्थान संशय ही उत्पन्न किया था। वह सोच रही थी कि उसकी मुस्कराहट, उसकी आखों का बिलबिलाना और सबसे अधिक अकारण अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने का यत्न, क्या यह प्रकट नहीं करता कि चिट्ठी डाली नहीं गयी। क्या इस नौकर का इतना साहस हो गया है कि उसके पत्र को रोक ले ? इस बात की खोज करनी चाहिये। यह खोज तो विनोद के लौटने पर ही हो सकती थी। परन्तु उसे उसकी चिट्ठी रोकने में क्या प्रयोजन हो सकता है ?

यदि आपने राजनीतिक प्रोग्राम स्वीकार किया तो मुसलमान विद्यार्थी सब के सब इससे बाहर हो जायेंगे। बिना मुसलमानों के साथ समझौते के स्वराज्य प्राप्त करने का यत्न अथवा स्वराज्य-प्राप्ति हम संशय से देखते हैं।"

बहस को समाप्त करते समय विनोद ने विरोधी दल की युक्तियों का उत्तर दिया। उसने बताया, "हम विद्यार्थी कोई विधान नहीं बना रहे। विधान बनाते समय मुसलमानों के हक-हकूक का ध्यान रख लिया जायगा। विधान बनाने के लिये जो सभा बनेगी उसमें मुसलमान अपने लिये पृथक देश का प्रश्न उपस्थित कर सकते हैं। हमने तो देश को स्वराज्य-प्राप्ति के यत्न के लिये तैयार करना है। इसमें तो किसी भी मुसलमान को आपत्ति नहीं होनी चाहिये। मुसलमानों की यह चुनौती कि यदि कोई राजनीतिक प्रोग्राम बनाया गया तो वे मण्डल छोड़कर चले जायेंगे, निहायत ही शर्म की बात है। क्या देश के स्वतन्त्र होने से उनको लाभ नहीं होगा?"

एक विद्यार्थी बैठे बैठे ही बोल पड़ा, "नहीं होगा।"

"मेरा भाई भूल कर रहा है," विनोद ने कहा।

"भूल नहीं है। हमें काग्रेसी वज़ारतों का तलख़ तजरुबा है," उसी मुसलमान सदस्य ने फिर कहा।

विनोद का उत्तर था, "यद्यपि मैं कांग्रेस-पार्टी की वकालत नहीं कर रहा, फिर भी कहने वाले साहब क्या एक भी ऐसा उदाहरण दे सकते हैं जिससे किसी मुसलमान से अन्याय हुआ है?"

"मुसलिम लीग की पीरपुर कमेटी की रिपोर्ट पढ़ो।"

"झूठी है," शेखरानन्द ने कह दिया।

इस पर प्रेज़िडैन्ट उठ खड़ा हुआ और उसने इस प्रस्ताव पर बहस बन्द कर कहा, "मैं समझता हूँ दोनों ओर से युक्तियां दी जा चुकी हैं। अब आप सम्मति देकर बताये कि मिस्टर विनोद का प्रस्ताव स्वीकार किया जाय अथवा न। पूर्व इसके कि आप अपनी अपनी राय दें मैं

आपसे निवेदन करता हूँ कि फैडरेशन में फूट पड़ने से बचाये।"

वोट लिये गये। विनोद के प्रस्ताव के पक्ष में बीस सम्मतियां थीं और उसके विरोध मे चौबीस। इन चौबीस में लगभग बीस हिन्दू थे। उन्होंने वोट अपनी बुद्धि के विपरीत दिया था, ताकि फैडरेशन में फूट न पड़ जाय।

इस वोटिंग के पश्चात् विनोद को सब कुछ फीका प्रतीत होने लगा। उसकी दिलचस्पी फैडरेशन के अधिवेशन में सर्वथा लुप्त हो गयी।

[१०]

निराश हो विनोद विषय-निर्धारिणी सभा की बैठक से उठ बाहर चला आया। वह अपने प्रस्ताव पर भारी आयोजना बनाकर लाया था। घन्टों ही इस पर वह शेखरानन्द से बहस कर चुका था। प्रस्ताव उपस्थित करते समय भी वह आशा से भरा था। उसे उपस्थित सदस्यों के मुख देखकर यह पूरी आशा हो रही थी कि उसकी योजना स्वीकार हो जायगी। परन्तु मुसलमान सदस्यों की धमकी ने पासा पलट दिया और वह हार गया। उसकी महीनों लगाकर सोची हुई योजना मट्टी में मिल गई। वह सोचता था कि यदि सलीमा यहा उन मुसलमानों का मुख-तोड़ जवाब देने को होती तो निश्चय उसका प्रस्ताव स्वीकार हो जाता।

यहा खुले मैदान में एक कोने में लड़कों की भीड़ खड़ी थी। विनोद अपने विचार में मग्न, अपनी हार से उदास, बिना किसी प्रयोजन के टहलता हुआ, उस भीड़ की तरफ चला आया। एक भव्य मूर्ति युवक बीस पच्चीस युवकों में खड़ा बातें कर रहा था। वह कह रहा था, "मैं तेरह बाबरलेन में ठहरा हूं और आप सब को वहा पर आमन्त्रित करता हूं।"

एक ने पूछा, "खाने को क्या मिलेगा?"

जवाब था, "कुछ बहुत उत्तेजक।"

"क्या लाल मिर्च?"

"नहीं, इससे भी अधिक, जो आप में पुरुषत्व उत्पन्न कर दे।"

इस हाज़िरजवाबी पर सब हँसने लगे। श्यामकुमार, जो उस प्रभावशाली व्यक्ति के पास खड़ा था, पूछने लगा, "आप हमको पण्डाल में क्यों नहीं बताते?"

"आपके प्रधान से आज्ञा मांगी थी। उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। कहते थे केवल विद्यार्थी ही बोल सकते हैं।"

इस समय श्यामकुमार की दृष्टि विनोद पर पड़ गयी। उसने कहा, "यदि आप चाहें तो आपके व्याख्यान के लिये हम यत्न करें।"

"हां, करिये।"

श्यामकुमार विनोद के पास आया और कहने लगा, "यह मिस्टर पथिक हैं जिनके लेख आप बड़े शौक से पढ़ा करते हैं। इनके व्याख्यान का प्रबन्ध होना चाहिये।"

पथिक का नाम सुनते ही विनोद फड़क उठा। वह भीड़ चीरकर पथिक से हाथ मिलाने के लिये आगे बढ़ा, परन्तु पथिक को देख उसके हाथ मिलाने के लिये आगे बढ़ने के स्थान पर नमस्कार करने के लिये जुड़ गये।

विनोद के लिये यह एक विचित्र बात थी। उसने अपने पिता को भी कभी इस प्रकार हाथ जोड़कर प्रणाम नहीं किया था। वह अपनी इस कृति पर स्वयम् हैरान था। वह विवश हो गया था।

पथिक ने भी हाथ जोड़ प्रणाम किया और पूछा, "आप कौन हैं?"

"विनोदकुमार, हिवैट रोड लखनऊ।"

"ओह! याद आगया है। आपके पत्र मुझे मिलते रहते हैं। क्या आप भी मण्डल के उत्सव पर पधारे हैं?"

"हां, मैं विषय-निर्धारिणी का सदस्य भी हूँ। क्या आप विद्यार्थियों को उपदेश देना चाहते हैं?"

हाँ, यदि स्वीकृति मिल जाय तो।"

"मैं यत्न करूंगा।"

विनोद और शेखरानन्द ने बहुत यत्न कर यह प्रबन्ध कराया कि उस

रात को फैडरेशन के पण्डाल में, विद्यार्थियों के लिये, पथिक का भाषण हो सके।

विनोद यद्यपि पथिक से उसी दिन पहली बार मिला था, फिर भी वह उसके विचारों से भली भाति परिचित था। वह उसके विचारों को पसन्द करता था और [illegible] में उसका प्रस्ताव पथिक के विचारों का ही परिणाम था। अब पथिक को ऐसे अवसर पर देहली में देख वह चाहता था कि दूसरे प्रान्तों के विद्यार्थियों को उसके विचार सुनने का अवसर मिले। अतएव उसने लड़-झगडकर पथिक के व्याख्यान का प्रबन्ध करवा ही लिया।

[११]

रात के अधिवेशन की कार्यवाही समाप्त होते ही विनोद ने उठकर लोगों को कुछ समय के लिये बैठे रहने को कहा। पथिक का परिचय देते हुए उसने कहा, "यह महापुरुष सयुक्त प्रान्त की महान आत्माओं में से हैं। विद्यार्थियों को एक विशेष संदेश देने के लिये कलकत्ते से यहां आये हैं। अनुभवी लोगों की बातों को सुन उनसे लाभ उठाना ही तो विद्यार्थियों का कर्तव्य है। आप कुछ समय तक शाति से बैठे रहें।"

सरकार, विद्यार्थी-महा-मण्डल का प्रधान, अपने स्थान से उठकर एक तरफ खड़ा हो गया, और बिना प्रधान के ही पथिक मंच पर आ बोलने लगा।

भाषण अंग्रेज़ी में था। विषय था 'भारतवर्ष में मुख्य कार्य।' अत्यन्त सरल, सरस और भावपूर्ण भाषा में पथिक बोल रहा था। व्याख्यान के आरम्भ में तो कुछ गड़बड़ थी। प्रधान के उठ जाने से और लोगों को वक्ता का परिचय न होने से कुछ हलचल मच गयी थी, परन्तु व्याख्यान आरम्भ हुए अभी पाँच मिनट भी नहीं हुए थे कि पण्डाल में शाति विराजमान हो गयी और उपस्थित जन रुचि से सुनने लगे। शान्ति से लोगों को सुनते देख वे लोग भी जो उठकर पण्डाल से बाहर चले गये थे भीतर चले आये। धीरे-धीरे व्याख्यान का विषय गम्भीर होने लगा।

लोग अधिक और अधिक विषय की आवश्यकता और महत्ता को समझने लगे। यह प्रश्न सब के मन में था कि क्या विद्यार्थी-महामण्डल देश की क्रियात्मक सेवा न करे? विद्यार्थियों के लिये हिन्दू-मुस्लिम समस्या को देश से बाहर कर देने का काम बहुत महत्ता रखता है ऐसा पथिक कह रहा था।

व्याख्यान में श्रोतागण लीन हो अपने आपको भूले हुए थे। वक्ता धारा-प्रवाह वाणी में अपने भावों को व्यक्त कर रहा था। विनोद भी प्रसन्न-वदन अपने ही भावों को अपने से अच्छी भाषा में प्रकट किये जाते देख रहा था। पण्डाल में सर्वथा शान्ति थी। एकाएक विनोद की दृष्टि, पण्डाल के एक कोने में, एक लड़की पर पड़ी। वह अपने विचारों और भाषण सुनने में इतना लीन था कि उसे देखते हुए भी पहले नहीं पहचान सका। धीरे-धीरे उसे लड़की जानी हुई प्रतीत होने लगी। फिर एकाएक वह उसे पहचान गया। वह सलीमा थी। वह उसे वहां देख विस्मय में पड़ गया। पहले तो स्वयम् उठकर जाने लगा। कुछ सोच वह स्वयम् न जाकर शेखरानन्द से बोला, "दादा, उस छोकरी को मंच पर ले आओ। यदि आज विषय-निर्धारिणी में आई होती तो काम बन जाता।"

विनोद के मन में अब गुदगुदी लग रही थी कि वह कैसे चुपचाप वहां आ पहुँची है। क्या नवाब साहब ने उसे यहां आने की स्वीकृति दे दी है। अब उसे याद आया कि सलीमा ने कहा था कि वह नौकरानी के साथ घूमा करेगी। इससे सलीमा का पृथक आना स्पष्ट हो गया। इस पर भी वह हैरान था कि सलीमा ने न तो उसके पत्र का कुछ उत्तर दिया और न ही उसे दिल्ली आने के विषय में बताया। वह समझ रहा था कि वह दादा के साथ मंच पर नहीं आयेगी। परन्तु उसके विस्मय का कुछ ठिकाना नहीं रहा जब उसने उसे दादा के साथ चुपचाप मंच पर आकर बैठते देखा। उस समय तो केवल नमस्ते ही हुई।

अब विनोद के मस्तिष्क में इतने विचार भर रहे थे कि वह व्याख्यान सुनता हुआ भी कुछ समझ नहीं रहा था। वह बाहरी परिस्थिति से सर्वथा पृथक हो मन की दुनिया में विचर रहा था। व्याख्यान समाप्त होने पर

जब पण्डाल करतल-ध्वनि से गूंज उठा तो उसका स्वप्न भङ्ग हुआ।

लोग उठ उठकर जाने लगे। बहुत से विद्यार्थी पथिक को घेरकर खड़े हो गये थे। विनोद अब सलीमा की ओर घूमा और पूछने लगा, "कब आई हैं आप ?"

"बस अभी, अभी। सीधी स्टेशन से आ रही हूँ।"

"नौकरानी कहा है ?"

सलीमा हंस पड़ी।

अब विनोद ने पथिक को धन्यवाद दिया और उससे अगले दिन मिलने की बात कर सलीमा को पण्डाल से लेकर बाहर चला आया।

"आपका असबाब कहा है ?"

"आपके चाचा जी के घर जो ठहरना था। असबाब की क्या जरूरत थी ?"

"ठीक है।" विनोद उसे ले बाहर सड़क पर चला आया। वह बहुत प्रश्न विद्यार्थियों की भीड मे पूछना नहीं चाहता था। वहा उसने एक टैक्सी कर ली। टैक्सी वाले को पृथ्वीराज रोड पर चलने के लिये कह दोनों बीच में बैठ गये।

विनोद ने संतोष का भाव प्रकट करते हुए कहा, "खैर, आप आ तो गयीं। बहुत अच्छा किया है।"

सलीमा ने धीरे से कह दिया, "घर से भाग आई हूँ।"

विनोद, जैसे बिच्छू काट जाता है, तमक कर चौकन्ना हो उठा। "क्या, भाग आई हैं ?" उसने पूछा।

"हां, तो क्या आपको मुझे अपने चाचा जी के यहां रखने में एतराज़ है ?"

विनोद के दिमाग में चक्कर आने लगा था। वह समझता था कि यह बहुत बुरा हुआ है। वह इस घटना से होने वाले परिणामों को सोच रहा था। सलीमा अपने भाग आने की सूचना का प्रभाव विनोद के मुख पर देख रही थी। मोटर सर सर करती चली जाती थी। आखिर विनोद ने

पूछा, "क्यों ?"

"यह लम्बा किस्सा है। फिर बताऊंगी। तो क्या मोटर को रोककर लौटा लें ?"

विनोद ने चौंककर कहा, "नहीं, नहीं। वहां ठहरने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं तो यह सोच रहा था कि यदि आपने भागना ही था तो पिता जी से राय कर लेतीं।"

सलीमा ने मुस्कराते हुए कहा, "ऐसी बातें सोच विचारकर तो की नहीं जातीं। मन में विचार आया और कर दिया।"

"ख़ैर, कल बात करेंगे। हम लोग रायल होटल में ठहरे हैं।"

सलीमा ने कहा, "हा, एक बात बतानी भूल गयी हूं। आपका नाम कॉलेज-रजिस्टर से निकाल दिया गया है।"

"मुझे इसकी आशा थी।"

"क्यों ?"

"आने से पूर्व मुझे प्रिन्सिपल साहब ने बुलाया था और कहा था कि स्टूडैन्ट्स फैडरेशन के जलसे में मैं हाज़िर नहीं हो सकता। मैंने जब कारण पूछा तो बोले कि वह राजनीतिक संस्था है। मैंने पहले तो कायदे-कानून से समझाने का यत्न किया। मैंने बतलाया कि कॉलेज के बाहर मैं कॉलेज डिसिप्लिन के आधीन नहीं हूं। फिर मैंने यह कहा कि दूसरे कॉलेजों के अधिकारी अपने विद्यार्थियों को मना नहीं कर रहे। इस पर आप कहने लगे कि मैडिकल कॉलेज दूसरे कॉलेजों से विभिन्न है। यहा डिसिप्लिन अधिक चाहिये। मैंने अपनी बात को समझाने की कोशिश की, परन्तु वह अपनी बात पर डटे रहे। इस पर भी मैं चला आया हूं।"

सलीमा ने कहा, "कल जब मैं कॉलेज गयी तो लड़के आपका नाम कॉलेज-रजिस्टर से हटा दिये जाने की सूचना नोटिसबोर्ड पर पढ़ रहे थे। नोटिस में लिखा था, 'विनोदकुमार माथुर, स्टूडैन्ट फोर्थ इयर को सचेत कर दिया गया था कि वह देहली में होने वाले स्टूडैन्ट्स फैडरेशन के जलसे पर न जाये क्योंकि वह संस्था राजनैतिक है। उसने कहना नहीं

माना और देहली चला गया है। इस कारण मैं उसे कॉलेज से बाहर निकाल रहा हूँ —प्रिन्सिपल'

"लड़कों में जोश भरा हुआ था। सब के विचार में यह हुकम नावाज़िब था। मैंने भी यही समझा। मैंने सब लड़कों के सम्मुख कह दिया कि मेरा देहली जाने का विचार नहीं था। मगर बतौर विरोध के मै अब जरूर जाऊंगी। उसी समय मैंने छुट्टी की दर्खास्त लिख क्लर्क को दे दी और घर चली आई। मेरा दिल्ली आने का विचार नहीं था, परन्तु घरपर कुछ ऐसी बाते हुईं कि मैंने यहा चला आना ही उचित समझा। प्रातः नौ बजे लखनऊ से चल सायं आठ बजे देहली आ पहुँची हूँ। स्टेशन से सीधी पण्डाल में पहुँची। वहा यह व्याख्यान हो रहा था। यह कौन साहब हैं ? गज़ब के बोलने वाले हैं।"

"यह मिस्टर पथिक हैं, जिनका एक लेख मैंने आपको सुनाया था।"

"ओह ! मिस्टर पथिक। अब समझी। इनका यहा आना अच्छा ही हुआ।"

इस समय मोटर पृथ्वीराज रोड पर पहुँच गई थी। घर वाले विनोद और सलीमा के आने की आशा छोड़ बैठे थे। एकाएक इनको आया देख वे बहुत प्रसन्न हुए। विनोद सलीमा को कहकर कि वह प्रातःकाल उसे लेने आवेगा वापिस होटल चला आया।

शेखरानन्द भी सलीमा के एकाएक दिल्ली पहुँच जाने पर विस्मय कर रहा था। विनोद के वापिस आने पर उससे पूछने लगा, "यह कैसे आगयी है ? क्या नवाब साहब का दिमाग़ दुरुस्त हो गया है ?"

"नहीं, वह भाग आई है।"

"भाग आई है ?" शेखरानन्द ने घबराकर पूछा। "यह तो बहुत बुरा किया है। नवाब साहब ने कहीं पुलिस में रिपोर्ट कर दी तो बहुत बदनामी होगी।"

"तो दादा, क्या किया जाय ? मुझे तो जब मालूम हुआ कि नवाब साहब सलीमा का हमारे साथ रहना पसन्द नहीं करते, मैंने उससे बोलना

भी बन्द कर दिया था। एक बात और है। मुझे कॉलेज से निकाल दिया गया है। सलीमा कहती थी कि मेरे कॉलेज से निकाल दिये जाने के कारण विरोध-स्वरूप ही वह देहली आई है।"

"तो ठीक है। अब वह भी निकाल दी जायगी। तुम अपने घर बैठना और वह अपने घर मौज उड़ायेगी। मगर अचम्भा तो इस बात का है कि कांग्रेस-सरकार होते हुए भी ये गोरे अफ़सर अपने आपको खुदा मानते हैं।"

"छीः! काग्रेस-सरकार का नाम न लो। यह तो अति दुर्बल सरकार है। इनको तो पिता जी ने मन्त्री-मण्डल बनाते समय ही बताया था कि उन सरकारी अफ़सरों पर, जिन्होंने पिछले दस वर्षों में कानून से भी बढ़कर जुल्म किया था और गैर कानूनी तरीके से राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने का यत्न किया था, एक तहकीकाती कमेटी बैठा दी जाय और जो मुजरिम साबित हो उन्हें नौकरी छोड़ने पर विवश किया जाय। यह हमारे प्रिन्सिपल तो कभी भी न रह सकते। नमक-कर-भंग आन्दोलन के दिनों में इन्होंने कई लड़कों को अकारण कॉलेज से निकाल दिया था।"

[१२]

दूसरे दिन विनोद सलीमा को फैडरेशन के उत्सव में ले गया। उनकी रुचि उन प्रस्तावों में नहीं थी जो विषय-निर्धारिणी समिति की ओर से उपस्थित किये जा रहे थे। वे वहा से पार्क में चले आये। विनोद, सलीमा के घर से भाग आने का कारण जानने के लिये, बेचैन हो रहा था। पार्क में पहुंचते ही विनोद ने पूछा, "तो आप भागकर आई हैं। क्यों?"

"जब मैं कॉलेज से घर आई तो अब्बाजान हैदराबाद के एक जानवर को लंच पर बुलाये हुए थे। एक दिन पहले मैं उसकी तस्वीर देख चुकी थी और मुझे बताया जा चुका था कि वह हज़रत मेरे लिये खाविन्द ढूँढे गये हैं। कुदरतन मुझे उसे देखकर क्रोध आगया। मां की मर्जी थी कि मैं अपने कमरे में चली जाऊँ। मगर मैंने नौकर को वहीं नाश्ता लाने को कह दिया और मैं मेज़ के एक कोने के पास बैठ गयी।

"वह बन्दर की आखों से मेरी तरफ घूर घूरकर देखने लगा। मैंने पहले तो कुछ परवाह नहीं की, मगर जल्दी ही लापरवाही छोड़नी पड़ी। अब्बाजान ने उसका मुझसे परिचय कराया। जब उन्होंने बताया कि वह बदसूरत आदमी नवाब सर मुहम्मद अमलम के० सी० आई० ई०, औरङ्गाबाद के एक बहुत बड़े जागीरदार का लड़का है, तो मैंने कह दिया, 'झूट'।

"इससे अब्बाजान और उनके महमान भौंचक्के हो मेरा मुख देखने लगे। मैंने अपने कहने का मतलब समझाने के लिये उनको कहा, 'मुझे तो यह चार सौ बीस मालूम होता है। इस किसम का बदसूरत और बदतमीज़ आदमी, इतने बड़े आदमी का लड़का हो सकता है, मुझे शक है।'

"इससे वह तो शरम से पानी पानी हो गया, मगर अब्बाजान ने मुझे डांटकर कहा, 'बक बक मत करो।'

"मैंने तब जरा नरम होकर कहा, 'अब्बाजान, आपको किसने कहा है कि यह किसी के० सी० आई० ई० के लड़के हैं? लखनवी ठग बहुत मशहूर हैं, क्या वही···'

"अब्बाजान ने बात बीच में ही रोककर कहा, 'बकवास बन्द करो। लानत है तुम्हारे पढ़ने-लिखने पर। एक लफ्ज़ भी तो तहज़ीब व इखलाक़ का तुम नहीं जानती।'

"इस पर महमान बोला, 'आपका मतलब मैं नहीं समझा। क्या मैं अपने बाप का बेटा नहीं हू? आप मेरे अब्बाजान को जानती हैं क्या? मेरी शकल उनसे मिलती नहीं है क्या?'

"तो आपके वालिद शरीफ भी आप जैसे ही बदसूरत हैं क्या? ज़रूर किसी नौकरानी के पेट से होंगे।'

"'बस हद हो गयी।' इतना कह वह वहां से उठ खड़ा हुआ। इस पर भी मैंने उसे कहा, 'मुझसे शादी का ख्याल करने से पहले अपनी सूरत तो आईने में देख ली होती···।'

"मेरी बात ख़तम नहीं हुई थी कि अब्बाजान ने सट से एक चांटा मेरे मुख पर रसीद किया। इसकी मुझे उम्मीद थी। मैंने जानबूझकर इतनी गुस्ताख़ी की बात उनके सामने की थी। मगर क्या करती। कहावत है 'मरता क्या न करता।' मैं उससे शादी करना नहीं चाहती और अब्बा-जान ज़बरदस्ती मेरा निकाह उससे करा रहे हैं।

"चाटा खाकर मैंने उनसे कह दिया, 'मैं इससे शादी नहीं करूंगी। मै इससे नफरत करती हूं।' इतना कह मैं अपने कमरे में चली आई। कुछ देर बाद मेरे कमरे को ताला लगा दिया गया। रात को मुझे खाने को भी नहीं दिया गया। मैं भूखी ही सो गई। सुबह मेरी आख खुली तो कोठी के फाटक पर शहनाई बजने की आवाज़ कान में पड़ी। मैं इसका मतलब समझ गई। यह कल की बात है। मेरा विवाह शायद कल ही होना तय हो गया था। अब मैं भागने की सोचने लगी।

मेरा सोने का कमरा कोठी के पिछवाड़े में है। उस तरफ अब्बाजान ने सब्जिया लगवा रखी हैं। कमरा ज़मीन से पन्द्रह फुट ऊँचा है। एक क्षण में मैंने फैसला कर लिया। मैं उठी और पिछवाड़े की खिड़की खोल दी। कपड़े पहन, रुपये जो मेरे पास थे अपने बैग में रख, खिड़की से लपक बाहर कानस पर आ खड़ी हुई। खिड़की के नीचे कद्दू की बेल लगी थी। मैं कानस से लटक गई। इस तरह कूदने के लिये सिरफ दस फुट रह गये, और मैं बेल में कूद पड़ी। चोट तो बिलकुल नहीं आई, मगर एक नौकर ने देख लिया। मैं फौरन उसके पास गयी और पांच रुपये का नोट उसके हाथ में देकर बोली, 'देखो, मेरी शादी के शादियाने बज रहे हैं न। तुम इससे बच्चों को मिठाई खिलाना।' वह नोट हाथ में लिये हैरानी में खड़ा कुछ समझ नहीं सका। वह सोचता हुआ खड़ा रह गया। जब तक समझकर वह कुछ करने का फैसला करता मैं पिछवाड़े के दरवाजे से कोठी के बाहर निकल आई। वहाँ से तांगे में स्टेशन और स्टेशन से दिल्ली आने में दिक्कत नहीं हुई।"

"आप कुछ लिखकर पीछे छोड़ आई हैं?"

"बिलकुल नहीं।"

"वहाँ तो बहुत घबराहट मची होगी, और शायद आपकी तलाश देहली तक पहुंचे।"

"उम्मीद तो है।"

"तो फिर पकड़े जाने का इरादा है क्या?"

"पकड़े जाने से तो भागी नहीं। मैं तो शादी से भागी हूँ। उम्मीद है कि इस भागने से नवाबज़ादा शादी का ख्याल छोड़ देगा।"

"उस दिन की बेइज्ज़ती के बाद जब वह शादी के लिये तैयार हो गया था, बल्कि फौरन ही, तो अब तो वह मुल्ला को साथ लेकर ही दिल्ली आयेगा। ऐसे आदमियों की ज्यों-ज्यों बेइज्ज़ती बढ़ती है, त्यों-त्यों उनकी बेचैनी भी बढ़ती जाती है।"

"हो सकता है, मगर मेरी समझ में तो यह नहीं आया कि वह इतना बेसबर क्यों हो रहा है?"

"हाँ! आपके पास औरत की आंख है न, अगर आप भी मरद की आख रखतीं तो अपनी कीमत समझ जातीं।"

"तो क्या उसके सिवा दुनिया में और मरद हैं ही नहीं?"

"हैं तो, मगर उन्हें अपनी मरदानगी से कुछ और काम करने हैं।"

इतना कह विनोद मुस्कराने लगा। सलीमा इस कथन का आशय समझने में लीन थी। इस समय शेखरानन्द उनको ढूँढ़ता हुआ वहा पहुँच गया। कहने लगा, "भाई, चलो। फैडरेशन में यह प्रस्ताव हो रहा है कि इसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं।"

विनोद ने उत्साहहीनता दिखाते हुए कहा, "भाई, मैं तो बोलूगा नहीं।"

"तो सलीमा ही बोल लेगी। हम अपनी योजना इस ढंग से भी चला सकते हैं।"

तीनों पण्डाल में चले आये। एक मद्रासी युवक बोल रहा था। उसका आशय यह था कि हिन्दुस्तान के सब बड़े बड़े विद्वान यह चाहते

हैं कि विद्यार्थियों को राजनीति से अलग रहना चाहिये। वह भिन्न-भिन्न शिक्षा-विशेषज्ञों के 'कन्वोकेशन' के भाषणों से तथा समाचार-पत्रों में छपे लेखों से उनके वक्तव्य सुना रहा था। अपने पक्ष में इतने प्रबल प्रमाण देकर अपना पक्ष निरुत्तर हुआ जान बैठ गया।

प्रधान ने खड़े होकर कहा, "मुझे पूर्ण आशा है कि इस विषय में दो मत नहीं हैं। सब इस प्रस्ताव के पक्ष में है। "मैं..."

इसी समय सलीमा उठ खड़ी हुई। उसने कहा, "मैं इसके विरुद्ध कहना चाहती हूँ।"

प्रधान ने सलीमा को समीप बुला धीरे धीरे कहा, "मुसलमान सदस्य ऐसा चाहते हैं। उनको नाराज कर फैडरेशन में फूट पड़ जाने का डर है।"

सलीमा ने कहा, "मैं भी मुसलमान हूँ।"

प्रधान अवाक मुख सलीमा को देखता रह गया। यह अवसर देख सलीमा ने माईक्रोफोन के समीप जा अपना कथन आरम्भ कर दिया। सलीमा ने सबसे पहले यह बताया कि "स्टूडैंट्स फैडरेशन का मुद्दा तुल्बा में तन्ज़ीम (संगठन) पैदा करना है, मगर तन्ज़ीम बज़ाते खुद कोई मकसद नहीं हो सकती। तन्ज़ीम भी किसी मुद्दा से की जाती है। हमारे फैडरेशन का मक़सद है हिन्दुस्तान के पढ़े-लिखे नौजवानों को मुल्क की तरक्की के काम में लगाना।" जब वह फैडरेशन का उद्देश्य बता चुकी तो उसने राजनीति की व्याख्या आरम्भ कर दी। उसने कहा, "सियासियात (Politics) का मतलब है मुल्क से ताल्लुक रखने वाली बातें। मुल्क का मतलब यह मट्टी-पत्थर की जमीन से नहीं है। मुल्क से मुराद मुल्क में रहने वाले लोगों से है। अब मैं आपसे पूछती हूं, क्या इस मुल्क में रहने वालों का कोई भी काम है जो यहां के लोगों से ताल्लुक न रखता हो? रोटी, कपड़ा, तालीम, रिहायश, पूजा, नमाज़, मतलब यह कि कोई भी तो काम ऐसा नहीं जो मुल्क के लोगों में सुधार या बिगाड़ पैदा न करे और यह काम सियासियात से ताल्लुक जरूर रखेगा। हर हालत में

आपका हर काम मुल्क के साथ ताल्लुक रखेगा। यह जरूर है कि कभी तो कोई काम सरकार को पसन्द होगा और कभी नहीं। लेकिन यह कैसे हो सकता है, कि वह काम जो सरकार को पसन्द हो वह तो ग़ैर सियासी (non-political) है और जो सरकार को पसन्द न हो वह सियासी है। मैं पूछती हूँ, क्या तालीम खुद एक मुल्की काम नहीं है? यह कैसे हो सकता है कि अगर तालीम ऐसी हो जिसे पढ़कर लोग सरकार की नौकरी कर सरकार को अपनी हकूमत कायम रखने में मदद दे तो वह तालीम ग़ैर सियासी है और अगर ऐसी तालीम हो जिसे पढ़कर तुल्बा में अपने मुल्क को आज़ाद और तरक्कीयाफ्ता बनाने की ख्वाइश पैदा हो जाय, तो वह तालीम सियासी हो जाय? मैं पूछती हूं कि स्कूल, कॉलेज और उनके मास्टर, प्रोफेसर और प्रिन्सिपल और इससे भी ज्यादा उनमें पढ़ने वाले तुल्बा, जब तक तो सरकार को मजबूत करने के लिये और उसको मुल्क को अपने पंजे में रखने के लिये, शिक्षा देते या लेते हैं तब तक तो यह राजनीति नहीं है और ज्योंही कोई स्वदेशी सरकार कायम करने के तरीकों को बताना चाहे वह सियासी तालीम और काम हो जाता है। मैं उन अपने आपको माहरे-तालीम कहने वालों से पूछती हूँ कि जब तो वे हिन्दुस्तान के नौजवानों को उलटी तालीम देकर थानेदार, तहसीलदार, कलक्टर, क्लर्क और अफसर बनाते हैं, जो मुट्ठी भर अंग्रेजों की हकूमत यहां कायम किये हुए हैं, तब तो वे राजनीति में कोई हिस्सा नहीं लेते और जब कोई लोगों को यह बताये कि मुल्क में अपनी हकूमत कायम करनी चाहिये और वह इस तरीके से कायम हो सकती है तो यह राजनीति हो जाती है। वे साफ क्यों नहीं कह देते कि वे सिरफ ऐसी राजनीति में लड़कों को लगा रखना चाहते हैं जिससे उनके आकाओं के नेक कदम हिन्दुस्तान की जमीन पर कायम रहें। उन्हें इससे उलटी राजनीति में दखल देना पसन्द नहीं। राजनीति से तो हमारा वास्ता दिन-रात का है। हम इससे जुदा नहीं हो सकते। यह रिजोल्यूशन बे माने है, झूठ है। जो बात है नहीं, हो नहीं सकती वह पास करने से क्या मतलब? इन

धोंधे तालीम के माहरों की बातें सरकारी असर से रंगी हुई हैं। इनकी आखों पर सरकार ने अपने मतलब की ऐनक लगा दी है।"

अन्त में सलीमा ने कहा, "मुझे सदर साहब ने बताया है कि कुछ मुसलमान मैम्बरान इस रिजोल्यूशन के हक में हैं और वे धमकी दे रहे हैं कि अगर यह पास न किया गया तो वे मुकाबिले पर मुस्लिम स्टूडैंट्स फैडरेशन बना लेंगे। मैं भी मुसलमान हूँ और मेरी समझ में नहीं आता कि सियासियात से ये लोग क्यों घबराते हैं? मुस्लिम लीग भी आज मुल्की आज़ादी की राह में रोड़ा अटका रही है। क्या मुस्लिम विद्यार्थी भी इसी वजह से मुल्की काम को पसन्द नहीं करते? यह एक निहायत ही शर्मनाक हालत है। मैं आप लोगों से अपील करती हूँ कि आप मुल्क की बातों को हिन्दू-मुस्लिम निगाहों से न देखकर हिन्दी और गैर हिन्दी की निगाहों से देखें। अगर हम मुल्क की कोई खिदमत सरंजाम दे सकते हैं तो उसमें मुसलमानों को दुख क्यों होना चाहिये? हमारा काम तो उस बारिश की तरह होगा, जो सब जगह बरसती है। हम इल्म से हिन्द के चमन को सरसब्ज देखना चाहते हैं।"

व्याख्यान का प्रभाव बहुत गहरा हुआ था। इस व्याख्यान के पश्चात प्रधान को इस प्रस्ताव पर वोट लेने का साहस नहीं हुआ। उसने वोट लेने के लिये सब ओर से आग्रह होने पर भी मीटिंग को सायंकाल पर स्थगित कर दिया।

सब लोग उठ खड़े हुए। सलीमा अपने सफल भाषण पर श्रोताओं से बधाइयां ले रही थी कि शेखरानन्द कुछ घबराया हुआ वहां पहुंचा। विनोद उसकी सूरत देख समझ गया कि दाल में कुछ काला है। उसने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। शेखरानन्द ने कहा, "विनोद भैया, नवाब साहब।"

विनोद समझ गया। उसने पूछा, "पुलिस भी?"

"नहीं, एक अकड़ी मूछों वाला आदमी साथ है। शायद खुफ़िया का.....।"

विनोद हैदराबाद के नवाबजादे की रूप-रेखा सुन चुका था। उसने बातचीत में ही रोककर कहा, "नहीं, वह सलीमा से विवाह करना चाहता है। वे लोग किस तरफ हैं?"

"इन्क्वायरी के दफ्तर में।"

एक क्षण तक विचारकर विनोद ने कहा, "ठीक है।"

वह लड़कों की भीड़ में खड़ी सलीमा के पास जाकर बोला, "सलीमा, चलो। नवाबज़ादे आगये।"

सलीमा का रंग फीका पड़ गया। वह लड़कों की भीड़ से निकल तुरन्त विनोद के संग हो ली।

[१३]

जिस नौकर को सलीमा ने भागते समय पांच रुपये का नोट दिया था, वह कितनी ही देर तक सलीमा की घबराहट का अभिप्राय सोचता रहा। अन्त में उसने निर्णय किया कि अपनी स्त्री से इस विषय में राय करे। वह वापिस घर लौट गया।

कोठी के पिछवाड़े एक दीवार के पीछे नौकरों के घर थे। वह भी उन्हीं घरों में से एक में रहता था। घर पहुँचते ही उसने आवाज दी, "जमाल की मा, जरा आइयो।"

वह अभी बिस्तर में बैठी आखें मल रही थी। बोली, "क्या है मिया? इतनी सुबह कहा गये थे?"

"अरी, इधर आओ तो। देखो, क्या लाया हू?"

कुछ लाने की आवाज सुनते ही जमाल की मा बिस्तर से कूद बाहर निकल आई। जमाल का बाप कोई तीस वर्ष की आयु का था। चपरासी का काम करता था। सात रुपये सूखी तनख्वाह मिलती थी। इसमें निर्वाह अति कठिनाई से होता था। इस कारण प्रति दिन प्रातःकाल नवाब साहब के बाग से सब्जिया उखाड़ लाया करता था। आज भी इसी काम के लिये कोठी मे गया था।

बीबी जब बाहर आई तो उसने पाच का नोट उसके हाथ में रख

दिया। बीवी ने पूछा "कहां से पाया है ?"

"सलीमा बीबी से।"

"किस लिये ?"

"बात यह हुई कि इस महीने तनख्वाह तो अभी मिली नहीं और बैंगन खाने को तबियत कर रही थी। कल मैंने बाग में कुछ बैंगन निकले हुए देखे तो ख्याल आया उतार लाऊँ। अभी अंधेरा ही था कि वहां पहुँचा। देखा तो सलीमा के कमरे की खिड़की खुली। वह उसमें से निकली और कानस से लटक नीचे कूद पड़ी। मैं तो डर गया। मैंने समझा कि मुझे चोरी करते देख पकड़ने के लिये कूदी है। मैंने छिप जाने की कोशिश की, मगर उसने मुझे देख लिया। वह जल्दी जल्दी मेरी तरफ आई। मैंने मुआफी मांगने का फैसला कर लिया था और हाथ जोड़ कुछ कहने ही वाला था कि उसने झट से अपने थैले से पांच का नोट निकाल मेरे हाथ में दे दिया और बोली, 'मेरी शादी के शादियाने बज रहे हैं न। बच्चों को मिठाई खिलाना।' इतना कह वह पिछवाड़े के दरवाजे से जल्दी २ बाहर निकल गयी।"

जमाल की मा ने पूछा, "हां, तो फिर ?"

"पहले तो मैं डरा हुआ था, पीछे घबराया, और अब मै समझता हूँ कि चोर से चोर की मुलाकात हुई है।"

"मिया ठीक कहते हो। रात फतहखां की बीवी कह रही थी कि सलीमा का प्रेम एक लड़के से है। कुछ दिन हुए उसका घर वाला सलीमा की एक चिट्ठी डाक में डालने जा रहा था कि नवाब साहब ने रोक लिया। पीछे नवाब साहब ने वह चिट्ठी पढ़कर अपनी जेब में रख ली। उस वक्त उनके चेहरे पर जितना गुस्सा दिखाई दिया था, पहले कभी नहीं देखा गया।"

जमाल का बाप बोला, "सो तो ठीक है, मगर अब क्या किया जाय ? नवाब साहब को इस बात की इत्तला करूं या न करूं। तुमसे राय लेने के लिये लौट आया हूं।"

"मेरी राय तो यह है कि इस पाच रुपये के नोट को तुड़ाकर बाज़ार से बैंगन खरीद लाओ और मन भरकर खाओ।"

"तो यह तो नमकहरामी होगी।"

"नमकहरामी तो तब है जब नमक खाया जाय। जिसकी हंडिया में साग ही नहीं, तो उसने नमक कहा और किसका खाया है? ऐसी अवस्था में नमकहरामी कैसी हुई? और देखो मियां, मालिक वही है जो पेट भर खाने को दे। क्या तुम भूल गये हो कि पिछले साल एक बार कई महीने से तनखाह नहीं मिली थी और नवाब साहब टाल-मटोल कर रहे थे? तब किसने तुम्हारे बच्चे के लिये दूध को रुपये दिये थे? मुझे तो वह दिन भूल नहीं सकता, जब जमाल भूख से बिलख बिलख कर रो रहा था और मै उसे बेग़म साहिबा के पास ले गई थी। मैं चाहती थी कि उसका रोना देख तरस खाकर हज़ूर से तनखाह दिला दे। बेग़म साहब ने धक्के दिलवा कर कोठी से बाहर निकलवा दिया था। अगर उसी वक़्त सलीमा मदरसे से न आजाती तो उस ज़लालत के बाद शायद मैं गले में फासी डाल मर गई होती। मैं दरवाज़े मे से रोती हुई बाहर निकल रही थी तो उसने देख लिया। पूछने लगी, 'क्या है? क्यों रो रही हो?'

"मैंने उसे कहा, 'हज़ूर इस बच्चे के बाप को सात महीने से तनख़ाह नहीं मिली और अब तो इसको पिलाने को दूध तक को पैसा नहीं रहा।'

"वह पूछने लगी, 'रोती क्यों हो? अम्मी ने दिया नहीं कुछ?'

"मैंने कहा, 'हज़ूर जूतों से पिटवाया है। कहती हैं भूखे-नंगे कहीं के, दो दिन तनखाह में देरी हुई तो हल्ला करने लगे हैं।'

"वह यह सुन कुछ सोचने लगी। फिर बोली, 'ठहरो।' इतना कह वह भीतर चली गई। दो ही मिनट के बाद आई और दस रुपये का नोट देकर बोली, 'जब तक तनखाह न मिले मुझसे आकर ले जाया करना।'

"दो बार और दस दस के नोट उससे मिले थे। जब तनखाह मिली तो मैं तीस रुपये लौटाने गयी। वह पूछने लगी, 'कितने महीने की तनखाह मिली है?'

"मैंने जवाब दिया, 'दस महीने की।'

'क्या मिला है ?'

'सत्तर रुपये।'

'किसी और से भी कर्ज़ लिया है ?'

"मैंने सब हिसाब बता दिया। 'तीस बनिये के देने हैं। चार रुपये ाली की बीवी से ले रक्खे हैं।'

"वह कुछ सोचकर बोली, 'तो अब तुम्हारे पास क्या बचेगा ? ोस मेरे, तीस बनिये के, चार माली की बीवी के। बाक़ी छः रुपये। दस ाहीने की नौकरी के बाद; और कपड़े भी क्या बनिये से खरीदते हो ?'

'नहीं हज़ूर। पिछले दस महीने में तो एक पैसे का कपड़ा नहीं खरीदा। अब एक-दो का कपड़ा मंगवाऊंगी और कुछ अन्न-रसद। इस तरह से ाम चल जायगा।'

"वह बोली, 'यह तो कुछ न हुआ। मेरी राय में ये तीस रुपये तुम ख लो। इन्हें रख छोड़ो। अगर फिर बच्चे के लिये कुछ ख़रीदने की ज़रूरत पड़ गई तो क्या करोगी ?'

"मैंने फिर कहा, 'तो हज़ूर आपका रुपया फिर कैसे अदा होगा ?'

"बोली, 'वह हो गया है। जाओ चली जाओ। फिर कभी ज़रूरत ोगी तो आजाना। हो सका तो मिल जायगा।'

"अब बताओ ? मेरी मालिका तो वह है। मैं तुम्हें उसे फंसाने की ाय नहीं दे सकती। उसका नमक तो तब खाया था जब भूख मौत बनकर सेर पर मंडरा रही थी।"

जमाल के बाप ने कहा, "मगर.....।"

"मगर-वगर कुछ नहीं। अब जाओ बाजार से बैंगन ले आओ। ग़लीमा जिससे मुहब्बत करती है मैं कैसे उसे उससे जुदा करने में मदद े सकती हूँ ?"

"मगर मालिक की बदनामी तो होगी।"

"तो हम क्या कर सकते हैं ? हमारी बदनामी और बेइज़्ज़ती का

ख़्याल भी कभी उन्हें आया है क्या ? भला लखनऊ जैसे शहर में सात रुपये महीने में क्या कोई क़बीलदार गुजर कर सकता है ? और मालिक ने इतनी कम तनख़ाह क्यों कर रखी है ? पल पल मे तो सैंकड़ों रुपयों का पैट्रोल फूंक दिया जाता है और हम ग़रीबों के लिये महीने की नौकरी के बाद सात रुपये भी नहीं निकल सकते।

"मिया, तुम औरत के दिल की बात नहीं समझ सकते। यह एक चिराग़ की मानिन्द होता है। मुहब्बत का तेल जब तक उसमें रहता है यह जलता है, और रोशनी देता है। तेल के निकल जाने पर यह बुझ जाता है। तो क्या मैं एक औरत के दिल से इस मुहब्बत के तेल को निकाल देने की राय दे सकती हूं ? इसी मोहब्बत ने तो एक बार हमारी मौत से हिफाज़त की थी। मियां, जाओ अपना काम करो। बड़े आदमियों के झगड़े में अपना सिर न दो। कुचला जायगा।"

जमाल के बाप को समझ आगयी। वह थैला ले बैंगन खरीदने बाज़ार चला गया। इस प्रकार सलीमा का लखनऊ में ही पकड़ा जाना सफल न हो सका।

[१४]

हैदराबाद के नवाबज़ादे को पिछले दिन जब सलीमा ने फटकार बताई थी और उसका अपमान किया था तो वह प्रतिकार के विचार से उसे विवाहने के लिये और भी उत्सुक हो उठा। उसने सलीमा के बाप से कहा, "आपकी लड़की बड़ी शोख है। एक बार हरम में चली गयी तो फिर हिरनी की मानिन्द हलीम हो जायगी।"

बेगम साहिबा से राय ली गयी और विवाह अगले ही दिन सायंकाल निश्चित कर दिया गया। यथार्थ बात यह थी कि नवाब साहब के मन में यह सम्बन्ध बहुत जम गया था और वह इस शुभ अवसर को हाथ से निकलने नहीं देना चाहते थे। उन्हें सलीमा की भांति उसके उच्च परिवार के होने का सन्देह नहीं था। वह अपनी ओर से पूरी जांच-पड़-ताल कर चुके थे।

विवाह के दिन बहुत प्रातःकाल ही शहनाई वाले कोठी के फाटक पर आ बैठे। शहनाई की आवाज़ से नवाब साहब और बेगम साहिबा की नींद खुल गयी। पिछली रात बहुत देर तक विवाह का प्रबन्ध करते और निमंत्रण-पत्रों को लिखते हुए वे जागते रहे थे। उनके उठते ही कोठी में चहल-पहल होने लगी। सब नौकर-चाकर शादी के प्रबन्ध में लगे हुए थे। कोठी की सफाई हो रही थी। झंडिया और फानूस स्थान स्थान पर लटकाये जा रहे थे। कालीन और कुर्सिया सजा सजाकर बिछायी व लगाई जा रही थीं। अभिप्राय यह कि इतनी घमसान मची थी कि किसी को किसी की सुध नहीं थी।

सलीमा की मां को ग्यारह बजे नहाने और खाने की फुरसत हुई। घर में बहुत ओस-पड़ोस की औरतें जुट रही थीं। किसी को कुछ कहना और किसी को कुछ देना। खाना खाने के समय उसे सलीमा की याद आई। वह सलीमा को कुछ खिला-पिलाकर तैयार करने के लिये उसके कमरे में गई। कमरे को बाहर से ताला लगा रखा था। कमरबन्द से लटकते हुए चाबियों के गुच्छे से चाबी निकाल, ताला खोल, दरवाज़ा खोल दिया और आवाज़ दी, "सलीमा, ओ कम्बख्त इधर आ।"

जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो कमरे के भीतर जाकर पुकारा। अब भी कुछ उत्तर नहीं आया। अब उसे कुछ चिन्ता लगी। वह सोने के कमरे में गई। सलीमा वहां भी दिखाई नहीं दी। गुसलखाने में देखा। फिर बाहर पढ़ने के कमरे में देखा। अब तो उसने घबराकर, उतावलों की भांति, मेज़-कुर्सियों के नीचे, अलमारियों के पीछे, बिस्तर-पलंगों के नीचे देखना आरम्भ कर दिया। जब वह कहीं नहीं मिली तो हताश हो एक कौच पर बैठकर सोचने लगी।

मकान के नीचे, भीतर और बाहर, कोठी में धूम मच रही थी। आने-जाने वालों का ताता बंधा हुआ था। हलवाई और दर्जी पार्क में शामियानों के नीचे काम कर रहे थे। नवाब साहब कभी एक से बातें करते थे, कभी दूसरे से। उनके कई रिश्तेदार भी अपनी अपनी बंसी

बजा रहे थे। अभिप्राय यह कि भारी भीड़ थी और वावैला था।

नवाब साहब हलवाई द्वारा बनाई गई मिठाई को चखकर बता रहे थे, 'खूब, बहुत खूब! बहुत अच्छी बनी है।' इस समय भीतर से एक नौकरानी ने आकर कहा, "हज़ूर, बेगम साहिबा ने बुलाया है।"

नवाब साहब ने झुँझलाकर कहा, "ओ जी, जाकर कह दो अभी फ़ुरसत नहीं है। देखो तो कितना काम है। यह रात तक कैसे निपटेगा?"

मगर नौकरानी ने अनुरोध किया "हज़ूर, बहुत ज़रूरी काम है, और अभी, फ़ौरन चलिये।"

विवश नवाब साहब नौकरनी के आगे आगे हो लिये। वह उन्हें सलीमा के कमरे में ले गयी। बेगम का मुख देखते ही वह समझ गये कि कुछ अनिष्ट हुआ है। नौकरानी को वहा से बाहर भेज पूछा, "क्यों क्या हुआ है? कुछ खो गया है क्या?"

"हा, सलीमा नहीं है।"

"यह ताला क्यों खोला था?"

"ताला खोलकर अभी खाने को कहने आई थी। देखा तो यहा कोई नहीं है। या खुदा! अब क्या होगा?"

"आखिर वह निकल किधर से गयी?"

"सोने के कमरे की खिड़की से कूद गयी मालूम होती है।"

"लाहौल विला। कैसी बातें करती हो? इतने ऊंचे से कैसे कोई कूद सकता है?" इतना कह नवाब साहब भागकर खिड़की में जा खड़े हुए। बहुत ध्यानपूर्वक खिड़की के बाहर और नीचे देखते रहे, पश्चात् धीरे धीरे बेगम के पास आकर खड़े होगये। कहने लगे, "खिड़की के बाहर कानस पर और नीचे कद्दू की बेल पर कूदने के निशान बने हैं।"

बेगम ने पूछा, "अब क्या होगा, हज़रत? मैंने तो आपको कल ही कहा था कि जल्दी करने की क्या ज़रूरत है?"

नवाब साहब ने चिढ़कर कहा, "तुम तो हमेशा ऐसा ही कहा करती हो। जब कोई बात खराब हुई तो अपनी बरीयत ही करने लगी। कुछ

तजवीज़ भी बताओगी क्या ? एक तरफ तो शादी की तैयारियां बड़े ज़ोरों से हो रही हैं और दूसरी ओर लड़की ही ग़ायब है। अगर यह बात लोगों में फैल गयी तो कितनी बदनामी होगी ?"

बेग़म ने मुख नीचे किये हुए कहा, "मैं क्या बताऊं ? पहले तो लड़की को इतनी खुली छुट्टी दे रखी थी और अब उसे ताले में बन्द करना चाहते थे।"

नवाब साहब ने क्रोध में कहा, "फिर वही बात। आख़िर इन बातों से हासिल क्या होगा ?"

"तो जाओ दामाद साहब से पूछो कि वह अब क्या चाहेंगे ?"

नवाब साहब को यह बात मन लगी। वह बेग़म को वहीं छोड़ बाहर चले आये और बिना किसी से कुछ कहे मोटर में सवार हो, चौक में, जहां नवाबज़ादा इफ्तिख़ारअहमद ठहरे हुए थे, जा पहुँचे। वहा भी बरात की तैयारिया होरही थीं।

नवाब साहब ने इफ्तिख़ारअहमद को एक तरफ ले जाकर पूरी बात से परिचित करा दिया। उसे पहले तो बहुत क्रोध आया, मगर कुछ सोच-कर बोला, "आज तो शादी नहीं हो सकती। इसे फिलहाल किसी न किसी बहाने से मुल्तवी करना चाहिये। पीछे देखेंगे। मै अपनी तरफ से तो अब भी, वह मिल जाय तो, शादी के लिये तैयार हूँ।"

"मगर वह मिलेगी कहा ? मेरा दिमाग़ काम नहीं करता।"

"क्या, अगर वह मिल जाय तो, आप फौरन उसका निकाह मुझसे पढ़ा देंगे ?"

"भाई, मुझे इसमें कोई एतराज़ नहीं। बल्कि मुझे तो निहायत खुशी होगी। मगर यह होगा कैसे ?"

इफ्तिख़ारअहमद ने कुछ सोचकर तज़वीज़ की। कहने लगा, "आप घर जाकर शादी एक हफ्ते के लिये मुल्तवी करने का ऐलान कर दें। मशहूर कर दे कि सलीमा एकाएक बीमार हो गयी है। किसी डाक्टर वग़ैरह को लाने और दिखाने का बहाना भी कर दें। इधर मैं उसका पता

निकालने की कोशिश करूंगा।"

नवाब साहब तो घर लौट आये और रास्ते में से अपने एक दोस्त डाक्टर को भी लेते आये। दूसरी ओर इफ्तिख़ारअहमद ने मोटर ले मेडिकल कॉलेज का रास्ता पकड़ा।

कॉलेज के लड़कों ने विनोद और सलीमा के नाम कॉलेज से ख़ारिज किये जाने पर हड़ताल कर रखी थी। नवाबज़ादा वहाँ पहुँचा तो कॉलेज खाली पड़ा था। दफ्तर से उसे मालूम हुआ कि सलीमा दिल्ली जाने के लिये कॉलेज से छुट्टी ले चुकी है। उसे विश्वास हो गया कि वह दिल्ली गयी है।

[१५]

नवाब साहब, इफ्तिख़ारअहमद, और एक निकाह पढ़ाने के लिये मुल्ला रात की गाड़ी से चल अगले दिन दिल्ली जा पहुंचे। शहर में एक होटल में असबाब वग़ैरह रख, स्नान इत्यादि से छुट्टी पा, खाना खा, मुल्ला को वहीं छोड़, फैडरेशन के सभा-मंडप में वे पहुंच गये। इन्क्वायरी के दफ्तर में पहुँच पूछने लगे, "लखनऊ से कौन कौन डैलीगेट आये हैं?"

इन्क्वायरी वाले बताने से इनकार करते थे। उन्होंने कहा, "पहले आप बतायें कि आपका क्या मतलब है? या आप हैं कौन?"

कुछ हील-हुज्जत के बाद इफ्तिख़ारअहमद बोला, "जनाब, बात यह है कि लखनऊ से एक लड़की के डैलीगेट बनकर आने की ख़बर थी। उसका नाम मिस सलीमा है। हम उसके रिश्तेदार हैं और देहली में रहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि वह आई है या नहीं?"

अब दफ्तर वालों ने अपना रजिस्टर निकाला और बताया, "हां, मिस सलीमा रात तशरीफ लाई हैं। ठहरने का पता नहीं।"

"क्या हम पण्डाल में जाकर देख सकते हैं कि वह कहां है?"

"आप यहीं तशरीफ रखें। मैं चिट लिखकर भीतर भेज देता हूं और वह बाहर आजायेगी।"

इतना कह वह लिखने लगा। इफ्तिख़ारअहमद बोला, "देखिये,

यह लिखिये कि आपसे बाहर कोई मिलने आया है।"

इस पर लिखनेवाला उसका मुख देखने लगा। नवाब साहब ने कहा, "नाम लिखने की ज़रूरत नहीं। अचानक मिलने में ज़रा लुत्फ रहेगा।"

चिट लिखने वाले ने मुस्कराकर कहा, "बहुत खूब! आप तशरीफ रखें। मैं अभी उनको बुलाता हू।"

इसी वक्त शेखरानन्द जो सलीमा का व्याख्यान बन्द होने पर बाहर चला आया था इन्क्वायरी ऑफिस के पास से गुज़रा था। वह नवाब साहब को वहा बैठा देख सब समझ गया और तुरन्त पण्डाल में पहुँच, विनोद को सचेत कर, वापिस दफ्तर में चला आया। नवाब साहब ने उसे देख लिया। वह लपककर उसके पास पहुँचे और कहने लगे, "क्यों जी, सलीमा कहा है?"

"सलीमा, ओह नवाब साहब!" उसने विस्मय में कहा, जैसे उसने उनको अभी देखा हो। "वह व्याख्यान दे रही है।"

"मगर लोग तो बाहर निकल रहे हैं।"

"तो व्याख्यान समाप्त होगया होगा।"

"वह बाहर आयेगी क्या?"

"उम्मीद तो है। शायद यहीं आयेगी।"

"तुम उसके पास हमें ले चलो।"

"मैं उससे नहीं बोलता।"

"क्यो?"

"आपने जब से कहा है कि हमारे साथ घूमने से उसकी बदनामी होगी, मैंने उससे मिलना और बोलना बन्द कर दिया है।"

नवाब साहब के मुख से 'ओह', का शब्द ही निकला। वह पण्डाल से निकलती भीड़ को देखते रहे। सलीमा बाहर नहीं आई। अब उन्होंने भीतर जाकर ही देखना उचित समझा। वह वहां पर नहीं थी। इफ्तिख़ार अहमद ने एक से पूछा, "यह आख़ीर में किस की तक़रीर हो रही थी?"

"एक लड़की की," जवाब मिला।

"क्या नाम था ?"

"नाम नहीं जानता।"

"वह कहा है ?"

"चली गयी है।"

"इधर से तो नहीं निकली।"

"जी नहीं, वह दर्शकों के मार्ग से निकल गयी है।"

"कहा ठहरी है ?"

"मै नहीं जानता।"

बातों में और समय व्यर्थ खोने के स्थान वे दोनों दर्शकों के दरवाज़े की ओर भागते हुए गये। उधर से बाहर निकल उन्होंने चारों ओर देखा। वह वहा नहीं थी। वहा से निराश हो वे फिर इन्क्वायरी के दफ्तर में पहुँचे और मिन्नत कर पूछने लगे, "क्यों साहब, आप मिस्टर विनोदकुमार का पता बता सकते हैं ?"

"रॉयल होटल नम्बर पाच में।"

नवाब साहब इफ्तिख़ारअहमद को साथ ले वहा पहुँचे। विनोद अथवा सलीमा वहा नहीं थे। शेखरानन्द, कृष्णकुमार के साथ खाना खा रहा था। नवाब साहब वहा पहुंच शेखरानन्द को डांटकर बोले, "तुम्हारा दोस्त, वकील का लोंडा कहा है ?"

शेखरानन्द नवाब साहब की परेशानी को समझ रहा था। शिकारी पक्षी को नहीं पकड़ सका था। उसकी हंसी निकल गयी। उसको हंसता देख नवाब साहब क्रोध से लाल-पीले हो उठे। पूछने लगे, "क्यों जी, हंस क्यों रहे हो ?"

शेखरानन्द ने कुछ अकड़कर कहा, "आपकी बदतमीज़ी पर। आपको नवाब किस ने बनाया है ?"

शेखरानन्द की उत्तर देने में तत्परता देख कृष्णकुमार की भी हंसी फूट पड़ी। उसके मुख में से ग्रास उछलकर बाहर निकल आया, और वह अपने स्थान से उठ उगालदान के पास जा खड़ा हुआ। इफ्तिख़ार

अहमद घूर २ कर शेखरानन्द की तरफ देख रहा था। शेखरानन्द ने गम्भीर मुद्रा मुख पर लाकर कहा, "मैं आपके वकील के लोंडे का बॉडी-गार्ड नहीं हूँ। मगर क्या मैं पूछ सकता हूँ उससे आपको क्या काम है?"

इस पर इफ्तिखारअहमद बोल उठा, "उसे हवालात में भिजवाना है।"

शेखरानन्द अब कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। वह समझ रहा था कि नवाब साहब का साथी लड़ने के लिये तैयार है। उसने इफ्तिखार अहमद के हाथ की पहुँच से जरा पीछे हटकर कहा, "तो आप पुलिस-अफसर हैं? जरा ठहरिये। मैं थाने में टैलीफून कर पूछ लूं कि आप पुलिस के अफसर हैं या नहीं।"

इतना कह वह जोर से पुकारने लगा, "मैनेजर साहब! मैनेजर साहब!!"

हल्ला सुन होटल का मैनेजर और कुछ और लोग भागे हुए शेखरानन्द के कमरे में चले आये। नवाब साहब और इफ्तिखारअहमद इस हल्ले का प्रयोजन नहीं समझ सके। मैनेजर हैरानी से उनकी ओर देखने लगा। शेखरानन्द ने कहा, "मैनेजर साहब, यह शख्स कहता है कि यह पुलिस का अफसर है। मुझे तो यह कोई चार सौ बीस मालूम होता है। क्या आप इसे जानते हैं?"

होटल के मैनेजर ने उसे सिर से पाव तक ध्यान से देखा और पूछा, "आप कौन हैं?"

"मैं पुलिस का अफसर नहीं हूँ।"

"तो ठीक है। कमरे से बाहर निकल जाओ।"

"हम तो सिरफ इनके एक दोस्त का पता पूछना चाहते हैं।"

"तो आपने यह क्यों कहा था कि आप उसे हवालात में ले जाना चाहते हैं?" शेखरानन्द ने जोर से कहा।

होटल के मैनेजर ने जरा डाटकर कहा, "देखिये साहब, आप होटल से एकदम बाहर हो जायें, वरना मुझे पुलिस बुलानी पड़ेगी।"

अब नवाब साहब का पारा नीचे उतर आया। वह अपनी लड़की

की बाबत वहां ज़िकर करना नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने बहुत नम्रता से कहा, "मैनेजर साहब, आपसे एक गुज़ारिश मैं अलहदा में करना चाहता हूँ।"

इस पर मैनेजर उनको अपने दफ्तर में ले गया। वहा पहुँच नवाब साहब ने कहा, "इस कमरे में एक मिस्टर विनोद ठहरा हुआ है। हम उससे मिलना चाहते हैं। यह लड़का उसका पता नहीं बताता।"

"वह क्यों बताये? आखिर आप हैं कौन और क्यों उसका पता पूछते हैं?"

"मैं कौन हूँ?" नवाब साहब ने कुछ झिझकते हुए कहा। "मुझे लोग नवाब मुर्तज़ाअली कहते हैं। मैं बराबंकी का एक बडा जमींदार हूँ। लखनऊ के रईसों में मेरा एक बड़ा रुतबा है।" इतना कहकर उन्होंने अपना एक छपा कार्ड निकालकर मैनेजर के सम्मुख रख दिया।

मैनेजर ने कार्ड पढ़कर कहा, "मगर आप धमकी देकर क्यों पूछते हैं? जो बात शराफत से हो सकती है उसमें झगड़ा करने की क्या जरूरत है?"

अब नवाब साहब ने बहुत ही खुशामद से कहा, "तो आप हमारी मदद कर दें।"

मैनेजर ने कुछ सोचकर सहायता करने का वचन दिया। वह शेखरानन्द के पास पहुंचकर कहने लगा, "मिस्टर विनोद कहा गये हैं? क्या आप बता सकते हैं?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"देखिये, झगडा बढ़ाने से क्या मतलब? आप नवाब साहब को जानते हैं क्या?"

"हा, मगर उनके साथी को नहीं जानता। वही तो पुलिस अफसर बन रहा था।"

"उसको छोड़िये। वह तो शक्ल से ही बेवकूफ मालूम होता है। मै नवाब साहब को बुलाऊं। आप उनसे बात कर ले। झगड़ा नहीं

करियेगा। इसमें हमारे होटल की बदनामी होती है।"

शेखरानन्द ने कुछ सोचकर कहा, "मगर जो कुछ मैं जानता हूँ वही तो बता सकता हू। वह आजाये, परन्तु उनसे कह दें कि ज़रा तमीज़ से बात करें। हम भी रईसों के लड़के हैं। आवारा नहीं हैं।"

अब नवाब साहब फिर शेखरानन्द के कमरे में चले आये और कुर्सी पर बैठकर कहने लगे, 'देखो भाई, एक बूढ़े बाप के जज़्बात का ख्याल करो और मुझे सलीमा के ढूंढने में मदद दो।"

शेखरानन्द ने अब अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "तो क्या सलीमा घर से भागकर आई है? मुझे मालूम नहीं था।"

"वह यहा कब आई है?"

"वह कल रात पहुंची थी। मगर हम लोग और विनोद तो वहा से बृहस्पत के दिन आगये थे।"

"वह कहां ठहरी है?"

"कहीं नई दिल्ली में। मगर मुझे ठीक मालूम नहीं।"

"मेरा ख्याल है कि विनोद मिल जाय तो उसका पता चल जायगा।"

शेखरानन्द ने नवाब साहब को अब सभ्यता से बात करते देख कहा, "मैं आपसे एक बात पूछूं? आप नाराज़ तो न होंगे?"

"हा, कहो।"

"इस गँवार को आप अपने साथ किस लिये लाये हैं?"

"यह गँवार नहीं है। यह औरंगाबाद के एक बड़े जागीरदार का लड़का है। इगलैण्ड रिटर्न्ड है।"

"ओह! सच? शकल-सूरत से तो ऐसा मालूम नहीं होता। खैर हो सकता है, मगर आपके साथ क्यों आया है?"

"सलीमा की इससे शादी होने वाली थी। और···।"

शेखरानन्द ने बात बीच में ही काटकर कहा, "इससे? तभी वह घर से भाग आई है। अब मालूम हुआ है कि वह दिल्ली न आने का फैसला कर फिर यहां क्यों आगई है? नवाब साहब अगर गुस्ताखी न

मानें तो कुछ अर्ज़ करूं।"

"क्या ?"

"इस नवाबजादे को वापिस हैदराबाद भेज दीजिये।"

"फिर ?"

"सलीमा का उससे शादी का विचार छोड़ दें।"

"क्यों ?"

"मैं समझता हूँ सलीमा उससे शादी नहीं करेगी। शायद खुदकशी कर लेगी।"

"मगर इसमें भारी बदनामी होगी।"

"किस में ?"

"इस रिश्ते को तोड़ने में।"

"और सलीमा के भागने से क्या नेकनामी हुई है ? अगर वह खुदकशी कर लेगी तो क्या आपका नाम रोशन होगा ?"

"मुझे तो आजकल के नौजवानों की बातें समझ में नहीं आतीं।"

"यही तो समझा रहा हूं। आप इस नवाबजादे को बैरंग वापिस कर दें और मुझे पूरा यकीन है कि सलीमा आपसे पहले घर पहुँच जायगी।"

"तो तुम जानते हो, वह कहा है ?"

"नहीं। मगर मैं उसकी रुचि को जानता हूं। इस महापुरुष के आप के पास रहते वह आपके पास रहना पसन्द नहीं करेगी।"

"लेकिन उसको कैसे पता चलेगा कि यह साहब चले गये हैं ? कौन उसको बतायेगा ?"

"बताने की क्या जरूरत है ? उसने अवश्य कोई प्रबन्ध कर रखा होगा जिससे वह अपने घर की बात जानती रहती होगी।"

"मैं उसका बाप हूं। उसे मेरे कहने के मुताबिक करना चाहिये।"

"वह जाने और आप जानें। मुझे न आपसे, न उससे कोई सरोकार है। मैंने तो आपको अपनी समझ के मुताबिक राय दी थी। जो आपके मन में आवे करें।"

इतना कह शेखरानन्द ने उठकर, नवाब साहब को विदा करने के लिये, हाथ मिलाने को बढ़ा दिया।

नवाब साहब ने हाथ नहीं मिलाया और उठकर चल दिये। शेखरानन्द का हाथ बढ़ा हुआ रह गया। यह देख कृष्णकुमार की हँसी निकल गयी। हंसी सुन नवाब साहब क्रोध से लाल-पीले होते हुए वापिस फिर कमरे में आगये और कृष्णकुमार की ओर घूरकर देखते हुए बोले, "इस का मतलब ?"

कृष्णकुमार अब गम्भीर हो गया। वह कुर्सी से उठ, खड़ा हो, अकड़कर, घृणा का भाव दिखाते हुए बोला, "जिसमें इतनी भी तमीज़ नहीं कि मिलाने के लिये बढ़ाये गये हाथ से कैसा सलूक करना चाहिये, उसे यह जानने का भी हक नहीं कि कोई क्यों हंसता है ?"

नवाब साहब अपना क्रोध मन ही मन पी गये और इफ़्तिख़ारअहमद को साथ ले होटल से बाहर चले आये।

[१६]

विनोद सलीमा को ले पण्डाल के पिछले दरवाजे से बाहर निकल गया। वहा से वे तागे पर सवार हो टैक्सी-स्टैंड पर पहुँचे। टैक्सी वाले ने पूछा, "कहां चलना होगा ?"

दोनों एक दूसरे का मुख देखने लगे। उन्होंने अभी कुछ निश्चय नहीं किया था। टैक्सी वाले को कुछ बताना आवश्यक था। विनोद ने यह सोच, कि शीघ्र वहां से दूर निकल जाना चाहिये, जो पता उसके मन में सबसे ऊपर था, बता दिया। बोला, "तेरह बाबरलेन, नई दिल्ली।"

टैक्सी वाले ने मोटर छोड़ दी। सलीमा ने विनोद से कह दिया, "मैं अपने घर तब तक नहीं जाना चाहती जब तक उस हैदराबाद वाले से मेरे विवाह की चर्चा बन्द न हो जाय।"

विनोद ने कहा, "मैं तुम्हारे फैसले को अपनी राय से बदलना नहीं चाहता। हां, जो कुछ बन पड़ेगा तुम्हें मदद देने के लिये तैयार हूं।"

टैक्सी बताये पते पर पहुँच गयी। वह भाड़ा देकर चलती कर दी

गई। मकान पर विद्यार्थियों की भीड़ लगी थी। विनोद पथिक से मिलने नहीं आया था। वह तो पण्डाल से कहीं दूर जाकर एकांत में सोचना चाहता था कि क्या किया जाय। अब वहा पहुंच जाने से उसने सोचा कि पथिक से मुलाकात कर ली जाय। अतएव उसने अपना कार्ड पथिक के पास भीतर भेज दिया।

बहुत से विद्यार्थी बाहर कोठी की लॉन में और बरामदे में बैठे परस्पर बातें कर रहे थे। पथिक भीतर था। विनोद का कार्ड भीतर जाते ही मोहन बाहर आया और उनको भीतर ले गया। वहा भी बहुत से विद्यार्थी पथिक को घेरे बैठे थे। पथिक उनसे कह रहा था, "मैने आपको समझा दिया है। देश को स्वतन्त्र करने का बोझा आप लोगों पर है। यह सरकार की नीति है कि आपको ऐसे कामों में संलग्न रखे कि जिनसे या तो सरकार यहां पर दृढ़ता से अपना राज्य-कार्य चलाती रहे या कम से कम आप लोग निःसहाय, असंगठित भटकते रहें। यह ठीक है कि आप लोगों ने पढ़ाई करनी है। मैं आपको कॉलेज छोड़ने के लिये नहीं कहता। मैं तो चाहता हूं कि अवकाश के दिनों में आप देश का काम करें। सब कॉलेजों में वर्ष मे एक बार लम्बी छुट्टियाँ होती हैं। आप उस अवकाश को देश-सेवा में लगा दें। यह बहुत भारी त्याग नहीं है। आपको कुछ भी जेब से खर्च करना नहीं होगा। केवल एक से दो मास तक का समय देना होगा। शेष सब प्रबन्ध मैं कर दूंगा।"

इस पर एक ने पूछा, "आप हमें क्या करने को कहते हैं?"

पथिक ने कहा, "आप भारी संख्या में युवक-प्रचारक-दल के सदस्य बन जायें। हम आपको साहित्य देंगे। उस साहित्य में लोगों को क्या और कैसे बताना चाहिये लिखा होगा। सदस्य उसको पढ़कर जब प्रचार करने के योग्य हो जायेंगे तब उनको छोटी छोटी मंडलियों में हम नगर २ और गांव गाव में भेजेंगे। वहा लोगों को वे इन बातों का ज्ञान करायेंगे जिससे वे हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों के राज्य के लिये यत्नशील हो सकें। पहली बात जो हम करना चाहते हैं वह लोगों को अपनी परिस्थिति

से परिचित करना है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी को यह ज्ञान हो जाय कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों का राज्य न होने से उसे व्यक्तिगत रूप में और जाति को समष्टिगत रूप में क्या हानि हो रही है। सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी राज्य की बरकतों का झूठा प्रचार करके और दूसरे उपायों से सरकार ने एक साधारण हिन्दुस्तानी के मन में यह विचार बना दिया है कि यदि हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी राज्य न होता तो हम कुत्ते-बिल्लियों की भांति लड़ लड़कर मर गये होते। पहले तो हम इस झूठे विचार को दूर करना चाहते हैं।

"मैं चाहता हू कि यदि मुझे तमाम हिन्दुस्तान के कॉलेजों से दस हज़ार विद्यार्थी मिल जायें तो मैं हिन्दुस्तान को दो हज़ार हलकों में बांट दूंगा और प्रत्येक हलके में पाच पाच की मंडली को दो मास तक काम करने के लिये भेज दूंगा। प्रत्येक मंडली अपने हलके के कोने कोने में विदेशी राज्य से असन्तोष की हवा चला देगी।"

एक युवक कहने लगा, "इससे क्या होगा? असन्तोष ही पाप का मूल है। असन्तुष्ट हिन्दुस्तानी बिचारे दुःख और सन्ताप में मर जायंगे।"

"अपनी वर्तमान अवस्था से असन्तोष ही लोगों को अपनी उन्नति करने पर विवश करता है। ये असन्तुष्ट लोग क्या करें यह अगला कदम होगा। पूर्व इसके कि हम स्वराज्य प्राप्त करें या हमें स्वराज्य मिले हमें रचनात्मक काम करना होगा। उन असन्तुष्ट लोगों को आप रचनात्मक काम बताकर आशा का अमृत पिला दें। फिर वे नहीं मरेंगे। वे अमर हो जायेंगे। दुःख और संताप झेलने के लिये आशारूपी संजीवनी सब को दे दो।"

"रचनात्मक काम से आपका क्या मतलब है? क्या काग्रेस का रचनात्मक काम करना होगा?"

पथिक ने मुस्कराते हुए कहा, "नहीं। काग्रेस के रचनात्मक काम को मैं खराब नहीं समझता। इसमें एक दो बातें तो विशेष उपकार करने वाली हैं। परन्तु यह राजनीतिक रचनात्मक काम नहीं है। यह स्वराज्य

मिलने के पश्चात् तो और भी भली भाति चलाया जा सकता है। परन्तु यह स्वराज्य-प्राप्ति में किसी भाति भी सहायक नहीं हो सकता। मेरा रचनात्मक प्रोग्राम इससे भिन्न है। मै चाहता हू कि प्रत्येक नगर में, मुहल्ले में, गाव में और कस्बे में युवको को संगठित दलों में बाध दिया जाय। इनमें शरीर में शक्ति, स्फूर्ति और मन को नियन्त्रण में रखने का अभ्यास कराया जाय। लोगों का दृष्टिकोण हिन्दू और मुसलमान होने के स्थान हिन्दी और गैर-हिन्दी बनाया जाय। लोगों को बताया जाय कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ क्या हैं और उन स्तम्भों को कैसे गिराया जा जकता है।"

"परन्तु यह तो प्रारम्भिक प्रोग्राम है। क्या यह अन्तिम ध्येय तक ले जा सकेगा?" यह विनोद का, जो अब बातचीत मे दिलचस्पी ले रहा था, प्रश्न था।

पथिक का उत्तर था, "अन्तिम प्रयत्न आप लोगो का काम नहीं। विद्यार्थियों का काम है ठीक ढंग की शिक्षा का प्रचार। लोगो के दृष्टिकोण को बदलना। शेष आप भगवान पर छोड दें। अवसर आयेगा जब आप लोगों का प्रस्तुत किया क्षेत्र बहुत बढ़िया फल उत्पन्न करेगा।"

एक बिहारी युवक पूछने लगा, "कांग्रेस के आधीन रहकर आप यह सब क्यों नहीं करते?"

"केवल इसलिये कि कांग्रेस का कार्यक्रम और काम करने का ढंग घटिया है। उससे सफलता की आशा नहीं है।"

इस पर एक और उठकर कहने लगा, "आप अपनी राष्ट्रीय संस्था का अपमान करते हैं। जिस संस्था ने पन्द्रह-बीस वर्ष में राष्ट्रीयता का बिगुल देश के कोने कोने में बजा दिया है, उसके कार्यक्रम को आप घटिया नहीं बता सकते।"

अब एक और विद्यार्थी क्रोध में कहने लगा, "आप कम्यूनिस्ट प्रतीत होते हैं।"

एक बीच में ही बोल उठा, "नहीं, हिन्दू-सभाइट।"

पथिक ने सब को शांत कर कहा, "मैं किसी भी पार्टी का आदमी नहीं हूं। मैं कम्यूनिस्ट इस कारण नहीं हूं कि मैं कट्टर हिन्दुस्तानी हूं। मैं हिन्दू-सभाइट भी नहीं हूं, इस कारण कि मैं राजनीति में हिन्दू-मुसलमान में अन्तर नहीं समझता। मैं कांग्रेस-नीति का विरोधी इसलिये हूं कि इस नीति ने पिछले पन्द्रह वर्षों में राजनीति से लोगों को दूर कर उन्हें उलटे मार्ग पर चलाया है। यदि कांग्रेस में सम्मिलित लोगों का विचार राजनीति की ओर होता तो कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल शराबखोरी बन्द करने को पहला स्थान न देकर राष्ट्रीय सरक्षक-दल निर्माण करने को पहला स्थान देते। वे हिन्दू और मुसलमानों के लिये नौकरियों की संख्या निश्चित करने में शक्ति और समय का अपव्यय न कर सब सरकारी नौकरियों को राष्ट्रीयता के विचार वालों को देने का यत्न करते। यदि कांग्रेस का दृष्टिकोण राजनीति का होता तो वे उन सब सरकारी मुलाजिमों को, जिन्होंने पहले राष्ट्रीय आंदोलनों को दबाने में न्याय और अन्याय को छोड़ सिर-तोड़ यत्न किया था, अब निष्पक्ष अदालतों के सम्मुख उपस्थित कर दण्ड दिलवाते। सब से अधिक यह कि उस शिक्षा को, जिसने विदेशी राज्य चलाने वाले विदेशी सरकार के भक्त उत्पन्न किये हैं, जलाकर भस्मीभूत कर देते। मेरा दावा है कि कांग्रेस यथार्थ में एक समाज-सुधारक संस्था है, वह राजनीतिक संस्था नहीं है।"

विनोद ने अब पूछा, "आपके युवक-संघ में कौन सम्मिलित हो सकेंगे?"

"वे कॉलेजों के विद्यार्थी जो आठ आना वार्षिक चन्दा देंगे। जो प्रतिज्ञा करेंगे कि प्रति वर्ष लम्बी छुट्टियों के दो मास संघ के आदेशानुसार देश की सेवा में लगायेंगे और अन्तिम, जो प्रतिज्ञा करेंगे कि मन-वचन-कर्म से कोई ऐसी बात नहीं करेंगे जिससे युवक-संघ का अपमान हो।

"यह संघ केवल प्रचारक-संघ होगा। हम क्रियात्मक राजनीति अर्थात म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, कौंसिलों और असेम्बलियों के

सदस्य बनने या बनाने में कोई भाग नहीं लेंगे। हम राज्य-विधान बनाने में भी भाग नहीं लेंगे। हां, ठीक राज्य-विधान क्या हो उसका सर्व साधारण में प्रचार करेंगे।"

एक ने पूछा, "इस संघ का सचालन कौन करेगा?"

"मै करूंगा।"

"यदि किसी को आपकी बात पसन्द न आये तो?"

"वह मुझे समझाने का यत्न करे। इस पर भी यदि मतभेद रहे तो वह संघ छोड़ने के लिये स्वतन्त्र होगा।"

"तो यह तो कुछ न हुआ। आप संघ की एक संचालिनी-समिति क्यों नहीं बना लेते?"

"वह बनी है। उसमें सदस्य मेरी सम्मति से और मेरे निमन्त्रण से आते हैं। वे लोग मेरी योजना पर अपनी सम्मति देते हैं और युक्तिया देकर मुझे अपने मत के अनुकूल कर लेते हैं।"

"यह तो डिक्टेटरशिप हुई।"

"कुछ भी समझो। मैंने अपनी योजना भारतवर्ष के विद्वानों के सम्मुख रखी है और उनकी मूल्यवान सम्मति से उसमें संशोधन किया है। मेरी इस सशोधित योजना को मेरे कुछ धनवान मित्रों ने स्वीकार कर इसके चलाने को धन दिया है। अब इस योजना को चलाने के लिये कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। कार्यकर्ताओं के सम्मुख योजना रख दी है। जो इसमें सहयोग देना चाहें वे सम्मिलित हो सकते हैं।"

"तो हमें क्या मिला?"

"आपको वही कुछ मिलेगा, जो मुझको या इस योजना को चलाने के लिये अतुल धन देने वालों को मिलेगा। भारतवर्ष को स्वतंत्रत प्रदान करने का यश और फल।"

"परन्तु यह काम जान-जोखम का है। इसमें आंखें मूंदकर तो कोई सम्मिलित नहीं हो सकता।"

"आंखे खोलकर तो साहस का काम कोई करता ही नहीं।"

"इसका अर्थ यह है कि प्रधान काम तो आपने अपने पास रखा है और घटिया काम हम लोगों को देना चाहते हैं।"

"प्रधान कार्य योजना बनाना नहीं, प्रत्युत उसको कार्यरूप में लाना है।"

"संसार तो ऐसा नहीं मानता।"

"संसार मूर्ख है। मैं अपनी बुद्धि संसार के पीछे चलकर खो नहीं सकता। मेरा कहना स्पष्ट है। योजना तो बन चुकी है। अब यह न मेरे हाथ में है, न आपके। जिस योजना को जानकर लोगों ने लाखों रुपये मुझे दिये हैं, मैं उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता। यह योजना बहुत विचार से बनाई गयी है। अब मैं और आप तो इसे कार्यरूप में लाने वाले हैं। इसमें न कोई बड़ा है, न छोटा। प्रत्येक अपने २ स्थान पर ऐसे आयेगा जैसे किसी मशीन के पुरज़े। यह योजना मैंने आपको बताई है। यदि यह कार्य आपको पसन्द है और करना है तो आइये। आप में से प्रत्येक के लिये इसमें स्थान है। यदि आप इसे पसन्द नहीं करते तो आप इसमें न आने के लिये स्वतंत्र हैं। मैं आपको भड़काकर, जोश दिलाकर अथवा आपको किसी पदवी का प्रलोभन देकर इसमें खींचना नहीं चाहता। यह काम मेरा नहीं है, किसी एक का नहीं है। यह देश भर के उत्थान का काम है। अगर आप समझते हैं कि इस योजना से देश का भला होगा तो आओ और देश-सेवकों की पंक्ति में अपने स्थान पर खड़े हो जाओ।"

"आप देश में विप्लव उत्पन्न करना चाहते हैं। यह जान हथेली पर रखने के सामान है। इसलिये बिना कार्यकर्ताओं की राय के आपका यह काम चल नहीं सकेगा।"

"यदि किसी ने इस संस्था में इसलिये सम्मिलित होना है कि उसकी राय मानी जायगी तो उसे इस संस्था से बाहर रहना चाहिये। यदि आप सब कार्यक्रम को सुन यह समझते हैं कि इस योजना से देश को लाभ होगा तो फिर सम्मति लेने का प्रश्न व्यर्थ है।"

इस पर विनोद ने प्रश्नकर्ता से पूछा, "क्या आप इस योजना को खतरनाक समझकर इसमें परिवर्तन कराना चाहते हैं या इसको देश के लिये हानिकारक समझते हैं ? यदि यह देश के हित में नहीं तो आप इसमें सम्मिलित न हो और यदि यह खतरनाक है तो आप इससे अलग रह जाये। सम्मति लेने और देने का प्रश्न तो तब है जब कोई योजना बन रही हो। यह तो बनकर तैयार है।"

"इसको किसने बनाया है ?"

"तो आप योजना के योजक का नाम जानकर सम्मिलित होंगे, न कि इसके अच्छे और बुरे का विचार कर के ?"

इस पर सब हँसने लगे। यथार्थ में प्रश्नकर्ता के साथ बहुत कम लोग सहमत थे।

अब सलीमा ने पूछा, "आपकी योजना मे स्त्रियों की क्या पदवी होगी ?"

"देवियों की ?"

"मट्टी और पत्थर की बनी देवियो सी ?"

"मट्टी और पत्थर की देविया वहा बनाई जाती हैं जहा सजीव देविया न हों। जब जब और जहा जहा सजीव देविया होती है लोग उनकी पूजा करते हैं, मट्टी-पत्थर की नहीं।"

सलीमा को इस मूक प्रशंसा से सन्तोष नहीं हुआ। उसने फिर पूछा, "मेरा इस बात के जानने से अभिप्राय यह है कि आपकी योजना में लड़कियों के लिये स्थान है या नहीं। यदि है तो किस प्रकार है ?"

"मै लड़कियों और लड़को में भेद नहीं समझता। केवल वही इस योजना में आ सकते हैं जिनका मन अनुशासन में बंधा है। मैं अनाचार की कोई बात सहन नहीं कर सकता।"

इसके पश्चात् उपस्थित जन मोहन बाबू को अपने नाम और पते लिखाने लगे। विनोद ने अब सलीमा से पूछा, "अब ?"

"अब क्या," सलीमा ने तुरन्त उत्तर दिया, "इस संघ में शामिल

हो जाना चाहिये।"

विनोद हँस पड़ा। उसने कहा, "मेरा मतलब नवाब साहब और नवाबज़ादे से है।"

"ओह! वह तो मैं भूल ही गयी थी। हां, मुझे तुम कहीं ठहरा दो और स्वयं फैडरेशन के जलसे में चले जाओ। मैं तो तब तक घर नहीं जाऊंगी जब तक विवाह का विचार छोड़ न दिया जाय। देखो न, मैं इस संस्था की सदस्य बनने लगी हूँ, तो विवाह कैसे हो सकता है? और फिर मैं उससे घृणा करती हूँ।"

इस समय विनोद को एक बात सूझी। वह पथिक को एक तरफ ले जाकर बताने लगा। बहुत देर तक दोनों परस्पर बातें करते रहे। पश्चात् दोनों सलीमा के पास आगये। विनोद ने कहा, "मैंने इनको सब बातें बता दी हैं और मेरी राय है कि आप यहां ठहर जायें। तब तक मैं आपके पिता से मिलकर तय कर लेता हूं।"

सलीमा ने अचम्भे से पूछा, 'यहां?' और वह अनिश्चित मन से पथिक का मुख देखने लगी।

पथिक ने कहा, "हां बहिन, क्या तुम हम पर विश्वास नहीं करती?"

इस पर सलीमा ने कुछ लज्जित होकर कहा, "नहीं, विश्वास अथवा अविश्वास की बात नहीं। आप मेरा मतलब नहीं समझे। मेरे कारण आप पर कोई बदनामी न आजाय, और फिर यह काम जो आप शुरू कर रहे हैं मेरे कारण कहीं रुक न जाय।"

"कौन जाने क्या होगा? मेरी नीयत साफ है। मैं जो कुछ कर रहा हूं निस्वार्थ भाव से कर रहा हूं। भगवान इसमें सहायता देंगे।"

सलीमा के मन पर पथिक की बातों का पहला प्रभाव यह हुआ था कि वह उसे विशेष प्रतिभा रखने वाला व्यक्ति समझी थी। उसकी योजना सुन वह उसे एक सुलझा हुआ मस्तिष्क समझने लगी थी। अब जब वह उसके समीप आकर बातें कर रहा था तो उसके पूर्ण शरीर में रोमांच हो उठा था, ऐसा जैसे सिर से पांवों तक एक हलका विद्युत का

बहाव हो रहा हो। उसके अंग फड़क रहे थे और वह अपने आपको पृथ्वी से ऊपर उठती हुई प्रतीत होती थी। 'भगवान सहायता करेंगे' के शब्द सुन विस्मय से उसने पथिक को देखने के लिये आखें उठाईं। उसे उसके मुख से अवर्णनीय प्रकाश निकलता हुआ प्रतीत हुआ। वह आंखे फाड़-फाड़कर उसे देख रही थी कि पथिक ने धीमी सी मुस्कराहट से उसकी ओर देखते हुए पूछा, "क्या देख रही हो, बीबी ?"

"नूर," सलीमा के मुख से अनायास ही निकल गया।

"यह सब ईश्वर की माया है।"

बात तय हो गयी। पथिक ने मोहन बाबू को बुलाकर सलीमा के ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। विनोद कुछ निश्चिन्त हो होटल की ओर लौट गया।

वह अभी होटल में पहुँचा ही था कि नवाब साहब एक पुलिस अफसर को लिये हुए वहा पहुँच गये। शेखरानन्द और अन्य विद्यार्थी सभा में चले गये थे। नवाब साहब तो शेखरानन्द को धमकाने के लिये पुलिस लाये थे, ताकि विनोद का पता मिल जाय। परन्तु स्वयं विनोद को वहा देख बहुत प्रसन्न हुए।

विनोद कमरे में दाखिल हुआ ही था कि सबइन्सपैक्टर ने अपना हाथ विनोद के कन्धे पर रखकर कहा, 'तुम मेरे आदमी हो।' विनोद चौंक कर घूमा और नवाब साहब और पुलिस अफसर को सम्मुख देख पहले तो घबराया, परन्तु तुरन्त ही संभल कर बोला, "आपका मतलब ?"

"तुम विनोदकुमार हो ?"

"हा।"

"मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ।"

इस समय तक विनोद सचेत हो गया था। उसने कहा, "अच्छी बात, तशरीफ़ रखिये।"

नवाब साहब और इन्सपैक्टर कुर्सियों पर बैठ गये। विनोद पास रखी खाट पर बैठ गया और बोला, "हां, तो आप क्या चाहते हैं ?"

"हम तुम्हें बहुत देर से ढूँढ रहे थे।"

"किस लिये ?"

"तुम इनको जानते हो ?"

"हा जानता हूं। आप हमारे नगर के एक बड़े रईस हैं।"

"इनकी लड़की को भी जानते हो ?"

"हा।"

"उसे तुमने आज देहली में देखा है ?"

"हां।"

"कहा ?"

"स्टूडैंट्स फैडरेशन के जलसे पर भाषण देते हुए।"

"अब वह कहा है ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

इस पर नवाब साहब कहने लगे, "देखो विनोद, वह एक नाबालिग़ लड़की है और तुम उसे छिपा रहे हो। यह एक संगीन जुरम है।"

"मैं उसे छुपा नहीं रहा। न ही वह नाबालिग है।"

"ख़ैर, यह तो अदालत तय करेगी कि वह नाबालिग़ है या बालिग़। मै उसका बाप हूं और मैं तुमसे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूं कि वह नाबालिग़ है या बालिग़। उसका पता बता दो वरना मुआमला टेढ़ा है।"

"न मैं जानता हूं और न ही आप उसके मुतल्लिक यह कह सकते हैं कि वह नाबालिग़ है। आप जानते हैं कि वह मैडिकल कॉलेज की दूसरी जमात में पढ़ती है। मैडिकल कॉलेज में अठारह साल से कम उमर के तुल्बा दाखिल नहीं किये जाते। इसका मतलब यह है कि वह अब बीस साल से कम उमर की नहीं है।"

अब नवाब साहब चकराये। आखिर उन्होंने कुछ सोचकर कहा, "वह घर से जेवरात चोरी कर लाई है।"

विनोद ने नवाब साहब को कहा, "क्यों अपनी बेइज़्ज़ती आप खुद ही कर रहे हैं। शर्म नहीं आती अपनी लड़की पर चोरी का इलज़ाम

लगाते हुए। मेरी बात मानिये। इन पुलिस वालों को वापिस कर दीजिये और उन हैदराबाद वालों को भी विदा कीजिये और फिर आपकी लड़की आपको मिल जायगी।"

इस पर इन्सपैक्टर ने विनोद के कन्धे पर हाथ रख कहा, "तो तुम जानते हो कि वह कहा है। अच्छी बात है मैं तुम्हें हिरासत में लेता हू।" इतना कह उसने विनोद को हथकडी लगा दी।

विनोद उठकर साथ चलने को तैयार हो गया। जाते समय उसने होटल के मैनेजर को घर का पता दे, तार देने को कह दिया। थाने ले जाकर विनोद को हवालात मे डाल दिया गया।

[१७]

सलीमा उस दिन और रात विनोद की प्रतीक्षा करती रही। वह नहीं आया। रात भर वह सो नहीं सकी। उसे विनोद के मुसीबत में फँस जाने की आशंका हो रही थी। खाट पर करवटें बदलते बदलते प्रभात हो गया। नींद न आने के कारण उसका सिर भारी हो रहा था। आखें फूटकर बाहर निकल रही थीं। हाथ-पाव में वेदना और चित्त में अत्यन्त घबराहट थी।

वह सोचती थी कि यदि विनोद पकड़ा गया या विनोद की राय उसके पिता ने नहीं मानी तो वह क्या करेगी। क्या उसे ऐसी अवस्था में अपने पिता के पास वापिस चला जाना चाहिये? क्या वह विनोद को छुड़ाने के लिये कोर्ट में हाजिर हो अपने बयान दे दे? क्या ऐसा करने से उसका अपने आपको नवाबजादे के साथ विवाह के लिये हाज़िर होना तो न होगा? उसे किसी भी प्रकार इस नवाबजादे से विवाह करना स्वीकार न था।

विनोद की संगत से देश को स्वतन्त्र करने की भावना उसके मन में बहुत उग्र रूप धारण किये हुए थी। इस कारण वह विवाह-बन्धन में, और फिर उस व्यक्ति से, जिसे देश की स्वतन्त्रता का लेशमात्र भी ध्यान न हो, बँधने के लिये तैयार न थी।

इसी उधेड़-बुन में पड़ी हुई वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सकी।

प्रभात का सन्देश, उसे कोठी के किसी दूसरे भाग से, तम्बूरे की मधुर झंकार ने दिया। फिर स्वर के साथ स्वर मिला और धीरे-धीरे आलाप आरम्भ हुआ। इस मीठे स्वर से वह अपने विचारों के सघन बन से निकल संगीत-माधुरी की छिटकी चादनी में आगयी। वह बहुत ध्यान से सुनने लगी। गाने वाला गा रहा था :—

प्रभु भय भंजन हो, दुख टारन हारे।
अन्धकार से करो पार, दुख हरो हमारे।
करुणामय प्रभु दया करो, हम द्वार तुम्हारे॥
दुख टारन हारे।
अरुण उषामय प्रभात की छवि अति न्यारी।
अगुआ विकसित कुसुम दलों की, जो अति प्यारे॥
दुख टारन हारे॥

सलीमा विचारों में नास्तिक थी। ईश्वर का अस्तित्व मानना उसके लिये व्यर्थ का झझट था। ईश्वर-स्तुति उसके मन में किसी भी प्रकार की श्रद्धा अथवा भक्ति उत्पन्न नहीं कर सकती थी। परन्तु प्रातःकाल चार बजे की निस्तब्धता में मधुर स्वर में गाया हुआ गीत उसके लिये इतना आकर्षणकारी था कि उसकी ईश्वर के प्रति अश्रद्धा भी उसे सुनने से नहीं रोक सकी। वह अपनी चिन्ताओं को भूल गयी। उसका मन मधुर मधुर स्वरों की लहरों में हिलोरें लेने लगा। इस समय कौन गाता है, यह जानने की इच्छा उसके मन में हुई। वह इस आकर्षण से बंधी हुई अपनी खाट से उठी और कमरे से बाहर निकल आई। कोठी के पिछवाड़े, बरामदे में एक चौकी पर बैठा पथिक तम्बूरे को एक हाथ में लिये और करतालों को दूसरे हाथ में लिये भजन में मस्त था। सलीमा बरामदे के खम्भे से लग सुनने लगी।

पथिक अन्धेरा होने से और संगीत में लीन होने से नहीं जान सका कि सलीमा खड़ी सुन रही है। सलीमा एक अलौकिक आनन्द अनुभव कर रही थी। वह वहीं बरामदे में खम्भे का ढासना लिये बैठ गयी। रात

भर चिन्ताओं के कारण सो नहीं सकी थी। अब प्रातः समीर के शान्तिप्रद प्रभाव से अथवा सुखमय संगीत की तरंगों की थपकियों से उसे झपकी आगयी। वह सोई तो ऐसी सोई कि उसे अपनी सुधबुध भूल गयी।

अभी प्रकाश पर्याप्त नहीं हुआ था कि पथिक संगीत के अभ्यास से उठा। उसने सलीमा को वहा बरामदे में सोये हुए चन्द्रमुखी की भाति देखा। वह समझ गया कि कमरे में न सो सकने के कारण बाहर बरामदे में आकर सो गयी है। जगाना उचित न समझ, उसे वहीं छोड़ अपने स्नान-ध्यान में लग गया।

जब सूर्य ऊँचा चढ़ आया और उसकी किरणें सलीमा के मुख की ज्योति को द्विगुण करने लगीं तो वह किरणों की ऊष्णता को अनुभव करती हुई जागी। आख खोलते ही उसने पथिक को समीप खड़े देखा। वह उसे जागती देख मुस्करा रहा था। सलीमा संकोच से सिकुड़ गयी। ऐसा संकोच उसे पहले कभी नहीं हुआ था।

वह फर्श पर से उठ खड़ी हुई। पथिक ने केवल कुछ बात करने के लिये कहा, "रात को सोई नहीं क्या, सलीमा बीबी?"

सलीमा ने पथिक के मुख की ओर देखते हुए कहा, "मिस्टर विनोद की खबर आई क्या?"

पथिक ने चिन्ता के भाव में कहा, "हां, वह हवालात में है। नवाब साहब ने उसे पकड़वा दिया है।"

यह समाचार सुन सलीमा का मुख विवर्ण हो गया। उसका शरीर कांपने लगा और कम्पित स्वर में उसने पूछा, "अब आप मुझे क्या करने की राय देते हैं?"

"तुम्हारा विवाह के विषय में क्या विचार है?"

"मैं विवाह नहीं करना चाहती, परन्तु मिस्टर विनोद और आप लोगों की बदनामी होगी। आपके काम में बाधा पड़ेगी।"

"मेरी राय तो यह है कि अभी आज का दिन यहां रहो। विनोद के पिता को तार गया है। आशा है आज आजायेंगे। मिस्टर माथुर, विनोद

के पिता, मेरे परिचित हैं। उनकी राय से तुम्हें चलना चाहिये। मोहन बाबू अभी विनोद से भेंट के लिये कोतवाली जा रहे हैं।"

सलीमा बहुत शोकग्रस्त थी। अनेकानेक प्रकार के विचारों के बोझ से दबी हुई वह कमरे में चली गई और चुपचाप खाट पर लेट गयी।

पथिक ने मोहन को समझाकर विनोद का समाचार लेने के लिये भेज दिया।

[१८]

मोहन जब विनोद से मुलाकात के लिये हवालात पहुँचा तो वहा शेखरानन्द, कृष्णकुमार, श्यामकुमार तथा विनोद के पिता पहले से ही उपस्थित थे। मिस्टर माथुर ने विनोद से मुलाकात कर सब बात जान ली थी। पीछे वह सब-इन्सपैक्टर से मिले। अपना परिचय दिया और पूछा, "यह लड़का क्यों पकड़ा गया है?"

"एक लड़की को भगा लाने के जुरम में।"

"मेरा ख्याल है कि आप यह साबित नहीं कर सकेंगे। मैं सिटी मैजिस्ट्रेट के सम्मुख ज़मानत की दरख़्वास्त देने जा रहा हू। आप उसे वहीं पेश करियेगा न।"

"हां।"

'बहुत अच्छा,' कह मिस्टर माथुर थाने से बाहर की ओर चल पड़े। इस पर इन्सपैक्टर ने मिस्टर माथुर को फिर बुला लिया, "सुनिये।"

मिस्टर माथुर लौट आये। इन्सपैक्टर ने कहा, "इस केस में तो ज़मानत-मुचलका पर अभी मै ही छोड़ दूँगा।"

"ओह! यह तो आपको कल ही करना चाहिये था। रात भर आपने उसे व्यर्थ हवालात मे रखा। मैं जानता हूँ आपके पास उसके खिलाफ अभी कोई सबूत नही है। आप उसको ज़ामिन पैदा करने के लिये कह सकते थे।"

"उसका कोई ज़ामिन यहां हो सकता है?"

"क्यों नहीं? आपको पूछना तो चाहिये था।"

"मुआफ करें। मुझे मालूम नहीं था।"

"अच्छी बात। अब रिहा कर दें।"

बात यह थी कि सब-इन्सपैक्टर और दूसरे पुलिस के लोग नवाब साहब से कुछ पा गये थे और इस आशा में थे कि रात भर में विनोद बक जायगा और सलीमा का पता दे देगा। रात भर उन्होंने विनोद को बहुत तङ्ग किया और उसे डाटा-फटकारा भी। दो घण्टे के लगभग जिरह भी की। इसका आशय केवल विनोद को विवश कर सलीमा का पता पूछना था। इसके विपरीत जो कुछ मालूम हुआ उससे सब-इन्सपैक्टर को विश्वास हो गया कि न तो यह लड़की भगा लाने का केस है, न ही सलीमा नाबालिग़ है। सब-इन्सपैक्टर अब किसी बहाने से विनोद को छोड मुआमला बन्द कर देना चाहता था। अब विनोद के पिता को आया देख, कुछ अफसोस प्रकट कर, विनोद को छोडने पर तैयार हो गया। मुचलके-ज़मानत का कागज़ ले उसे भरने लगा।

विनोद, उसका पिता और अन्य लोग थाने से चल होटल में पहुँचे। कमरे में पहुँच मिस्टर माथुर ने हसते हुए कहा, "क्यों विनू, नवाब की लड़की से प्रेम करने का मज़ा मिला या नहीं?"

विनोद ने लज्जा से आंखें नीची किये हुए कहा, "पिता जी, क्षमा करें। आपको भारी कष्ट करना पड़ा है।"

इस पर मिस्टर माथुर फिर जोर से कहकहा मारकर हंसने लगे। शेखरानन्द इत्यादि भी हस रहे थे। विनोद की गाले अभी भी लज्जा से लाल हो रही थीं। उसने साहस कर कहा, "मगर पिता जी, मैंने प्रेम करने में भूल नहीं की। मेरी भूल तो यह हुई है कि पढ़ी थी डाक्टरी और करने लगा था वकालत।"

"क्या मतलब?"

"बात वही है जो मैंने आपसे कुछ दिन हुए लखनऊ में कही थी। मैंने सलीमा से विवाह का निश्चय नहीं किया। न ही वह मेरे साथ विवाह करने के लिये घर से भागकर आई है। वह तो एक कुरूप, बद-

दिमाग़, गँवार नवाबज़ादे के साथ ज़बरदस्ती शादी कर दिये जाने के डर से घर से भागी है। मैंने तो केवल यह भूल की कि नवाब साहब के सम्मुख उसकी ओर से वकालत करने लगा था। इन्सपैक्टर पुलिस को शक हो गया कि मैं उसका पता जानता हूँ। वह मुझे कष्ट देकर सलीमा के रहने का स्थान जानना चाहता था।"

"तो क्या तुम उसका पता नहीं जानते?"

"जानता हूं, परन्तु मैं बताने वाला नहीं था। उस इन्सपैक्टर ने भूल यह की कि वह मुझे कायर और दुर्बलात्मा समझता था।"

"वह है कहा?"

इस पर मोहन बाबू ने बताया, "वह हमारे गुरु जी के पास नई दिल्ली मे ठहरी है।"

मिस्टर माथुर ने मोहन को अब ध्यान से देख कहा, "मैंने आपको कहीं देखा है।"

"जी हा, जरूर देखा है। देवा में, श्रीमान सुरेशकुमार के यहा। आप एक बार वहा गये थे न और गुरुदेव से आपकी बहुत बातचीत भी हुई थी।"

"पथिक!" बहुत अचम्भे में माथुर बाबू ने पूछा, "क्या दिल्ली में हैं?"

"जी, मैं आजकल उनके साथ ही हूँ। सलीमा बीबी कल से वहीं हैं।"

अब मिस्टर माथुर ने फिर विनोद से पूछा, "तो तुम क्या चाहते हो?"

"पिता जी, मेरे चाहने न चाहने का प्रश्न नहीं है। यह तो उसके चाहने का प्रश्न है। वह स्वयं घर से भाग निकली है। वह स्वयं मेरे पास आई है और अपनी स्वतन्त्र इच्छा से गुरु जी के पास ठहरी है।"

"तो उससे मालूम करना चाहिये न। यह मामला इतना सीधा नहीं जितना तुम समझते हो। वह बालिग़ ज़रूर है, मगर इस मामले पर हिन्दू-मुस्लिम फ़साद तक हो सकता है। मालूम है एक ऐसी ही बात पर स्वामी श्रद्धानन्द जी का क़त्ल हो गया था। किसी मज़हबी दीवाने को यह जानने

की फ़ुरसत नहीं होती कि लड़की बालिग़ है या नाबालिग़ और वह अपनी इच्छा से घर से निकली है।"

"मगर क्या," मोहन बाबू का कहना था, "मज़हबी दीवानों से डरकर मनुष्यता और कर्तव्य को छोड़ दिया जाय?"

"मैं यह नहीं कहता। मेरा अभिप्राय तो यह है कि साप भी मर जाय और लाठी भी बच जाय।"

मिस्टर माथुर स्वयं पथिक को मिलने जाना चाहते थे। उन्होंने कहा, "पथिक के यहां चलकर ही अब निर्णय करेंगे।"

इसी समय नवाब साहब विनोद के कमरे के बाहर आ खड़े हुए। वह मिस्टर माथुर को वहां देख कुछ झेंप गये। दरवाजे के बाहर से ही पूछने लगे, "क्या मैं भीतर आ सकता हूं?"

सब लोग चुप हो गये। वे चाहते थे कि विनोद के पिता उत्तर दें। मिस्टर माथुर को नवाब साहब पर भारी क्रोध आ रहा था। वह उनसे आशा करते थे कि विनोद को हवालात भिजवाने के पहले एक बार उनसे सहायता मागते। नवाब साहब ने परदेश में उनके लड़के को कैद करवाने का यत्न किया। अतएव जब उन्होंने भीतर आने के लिये पूछा तो मिस्टर माथुर ने कुर्सी पर बैठे २ ही पूछा, "तुम कौन हो और क्या चाहते हो?"

नवाब साहब इस प्रश्न से बहुत ही जल उठे, परन्तु क्रोध को भीतर ही भीतर पी गये। उनको बहुत आशा थी कि पुलिस वाले विनोद को बका लेंगे। इस काम के लिये वह पुलिस को एक भारी रक़म दे भी चुके थे। आज जब वह थाने पहुँचे तो सब-इन्सपेक्टर ने अपनी विवशता प्रकट की। वह यों तो बिना रिपोर्ट दिये विनोद को रात भर भी नहीं रख सकता था, परन्तु अब तो उसे सिटी मैजिस्ट्रेट के सामने पेश करना ही था। यह वह बिना रिपोर्ट और बिना किसी पक्के सबूत के कर नहीं सकता था। विनोद के पास से कोई सबूत प्राप्त नहीं हुआ था कि वह सलीमा की बाबत कुछ भी जानता है। नवाब साहब इन्सपैक्टर की यह युक्ति सुनकर चुप हो गर्दन झुकाये होटल में आये थे, ताकि विनोद की मिन्नत कर पता

निकालें। मिस्टर माथुर के इस प्रश्न से तो वह पानी पानी हो गये, परन्तु विवश थे। बोले, "एक बदकिस्मत बाप खैरात मांगने आया है।"

इस उत्तर में आह भरी हुई थी। यह मन के दुख की हूक थी। इसने सब सुनने वालों के मन पर प्रभाव डाला। मिस्टर माथुर, इस उत्तर को सुन, उठकर नवाब साहब को हाथ से पकड़ सत्कार से भीतर ले आये। उन्हें कुर्सी पर बैठाकर बोले, "नवाब साहब, माफ करियेगा। मुझे आपके खिलाफ गिला था। वह फूटकर बाहर निकल गया। अब मैं अपने पर शर्मिन्दा हूँ। मैं एक बाप के जज़्बात को, जिसकी जवान लड़की गुम होगयी हो, महसूस करता हूँ। बताइये, हम आपकी क्या मदद कर सकते हैं?"

मिस्टर माथुर के इस कथन को सुन नवाब साहब की जान में जान आई। उन्होंने आखें नीची किये हुए कहा, "मुझसे कल भूल हो गयी थी। मेरा दिमाग़ खराब कर दिया गया था। मुझे अब अपनी ग़लती मालूम हुई है। मुझे लड़के को पकड़वाना नहीं चाहिये था। मुझे आपसे मदद मागनी चाहिये थी।"

मिस्टर माथुर ने नवाब साहब की दुर्दशा देख सहानुभूति दिखाते हुए कहा, "बेशक, मैं आपकी अपने पूरे बस से मदद करने के लिये तैयार हूँ। बताइये, आप क्या चाहते हैं?"

"मैं सलीमा से मिलना चाहता हूँ और उसे घर ले जाना चाहता हूँ।"

"मिला तो मै सकता हूँ। मगर एक शर्त पर कि आप उस पर जबरदस्ती नहीं करेंगे। वह बालिग़ है। उसे समझा बुझाकर काम करिये।"

"मुझे मंजूर है," नवाब साहब ने आंखें नीची किये हुए कहा।

इस पर शेखरानन्द ने कहा, "और वह हैदराबाद वाले कहा हैं?"

"वह हैदराबाद लौट गया है। कल रात वह कहने लगा कि चूँकि मेरी लड़की आवारा है वह उससे शादी नहीं करेगा। वही मुझे दिल्ली लाया था। वही मुझे पुलिस में ले गया था और जब मामला विनोद के

पकड़े जाने तक पहुँच गया तो वह भाग गया है। अब मेरे लिये और कोई चारा नहीं। मैं फौरन उसकी शादी जहा वह चाहेगी कर दूँगा।"

मिस्टर माथुर भली भांति समझते थे कि सन्तान की बदनामी कितने दुख का कारण हो सकती है। उन्होंने सहानुभूति के भाव में कहा, "अगरचे मैं आपको इस बात से इत्तफाक नहीं रखता कि उसे शादी कर ही लेनी चाहिये, फिर भी मैं आपसे उसे मिलाने की पूरी कोशिश करूंगा।"

मोहन बाबू को भेज सलीमा को होटल में बुला लिया गया। सलीमा यद्यपि प्रत्येक प्रकार से अपने पिता से क्षमा माँग लेने के लिये तैयार थी, इस पर भी वह विवाह न करने पर तुली हुई थी। मिस्टर माथुर ने लड़कों को दूसरे कमरे में भेज दिया और सलीमा से कहा, "देखो बेटी, वालिद साहब से मुआफी माग लो और फिर ऐसा नहीं करना।"

सलीमा ने हाथ जोड़ कहा, "अब्बाजान, मुआफ कर दो। आपको बहुत तकलीफ हुई है।"

नवाब साहब ने कहा, "बेटी, घर चलो। तुम्हारी मां बहुत परेशान है।"

सलीमा ने आंखे नीची किये हुए कहा, "घर तो चल सकती हूं, मगर शादी नहीं करूंगी।"

"मगर अब तो तुम जिससे कहो उसी से तुम्हारी शादी करने के लिये तैयार हूं। विनोद के पिता यह बैठे हैं। अगर तुम चाहो तो सब बातें तुम्हारे सम्मुख तय कर ली जांय।"

"मगर मैं तो शादी के लिये आपसे नहीं कहती। मुझे यह अभी नहीं करनी।"

"तुम्हारे घर से भाग आने में हमारी सख्त बदनामी हो रही है। अगर तुम्हरी शादी फौरन न कर दी गयी तो.....।"

"तो फिर मै घर नहीं जाऊंगी। मुझे अभी शादी नहीं करनी।"

लाचार नवाब साहब को मानना पड़ा।

[१६]

विद्यार्थी-मंडल में राजनीति का प्रस्ताव पास हो गया। बात यह हुई कि शेखरानन्द इत्यादि नवाब साहब से झगड़े के कारण पण्डाल में देरी से पहुंचे। विनोद और सलीमा भी अनुपस्थित थे। प्रधान ने इस प्रस्ताव के पक्ष के लोगों को मन भर कर बोलने दिया। पश्चात् वोट लिये और प्रस्ताव पास हो गया। प्रस्ताव यह था कि फैडरेशन का राजनीतिक कामों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

सलीमा और विनोद को इससे अत्यन्त शोक हुआ और उन्होंने अपने प्रयत्न की असफलता को पथिक को बताया। पथिक ने कहा, "इस में शोक करने की बात नहीं है। हम इस आयोजना को बिना फैडरेशन की सहायता से ही चला लेंगे। मेरा यहां आना सफल हुआ है। मेरा सम्बन्ध प्रायः सब बड़े-बड़े कॉलेजों के विद्यार्थियों से हो गया है। मैंने प्रत्येक स्थान के लिये एक-एक दो-दो कार्यकर्ता नियत कर दिये हैं। अब इस काम को आगे चलाने के लिये चुपचाप कॉलेजों में काम करना है। मैं चाहता हूं कि इस संस्था के शीघ्रातिशीघ्र दस हजार सदस्य बन जायें। काम न तो कानून के खिलाफ है, न ही बहुत कठिन। प्रचार करने की बातें सत्य सत्य ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाली होंगी। किसी देश के लोगों में स्वतन्त्र होने की भावना उत्पन्न करना कानून के विपरीत नहीं है। लोगों को बताना कि किन दोषों के कारण वे परतन्त्र हैं पाप नहीं है। बस यही बताने के लिये मेरी योजना है। खर्चे का सब प्रबन्ध है। किसी को कुछ भी खर्च नहीं करना होगा।"

सलीमा ने देहली छोड़ने से पूर्व एक बार पथिक से मिलकर अपने कई संशयों का निवारण करना चाहा। नवाब साहब यद्यपि उसका इस प्रकार लड़कों में घूमना पसन्द नहीं करते थे, परन्तु डरते थे कि कहीं फिर नाराज़ हो भाग न जाय। अतएव वह पथिक से मिलने गयी।

जब जब भी वह पथिक के समीप गई थी उसे रोमांच हो आया था। इस बार भी वह ऐसा अनुभव करती थी कि उसके पूर्ण शरीर से बिजली

के शरारे निकल रहे हैं। वह इसका अभिप्राय नहीं समझती थी और अपनी अवस्था पर परेशान थी। जब भी वह पथिक के ओजस्वी मुख की ओर देखती थी उसकी आखों की टकटकी बंध जाती थी।

वह बहुत बातें पूछने का विचार रखती थी, परन्तु जब सामने आई तो भूल गयी और उसके मन के सब विचार अस्त-व्यस्त हो गये। जब कई मिनट तक वह कुछ नहीं कह सकी तो पथिक ने कुछ कहने के लिये कह दिया, "तो तुम अब लखनऊ जा रही हो?"

"सलीमा ने केवल यह कहा, "जी।"

"नवाब साहब अब सब बात मान गये हैं क्या?"

"जी।"

"अब फिर मैडिकल कॉलेज में पढ़ोगी?"

"जी।"

"बहुत अच्छा है। मेरी शुभकामना तुम्हारे साथ है।"

इसका अर्थ था कि वार्तालाप बन्द, परन्तु सलीमा तो बहुत कुछ पूछने आई थी। वह अवाक् मुख पथिक को देख रही थी। पथिक ने कुछ देर ठहरकर कहा, "क्या बात है बीबी? क्या देख रही हो?

इस प्रश्न ने सलीमा की चेतना को जगा दिया। वह अपने व्यवहार पर लज्जा अनुभव कर रही थी। उसने अपने अस्त-व्यस्त विचारों को एकत्रित करने का यत्न कर रहा, "मैंने...मैंने आपसे बहुत कुछ पूछना है।"

"हा पूछो।"

"सब भूल गयी हूँ।"

"ओह!" पथिक ने मुस्कराते हुए कहा, "घबराओ नहीं। निश्चिन्त होकर पूछ सकती हो।"

सलीमा अपनी इस अवस्था पर हैरान थी। वह सभाओं में धारा-प्रवाह व्याख्यान देते समय, जब हज़ारों श्रोतागण उसके एक एक शब्द को नापने और तोलने के लिये सचेत बैठे होते थे, कभी नहीं झिझकती

थी। परन्तु इस पुरुष के सामने वह एक निस्सहाय बालिका की भांति अपने भावों को शब्दों में व्यक्त करने में असफल हो रही थी। उसने अतुल यत्न के पश्चात् यह पूछा, "आप हिन्दू-मुसलमानों के मुतल्लिक क्या समझते हैं?"

"मेरे लिये हिन्दुस्तान में रहने वाले दो श्रेणियों में बंटे हैं। हिन्दुस्तानी और गैर हिन्दुस्तानी। हिन्दू और मुसलमानों का भेदभाव ऐसा ही है जैसा हिन्दुओं में एक मत और दूसरे मत का।"

"यदि यह फरक बस इतना ही है तो दोनों फिरकों के लोग आपस में खाने-पीते और विवाह-शादियां क्यों नहीं करते?"

"मुसलमानों के यहां आने से पूर्व ही हिन्दुओं में जात-पांत और विवाह-शादियों के बन्धन बन चुके थे। एक जात के लोग दूसरे के साथ नहीं खाते थे और विवाह भी नहीं होते थे। जब मुसलमान यहां आये या जो लोग मुसलमान बन गये उनके साथ भी वही व्यवहार किया गया जो एक जाति दूसरी के साथ करती है। अगर सरजूपारी ब्राह्मण कान्यकुब्ज ब्राह्मण के हाथ का पका खाना नहीं खाता तो उसका मतलब यह नहीं कि ये दो फिरके हैं। अगर माथुरों के विवाह माथुरों में ही होते हैं और सक्सेनाओं से नहीं होते तो इसका यह मतलब नहीं कि सक्सेनाओं और माथुरों के राजनीतिक हक़ूक भिन्न-भिन्न हैं। मैं इन खाने-पीने के बन्धनों को ठीक नहीं समझता और न ही विवाह इत्यादि में जात-पांत की अथवा हिन्दू-मुसलमान की हदबन्दी पसन्द करता हूं। मेरे लिये तो हिन्दुस्तान में दो जातियां हैं, दो फिरके हैं। एक हिन्दुस्तानी और दूसरे गैर हिन्दुस्तानी। दोनों फिरकों में हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी।"

सलीमा को अभी सन्तोष नहीं हुआ था। उसने फिर पूछा, "मान लो कि एक हिन्दू लड़के से मुसलमान लड़की शादी करती है, या इससे उलटा होता है, तो किसको अपना मज़हब तबदील करना चाहिये?"

"किसी को भी नहीं। मज़हब का विवाह से या खाने-पीने से कोई ताल्लुक नहीं है।"

"जब बीवी एक मजहब की है और खाविन्द दूसरे मज़हब का तब बच्चे किस मज़हब को स्वीकार करें और उन पर किस के मज़हब का असर पड़ने देना चाहिये ?"

"अगर बीवी और खाविन्द एक दूसरे को मज़हब तबदील करने के लिये मज़बूर नहीं करते और वे इसे अपनी अपनी निज की बात मानते हैं तो वे बच्चों को भी मज़बूर नहीं करेंगे और उन्हें अपना अपना मज़हब खुद तलाश करने का मौक़ा देंगे।"

"मगर अमली जिन्दगी में तो ऐसा नहीं देखा जाता। देखने में तो यह आता है कि हिन्दू और मुसलमान हमेशा एक दूसरे को अपने मज़हब में लाने की कोशिश करते रहते हैं।"

"यह कोशिश अगर जायज़ तरीके से की जाय तो खराब नहीं है। हर एक को हक होना चाहिये कि वह अपने मज़हब को खुद चुने और दूसरों को उस मज़हब की खूबियां बताकर उन्हें उसमें मिलाने की कोशिश करे। नाजायज़ तरीके हैं रिश्वत देना, लालच देना, या कोई ऐसी सहूलियत देना जिसका आत्मा की तरक्की के साथ ताल्लुक न हो। किसी को डरा-धमकाकर मज़हब तबदील करने को कहना सख़्त एतराज की बात है। मगर मैं जो कहता हूं वह यह है कि मज़हब की बिना पर सियासी हक-हकूक का बंटवारा नहीं होना चाहिये। अगर एक मज़हब कबूल करने से किसी के शहरीयत के हक-हकूक बढ़-घट जाते हैं तो यह मज़हब एक राजनीतिक दल हो जाता है।"

"मतमतान्तरों के आधार पर राजनीतिक दल क्यों न बना लिये जाये ?"

"इसमें खराबी जानने के लिये कैथोलिक और प्रोटेस्टैन्ट मज़हबों के इतिहास को, ख़ास तौर पर इंगलैंड और फ्रांस में, पढ़ो। मेरा इस पर कुछ कहना व्यर्थ है। इसके अलावा इस मुल्क में हिन्दुओं की तादाद सत्ताईस-अट्ठाईस करोड़ है। वे मज़हब को सियासियात से बाहर रखना चाहते हैं। उनके ख्याल में मज़हबी आज़ादी के अर्थ हैं कि मज़हब राज्य

की ओर से न हो। इतनी संख्या में लोगों की बात कैसे टाली जा सकती है ?"

"आखिर यही तो पूछ रही हूं कि हिन्दू क्यों मज़हब की बिना पर राजनीतिक दल नहीं बनाना चाहते ?"

"वजह बहुत साफ है। हिन्दू शब्द के अर्थ किसी खास मज़हब के नहीं हैं। हिन्दुओं में अनेकों मतमतान्तर हैं। आत्मा-परमात्मा, नज़ात (मुक्ति), पाप-पुण्य की बाबत इनमें मुख़्तलिफ ख्याल रखने वाले लोग हैं। ये सब अपने अपने ढंग से पूजा-पाठ करना पसन्द करते हैं और नहीं चाहते कि कोई भी जबरदस्ती अथवा लालच-लोभ देकर किसी को मज़हब बदलने को कहे। राज्य को मज़हब की बिना बना देने से राज्य अपने मज़हब रखने वालों की तादाद कम नहीं होने देगा और कोशिश करेगा कि बढ़े। यह दखल हिन्दू पसन्द नहीं करते।"

"अगर हिन्दू एक मज़हब नहीं तो हिन्दू क्या हैं ?"

"हिन्दू हिन्दुस्तान में रहने वाले हैं।"

"तो क्या मुसलमान हिन्दुस्तान के रहने वाले नहीं ?"

"हम तो मानते हैं और उन्हें एक हिन्दुस्तानी होने के सब हक-हकूक लेने को कहते हैं। मगर वे एक हिन्दुस्तानी से अधिक हकूक मांगते हैं।"

"एक हिन्दुस्तानी से अधिक ?"

"हाँ, जब मुसलमान यह कहते हैं कि एक मुसलमान को नौकरी प्राप्त करने में या दूसरी बातों में विशेष अधिकार मिलने चाहियें तो ये एक हिन्दुस्तानी से अधिक अधिकार ही तो हुए। मुसलमानों के अतिरिक्त दूसरे मत वालों को यदि कोई स्थान बी० ए० पास करने पर नहीं मिल सकता और वही स्थान मुसलमानों को कम शिक्षा प्राप्त करने पर मिल जाता है तो यह हक से अधिक मिलना नहीं है क्या ?"

"तो आपका मतलब है कि नौकरियों में अथवा कमेटियों में विशेष मताधिकार जो मुसलमानों को प्राप्त होगया है यह उनको अपने हक़ से ज्यादा मिला है।"

"हां, मैं तो यही समझता हू। सरकार ने ये अधिकार दे दिये हैं। देखो न, आम लोगों के लिये एक आदमी को प्रान्तीय धारा-सभा का सदस्य चुनने के लिये जो योग्यता चाहिये उससे कम योग्यता वाले मुसलमान को सदस्य चुनने का हक़ है। यह एक हिन्दुस्तानी से बढ़कर हक तो है ही। सरकार ने यह बेइन्साफी इसलिये की है ताकि मुसलमान मज़हब के नाम पर हक मागने को इन्साफ समझने लगे और हिन्दुओं से उनकी न पटे।"

"मुसलमान तो यह समझते हैं कि वे तादाद में कम हैं। इससे उनको खास हक-हकूक मिलने चाहियें ताकि वे अपने मजहब और तहज़ीब की हिफाजत कर सकें।"

"जो खास नुमाइन्दगी (विशेष मताधिकार) वे मागते हैं वह उनकी महज़बी बातों की हिफाज़त नहीं कर सकती। जरा एक मिसाल लो। सयुक्त प्रान्त में, जहा की तुम रहने वाली हो, सन १९०९ में जब मुसलमानों को खास नुमाइन्दगी नहीं मिली थी तब प्रान्तीय कौन्सिल में उनकी सख्या १९ प्रति शत थी। सन् १९१९ के पश्चात् तीस प्रति शत हो गयी और अब सन् १९३५ में २८ प्रति शत हो गयी। अब तुम सोचो कि शेष प्रायः हिन्दू हैं। यदि वे चाहें तो २८ प्रति शत या ३० प्रति शत का वोट वैसे ही कुछ नहीं कर सकता जैसे १९ प्रति शत का। जिन प्रान्तों में मुसलमानों की आबादी कम है वहा चाहे कितनी भी ज़्यादा नुमाइन्दगी मिल जाय, जब तक यह पचास प्रति शत से ज़्यादा नहीं होती, वह कुछ भी असर नहीं रख सकती। मै कहता हू कि मज़हब और तहज़ीब की हिफाज़त कौंसिलों में ज़्यादा नुमाइन्दगी से नहीं होगी। क्या मुसलमान उन प्रान्तों में, जहा उनकी आबादी पाच-छः प्रति शत भी है, पचास प्रति शत से ऊपर नुमाइन्दगी मागेंगे?"

"आप इस डर को दूर करने का क्या उपाय बताते हैं?"

"मजहब को रखने, मज़हबी रसूमात को अदा करने, और मज़हब को फैलाने का हक सब को मिल जाना चाहिये। यह स्पष्ट है कि कुछ

हक हर एक हिन्दुस्तानी के जन्म से हैं। इनको मूल अधिकार कहते हैं। और ये मज़हबी हक इनमें रख लेने चाहिये। इसके पश्चात् हमारी राजनीतिक जिन्दगी में मजहब का नाम नहीं आना चाहिये।

"मगर सलीमा बहिन, ये सब शंकायें तुम्हारे मन में क्यों उत्पन्न हुई हैं? मैंने तो अपनी योजना में इनको घुसने नहीं दिया। मैं तो हिन्दू-मुसलमानों को अलग नहीं मानता। यह फरक तो अंग्रेजों ने ही पैदा किया है। कुछ अंग्रेजी राजनीतिज्ञों ने मुसलमानों को भ्रम में डालकर उनसे ये मांगे करवाई हैं। इन राजनीतिज्ञों में मिस्टर बेक जो सर सैयद अहमद के जमाने में अलीगढ़ कॉलेज के प्रिन्सिपल थे काफिले ज़िकर हैं। वह एक तालीमी माहर समझे जाते थे, मगर हकीकत में वह सियासी दूत थे। उन्होंने सर सैयदअहमद को जो पहिले हिन्दुस्तानी कौमियत का हिमायती था अंग्रेजी हकूमत का हिमायती बना दिया और मुसलमानों के लिये खास रियायतें मागने वाला बना दिया। एक कॉलेज के प्रिन्सिपल होने पर भी जब मिस्टर बेक का देहान्त हुआ तो लंडन टाइम्स ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा था कि 'यह सल्तनत को बनाने और मजबूत करने के काम में लगे हुए थे। इनकी मौत एक सिपाही की मौत की तरह है जो अपनी सफ में खड़ा हुआ मरता है। मुसलमान बहुत शकी मिजाज़ होते हैं। पहिले वे मिस्टर बेक को अंग्रेजी भेदिय समझते रहे। मगर इनकी संजीदगी और बेखुदी ने जल्दी ही उनके विश्वास को जीत लिया।

"यह एक कॉलेज का प्रिंसिपल सल्तनत को बनाने और मजबूत करने वाला सिरफ इसलिये लिखा गया है कि उसने मुसलमानों को, उस समय की राष्ट्रीय संस्था, कांग्रेस से बाहर रखा था।

"एक और राजनीतिज्ञ, इस अलीगढ़ कॉलेज के प्रिन्सिपल, मिस्टर आरकिबाल्ड ही उस डेपुटेशन के बनाने वाले बने जो सर आगाख की लीडरी में वायसराय साहब के पास मुसलमानों के लिये कौन्सिलों में खास नुमायिन्दगी मागने गया था। यह नहीं कि सब मुसलमान इन

अंग्रेज़ी सल्तनत बनाने व मज़बूत करने वालों के चक्कर में आगये हों, मगर चूंकि सरकार उन्हीं मुसलमानों को जो इन लोगों के इशारे पर चलते हैं मुसलमानों के लीडर मानती है, कुदरती तौर पर हम मुग़ालते में फंस जाते हैं।"

सलीमा जिस बात को पूछने आई थी और जो अभी भी उसके मन में थी मुख से नहीं निकल सकी। कुछ सोचकर उसने कहा, "मैंने पूछना तो बहुत कुछ था, परन्तु समय हो गया है और अब्बाजान बाहर इन्तज़ार कर रहे हैं। क्या मैं आपको चिट्ठी लिखकर पूछ सकती हूँ?"

"हां, बहुत खुशी से।" इस पर पथिक ने अपना पक्का पता लिखा दिया।

सलीमा को कोठी के बाहर तक पथिक छोड़ने आया। जब सलीमा अपने बाप के पास मोटर में आ बैठी तो नवाब साहब ने पूछा, "यह कौन था?"

सलीमा ने बेपरवाही से कह दिया, "नवयुवक संघ के चलाने वाले।' सलीमा अपने विचारों में लीन थी और इस समय बातें करना नहीं चाहती थी। परन्तु नवाब साहब, जो तीन घण्टे की प्रतीक्षा करते २ क्रोध से भरे बैठे थे, इतना सहज में ही सलीमा को छोड़ने वाले नहीं थे। उन्होंने फिर पूछा, "तुम्हारा इससे मतलब?"

"मेरी बदकिस्मती।"

"क्या?"

"आप कैसे समझ सकते हैं अब्बाजान? आपने तो कभी इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया।"

"आखिर बताओ भी तो।"

"इसमें बताने की क्या बात है? बदकिस्मती से मैं हिन्दुस्तान में पैदा हुई हूं और मुझे इस संघ में शामिल होना पड़ा है।"

"तुम बदकिस्मत क्यों हो? एक नवाब के घर पैदा हुई हो। खाने-पहरने या रहने की तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं। मैं तो ऐसों को बदकिस्मत

नहीं समझता।"

"ये सब तो जानवरों को भी मुहैया (प्राप्त) हैं।"

"इसके इलावा तुम आला तालीम भी पा रही हो। तुम्हारी ख़िदमत के लिये नौकर-नौकरानियां हैं। खुदा ने तुम्हें सूरत दी है और सीरत भी। तुम्हें किस बात की कमी है?"

"कमी? सब से बड़ी और अव्वल दर्जा की बात मुझे मिल नहीं रही है। मैं एक आज़ाद कौम की लड़की नहीं हूँ। मैं उस कौम में पैदा हुई हूँ जो दूसरों की गुलाम है। मैं किसी आज़ाद मुल्क के बाशिन्दे से निधड़क बात नहीं कर सकती। मेरा सिर शरम से झुक जाता है, आखें ऊपर नहीं उठ सकतीं। इस संघ में मेरे जैसे बदकिस्मत शामिल हैं जो इस ज़लालत को अनुभव करते हैं।"

"ओह, तो यह एक पुलिटिकल जमायत है!"

"हां, मगर आपकी मुसलिम लीग की तरह की नहीं।"

"मुसलिम लीग कोई पुलिटिकल जमायत थोड़े ही है। यह तो मुसलमानों की तन्ज़ीम (संगठन) करने के लिये है।"

"क्या मुस्लिम लीग में कुरान पढ़ाया जाता है, या क्या नमाज़ पढ़ने का तरीका बताया जाता है?"

"क्या बेहूदा बातें करती हो?"

"नहीं अब्बाजान, बेहूदा नहीं। ठीक कह रही हूं। मुस्लिम लीग भी एक सियासी जमायत है, मगर इसकी सियासियात मुल्क के फायदे के लिये नहीं, बल्कि यहां की हुक्मरान कौम के फायदे के लिये है।"

"मुल्क? कौन मुल्क?"

"हिन्दुस्तान।"

"हिन्दुस्तान एक मुल्क नहीं है।"

"कैसे?"

"इसमें बीसियों कौमें बसती हैं, बीसियों ज़बानें हैं और बीसियों किस्म के ख्यालात के लोग हैं।"

"अब्बाजान, आपने तवारीख नहीं पढ़ी है तभी ऐसा कहते हैं।"

"पढ़ी क्यों नहीं ? खूब पढ़ी है।"

"तो अंग्रेजी चश्मा लगाकर पढ़ी होगी। मद्रास की जबान यू० पी० की जबान से कितनी मुख्तलिफ है, मगर दोनों सूबों में एक हिन्दू के विवाह पर वही मन्त्र पढ़े जाते हैं। हिन्दुओं के देवी-देवता, पूजा-पाठ के तरीके, धोती और चोटी, राम और कृष्ण, सीता और राधा, सब हिन्दुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने तक एक जैसे हैं। जबान में फरक और अंग्रेजी तवारीखदानों के कहने के मुताबिक बीसियों कौमों का होना भी इस एक किस्म के रहन-सहन को खराब नहीं कर सका। गजब की बात तो यह है कि पुराने जमाने में जब रेल-तार भी नहीं थे, जबान समझने की मुश्किल तो थी ही, तब भी हिन्दू अपने रस्मो-रिवाज को कैसे एक जैसा रख सके। अगर यह मुल्क एक न होता तो काश्मीर के हिन्दू रामेश्वर पर और मद्रास के हिन्दू बद्रीनारायण पर तीर्थ-यात्रा के लिये न जाते।"

"मालूम होता है कि इन हिन्दू छोकरों ने तुम्हारे दिमाग को खराब कर रखा है।"

इस समय मोटर उस होटल में पहुँच गयी थी जहाँ नवाब साहब ठहरे हुए थे।

*

*

चौथा भाग

विवाह अथवा संघ-कार्य

"अम्मी जान! आप समझ क्यों नहीं सकतीं? मैंने कई बार समझाया है कि मैं आवारा नहीं हो गई। मैं अपनी असमत खराब नहीं कर रही। इस पर भी आप वही रट लगाये हुए हैं कि आबरू बिगड गयी है। कैसे बिगड गयी है? क्या आबरू, इज्ज़त मूर्ख लोगों के कहने से बनती-बिगड़ती है?" सलीमा अपनी मा को समझा रही थी।

मगर सलीमा की मां उसकी युक्तियों को नहीं मान रही थी। कह रही थी, "और क्या? जब सब लोग एक बात कहते हैं तो होकर ही रहती है। 'आवाज़े ख़ल्क को नक्कार ए खुदा समझो' क्या यह कहावत ग़लत है?"

"और यह ठीक हो ही कैसे सकती है? खुदा भला इतना बेवकूफ है कि लोगों के कहने पर चलेगा या अपनी बात खुद न बताकर कम अक्ल लोगों की मारफत बतायेगा। मेरा अच्छा या खराब होना मेरे चलन से होगा न कि लोगों के कहने से। चांद-सूरज को, कोई कहे, नहीं हैं, तो वे नहीं रहेंगे क्या?"

"सलीमा, तुम अभी बच्ची हो। तुम इन बातों को नहीं समझ सकती।"

"अच्छी बात, अम्मी! मगर मैं अभी शादी नहीं करूंगी।"

"नहीं करोगी तो मैं भूखों मर जाऊँगी, मैं अभी अपना गला घोट लूंगी। मुझसे यह नहीं देखा जाता।" इतना कहते कहते सलीमा की मां ने अपना सिर दोनो हाथों से पीटना शुरू कर दिया। उसने अपना सिर दो तीन बार दीवार पर पटका।

सलीमा इस पागलपन को देख घबराई। वह परेशान थी कि क्या करे। उसने भागकर अपनी मा के सिर को अपने हाथों में ले लिया। बहुत मुश्किल से मां को काबू में किया। मा के माथे से लहू की धारा बहने लगी थी। सलीमा ने नौकरानी को बुलाया और अब्बाजान को बुलाने भेज दिया। वह भागे २ आये। "अजी यह क्या होगया है ? यह क्या खून-खराबा मचा रखा है ?" उन्होंने चिल्लाया।

सलीमा अपनी मा को बहुत मुश्किल से पकड़े हुए थी और मा के खून से लथपथ हो रही थी। नवाब साहब इस हाथापाई को देख बहुत परेशान हुए। वह नहीं समझ सके कि क्या माजरा है। "क्या हुआ है सलीमा ?" उन्होंने कुछ घबराहट से पूछा।

सलीमा ने मा को नवाब साहब के हाथ में पकड़ाते हुए कहा, "अब्बाजान, मा खुदकशी करना चाहती हैं"

"क्यों ?"

"इन्हीं से पूछ लो न।"

"क्यों जी, क्या बात है ? क्या हुआ है आज ?"

सलीमा की मा का क्रोध अभी ठंडा नहीं हुआ था। वह बोली "इस घर में रहना अब कोरी ज़लालत है। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकती। आप मुझे छोड़ दें। मेरे जनाज़े की तैयारी करें। मै अपना काला मुँह अब किसी को दिखाने के काबिल नहीं हूँ।"

"आखिर हुआ क्या है ? कुछ बताओगी भी या नहीं ?"

"क्या हुआ है, जैसे कुछ जानते ही नहीं। हटो, छोड़ो मुझे। मेरा जीना अब हराम है।"

नवाब साहब ने माथे के ज़खम पर हाथ रख, खून बन्द करने का यत्न करते हुए, सलीमा को पानी और पट्टी का सामान लाने के लिये कह दिया। सलीमा दूसरे कमरे से रुई, लोशन, पट्टी इत्यादि लेने चली गयी।

जब सलीमा चली गयी तो नवाब साहब ने बेगम को गोदी में बैठा, प्यार करते हुए कहा, "भला यह क्या नाटक कर रही हो ?"

बेगम ने मुस्कराकर नवाब साहब की ओर देखते हुए कहा, "ओह हज़रत, आपने इस नाटक में विघ्न क्यों डाल दिया ? यह आज कामयाब होने ही वाला था।"

"ओह ! तो भूल हुई। मगर मुझे क्या मालूम था ? पहिले बता दिया होता तो मैं भी इस नाटक में अपना पार्ट अदा करता।"

"तो अभी कुछ सोच लो न। अगर माथा फोड़ने पर भी काम न बना तो सब फ़ज़ूल होगा न !"

"अच्छी बात, जब वह आये तो तुम छटपटाना। पट्टी मत बांधने देना। फिर मैं अपना पार्ट दिखाऊंगा।"

सलीमा, सत्य ही, मा की हालत देख अपने निश्चय से डगमगाने लगी थी। उसने सोच लिया था कि अगर उसे पति टूटने की छुट्टी मिल गयी तो शादी के लिये राज़ी हो जायगी। वह अपनी मा को अनपढ़ और बेसमझ समझती थी। इस पर भी मा के आत्महत्या करने के यत्न ने उसे कम्पायमान कर दिया था।

वह मरहम-पट्टी का सामान लेकर आई तो अब्बाजान को अम्मी से बातें करते सुन कमरे के दरवाजे के बाहर ही ठहर गयी। अम्मी के कुछ बताने ने, उसे चोरी २ सुनने के लिये विवश कर दिया। वह सुनना चाहती थी कि मा उसके विषय में क्या विचार रखती है। उसने कान दरवाज़े से लगाकर सुनना आरम्भ किया। जब उसे पता चला कि वे दोनों उसे शादी न करने के निश्चय से फुसलाने के लिये षड्यन्त्र रच रहे हैं तो उसके क्रोध की सीमा न रही। उसके हाथ कापने लगे। वह कई मिनट तक वहीं खड़ी रह गयी। वह निश्चय नहीं कर सकी कि भीतर जाकर उनका भंडा फोड़ दे अथवा मरहम-पट्टी का सामान वापिस ले जाये और अपने कमरे में वापिस चली जाय। एकाएक उसके मन में भी इस नाटक में अपना भाग लेने का विचार उठा। विद्युत की भांति उसने अपना पार्ट निश्चय कर लिया। वह सामान लिये भीतर चली गयी।

बेगम ने जब सलीमा को भीतर आया देखा तो ज़ोर से बोली, "तो

आप लोग मुझे मरने भी नहीं देंगे ? मरने वाले के लिये यह मरहम-पट्टी क्या होगी ? मैं नहीं जियूँगी। मुझे इस बदनामी में नहीं रहना है।"

नवाब साहब ने छटपटाती बेगम को पकड़ते हुए कहा, "क्यों पगली हुई जाती हो ? आखिर कुछ पूछने भी देती हो या नहीं।"

मगर बेगम झटका दे नवाब साहब के हाथ से छूटकर दीवार की ओर भागी और अपना सिर दीवार पर पटकने ही वाली थी कि नवाब साहब ने भागकर उसे पकड़ लिया।

सलीमा ने रोनी सी सूरत बनाकर कहा, "अम्मी ! अम्मी !! अच्छा मैं मानती हूँ। मुझे अब माफ़ कर दो। जो कहोगी मान लूँगी। मुझसे यह नहीं देखा जाता।"

नवाब साहब ने बेगम को पकड़ फिर कुर्सी पर बैठा दिया। पट्टी बांधने से पहिले बेगम ने सलीमा की तरफ देखकर पूछा, "तो तुम शादी कर लोगी ?"

"हा अम्मी, अब गुस्सा छोड़ो।"

"कब ?

"भाईजान के आजाने पर।"

सलीमा के भाई की एक चिट्ठी बर्लिन से आई थी कि वह अब सीधा हिन्दुस्तान आ रहा है। चिट्ठी हवाई डाक से आई थी और वह जर्मनी से इटली और वीनस से जहाज़ में सवार हो सीधा बम्बई आयेगा। यह अनुमान था कि एक महीने में वह पहुँच जायगा। यह कोई लम्बा काल नहीं था। इससे सलीमा के माता-पिता दोनों को संतोष हुआ। इस पर नवाब साहब ने कहा, "शाबाश बेटी, तुम बहुत अच्छी लड़की हो। यही तो मैं तुम्हारी मां से कह रहा था। हां तो, अब तुम्हारे वास्ते शौहर की तलाश जाय ?"

शौहर के नाम पर सलीमा की गालों पर लाली दौड़ गयी। उसने आंखें नीची किये हुए कहा, "इसकी आपको फ़िकर करने की ज़रूरत नहीं है।"

इतना कह वह भागकर कमरे से बाहर चली गयी। यह इतना स्वाभाविक था कि नवाब साहब और बेगम साहिबा धोखे में आगये।

मगर इस नाटक के बाद सलीमा को विवाह के विषय पर फिर सोचना पड़ा। सलीमा में अब फरक आ चुका था। वह दिल्ली जाने से पहिले जो थी वह अब नहीं रही थी। उसके मन पर पथिक ने विशेष प्रभाव उत्पन्न कर दिया था। पहिले तो वह अपने मन के भावों का विश्लेषण नहीं कर सकी थी। परन्तु दिल्ली से चले आने के पश्चात् वह इस प्रभाव की तह तक पहुंचने का यत्न करती रही थी। जिस परिणाम पर वह पहुँची थी उसको मुख से कह नहीं सकती थी। हां, उसका चिन्तन कर अलौकिक आनन्द अनुभव करती रहती थी। अब प्रश्न यह था कि वह पथिक को कैसे इस विवाह के लिये राज़ी करे। और अब यह अनिवार्य था कि यह उसके भाई के आने से पूर्व हो।

इस पर चिट्ठियों का तांता बंध गया। कलकत्ते में पथिक का पता सलीमा को मालूम था। अपना पता उसने विनोद की मार्फत दिया था। विनोद समझता था कि राजनीति और पथिक की योजना पर पत्र-व्यवहार हो रहा है। सलीमा ने विनोद के इस भ्रम को दूर नहीं किया। प्रत्युत यह कहकर इसे पुष्टि दी कि राजनीतिक पत्र-व्यवहार उसके वलिद शरीफ़ पसन्द नहीं करेंगे।

[२]

विनोद जब लखनऊ लौटा तो उसे प्रतीत हुआ कि कॉलेज में लड़कों ने उसके निकाले जाने के विरोध में हड़ताल कर रखी है। सलीमा का छुट्टी के लिये प्रार्थना-पत्र आने पर उसे भी निकाल दिया गया था। इससे हड़ताल ने कुछ ज़ोर ही पकड़ा था। लड़के डरे नहीं।

दूसरे प्रोफैसरों ने प्रिन्सिपल को बताया भी कि यह नहीं होना चाहिये था। परन्तु अब क्या हो सकता था? एक प्रोफैसर थे डाक्टर रानी। वह प्रिन्सिपल साहब के अहसान में दबे हुए थे। बात यह थी कि वह, कई हिन्दू उम्मीदवारों से कम लायक होने पर भी, प्रिन्सिपल की सिफारिश

पर नियुक्त हुए थे। वह प्रिन्सिपल साहब के पास अपनी सेवायें लेकर पहुँचे। उन्होंने कहा, "मैं विनोद और सलीमा को समझा दूंगा।"

प्रोफैसर ग़नी विनोद को मिले और उससे कहने लगे, "देखो मिस्टर विनोद, तुम फोर्थ इयर में पढ़ते हो और एक साल में तुम पूरे डाक्टर हो जाओगे। अगर तुम्हें कॉलेज में वापिस न लिया तो न सिर्फ पिछले चार साल की पढ़ाई ही फ़ज़ूल जायगी, बल्कि तुम्हारी आईन्दा ज़िन्दगी भी बरबाद हो जायगी। मैं तुम्हारा फैसला करवा देता हूं। तुम प्रिन्सिपल के सामने एक बार जाकर अफ़सोस ज़ाहिर कर दो। सब बात मुआफ़ हो जायेगी।"

विनोद बोला, "प्रोफैसर साहब, मैंने कौन सा अपराध किया है कि अफ़सोस प्रकट करूं?"

"तुमने कॉलेज का डिसिप्लिन तोड़ा है।"

"प्रिन्सिपल साहब के मन-माने हुक्म डिसिप्लिन हो गये। मैं नियमानुकूल छुट्टी लेकर गया था।"

"मगर तुम्हारी छुट्टी मंज़ूर नहीं हुई।"

"पहले तो छुट्टी अस्वीकार करने में कोई कारण नहीं था। इस पर भी मान लो कि छुट्टी अस्वीकार हो गयी थी तब भी तो सात दिन तक नाम नहीं कटता और प्रति दिन एक रुपये के हिसाब से जुरमाना हो जाता है।"

"मगर तुम तो मना करने पर हुक्म तोड़ कर गये थे न।"

"मैं पूछता हूं कि मना ही क्यों किया गया? स्टूडैंट्स फैडरेशन का जलसा कानून के विरुद्ध तो था नहीं। यदि कानून के विरुद्ध होता तो वहां के डिप्टी कमिश्नर, चीफ कमिश्नर और दूसरे सरकारी अफ़सर इस जलसे को होने ही क्यों देते? क्या प्रिंसिपल साहब अपने आपको चीफ कमिश्नर देहली से भी ज्यादा कानून के जानने वाले मानते हैं। प्रोफैसर साहब, सुन लीजिये। प्रिन्सिपल साहब का मुझे दिल्ली जाने से रोकना न्याययुक्त नहीं था। पश्चात् नियमानुकूल भेजे हुए प्रार्थना-पत्र को

अस्वीकार करना अनुचित था और फिर छुट्टी न देने पर भी मेरा नाम कॉलेज-रजिस्टर से निकाल देने में कोई युक्ति नहीं। प्रिन्सिपल साहब के इन सब अनियमित कामों के लिये क्षमा मुझे मागनी चाहिये, क्यों ?"

"इसलिये कि न मागने से हानि तुम्हें होगी।"

"मैं तो अपनी हानि का दावा कर दूँगा। कोर्ट फैसला करेगी कि प्रिन्सिपल का हुक्म न्याययुक्त था या नहीं।"

प्रोफैसर रानी अपना सा मुख ले सलीमा के घर पहुँचे। वहां नवाब साहब से उनकी भेंट हो गयी। प्रोफैसर साहब ने सलीमा के कॉलेज से निकाले जाने की बात बताई और कहा, "अगर वह मुआफी माग ले तो मैं उसे फिर दाखिल करवा सकता हूं।"

नवाब साहब सलीमा का कॉलेज से निकाला जाना सुन मन ही मन अति प्रसन्न हुए। वह सोचते थे कि अब विनोद वगैरह लड़को का प्रभाव सलीमा से हट जायगा। उन्होंने प्रोफैसर साहब से कहा, "मेरी सलाम प्रिन्सिपल साहब से कह देना, और कहना कि मेरी लड़की को कॉलेज से निकालने पर मैं उनका शुकरिया अदा करता हूँ। मुझे उसे मैडिकल कॉलेज मे नहीं पढ़ाना।"

इस प्रकार प्रोफैसर रानी प्रिन्सिपल साहब की सेवा न कर सके। प्रिन्सिपल ने दूसरे प्रोफैसरों की मदद से लड़को की हड़ताल तोड़ने की बहुत कोशिश की, परन्तु सफलता किंचितमात्र भी नहीं हो सकी।

हड़ताल हुए एक सप्ताह से ऊपर हो चुका था और अब समाचार-पत्रो में भी चर्चा होने लगी थी। काग्रेसी-सरकार को बहुत फिकर लग गयी और उन्होंने इस झंझट से छुट्टी पाने का सहज उपाय यह सोचा कि विद्यार्थियों की प्रिन्सिपल साहब से सुलह करा दी जाय। अतएव एक समझौता-कमेटी बना दी गई और वह कमेटी दोनों पक्षों को एक समझौते पर ले आई। यह निर्णय हो गया कि विनोद और सलीमा प्राइवेट में प्रिन्सिपल से मिलकर कहें कि आज्ञा-भंग करने में उनका आशय प्रिन्सिपल साहब का अपमान करना नहीं था। यदि इससे उनको दुख

हुआ है तो उन्हें सख्त अफसोस है। दूसरी ओर प्रिन्सिपल यह लिख दे कि विनोद और सलीमा के अफसोस प्रकट करने से वह सन्तुष्ट है। उसने केवल पढ़ाई के विचार से उनको छुट्टी लेने से मना किया था। स्टूडेन्ट्स फैडरेशन के विरुद्ध वह नहीं था।

इस निर्णय को दोनों पक्षों ने मान लिया और अगले दिन से हड़ताल खुल गयी। नवाब साहब ने बिना किसी मुआफ़ी वगैरह मांगे जब सलीमा को कॉलेज जाते देखा तो बहुत हैरान हुए। मगर वह कर ही क्या सकते थे।

[३]

कलकत्ते में रासबिहारी एविन्यू में एक विशाल मकान के एक कमरे में पथिक और मोहन बैठे डाक देख रहे थे। सामने चिट्ठियों का ढेर लगा था। एक एक कर चिट्ठियां खोली जाती थीं। पथिक उनको पढ़ता जाता था और उत्तर मोहन को लिखाता जाता था।

यह पथिक और मोहन का निज का काम था। हिन्दुस्तान भर के कॉलेजों में पथिक ने अपने नवयुवक-संघ के सदस्य बना लिये थे और वहां पर सदस्य बढ़ाने का यत्न किया जाता था। पथिक कलकत्ते में बैठा डाक द्वारा, अपने मुख्य २ कार्यकर्ताओं से, अपना सम्बन्ध बनाये रखता था। उन्हें काम करने का ढंग बताने और सदस्यों को भर्ती करने के लिये लिखा करता था। प्रातःकाल एक थैला भर डाक आजाती थी और वे दोनों ग्यारह बजे से पहिले सब डाक को पढ़, उत्तर देने लायक चिट्ठियों का उत्तर दे, खाली हो जाते थे।

पथिक पश्चात् इन सदस्यों के पढ़ने योग्य साहित्य, जिसमें लोगों को क्या और किस भांति शिक्षा देनी है, लिखता रहता था। इस प्रकार युवक-संघ की योजना को ये लोग अति वेग से चला रहे थे।

कुछ सदस्यों को विशेष बातें बताने के लिये कलकत्ते भी बुला लिया जाता था। उनको वे इसी मकान में ठहराते थे और उनके आने-जाने का खर्चा भी देते थे। इस प्रकार प्रांतों में कार्यक्रम चलाने वाले और

उनके आधीन प्रत्येक कॉलेज में सदस्यों को सूचनायें देने वाले नियुक्त कर दिये गये। सदस्य धड़ाधड़ भर्ती हो रहे थे और उनको साहित्य जो छपवाया गया था बांटा जा रहा था।

यह योजना का प्रारम्भिक कार्य था। आज जब पथिक डाक देख रहा था तो एक भारी सा लिफाफा उसमें से निकला, जिस पर प्राइवेट लिखा था। पथिक ने कहा, "यह फिर सलीमा की चिट्ठी है।" इतना कह चिट्ठी को एक तरफ रख दिया और शेष डाक का काम करने लगा। जब सब डाक समाप्त हो गयी तो पथिक ने वह भारी लिफाफा खोला। चिट्ठी सच-मुच ही सलीमा की थी। इस बार चिट्ठी चौदह पृष्ट की थी। पथिक चिट्ठी की लम्बाई देख बोला, "यह लड़की कुछ पागल प्रतीत होती है।"

मोहन ने व्यग के भाव से कहा, "यह हाथ धोकर आपके पीछे पड़ी है और आपको लेकर डूबेगी।"

पथिक ने मोहन के मुख पर गम्भीरता से देखते हुए कहा, "पर क्या किया जाय? पिछली चिट्ठी में तो कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी हिन्दू युवक से प्रेम करती है। परन्तु उसके माता-पिता इसे पसन्द नहीं करते। और मेरा अनुमान है कि वह हिन्दू युवक माथुर बाबू का लड़का विनोदकुमार है।"

मोहन ने सिर हिलाते हुए कहा, "मैं ऐसा नहीं समझता। मेरा अनुमान है कि यह पागल लड़की देवा के पागल गुरुदेव को अपने प्रेम का भाजन बनाये हुए है।"

"देवा का पागल? तुम्हारा मतलब है कि मुझे। नहीं मोहन, ऐसा कैसे हो सकता है? मेरे पास तो उसे सुखी रखने के लिये कुछ है ही नहीं। वह जानती है कि मैं फक्कड़ हूँ। फिर मेरी योजना तो इतनी लम्बी-चौड़ी है कि इस जीवन में समाप्त नहीं होगी और तब तक मुझे विवाह के लिये अवकाश ही कहा है?"

"गुरुदेव, आप मुझसे आयु में बड़े जरूर हैं पर इन लड़कियों के विषय में मुझसे कम अनुभव रखते हैं। मेरा विचार है कि आज की

चौदह पृष्ट की चिट्ठी अवश्य कुछ रहस्य लेकर आई है। इसे पढ़ डालिये तो।"

पथिक ने चिट्ठी खोल डाली और पढ़नी आरम्भ कर दी। वह ज्यों ज्यों चिट्ठी को पढ़ता जाता था, गम्भीर होता जाता था। एक एक पृष्ट को पढ़ चिट्ठी समाप्त कर डाली। कई पृष्ट उसने दुबारा पढ़े। मोहन पथिक के मुख पर उतार-चढ़ाव देख रहा था। जब चिट्ठी समाप्त कर ली तो पथिक गम्भीर विचार में डूबा हुआ सिर झुकाये बैठा रहा। मोहन ने पूछा, "गुरुदेव, क्या हुआ है?"

इसके उत्तर मे पथिक ने कहा, "मोहन, सत्य ही तुम मुझसे अधिक अनुभवी हो। तुम्हारा अनुमान ही ठीक प्रतीत होता है। परन्तु मैं विवाह नहीं कर सकता। मुझे अभी अपनी मातृ-भूमि के लिये बहुत कुछ करना है।"

मोहन ने उत्सुकता से पूछा, "अब वह क्या कहती है?"

पथिक ने उत्तर में चिट्ठी का एक अंश उठाया और पढ़ना आरम्भ कर दिया। लिखा था, "इस अथाह संसार में, एक निर्बल निस्सहाय प्राणी बिना आश्रय के कैसे पार हो सकता है? आपने लिखा है 'भगवान का आश्रय लो'। कैसे उसका आश्रय लूं? वह तो ढूंढने पर भी नहीं मिलता। भगवान? यह धोखा है। इसके आश्रय बैठे रहना मुझे पसन्द नहीं। मुझे इसमें कुछ भी आशा दिखाई नहीं देती। यदि भगवान के आश्रय बैठे रहना होता तो आप इतने बड़े प्रयत्न में क्यों संलग्न हैं? अगर एक व्यक्ति की मुक्ति के लिये भगवान का आश्रय ही उपाय है तो एक जाति के उद्धार के लिये क्यों नहीं? जब आपकी योजना में पुरुषार्थ की आवश्यकता है तो मेरी समस्या में पुरुषार्थ का अवलम्बन क्यों नहीं?"

इसके बाद पथिक ने एक और स्थान से पढ़ना आरम्भ कर दिया, "पानी नाक तक पहुँच गया है। एक इंच का दसवां भाग पानी और चढ़ जाने से मृत्यु निश्चय है। आपने मुझे लिखा था कि मिस्टर विनोद से राय कर लूँ। मैंने उसे आपकी चिट्ठी सुनाई। उत्तर में उसने

रुक्मणी की कथा सुना दी। वह कहने लगा कि 'रुक्मणी का विवाह शिशुपाल से निश्चय हुआ था और वह चाहती थी कि श्रीकृष्ण से करे। उसने श्रीकृष्ण को पत्र लिखा और वह रुक्मणी के प्रेम की वास्तविकता को जान उसे लेने वहा पहुँच गया। घोर युद्ध के पश्चात् रुक्मणी को कृष्ण छुड़ाकर ले गया और उससे रुक्मणी का विवाह हो गया।' फिर मिस्टर विनोद ने कहा,' 'रुक्मणी के ज़माने में अनेकों आर्य वीर भारतवर्ष में उपस्थित थे, परन्तु रुक्मणी ने लिखा था केवल कृष्ण को। यदि वह भीष्म अथवा युधिष्टिर को लिख देती तो वे भी उसकी सहायता को पहुंच जाते, परन्तु उसने उसे लिखा जिस पर उसके प्रेम ने उसे अधिकार दिया था।' मिस्टर विनोद ने कहा है कि मैं भी अपने कृष्ण को लिखूं और वह अवश्य मुझे शिशुपाल से बचा देगा। मुझे विनोद बाबू की सम्मति पसन्द आई है और इस भीर के समय मैं अपने कृष्ण को लिख रही हूँ। अब देखना यह है कि कृष्ण कृष्ण की रट लगाने वाला कृष्ण बनने में कितना तत्पर है?"

इतना पढ़ पथिक ने चिट्ठी रख दी और गम्भीर विचार में डूब गया। मोहन ने पूछा, "और इतना शेष क्या इसी सम्बन्ध में है?"

पथिक कुछ देर तक मोहन का मुख देखता रहा। मानों वह मोहन के कहने का अर्थ समझ रहा था। जैसे किसी को धीरे धीरे चेतना होती है, वैसे ही पथिक को मोहन के कहने का अर्थ समझ में आने लगा। वह कहने लगा, "क्या शेष चिट्ठी की बाबत पूछते हो, मोहन? चिट्ठी आद्योपान्त इसी लय में लिखी गयी है।"

अब पथिक ने एक और पृष्ट निकाल पढ़ना आरम्भ किया। "मैं युरोपियन सभ्यता में रत थी। मैं स्त्री को स्वयं अपना मार्ग ढूँढ निकालने में सबल समझती थी। मैं अपने में उत्साह और साहस भरा पाती थी। आंखें ऊंची कर मैं अपने माता-पिता को मान-मानी सुना सकती थी। कॉलेज में तीन सौ लड़कों में अकेली होते हुए भी निडर घूमा करती थी। कभी किसी को साहस नहीं होता था कि मेरी ओर आंख उठाकर भी देखे,

परन्तु दिल्ली में एक भव्य मूर्ति की ओजस्वी प्रभा ने मुझे युरोपियन बवंडर से निकाल कर पुनः भारतीय महिलाओं की पुरुषों में श्रद्धा और निष्ठा भाव की ओर प्रेरित कर दिया है। सीता, सावित्री, द्रोपदी, गार्गी इत्यादि अनेकानेक प्रसिद्ध नारियों को पति-भक्ति करते हुए भी अब मैं किसी युरोपियन स्त्री से घटिया नहीं समझती। जब मैं देखती हूँ कि ये महिलाएँ राम, सत्यवान, अर्जुन इत्यादि को अपने पीछे भागने पर विवश न कर स्वयं अपना सर्वस्व देने के लिये उनके चरणों में चली गयीं, तो मेरे मन में उनकी कीमत कम नहीं हो गयी। यद्यपि पहले तो मैं ऐसा ही समझती थी कि वे नारी जाति के लिये अपमानस्वरूप हैं। जब मुझे कोई बताता था कि भारतवर्ष में स्त्रियां पति चुनती थीं तो मैं हँस पड़ती थी। मैं समझती थी कि यह जंगलीपन है। युरोपियन रिवाज कि विवाह का प्रस्ताव पुरुष करे मुझे भला मालूम होता था, परन्तु अब विचार-परिवर्तन हो गया है। अब तो मुझे युरोपियन रिवाज त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। पुरुष को अपनी पत्नी चुनने के लिये अधिकार देना अब मुझे एक घृणायुक्त रिवाज प्रतीत होता है। कारण यह है कि इसके लिये स्त्रियों को अधिक और अधिक सुन्दर बनकर पुरुषों के सम्मुख आने की आवश्यकता पड़ती है। अनेकानेक प्रकार के कृत्रिम व्यवहार करने पर बाध्य होना पड़ता है। इसी रिवाज के फलस्वरूप ही लाखों रुपये के कौसमेटिक्स (शृङ्गार का सामान) युरोपियन देशों में बनते और बिकते हैं। इसी रिवाज के कारण युवा लड़कियां आधी-आधी रात तक शराब से बदमस्त लड़कों के साथ भड़कीली पोशाकों में नाचने पर मजबूर होती हैं। प्राचीन भारतवर्ष का रिवाज कि लड़कियां प्रस्ताव करें, इन तमाम झंझटों से हमको मुक्त कर देता है। यह रिवाज कितना सुखद, सुलभ और बढ़िया है, इसका अनुभव मुझे अब हुआ है जब अपने को मुख्य रखकर ऐसी बातों पर विचार करने का अवसर आया है। परन्तु क्या दूसरे पक्ष के व्यक्ति, अर्थात पुरुष भी इसी विचार को मानने वाले हैं? यदि कृष्ण न होते तो रुक्मणी की निष्ठा और श्रद्धा का क्या होता? सत्यवान न मानता तो

सावित्री का उससे विवाह का हठ क्या कर लेता ? आप स्त्रियों को सीता-सावित्री बनने को कहते हैं तो क्या आप राम-कृष्ण बनने को पसन्द करते हैं ?"

पथिक ने पत्र के अन्त की कुछ पंक्तियां भी पढ़कर सुनाईं। "औरंगाबाद से शशुपाल दलबल सहित चला आ रहा है। क्या कलकत्ते-रूपी द्वारिका में बैठे मेरे कृष्ण केवल देखा करेंगे ?"

मोहन इस चिट्ठी को सुन बहुत घबराया। वह पथिक के मुख पर गम्भीरता का भाव देख सोच रहा था कि वह कृष्ण बनने की सोच रहा है। उसने कलम रख दी और हाथ पर हाथ रख चिट्ठी लिखने से इनकार करने का भाव प्रकट करने लगा।

एकाएक पथिक की आखों में एक विशेष चमक उत्पन्न हो गयी। मोहन ने इसका प्रयोजन यह समझा कि गुरुदेव ने विवाह का निश्चय कर लिया है। ऐसा समझना कोई अयुक्तिसंगत बात भी नहीं थी। सलीमा की रूपरेखा, उसकी शिक्षा और उसके विचार ऐसे थे कि कोई भी पुरुष उसे लाख कठिनाइयों पर भी प्राप्त करने का यत्न करता। कितनी भोली सूरत रखती है वह। बड़ी बड़ी आखें, चौड़ा मस्तक, घुँघराले बाल, चंचल, चपल शरीर और फिर सुलझा हुआ मन, सोने में सुगन्ध वाली बात थी।

इस पर भी मोहन उस महान कार्य के लिये, जिसे पथिक और उसके साथियों ने आरम्भ किया था, अविवाहित पथिक की आवश्यकता अनुभव करता था। विवाह के झंझटों में फंसा हुआ पथिक इतनी बड़ी योजना का संचालन कर सकेगा, इसमें उसे संदेह था। सलीमा बहुत अच्छी लड़की है, सुन्दर है, और चरित्रवती है। वह भी जातीयता के भाव से ओत-प्रोत है, परन्तु देश को स्वतंत्रता के पथ पर ले जाना इससे भी अधिक सुन्दर और लुभायमान कार्य है। मोहन मन ही मन पथिक के विवाह कर लेने के निर्णय का विरोध करने के लिये उपयुक्त शब्द ढूंढ रहा था।

एकाएक पथिक ने प्रफुल्लित मन से मोहन को कहा, "अच्छा, लिखो।"

मोहन ने कलम नहीं उठाई। केवल कह दिया, "नहीं लिखूँगा।"

पथिक ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा, "क्यों?"

"क्यों क्या? मैं नहीं चाहता कि आप हम लोगों को मंझधार में छोड़कर एक उज्ज्वल मुखी छोकरी के पीछे लग जावें।"

पथिक हँस पड़ा। बोला, "भाई मोहन, लिखो तो। यदि उत्तर पसन्द न आवे तो फाड़ देना। क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं तुम लोगों की राय के बिना इतना बड़ा कदम नहीं उठा सकता?"

मोहन ने उत्साहहीनता से, असन्तोष का भाव प्रकट करते हुए, कलम उठाई और कहा, "बहुत अच्छी बात, लिखाइये।"

पथिक ने आखें मूंदकर कुछ सोचा और लिखाना आरम्भ कर दिया :—

प्रिय मिस सलीमा! मेरा विचार है कि मिस्टर विनोद ने तुम्हें जो कहानी सुनाई है वह तुम्हारी अवस्था से टक्कर नहीं खाती। उसने तुम्हारी परिस्थिति का गलत अनुमान लगाया है। देखो, मैं तुम्हें एक और घटना की बात लिखता हूँ और मैं समझता हूँ कि यह तुम्हारी अवस्था में तुम्हें अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

कृष्ण की एक बहिन थी। उसका नाम था सुभद्रा। सुभद्रा बहुत ही पवित्र विचारों की लड़की थी। कृष्ण जैसे योगी की बहिन विचारों की विशालता में किसी लड़की से कम नहीं हो सकती थी। एक बार अर्जुन से उसकी भेंट हो गयी और वह उससे प्रेम करने लगी। कृष्ण के पिता को सुभद्रा का विवाह अर्जुन से पसन्द नहीं था। परन्तु सुभद्रा इस विवाह के लिये निश्चय कर चुकी थी। जब सुभद्रा के पिता ने अपनी लड़की का विवाह किसी अन्य से निश्चय करना चाहा तो वह अपने भाई कृष्ण के पास पहुंची और कृष्ण के हाथ में रक्षा-बन्धन बांधते हुए कहा, 'भैया, बहिन की रक्षा करो।' कृष्ण को जब सब मामला ज्ञात हुआ तो वह उसे

रथ में बैठा इन्द्रप्रस्थ ले गया और वहां अर्जुन से उसका विवाह कर दिया। देखो सलीमा, दो पैसे के रंगे सूत से तुम भाई की रक्षा का हक मांग सकती हो। निश्चय जानो कि कोई भी हिन्दू इस नाते से तुम्हारी रक्षा में अपनी पूर्ण शक्ति लगाये बिना नहीं रहेगा। पत्र का उत्तर शीघ्रातिशीघ्र भेजना। —पथिक

अपने हस्ताक्षर के लिये पथिक ने चिट्ठी मोहन से मांगी। मोहन लज्जित था। वह इस उत्तर से भ्रमरहित हो गया था।

जब सब काम समाप्त कर दोनों उठे तो मोहन ने कहा, "गुरुदेव, क्षमा करना। मैंने आप पर अकारण संशय किया था। मगर भाई की ज़िम्मेदारी तो और भी अधिक होगी।"

"ठीक है, परन्तु यह निष्काम होगी। पति की ज़िम्मेदारी सकाम है।"

"परन्तु आप कहीं इस झमेले में फंस गये तो इस सब आयोजना का क्या होगा?"

"मैं नहीं फंसूँगा। मुझे अपनी शुद्ध भावनाओं पर और भगवान के न्याय पर दृढ़ विश्वास है।"

[४]

नवाब साहब और बेगम साहिबा जब सलीमा से विवाह कर लेने का वचन ले चुके तो वे यह निश्चय करने पर बेचैन थे कि उनका दामाद कौन होगा। प्रायः नित्य बेगम सलीमा से पूछती "बेटी, बता दो न। कौन है वह जिससे तुम शादी करना चाहती हो?"

सलीमा पहिले तो टालमटोल करती रही। आख़िर एक दिन उसने कह दिया, "मैंने जिसे पसन्द किया है उसको चिट्ठी लिख चुकी हूँ और जवाब के इन्तज़ार में हूँ।"

जब कई दिन तक कोई उत्तर न आया तो नवाब साहब ने नोटिस दे दिया और कहा, "यदि एक सप्ताह में तुमने यह फैसला न किया तो फैसला हमें करना पड़ेगा, और फिर तुम्हें हमारा फैसला मानना होगा।"

बात यह हुई कि इफ़्तिख़ारअहमद के ननिहाल वालों को उसकी

चिट्ठी पर चिट्ठी आरही थी कि अगर अब भी सलीमा राज़ी हो तो वह तैयार है। वे लोग नवाब साहब के पास पहुंचते थे और कहते थे, "लड़की की शादी हमारे नवासे से तय हो चुकी थी और अगर यह न हुई तो लोग तो यह समझेंगे कि लड़की में कोई ख़राबी जान हमने इनकार कर दिया है। नवाब साहब, आपकी इज्ज़त और हमारी इज्ज़त एक है। हम इसमें फरक नहीं समझते। और हम चाहते हैं कि आपकी लड़की के भाग जाने से जो बदनामी हुई है वह हम शादी करके मिटा दें। लोग समझेंगे कि शादी लड़की के भाग जाने से नहीं रुकी थी। कुछ और ही वजह थी।"

नवाब साहब को ये दलीलें बहुत मजबूत मालूम होती थीं। वह फिर सलीमा को इस रिश्ते पर राज़ी कर लेना चाहते थे। एकाएक उन्हें मालूम हुआ कि सलीमा का चुनाव एक हिन्दू है। वह अब बहाना बना कर उसे हिन्दू से शादी करने में विघ्न डालना चाहते थे। वह सलीमा की सब डाक की पड़ताल करते थे, मगर उन्हें कोई चिट्ठी शादी के विषय की नहीं मिलती थी। सलीमा को पथिक की चिट्ठियां विनोद के पते पर आती थीं।

पथिक की वह चिट्ठी, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है, सलीमा को मिल चुकी थी, और वह इस चिट्ठी का अर्थ लगाने का यत्न कर रही थी। ऐसे अवसर पर नवाब साहब चिट्ठियों की जांच-पड़ताल से निराश हो सलीमा के पास आकर कहने लगे, "कुछ पता चला, क्या फैसला हुआ है?"

"अब्बाजान, अभी कुछ फैसला नहीं हुआ।"

"आख़िर वह है कौन?"

"जब तक मान न जायें तब तक कैसे बता दूँ?"

"तुम्हें नामंजूर किये जाने की भी उम्मीद है?"

"सब दुनिया औरङ्गाबाद वालों की तरह नहीं है, अब्बाजान।"

"हां, मैं भी तो यही कहता हूं। उनके मुकाबिले का कोई नहीं है।"

"औरतों के पीछे भागने में न।"

"तुम्हारा दिमाग़ तो ख़राब होरहा है। कुछ हो। आज अकरम (यह सलीमा के भाई का नाम था) की मिश्र से चिट्ठी आयी है कि वह तीन-चार दिन में बम्बई पहुंचने वाला है। मैं यहां से परसों बम्बई के लिये रवाना होना चाहता हूँ और रवाना होने से पहले इस बात का फैसला करके जाना चाहता हूँ। देखो, औरङ्गाबाद वाले इतने खराब आदमी नहीं हैं जितना तुम समझती हो। हर एक में अच्छी-बुरी बातें मिली-जुली रहती हैं। ज़रा नज़दीक से देखोगी तो पता चलेगा कि उनमें अच्छाइयां भी हैं। अगर मेरे रवाना होने तक तुम्हारे पसन्द किये साहब की मंजूरी न आयी तो मैं औरङ्गाबाद तार देकर तय कर दूंगा और अकरम के साथ बम्बई से ही वहा जाकर बाक़ी सब तय कर आऊंगा।"

सलीमा पथिक की चिट्ठी का आशय समझने में लीन थी। उसके लिये वह चिट्ठी ही एक आश्रय रह गयी थी। वह अपने पिता के पास से उठकर अपने सोने के कमरे में चली गयी। नवाब साहब ने समझा कि उसे उनके प्रस्ताव में कोई आपत्ति नहीं, इससे सन्तुष्ट हो वह नीचे अपने कमरे में चले गये।

सलीमा ने सोने के कमरे में जा पथिक की चिट्ठी निकाली और फिर पढ़नी शुरू की। जब पथिक की पहली चिट्ठी के अनुसार वह विनोद से राय करने गयी थी तो विनोद ने रुक्मणी की कहानी सुना दी थी। विनोद का अभिप्राय यह था कि सलीमा उससे स्पष्ट रूप में कहे कि वह उससे विवाह करना चाहती है तो वह उसे औरंगाबाद वाले और उसके माता-पिता के षड़यन्त्र से छुड़ा सकता है। उसका आशय था कि वह उससे विवाह कर लेगा। वह बालिग़ तो है ही। सब झगड़ा तय हो जायगा। मगर इस रुक्मणी की कथा को सुन सलीमा ने यह समझा कि विनोद उसे पथिक से सहायता के लिये कह रहा है। वह समझती थी कि विनोद से तो उसके विवाह की कोई बात है ही नहीं। इससे उसने चौदह पृष्ठ की लम्बी चिट्ठी पथिक को लिख डाली। उसके जवाब में यह चिट्ठी

आई थी।

सलीम ने समझा कि पथिक अभी लखनऊ न आ सकने के कारण लिख रहा है कि वह विनोद को रक्षा-बन्धन बांध दे ताकि वह भाई बनकर उसकी सहायता कर सके। यह समझ में आते ही उसने जमाल की मां को बुला भेजा। अपने घर की नौकरानियों और नौकरों पर विनोद की चिट्ठी के मामले के पश्चात् वह विश्वास खो चुकी थी। जमाल की मा से बाज़ार से लाल रंग का रेशम मंगवा लिया। इस रेशम को अपने ब्लाउज़ में छुपा वह कॉलेज चली गयी।

कॉलेज की पढ़ाई के पश्चात् वह विनोद से मिली और बोली, "मिस्टर विनोद, आज आपका क्या प्रोग्राम है?"

"प्रोग्राम तो कुछ भी नहीं। क्यों क्या है?"

"आज कहीं बाहर घूमने को मन करता है।"

तुरन्त विनोद के मन में विचार आया कि रुक्मणी की कथा सुनाने का फल निकलने वाला है। उसने अपनी किताबें होस्टल में एक लड़के के पास रख दीं और दोनों कहीं घूमने के लिये कॉलेज से बाहर निकल आये।

"हां, तो अब किधर चलें?"

"कहीं, जहा इच्छा हो। किसी ऐसे स्थान पर जहां एकान्त हो और हम एक-दो घण्टे इस गन्दगी से दूर रह सकें।"

"गन्दगी?"

"यही समाज, संसार और इनकी बनायी बनावटी जिंदगी से।"

"बनावटी जिन्दगी से?"

"हां! हां! कुदरती ख़सलत (स्वाभाविकता) जहां एटिकेट (प्रचलित व्यवहार) के बंधन से मुक्त हो। मैं तो इस बनावटी रहन-सहन से ऊब गयी हूँ। ये हम लोगों की अपनी बनाई बेड़ियां हैं, जो हम लोगों को ही जकड़े हुए हैं।"

विनोद को विश्वास हो गया कि आज वह अपने मन में दबे प्रेम को

प्रकट करने के लिये उतावली हो उठी है। वह सलीमा को बहुत चाहता था, परन्तु सलीमा ने उसे कभी भी प्रोत्साहित नहीं किया था। सलीमा का व्यवहार अति सरल, सुलभ और स्वाभाविक होता था। ऐसी अवस्था में विनोद अपना प्रेम प्रकट करने का कभी साहस नहीं कर सका था।

जब नवाब साहब और उसके पिता में इस विषय पर बातचीत हुई थी और उस बातचीत का ज्ञान उसे हुआ था तब से उसे अपने और सलीमा के बीच एक ऊँची भीत खड़ी प्रतीत होती थी। यह भीत थी मज़हब की, समाज मे दोनो की स्थिति की और नवाब साहब से उसके विचारों की भिन्नता की। आज उसे सलीमा की बातों से ऐसा प्रतीत होता था कि वह इस भीत को कूदकर लांघ आना चाहती है। वह उसे इस प्रयत्न में सहायता देना चाहता था।

वे गोमती के किनारे दूर ही दूर चले जा रहे थे। विनोद चुप था। सलीमा जब कोई बात करती तो वह अति संक्षेप में उत्तर दे फिर अपने मन के विचारों के मन्थन में लग जाता था। वह आज अपने मन में एक नया संसार बना रहा था। इस संसार की रूपरेखा धुंधली सी बनती थी। वह स्पष्ट नहीं हो पाती थी। सलीमा की ओर से आशा करने पर भी वह इस विवाह को अभी बाधारहित नहीं समझता था। सब से बड़ी बाधा तो उसके मन में पथिक की योजना ही थी जिसमें वह तन और मन से लगा हुआ था। वह योजना थी तो साधारण सी। उसमें कानून के विपरीत भी कुछ नहीं था। तो भी देश को स्वतंत्रता की ओर ले जाने के लिये वह अपना जोड़ नहीं रखती थी। सरकार उसे पसन्द नहीं करेगी, यह उसे विश्वास था, मगर कांग्रेसी मन्त्री-मण्डलों की उपस्थिति में सरकार इस योजना का विरोध कैसे करेगी, वह समझ नहीं सकता था। यह अनिश्चित अवस्था थी जो उसके नये संसार की रूप-रेखा को स्पष्ट नहीं होने देती थी।

सलीमा विनोद को आज विशेष रूप से चुप देख इसका कारण सोच रही थी। वह अपने वहां एकान्त में आने का आशय प्रकट करने से पूर्व

उसके चुप रहने का कारण जानना चाहती थी। उसने कई प्रश्न पूछे और उनका उत्तर अधूरा और अस्पष्ट मिलता रहा। आखिर उससे नहीं रहा गया और वह खड़ी हो विनोद का मुख देखने लगी। विनोद भी खड़ा होगया। सलीमा ने पूछा, "क्या बात है ?"

विनोद, मानों नींद से चौंक उठा हो, घबरा गया। उसने कहा, "क्या बात है ? कुछ भी तो नहीं।"

"आज तुम खास तौर पर भूले हुए मालूम होते हो।"

विनोद अपने मन की बात कहने का यत्न करते हुए बोला, "मैं ? हां भूला हुआ हूँ। आज तुमने कहा है न कि समाज के बनावटी बन्धनों से मुक्त होना चाहती हो। इसी ने मुझे भुला दिया है। अब से पहले मैं भी सड़क के किनारे लगे जंगले के सहारे चला जाता था। तुम जब मुझे इस जंगले के बाहर ले आई हो तो मैं उस अन्धे की भांति हो गया हूँ जो खुले मैदान में दिशा-शून्य हो जाता है। मैं अब नहीं जानता किधर जाऊं ?"

"तो तुम्हारा कहने का मतलब यह है कि समाज के रिवाज उस जंगले की तरह हैं जो सड़क के किनारे लगा है और जिससे मुसाफिर राह छोड़कर इधर-उधर नहीं हो सकता।"

"हां।"

"तो वह जंगला निहायत जरूरी है। उसे उखाड़ फेंकना मुनासिब नहीं।"

"हां।"

"तब तो हमारा इस ओर आना फिजूल हुआ।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। जंगला तो आम लोगों की हिफाज़त के लिये लगाया गया है, और उनके लिये यह रहना ही चाहिये। मगर जब कोई इन्जीनियर नया पथ तैयार करता है तो उसे तो जंगला कूदकर पार कर जाना होगा। उसे तो मार्ग ढूंढने के लिये अपनी बुद्धि और शिक्षा का आश्रय लेना होगा। उसके लिये तो पहले से बने जंगले और रास्ते दिखाने के निशान भ्रम में डालने वाले होंगे। हम तो नया मार्ग

ढूंढने जा रहे हैं न।"

"हां, बिलकुल नया मार्ग। बताओ अब किधर चलें?"

"जिधर मन करे।"

"यदि मेरा मन तुम्हारे मन से उलटी ओर जाने को कहे तो?"

"देखो सलीमा, हमारे परस्पर परिचय को दो वर्ष से ऊपर हो चुके हैं और तब से लेकर परिचय ज़्यादा और ज़्यादा बढ़ता जाता है। यह बात तब ही हो सकती है जब दो दिल एक सुर में बज रहे हों। तुम कैसे यह समझती हो कि जो तुम्हारी आत्मा की मांग है वह मेरी आत्मा की पुकार नहीं है? तुम्हारे होठों से बात निकलने ही वाली होती है कि मेरे मन में उसका अक्स खिंच जाता है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि जो तुम चाहती हो वही मैं चाहता हूं।"

सलीमा के मन में कुछ शरारत सूझी। वह बोली, "ठीक वही? तब तो बहुत अच्छी बात है। मुझे बताने की आवश्यकता नहीं रही न। तुम तो समझ ही गये हो। अच्छा बताओ तो कि हम यहां किस लिये आये हैं?"

इस समय दोनों ऐसे स्थान पर पहुँच गये थे जहां नदी के किनारे एक पेड़ गिरकर ज़मीन पर पड़ा हुआ था। स्थान सर्वथा निर्जन था। गिरे पेड़ की डालियां धीरे धीरे चलते पानी में पहुँची हुई थीं। सलीमा इस प्राकृतिक स्थान को देखकर वहाँ बैठ गई और विनोद को समीप ही बैठ जाने का संकेत किया। जब वह बैठ गया तो उसने वार्तालाप जारी रखते हुए कहा, "हां तो बताओ, हम यहां क्यों आये हैं?"

विनोद को आज अपनी चिर-संचित आशाओं की पूर्ति का विश्वास हो रहा था। वह समझता था कि जीवन के परम सुख की ड्योढ़ी पर वह खड़ा है। दरवाज़े पर केवल हाथ लगाने की आवश्यकता है। वह खुल जायगा। इस कारण उसने आज अपने मन की भावनाओं का निचोड़ एक साफ़ शीशी में भरकर सलीमा के सम्मुख रखने का निश्चय कर लिया और वह कहने लगा, "कभी तुमने चिड़ियों को घोंसला बनाते देखा

है ?"

"हां, मेरे कमरे में के क्लॉक के ऊपर हर साल वे घोंसला बनाती हैं।"

"जानती हो उस समय उनके मन में क्या भावना काम करती है ?"

"भावना तो नहीं बता सकती। अगर कोई ख़्याल उनके मन में होता होगा तो मैं उनकी बोली न समझ सकने से नहीं जान सकती। हा, उनमें विलासिता की बू आती है। इसी से मजबूर होकर वे एक एक तिनका इकट्ठा कर घर बनाने में लग जाती हैं।"

"विलासिता ! उसके लिये घर की क्या ज़रूरत है ? कड़कते जाड़े में तो उन्हें घोंसले की ज़रूरत नहीं रहती और बसन्त के सुखदायक, मज़ेदार मौसम में घर की ज़रूरत हो गयी। विलासिता मकसद नहीं है, सलीमा ! ध्येय कुछ और ही है। इस मकसद से ही संसार का हर एक प्राणी भरा पड़ा है। यह एक छोटी बात भी नहीं। दलील और इल्म भी प्राणी को इस मकसद से दूर नहीं रख सकते। यही जिन्दगी का सार है। प्राणी पैदा होता है और इसी मकसद को कमोवेश पूरा कर जिन्दगी छोड़ जाता है।"

"मैं तो इस मकसद को न मानती हूँ, न समझती हूँ।"

ज्यों-ज्यों विनोद अपने आशय को स्पष्ट करने का यत्न करता था त्यों-त्यों उसके मस्तिष्क में रक्त-प्रवाह बढ़ता जाता था। इस कारण उसके मुख की लाली बढ़ती जाती थी। कान और गालों पर तो ऐसा प्रतीत होता था कि भिड़ों ने काट खाया है। रक्त-वेग के बढ़ जाने से विचारों की स्पष्टता बिगड़ती जाती थी और भावों की जिस प्रचुरता से उसने बात आरम्भ की थी वह प्रति क्षण क्षीण होती जाती थी। अन्त में वह विवश होगया और अपनी बात को नग्नरूप में उपस्थित करने के लिये उसने सलीमा का हाथ पकड़ लिया। सलीमा ने हाथ छुड़ाया नहीं। वह उस हाथ को अति कोमलता से प्यार देते हुए कहने लगा, "क्या तुम अब भी नहीं समझीं ? मेरे हृदय की रानी, मेरे स्वप्नों की प्रकाश, मेरे जीवन की लक्ष्य, मेरे मस्तिष्क की प्रतिभा, मेरी आंखों की ज्योति, मेरी वाणी

की सरस्वती, मेरे हाथों की कला, और क्या ? मैं वर्णन नहीं कर सकता।"

इतना कह वह चुप कर गया और अति प्रेम-भरी दृष्टि से सलीमा की आंखों में देखने लगा। विनोद का मुख सलीमा के इतना समीप था कि वह उसके उष्ण निश्वासों को अपनी गालों पर गरम गरम अनुभव कर रही थी। विनोद ने अपना एक हाथ सलीमा की कमर में डाल दिया। इस समय सलीमा को चेतना हो आई। वह उठकर खड़ी होगयी और कुछ दूर हटकर बोली, "ठहरो, जरा अपना दाहिना हाथ निकालो तो।"

विनोद समझा कि वह अपने भावों को ठीक रूप में प्रकट नहीं कर सका। वह कहने लगा, "सुनो तो।"

सलीमा ने सिर हिलाते हुए कहा, "ऊंहूँ। पहले हाथ निकालो। विनोद ने दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। सलीमा ने तुरन्त रेशम का धागा निकाल उसकी कलाई पर बांध दिया और कहा, "देखो, बहिन भाई से अपनी रक्षा करने की भिक्षा मांगने आई है। तुम मेरा यहां आने का मकसद ग़लत समझे थे।"

विनोद यह देख अवाक् रह गया। उसका मुख पीला पड़ गया। उसका सिर चक्कर खाने लगा और पेड़ पर बैठा न रह सकने से नीचे लुढ़क कर जमीन पर बैठ गया।

उसे अपने पर घृणा और लज्जा उत्पन्न हो आई। अपनी सूझ पर उसे भारी विश्वास था और आज उस सूझ को धोखा खाते देख वह एकदम घबरा उठा। उसके माथे से पसीने की बूंदें टपकने लगीं, और आंखों के सम्मुख अंधेरा छा गया। वह भूमि पर लेट जाने वाला था कि सलीमा ने, जो उसके मुख पर परिवर्तन देख रही थी, उसे अचेत हो लेटते देख भागकर पकड़ लिया और उसे हिलाकर चेतनता में लाते हुए बोली, "भैया, क्या हुआ है ? क्या मुझसे भूल हुई है ?"

विनोद को 'भैया' शब्द ने वास्तविकता में ला बैठाया। उसने अपना सिर हिलाकर मस्तिष्क को ठीक करने का यत्न किया। वह बोला, "कुछ

नहीं, छोड़ दो। अब मैं ठीक हूँ।"

सलीमा ने विनोद के दाहिने हाथ को अपने दोनों हाथों में पकड़कर कहा, "विनोद भैया, क्या मैंने भूल की है?"

"भूल! नहीं तुमने भूल नहीं की। मैं भूल कर रहा था। तुमने मुझे कान पकड़ कर सीधे मार्ग पर कर दिया है। भला इसमें क्या भूल हो सकती है?"

"तो मैंने तुम्हारा सहारा ढूँढ़ने में भूल नहीं की। तुम मुझे सहारा दोगे। एक बार सुभद्रा, कृष्ण की बहिन, ने कृष्ण से सहायता मांगी थी और उसने अपने माता-पिता से झगड़ा करके भी बहिन की सहायता की थी। क्या मैं ग़लत कह रही हूँ?"

इस समय तक विनोद पूर्ण चेतना प्राप्त कर चुका था। वह भूमि से उठकर खड़ा हो गया और पुनः पेड़ पर बैठ गया। सलीमा उसके सम्मुख खड़ी थी। उसने अपनी दाहिनी कलाई पर बंधे लाल रेशम के धागे की ओर देखते हुए कहा, "बहिन सलीमा, क्षमा करना। मैं अभी तक तुम्हें नहीं समझा था। हा, तो तुम मुझे क्या करने को कहती हो?"

सलीमा ने पथिक के विषय की बात को छोड़कर शेष सब बात बता दी। पीछे बताया, "भैया अकरम चार-पाँच दिन में बम्बई पहुँच जावेंगे और उनके आते ही मेरी सगाई और फिर विवाह औरंगाबाद में कर दिया जायगा। मैं स्वयं नहीं जानती मुझे क्या और कैसे करना चाहिये! मैं तुमसे ही इस बात में राय चाहती हूँ।"

विनोद इस समस्या को बहुत गम्भीरता से सोच रहा था। वह पेड़ पर बैठा था। सलीमा उसके सम्मुख खड़ी थी। विनोद का दाहिना हाथ उसके दोनों हाथों में था। वे परस्पर बहुत समीप थे और उनके मन और भी समीप हो गये थे। इस पर भी विनोद में अब वह उतावलापन नहीं था। तब वासना ने उसे विचार-शून्य बना दिया था। अब विनोद सब बात को बहुत गहराई से विचार रहा था।

सलीमा सोच रही थी कि विनोद ने अकारण यह समझ लिया था

कि वह उससे विवाह-प्रस्ताव करने आई है। इस घटना में वह अपना दोष नहीं समझती थी। उसने इस विषय में कभी भी विनोद को प्रोत्साहन नहीं दिया था। अब उसे शंका लग रही थी कि कहीं पहली मित्रता भी ढीली न पड़ जाय। उसका अनुमान ठीक नहीं था।

विनोद ने एक लम्बी सांस खैंची और बोला, "मैं अभी अनुभवहीन हूँ। इस मामले में मेरी सम्मति तुम्हें कुछ अधिक लाभ नहीं दे सकती। हां, यदि तुम कहो तो हम पिता जी के पास चलें और सब बात उन्हें बता दें। मुझे विश्वास है कि वह मेरी बहिन की सहायता करेंगे।"

सलीमा, जो अभी भी विनोद का हाथ पकड़े हुए थी, बोली, "मैंने भाई का हाथ पकड़ लिया है। अब मैं चिन्ता करने का कोई कारण नहीं पाती।"

"तो फिर अभी चलना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि समय कम होने से कुछ हो न सके।"

[५]

मिस्टर माथुर क्लब से आ, रात का खाना खा, अपने मित्रों से बैठक में बैठे बातचीत कर रहे थे कि विनोद चुपचाप समीप आ खड़ा हुआ। विनोद के मुख पर चिन्ता का भाव देख पिता ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी तरफ देखा। विनोद ने आंखें नीची किये हुए कहा, "पिता जी, आपसे स्टडीरूम में कोई मिलने आया है। ज़रा चलकर मिल लीजिये।"

"कौन है?"

"आप चलें। वहीं पता चल जायगा।"

मिस्टर माथुर लड़के की आंखों में व्यग्रता देख उठ खड़े हुए और उसी कमरे में जा पहुँचे जहां नवाब साहब से भेंट हुई थी। इस कमरे में कोठी के पिछवाड़े से एक दरवाज़ा था। विनोद सलीमा को उधर से ही वहां लाया था। वह मित्र-मण्डली में उसकी चर्चा होने नहीं देना चाहता था। माथुर साहब सलीमा को देख पहिचान गये। उनके मुख से अचम्भे में निकल गया, "ओह सलीमा है!"

सलीमा ने उठकर हाथ जोड़कर आदाब अर्ज की।

"बैठो, बैठो, बेटी," मिस्टर माथुर ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा। विनोद, जो अभी तक पिता के पीछे खड़ा था, अब सामने आ खड़ा हुआ। पिता ने पुत्र को बैठ जाने का संकेत किया। वह एक और कुर्सी पर बैठ गया। पिता को अपनी ओर देखते हुए विनोद ने कहा, "पिता जी, सलीमा ने आज मेरे राखी बांधी है।"

मिस्टर माथुर इस सूचना से विस्मय में पड़ गये। वह सलीमा को वहां देख कुछ दूसरी बात सोच रहे थे। अब इस सूचना से वह पहले तो घबराये, परन्तु शीघ्र ही अपने को काबू में कर कहने लगे, "बहुत अच्छा किया है। मुझे पसन्द है। मैं तुम्हें बहिन पाने पर बधाई देता हूँ।"

"और आपको मुझे लड़की बनाना पसन्द नहीं है क्या?" सलीमा ने आंखें नीची किये हुए कहा।

"बहुत। मेरे कोई लड़की नहीं। यह कमी अब तुमने पूरी कर दी। विनू, जाओ अपनी माता को बुलाओ तो।"

विनोद ऊपर की छत से माता जी को बुलाने चला गया। मिस्टर माथुर ने सलीमा से पूछा, "क्या हुआ है?"

सलीमा बिना छुपाये सब बता देना चाहती थी। उसने कहा, "मैं बहुत मुसीबत में फंस गयी हूं और घर पर मेरा कोई मददगार नहीं। मिस्टर विनोद मेरे गहरे दोस्त हैं और इनके सिवाय मुझे कोई मददगार नहीं सूझता। मुझे विश्वास था और है कि इनसे मदद मागूँगी तो यह इनकार नहीं करेंगे। इनसे मदद लेते समय लोग और विनोद खुद भी मन में कोई उल्टी बात समझने न लगें मैं इनसे बहिन का रिश्ता साफ तौर पर कायम कर लेना चाहती थी। आपसे भी मुझे भारी मदद की जरूरत है और लड़की बनकर मुंहमागी मुराद पा सकूंगी।"

मिस्टर माथुर ने केवल 'हूं' ही कहा और चुपचाप सलीमा की बात सुनते रहे। इस समय विनोद की माता नीचे आगयी। मिस्टर माथुर बोले, "देखो, तुम्हारा विनू एक बहिन लाया है। इसे ऊपर ले जाओ

और कुछ खिलाओ-पिलाओ।"

विनोद की माता का स्वभाव बहुत पूछने का नहीं था। वह आज्ञा पालन करना जानती थी। वह बैठी नहीं। खड़ी-खड़ी ही बोली, 'आओ बेटी, चलो' और सलीमा को ऊपर ले गयी।

विनोद सलीमा के पीछे पीछे ऊपर जाने ही वाला था कि उसके पिता ने रोक लिया, "विनू, तनिक ठहरो।"

विनोद वहीं पर ठहर गया। जब सलीमा और विनोद की माता ऊपर चली गयीं तो पिता ने लड़के से जिरह करनी शुरू की। पूछा, "यह कैसे हुआ है? मैं तो आशा करता था कि तुम इसे पत्नी बनाकर लाओगे।"

विनोद ने समझा कि पिता उसे डांट रहे हैं। उसका मुख फीका पड़ गया और निरुत्तर हो जमीन की तरफ देखने लगा। मिस्टर माथुर लड़के को दोषी की भांति सम्मुख खड़ा देख कहकहा मारकर हंस पड़े और बोले, "क्यों, घबरा गये न?"

विनोद ने क्षमा मांगने का भाव दिखाते हुए कहा, "ठीक है। मैं दोषी हूं।"

"दोषी! क्यों?"

"मुझे अपनी बहिन बनाने का अधिकार हो तो हो, मगर आपकी लड़की बनाने का नहीं था।"

मिस्टर माथुर हंसते हुए बोले "आखिर वकील के बेटे हो न। दलील खूब करते हो। अच्छा बताओ वह तुमसे और मुझसे क्या मदद चाहती है?"

"नवाब साहब विवाह पर ज़ोर दे रहे हैं। सिवाय घर से भाग जाने के और चारा दिखाई नहीं देता। आपसे राय करके वह, जो कुछ करना हो, करना चाहती है।"

"तो वह किससे विवाह करना चाहती है?"

"मैं नहीं जानता। कम से कम मुझसे तो नहीं।" यह कहते हुए उसकी दृष्टि कलाई पर बंधे रेशम के धागे पर चली गयी।

"और इस झंझट से तुम्हें क्या मिलेगा ?"

"एक अबला का धन्यवाद ।"

"जानते हो, इस यश-प्राप्ति का परिणाम नवाब साहब से झगड़ा होगा ।"

"नवाब साहब हमारे पालन-कर्ता नहीं, जो उनसे डरकर हम एक नेक काम करने से संकोच करें ।"

"केवल इतना ही नहीं । इस मामले में हिन्दू-मुस्लिम फिसाद भी हो सकता है ।"

"मुझे अफसोस है कि मैंने आपको व्यर्थ ही इस झगड़े में खींच लिया है । अब भी यदि आप आपत्ति न करें तो मैं इस मामले से आपको बाहर रखूँगा ।"

"मगर जब तक तुम इसमें हो तब तक मैं कैसे बाहर रह सकता हूँ ?"

विनोद ने इस पर कृतज्ञता की दृष्टि से अपने पिता की ओर देखकर कहा, "मेरे लिये अब इससे बाहर रहना कठिन है ।"

"अच्छी बात । मैं भी फिर इसमें रहूँगा । विनू, तुम अभी मेरी प्रकृति को नहीं समझे । मगर यह जानना ज़रूरी है कि वह किससे विवाह करना चाहती है ? जाओ, तो उसे नीचे ले आओ ।"

विनोद इस वार्तालाप से बहुत प्रसन्न था । वह एक-एक छलांग में दो-दो सीढ़ियां चढ़ता हुआ सलीमा के पास पहुँचा । उसकी माता उसे मिठाई खिला रही थी । सलीमा विनोद की मा के व्यवहार से बहुत प्रसन्न थी । उसने बड़े आदर-सत्कार से उसे बैठाया, जलपान कराया और परिचय पूछा था । हां, सलीमा को विनोद के पिता से अभी शंका बनी थी ।

जब वह विनोद के साथ नीचे आ रही थी तो कुछ सहमी हुई थी । विनोद ने उसे कान में कह दिया, "सब ठीक है । डरो नहीं और सारी बात ज्यों की त्यों बता देना ।"

मिस्टर माथुर ने, सलीमा को बैठ जाने को कह, कहना आरंभ किया,

"मैंने विनोद से तुम्हारी कठिनाई जान ली है। यह नहीं हो सकता कि विनोद की बहिन की मैं सहायता न करूं। मगर क्या तुम बता सकती हो कि वह कौन भाग्यवान है जिससे तुम विवाह करना चाहती हो?"

सलीमा ने आंखे नीची किये हुए कह दिया, "छिपाने की कोई बात नहीं, और फिर बेटी बाप से छिपा ही क्या सकती है? मैं मिस्टर पथिक से प्रेम करती हूँ। उनको मेरे भावों का ज्ञान है। मगर उनके विचार मेरे लिये कैसे हैं यह मैं नहीं जानती?"

सलीमा का सारा किस्सा जानकर मिस्टर माथुर ने एक आयोजना अपने मन में बना ली। उन्होने कहा, "मैं यह चाहता हूँ कि तुम अपने घर में ही रह सको और तुम्हारे पिता बिना तुम्हारी मर्ज़ी के तुम्हारा विवाह न कर सकें। मै इसका प्रबन्ध कल कर दूंगा। तुम सुबह आठ बजे यहा आजाना। तुम्हारे आने से पहले सब प्रबन्ध हो जायगा।"

अगले दिन सलीमा कॉलेज जाने के बजाय विनोद के घर पहुँच गयी। वहाँ मिस्टर माथुर ने एक प्रार्थना-पत्र तैयार कर रखा था। इसमें सिटी मैजिस्ट्रेट से प्रार्थना की गयी थी कि वह उनके मां-बाप और दूसरे रिश्तेदारों पर 'इन्जंक्शन' जारी करा दें कि जब तक वह स्वयं कोर्ट में हाज़िर होकर मंजूर न करे उसकी शादी वे किसी से न करें। इस प्रार्थना-पत्र में उन्होने लिखा था कि उसका बाप ज़बरदस्ती उसकी शादी एक ऐसे आदमी से करना चाहता है जिसे वह पसन्द नहीं करती। वह अब बालिग़ है और अपनी मर्ज़ी से शादी करना चाहती है।

मिस्टर माथुर ने एक अन्य वृद्ध वकील को घर पर बुलाया हुआ था। वकालतनामा उसके नाम लिखकर उसे सलीमा के साथ सिटी मैजिस्ट्रेट की अदालत में भेज दिया।

सिटी मैजिस्ट्रेट के कचहरी में आते ही सलीमा का प्रार्थना-पत्र पेश कर दिया गया और सलीमा के बयान हो गये। बयान देते हुए उसने कहा, "मैं मैडिकल कॉलेज के सैकण्ड ईयर में पढ़ती हूँ। मेरी उम्र बीस साल से ऊपर है। जिससे मेरा विवाह मेरे मां-बाप करना चाहते हैं

मैं उससे नफ़रत करती हूँ। मैंने अपनी मां और बाप दोनों से कह दिया है। इस पर भी मुझे मालूम होता है कि मुझ पर ज़बरदस्ती की जायगी।"

इस बयान के बाद सिटी मैजिस्ट्रेट ने नवाब साहब के नाम नोटिस जारी कर दिया कि वह अगले दिन अदालत में साढ़े दस बजे हाज़िर होकर बयान करें कि क्यों न उन पर, प्रार्थी की प्रार्थना के अनुकूल, 'इन्जकशन' जारी कर दिया जाय?

[६]

सलीमा अभी कॉलेज से लौटी नहीं थी कि अदालत का नोटिस नवाब साहब को मिल गया। वह, नोटिस और सलीमा का प्रार्थना-पत्र पढ़, आग-बबूला हो गये। सबसे पहिला विचार उन्हें यही हुआ कि यह विनोद और उसके बाप का काम है।

उन्होंने मोटर ली और मिस्टर माथुर के घर का रास्ता पकड़ा। जब नवाब साहब वहां पहुँचे तो मिस्टर माथुर कचहरी से लौट ही रहे थे। नवाब साहब हाथ में नोटिस लिये माथे पर त्योरी चढ़ाये मिस्टर माथुर से बोले, "क्यों साहब, यह कैसी शराफ़त है?"

मिस्टर माथुर ने सर्वथा अनभिज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "क्या हुआ साहब? चलिये, अन्दर चलिये न। आइये, यह क्या है हाथ में?"

वह उन्हें ले भीतर ड्राइंग-रूम में चले आये। नवाब साहब को आराम से बैठाकर उन्होंने कहा, "क्या चाय पीजियेगा?"

नवाब साहब ने कहा, "इस वक्त हमें चाय की थोड़े ही सूझ रही है।"

"हां, तो क्या हुआ है? क्या मैं जान सकता हूँ?"

नवाब साहब ने बिना उत्तर दिये वह अदालत का नोटिस वकील साहब के सम्मुख रख दिया।

मिस्टर माथुर ने नोटिस और प्रार्थना-पत्र दोनों ऐसे पढ़े जैसे उनके सामने ये पहली ही बार आये हों।

नोटिस पढ़कर मिस्टर माथुर ने कहा, "तो क्या यह झूठी दरख़्वास्त

है कि आप उसकी जबरदस्ती शादी कर रहे हैं ?"

"शादी तो करनी ही होगी। यदि वह स्वयं अपना शौहर तलाश कर लेती तो हमें दिक्कत न होती। मगर आप तो ऐसे बातें कर रहे हैं कि जैसे आपको इन बातों का पता ही नहीं।"

"आपका फरमाना बिलकुल ठीक है। मैं कुछ नहीं जानता।"

"अच्छी बात है आप मेरी ओर से मुकदमा लड़िये।"

"मैं ग़लत मुकदमा नहीं लिया करता।"

"ग़लत ! इसमें ग़लती क्या है ?"

"बात साफ है। लड़की बालिग़ है। आप उस पर जबरदस्ती नहीं कर सकते। अदालत आप पर 'इंजङ्कशन' जारी कर देगी।"

"तो ज़ाहिर होगया है कि आपका भी हाथ इसमें है।"

इतना कह नवाब साहब मिस्टर माथुर के यहां से चल एक अपने दोस्त वकील के यहां पहुंचे। इन वकील साहब का नाम शेख़ अब्दुल-समद था। शेख़ साहब ने जब अदालत का नोटिस और सलीमा का प्रार्थना-पत्र पढ़ा तो बहुत विस्मय में पूछने लगे, "नवाब साहब, यह क्या है ? यह क्यों हुआ ?"

नवाब साहब सब बातें नहीं बताना चाहते थे। उन्होंने कह दिया, "यह 'इंजङ्कशन' जारी नहीं होना चाहिये।"

"लड़की की उमर कितनी है ?"

"उसने दरख़्वास्त में ठीक लिखी है।"

"तो कुछ नहीं हो सकता।"

"मगर वकील साहब, अगर यह 'इंजङ्कशन' जारी होगया तो लड़की हिन्दुओं के पास चली जायगी।"

"ओह ! तो यह बात है। आपने उसे उनकी सोहबत में आने ही क्यों दिया था ?"

"अब कोई तदबीर बताइये।"

"अच्छा सुनिये।" इतना कह वकील साहब ने नवाब साहब के

कान में कुछ कह दिया। नवाब साहब का मुख गम्भीर हो गया। वकील साहब ने फिर कान में कुछ कहा। नवाब साहब ने कहा, "अच्छी बात, कोशिश करता हूँ। मगर आप कल मेरी तरफ से हाज़िर हो जाना।"

[७]

अगले दिन कचहरी में खासी चहल-पहल थी। बहुत से वकील और कई दर्शक वहा हाज़िर थे। दोनों ओर से नगर के चोटी के वकील पेश हो रहे थे। कुछ हिन्दू-मुस्लिम तनाव भी प्रतीत होता था। यद्यपि यह कोई नहीं कह सकता था कि लड़की का सम्बन्ध किसी हिन्दू लड़के से है और वह किसी हिन्दू के भड़काने से कचहरी की शरण में आई है। इस पर भी लोग कानों-कान अपना अपना अनुमान बताते थे।

सिटी मैजिस्ट्रेट के आते ही मुकदमा पेश हो गया। नवाब साहब के वकील शेख़ अब्दुलसमद ने, नवाब साहब की ओर से, एक तहरीरी बयान पेश कर दिया। बयान में लिखा था, "मुझे शक है कि मेरी लड़की की यह आज़ादाना दरख़्वास्त नहीं है। उस पर किसी ने नाजायज़ दबाव डालकर उससे दरख़्वास्त दिलाई है। वह उस शादी से, जो मैंने उसके लिये तजवीज़ की है, परसों तक राज़ी थी। कल से वह घर में नहीं है। मेरी गुज़ारिश यह है कि जब तक लड़की कोर्ट में हाजिर होकर अपना बयान न दे और उस पर जिरह न कर ली जाय तब तक यह इंजङ्क्शन' न जारी किया जाय।"

मैजिस्ट्रेट ने बयान पढ़ा और पढ़कर कहा, "लड़की का हाज़िर न हो सकना 'इंजङ्क्शन' जारी किये जाने के खिलाफ़ नहीं जाता। बल्कि यह तो बिलकुल ज़रूरी हो जाता है कि 'इंजङ्क्शन' फ़ौरन जारी कर दिया जाय, ताकि जब तक लड़की कोर्ट में हाज़िर होकर अपनी मंजूरी ज़ाहिर न करे कोई भी उससे शादी न कर सके।"

मैजिस्ट्रेट ने इतना कहकर नवाब साहब के वकील से पूछा, "क्या आपको इसमें कोई एतराज़ है?"

"हां हज़ूर, भारी एतराज़ है। पहले तो यह बताना मुश्किल है कि

जिसने कल यह दरख़्वास्त दी थी, वह सलीमा ही थी। उसकी शनाख़्त और उस पर जिरह होनी चाहिये। दूसरे, नवाब साहब लड़की के वालिद होने से उसके जायज़ सरपरस्त हैं। उनको लड़की की शादी में सबसे ज़्यादा दख़ल होना चाहिये।"

"ख़ुद लड़की से भी ज़्यादा?" मैजिस्ट्रेट ने मुस्कराते हुए पूछा।

इस पर सब हंसने लगे।

अब सलीमा के वकील ने बताया, "हज़ूर, जो लड़की कल कोर्ट हाज़िर थी वह सलीमा ही थी। इसकी तस्दीक तो नवाब साहब पर जिरह करने से हो सकेगी। मेरी दरख़्वास्त है कि नवाब साहब के बयान पर जिरह करने की इजाज़त दी जाय।"

मैजिस्ट्रेट ने नवाब साहब पर जिरह करने की इजाज़त दे दी नवाब साहब अब डौक में खड़े हो गये।

"आपकी कोई लड़की है?"

"हां।"

"नाम क्या है?"

"सलीमा।"

"क्या उमर है?"

"बीस साल के करीब।"

"मैडिकल कॉलेज में दाख़िल करते वक़्त क्या उमर लिखाई थी?"

"अठारह साल।"

"कितने साल से वहां दाख़िल है?"

"दो साल से।"

"क़द कितना होगा?"

"कह नहीं सकता।"

"क्या वह मोटे भारी जिस्म की है?"

"नहीं। पतला छिटका जिस्म है।"

"रंग काला है?"

"नहीं, गोरा है।"

"नाक चपटा है?"

"नहीं।"

इतने में विनोद कोर्टरूम में हाथ में एक लिफाफा लिये आया। वह लिफाफा उसने वकील के हाथ में दे दिया और खुद वहां से चला गया। लिफाफे में कॉलेज के एक ग्रुप की फोटो थी। वकील ने वह तस्वीर मैजिस्ट्रेट के सामने कर सलीमा की तस्वीर पर उंगली रखकर कहा, "हज़ूर, यह लड़की कल यहां हाज़िर थी।"

मैजिस्ट्रेट ने पहिचान लिया। अब नवाब साहब से पूछा, "क्यों साहब, यह तस्वीर आपकी लड़की की है?"

नवाब साहब इनकार नहीं कर सके।

वकील ने फिर पूछा, "आप उसकी शादी करना चाहते हैं?"

"हां।"

"कहां?"

"औरंगाबाद के सर मुहम्मद असलम के० सी० आई० ई० के साहबज़ादे इफ्तिख़ारअहमद के साथ।"

"आपने लड़के को देखा है?"

"हां।"

"सलीमा ने भी देखा होगा।"

"हां देखा है।"

"एक महीने से ऊपर हुआ है कि आपकी लड़की की शादी होने वाली थी।"

नवाब साहब घबरा गये और चुप हो गये।

इस पर वकील ने एक निमन्त्रण-पत्र, जो सलीमा की शादी का था और जिसमें लिखा था कि नवाबजादे इफ्तिख़ारअहमद से उनकी अज़ीज़ा सलीमा की शादी होनी करार पाई है, निकालकर नवाब साहब को दिखाते हुए पूछा, "यह आपकी लड़की की शादी का कार्ड है?"

नवाब साहब के माथे से पसीने की बूँदें टपकने लगी थीं। उन्होंने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

"हा, तो फिर शादी हो नहीं सकी?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"मैं नहीं बता सकता।"

"देखिये नवाब साहब, मैं आपको कुछ याद दिला दूं तो आपको जवाब देने में सहूलियत हो जायगी। अगर मैं यह कहूँ कि लड़की इस शादी से घबराकर दिल्ली भाग गयी थी, तो क्या मैं ठीक नहीं कह रहा?"

"नहीं।"

"आप दूसरे दिन ही दिल्ली गये थे या नहीं?"

"हां, गया था।"

"वहां आपने थाने में रिपोर्ट लिखाई थी कि विनोदकुमार आपकी लड़की को भगा लाया है।"

नवाब साहब अब इस बात का भी प्रमाण उपस्थित किये जाने का शक कर रहे थे। इस कारण बोले, "लिखाई थी, मगर वह रिपोर्ट ग़लती में लिखाई गयी थी।"

"तो आपका मतलब यह है कि लड़की भाग नहीं गयी थी। वह लखनऊ में ही थी और आपने बगैर वजह के शादी बन्द कर दी और झूठमूठ दिल्ली में ढूँढने चले गये और ग़लती से थाने में रिपोर्ट लिखा दी थी।"

"नहीं, लड़की स्टूडैन्ट्स फैडरेशन के जलसे पर गयी थी। मैंने समझा भाग गयी है।"

"ठीक! तो शादी के दिन बजाय घर रहने के लड़की ने दिल्ली में फैडरेशन के जलसे पर जाना ज़्यादा ज़रूरी समझा।"

"यह तो वही बता सकती है।"

"वह तो कोर्ट में बता गयी है। आप बतायें कि आपको लड़की के

दिल्ली जाने की वज़ह से शादी मुल्तवी करनी पड़ी थी ?"

"हां।"

वकील ने जिरह बन्द कर दी और लड़की की दरख्वास्त की मंजूरी पर ज़ोर देते हुए कहा, "लड़की किसने गायब की है, मैं नहीं जानता। वह आज सुबह अदालत में हाज़िर होने को कह गयी थी। वह नहीं आई। उसके गुम हो जाने का एक ही सबब हो सकता है और वह यह कि नवाब साहब को कल अदालत से नोटिस मिला था। नवाब साहब उसकी शादी ज़बरदस्ती कर देना चाहते हैं और उन्होंने उसे कहीं रोक रखा है। और क्या जाने कि इस वक्त जब यहा अदालत से 'इंजङ्कशन' न जारी करने के लिये कोशिश हो रही है, दूसरी तरफ ज़बरदस्ती लड़की का निकाह पढ़ाया जा रहा हो। मैं यह इल्ज़ाम नहीं लगा रहा। मगर अपना डर बता रहा हूँ कि ऐसा हो सकता है। यह डर बिला वजह नहीं है। नवाब साहब के बयान से यह सब ज़ाहिर होता है। वह यह बात छुपाना चाहते थे कि एक बार पहले भी वह लड़की की ज़बरदस्ती शादी कर देना चाहते थे, मगर लड़की को मौका मिल गया और वह दिल्ली भाग गयी थी। वह बात अब उन्होंने जिरह में मान ली है। क्या जो बात वह पहले नहीं कर सके अब ज़्यादा इन्तज़ाम कर पूरा न कर रहे होंगे ? मेरी अर्ज़ यह है कि 'इंजङ्कशन' फौरन ज़ारी कर दिया जाय और नवाब साहब से काफी बड़ी ज़मानत ले ली जाय कि वह अदालत के हुक्म के खिलाफ न कर सकें।"

सिटी मैजिस्ट्रेट ने 'इंजङ्कशन' जारी कर दिया और नवाब साहब से पचास पचास हज़ार की दो ज़मानतें मांग लीं।

[८]

मुकदमे से दो दिन बाद की बात है। पथिक और मोहन रासबिहारी एविन्यू वाले मकान में अपनी रोज़ाना की डाक का जवाब देकर हटे ही थे कि एकाएक सलीमा वहां पहुँच गयी।

मोहन डाक में छोड़ने वाली चिट्ठियों को एकत्रित कर रहा था कि

मकान के नीचे एक टैक्सी आकर ठहरने का शब्द हुआ। मोहन ने झाककर देखा तो सलीमा टैक्सी वाले को भाड़ा दे रही थी। उसने घूमकर कहा, " गुरुदेव, सलीमा है।"

"आगई, पगली सी।" मानों वह उसकी प्रतीक्षा में ही था।

सलीमा ने भीतर आते ही प्रणाम किया। पथिक ने प्रणाम का उत्तर दे उसे बैठने को कहा और पूछा, "कब आई हैं यहा आप ?"

"अभी अभी ! सीधी स्टेशन से आ रही हूँ।"

"साथ नवाब साहब भी आये हैं क्या ?"

सलीमा हंस पड़ी। परन्तु इस समय हंसी में कुछ रस नहीं था। हंसी रूखी थी। पथिक ने उसके मुख को अचम्भे से देखते हुए पूछा, "क्या बात है, सलीमा ?"

"बात यह है कि मैं फिर घर से भाग आई हूं।"

"ओह !"

"परन्तु अब वापिस नहीं जाऊंगी।"

"आखिर हुआ क्या है ?"

सलीमा ने पथिक की दूसरी चिट्ठी पहुंचने से लेकर सब बातें बता दीं। उसने कहा, "मैजिस्ट्रेट के सम्मुख बयान देने के पश्चात् मैं कॉलेज चली गयी। वहा से मैं विनोद के साथ वकील साहब के घर पहुंची। उनसे यह तय करके कि अगले दिन मैं कचहरी हाज़िर होऊंगी मैं अपने घर चली गयी। मैं यह आशा लगाये हुए थी कि घर में भारी झगड़ा होगा। मैं झगड़े में अपना पक्ष पेश करने के लिये तैयार थी और अब घर से तब तक निकलना नहीं चाहती थी जब तक वालिद साहब घर से निकाल ही न दें।

"मैं अभी कोठी के फाटक पर ही पहुँची थी कि नसीर चौकीदार एक काग़ज़ हाथ में लिये कोठी से निकला। यह वही चौकीदार था जिसको मैंने पहली मर्तबा भागते वक्त पाच रुपये का नोट दिया था। मैंने पूछा, 'कहां जा रहे हो ?'

"उसने सलाम कर जवाब दिया, 'हजूर तार-घर।'

"मैंने बिना विचार किये तार लेकर पढ़ लिया। तार औरंगाबाद के लिये था। लिखा था, 'फौरन बाराबंकी नवाबगंज शादी के लिये तैयार पहुँचो।'

"मैं इस तार को पढ़कर सन्न रह गयी। मैंने तार का फार्म वापिस चौकीदार को दे दिया। उस समय मेरा हाथ कांप रहा था। चौकीदार हैरानी से मेरा मुख देखने लगा। मेरी आखों में आंसू भर रहे थे। मैं मुँह मोड़कर चल पड़ी। चौकीदार ने धीरे से कहा, 'हजूर।'

"मैंने घूमकर देखा तो उसने आंखे नीची किये हुए कहा, 'हजूर ने एक बार हमारे बच्चे पर तरस खाकर हमारी मदद की थी। अब मेरे लायक कोई सेवा हो तो हुक्म करें।'

"उस समय मेरा सिर चक्कर खा रहा था और मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था। मैंने बिना सोचे कह दिया, 'जमाल की मा को मेरे पास भेजना।'

"मैंने सोचा कि शायद अब्बाजान को अदालत का नोटिस नहीं मिला और अभी तक उनके दिमाग में शादी कर देने का भूत सवार है। मेरा विचार था कि एक बार 'इंजङ्कशन' जारी हो गया तो मैं मुक्त हो जाऊँगी। इन्हीं विचारों में लीन मैं अपने कमरे में चली गयी।

"मेरे कमरे में दाखिल होते ही किसी ने कमरे का दरवाज़ा बाहर से बन्द कर दिया। पीछे बाहर ताला लगने की आवाज़ भी आई। इस बार मैंने देखा कि मेरे सोने के कमरे की खिड़की और दूसरी खिड़की भी ताले लगाकर पहले ही बन्द कर दी गयी थीं। मैं समझ गयी कि मुझे क़ैद कर दिया गया है और औरंगाबाद वालों के आते ही ज़बरदस्ती मेरी शादी कर दी जायगी। मैं इतनी ज़बरदस्ती की अपने मां-बाप से उम्मीद नहीं करती थी। अब जब मैं अपने विषय में सोचती थी तो अपना भविष्य काला देखती थी। इस रात मुझे नींद नहीं आई। मैं सोच रही थी कि दिन होने पर शायद कुछ हो।

"रात के बारह बजे मेरे कमरे का दरवाज़ा खुला। मैंने कपड़े उतारे नहीं थे। वही कॉलेज जाने के कपड़े पहन रखे थे। दरवाज़ा खुलते ही मैं झपटकर भागने ही वाली थी कि नवाब साहब और दो और आदमियों ने मुझे पकड़ लिया। मेरे मुख पर पट्टी बांध दी गयी और मुझे उठाकर कोठी के बाहर ले जाकर मोटर में बैठा दिया गया। मैं बहुत परेशान थी। उस समय विवश मैं किसी मददगार की तलाश में थी। कोठी की ड्योढ़ी में वही चौकीदार, जिसे तार ले जाते देखा था, हाथ में जलती हरीकेन लालटैन लिये खड़ा था। मैंने उसका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिये अपना एक हाथ मोटर से बाहर निकाला। उसने लालटैन को दो-तीन मर्तबा हिलाया। मैं इसका मतलब उस वक्त नहीं समझी। अब मैं जानती हूँ कि उसने मुझे हौसला देने के लिये ऐसा किया था।

"मुझे इसी हालत में अपनी ज़मींदारी पर अपने महल में ले जाया गया। यह महल नवाबगंज स्टेशन से तीन मील के फ़ासले पर है और आजकल सूना पड़ा है। जब से अकरम भैया विलायत गये हैं हम लोग लखनऊ में रहते हैं। इसका ज़नानख़ाना तो एक पूरा कैदख़ाना ही है। ज़नानख़ाना ऊपर की मंज़िल पर है। किसी कमरे के बाहर को खिड़की नहीं। ऊंची २ दीवारें और मोटे २ मज़बूत दरवाज़े, बाहर और नीचे आने को सिरफ़ एक ही दरवाज़ा और उस पर आधी दर्जन चौकीदार हर वक्त हाज़िर रहते हैं। आम हालत में भी अगर कोई औरत इसमें चली जाती तो बाहर की दुनिया से ऐसे छुप जाती जैसे क़बर में पड़ी हो।

"मुझे ज़नानखाने के एक कमरे में रखा गया। बाकी सब कमरे बाहर से बन्द थे। कमरे के बाहर खुली जगह थी जिसके चारों ओर कमरे बने हुए थे। वहा पर जाना तो आसान था, मगर शोर-गुलकर बाहर किसी को खबर करना नामुमकिन था।

"सुबह मेरे खाने के लिये दारोग़ा की औरत पका हुआ खाना लाई। मैंने कुछ खा लिया और वह बर्तन लेकर चली गयी। इसके बाद दिन

भर मैं अपने विचारों में भटकती रही।

"शाम हो गयी। दिये जलने का वक्त होगया था। दारोग़ा की औरत लैम्प जलाकर चली गयी। मालूम होता है कि उसको मुझसे बोलने की मनाही कर दी गयी थी।

"इस वक्त एक औरत बुर्के से ढकी हुई एक टोकरी में फल लेकर आ पहुँची। सुबह मैंने बहुत थोड़ा खाया था। अब दिया जलते वक्त फल आते देख मुझे गुस्सा आगया। मैंने कहा, 'बेवकूफ, यह फल लाने का वक्त है?'

"इस पर औरत ने बुर्का उठा अपना मुख दिखाया और साथ ही होटों पर उंगली रख चुप करने को कह दिया। यह नसीर चौकीदार की बीवी थी। अब वह नज़दीक आकर बोली, 'आपने जमाल के बाप के हाथ मुझे बुला भेजा था। कल रात को बहुत कोशिश की थी मगर मौका नहीं मिला। यहा इन फलो का बहाना बनाकर आने की कोशिश की। यहां तक तो कामयाब होगयी हूं।'

"उसे वहा देख मेरे मन मे एक तरकीब सूझी। मैंने उससे पूछा, 'तुम मेरे लिये क्या कुछ कर सकती हो?'

"'हज़ूर, जान तक हाज़िर है।'

"'नहीं, जान देने की ज़रूरत नही पड़ेगी। थोड़ी तकलीफ होगी। तुम मुझे अपने कपड़े दे दो। मै पहनकर भाग जाना चाहती हूँ। तुम्हें हाथ-पांव बाधकर छोड़ जाऊंगी। पकड़े जाने पर कह देना कि मैंने तुम्हें धक्का देकर बेहोश कर दिया था। पीछे तुम्हें बाधकर यहा से चली गयी हूँ। फलों के लिये कह देना कि मैंने दो दिन हुए फल लाने को पांच रुपये दिये थे। वही लेकर तुम यहा आई थीं।

"'देखो, घबराना नही। तुम्हें जान से नहीं मारेंगे। हां, तुम्हारे घर वाले की नौकरी छूट जायगी और तुम बाबू अवधबिहारी माथुर वकील हिवेटरोड के पास चली जाना। मेरा नाम और हाल बताना। वह तुम्हारी नौकरी का बन्दोबस्त कर देंगे। बताओ है मंजूर?'

"उस बहादुर औरत ने कहा, 'हम तो हज़ूर के नौकर हैं। जान तक देने को तैयार हैं। मगर आप पकड़ी गयीं तो भारी गड़बड़ होगी।'

"'मेरी चिन्ता न करो। लो अब बुर्का उतार दो।'

"उसने बिना और कुछ सोचे बुर्का उतार मेरे हवाले कर दिया। मैंने बिस्तर की चादर से उसके हाथ और पांव बांध दिये और उसे फ़र्श पर लिटा दिया। बटुआ मेरे पास था जिसमें सौ रुपये थे। उसमें से दस रुपये निकाल मैंने उसे दे दिये। अब मैंने बुर्का पहनकर फलों की टोकरी उठा ली। कुछ फल तो वहीं मेज़ पर रख दिये और शेष टोकरी में ही रहने दिये। बुर्के को अपने चारों ओर भली भांति लपेटकर, एक हाथ में टोकरी लटकाये और दूसरे हाथ में जो बुर्के के भीतर था अपना बैग लटकाये, मैं बाहर निकल आई। चौकीदारों के पास आकर खड़ी हो गयी। टोकरी उनके पास रखकर बोली, 'शाहज़ादी साहिबा ने आप लोगों को खाने को दिये हैं।' इतना कह बिना घबराहट ज़ाहिर किये मैं वहां से बाहर निकल आई। मेरा कैमोइस लैदर का जूता बुर्के के नीचे से बाहर दिखाई देता था, मगर अंधेरे में और फलों के देखने के लोभ में किसी की निगाह उधर नहीं गयी। वहां से स्टेशन तक पैदल ही चली आई और स्टेशन से फैज़ाबाद और फैज़ाबाद से कलकत्ते पहुँचने में दो दिन लग गये हैं।"

पथिक यह सब सुन गम्भीर विचार में पड़ गया। एक ओर तो वह सोचता था कि यह लड़की बहुत ही बहादुर है। दूसरी ओर वह सोचता था कि जिस प्रश्न को वह टालता आरहा था वह अब शीघ्र ही निश्चय हुए बिना नहीं रहेगा।

सलीमा पथिक को चुपचाप सोचते देख मन में डर गयी। वह सोचती थी कि पथिक पर विश्वास क्या निराधार सिद्ध होगा। जब पथिक कुछ देर नहीं बोला तो उसने कहा, "तो क्या अब मैं यहाँ से चली जाऊं?"

पथिक का विचार भंग हुआ। उसने कहा, "चली जाओ! कहां?"

"जहां सींग समायें।"

इतना कहते २ सलीमा रोनी सी हो गयी। पथिक ने कहा, "विनोद की बहिन हो न तुम! क्या तुम्हारे लिये उचित प्रबन्ध नहीं कर सकूँगा मैं?"

सलीमा ने रोनी आवाज़ में पूछा, "विनोद की बहिन और बस? मैं तो कुछ और आशा लेकर यहां आई थी। अच्छी बात, मैं जाती हूँ।"

इतना कह वह उठकर नीचे उतरने को ज़ीने की तरफ चल दी। कुछ देर पथिक निस्तब्ध बैठा रहा। एकाएक वह उठा और भागकर सलीमा के मार्ग में जाकर खड़ा हो गया। वह बोला, "देखो सलीमा, तुम यहां से ऐसे नहीं जा सकतीं। जो तुमने कहा है क्या वह मैं समझता नहीं हूँ? मगर क्या तुम उसका उत्तर पाये बिना चली जाओगी?"

सलीमा की आखों से आसू टपटप गिर रहे थे। उसने पथिक के मुख की तरफ देखा। देखते ही वह सहम गयी। उसे कुछ बहुत ही अज़ीब हालत दिखाई दी। पथिक का रौब इतना था कि वह अपने को उसके असर में दबी जाती महसूस करने लगी थी। उसने कुछ देर सोचकर कहा, "इसके मैं क्या मायने समझूं?"

"मैं जो कहता हूं सो करो। क्या तुम्हें मेरा कहना नहीं मानना चाहिये?"

उसे ऐसा अनुभव हुआ कि पथिक मुस्करा रहा है। वह अपनी भूल जान गयी। उसने अपना कर्तव्य समझकर कहा, "हां, मानना चाहिये।"

"तो चलो ऊपर।"

वह आधी सीढ़ियां उतर चुकी थी। वापिस ऊपर चढ़ आई। मोहन कमरे में खड़ा यह नाटक देख रहा था। सलीमा को भीगी बिल्ली की भांति आंखें पोंछते हुए ऊपर आते देख चकित रह गया। कमरे में पहुँच पथिक ने मोहन से कहा, "मोहन, इन्हें तुम डाक्टर घोष के यहां ले जाओ। मां जी से कहना कि यह हमारी महमान हैं। कुछ दिन आपके यहां रहेंगी।" अब सलीमा को सम्बोधन कर कहा, "सलीमा, मैं कल सायंकाल तुमसे

मिलूंगा। तब तक तुम स्नान कर, खाना खा, आराम कर लेना।"

[६]

उस दिन जब सलीमा का वकील कचहरी जाने के लिये सलीमा की प्रतीक्षा कर रहा था और वह नहीं आई तो वह बहुत घबराया। उसने मिस्टर माथुर को टेलीफोन पर बताया कि सलीमा हाज़िर नहीं हुई। मिस्टर माथुर बहुत घबराये। उन्हें संदेह होगया कि नवाब साहब ने उसे कैद कर रखा है। अब वह सोचने लगे कि इसका मुकदमे पर क्या असर होगा। एकाएक मिस्टर माथुर को सूझा कि नवाब साहब यह कह सकते हैं कि उसकी लड़की की वह दरख्वास्त ही नहीं। न जाने वह कौन लड़की थी और जब तक लड़की मिल न जाय मुकदमे की कार्यवाही रोक दी जाय। ऐसी अवस्था में यह साबित करना सलीमा के वकील का काम होगा। इतना विचारकर मिस्टर माथुर ने विनोद से पूछा, "क्या उसका फोटो तुम्हारे पास है?"

उसने कहा, "मेरे पास तो नहीं है। मगर एक ग्रुप-फोटो में सलीमा की तस्वीर है।"

"तो उसे जल्दी ही कहीं से लाकर वकील के पास पहुँचा दो। नहीं तो मुकदमा बिगड़ जायेगा।"

विनोद सलीमा के ग्रुप के एक लड़के के घर गया। वहां से फोटो लेकर कचहरी में पहुंचा आया।

सायंकाल तक विनोद और मिस्टर माथुर बहुत हैरान थे कि सलीमा का क्या हुआ। सायंकाल विनोद नवाब साहब की कोठी के बाहर चक्कर काटने लगा। वह किसी नौकर से मिलकर जानना चाहता था कि सलीमा के मुकदमे का क्या हुआ। अंधेरा बहुत हो चुका था। इस समय एक नौकर कोठी में से बाहर निकला। उसकी गोदी में एक बच्चा था। नौकर बाज़ार की तरफ जा रहा था। विनोद उसके पीछे पीछे हो लिया। कुछ दूर चलने के बाद विनोद ने कदम बढ़ाकर उसके साथ २ चलते हुए पूछा, "क्या तुम नवाब साहब के नौकर हो?"

"हां साहब।"

"क्या काम करते हो?"

"चौकीदारी करता हूँ। क्यों?"

"भाई, एक बात पूछनी है। अगर बता दो तो खुश कर दूंगा।"

"हां साहब, पूछो। बताने वाली होगी तो बता दूंगा। इनाम की मुझे ज़रूरत नहीं।"

"नवाब साहब की लड़की सलीमा है न·····।"

"जी।"

"उसे एक चिट्ठी भेजनी है। पहुँचा दोगे?"

चौकीदार हंस पड़ा। विनोद ने उसका मुख देखते हुए पूछा, "क्यों, क्या बात है जी?"

चौकीदार खड़ा होगया और विनोद का मुख देखकर पूछने लगा, "आपको क्या काम है सलीमा से?"

"मैं उसका दोस्त हूँ। आज उसको मुझसे मिलने आना था। वह नहीं आई। इसलिये चिट्ठी पहुँचाना चाहता हूँ।"

"तो चिट्ठी लेकर सीधे भीतर क्यों नहीं चले जाते? पहले तो आप कोठी में आया करते थे।"

विनोद पहचाने जाने पर झेंप गया। आखें नीची किये हुए बोला, "नवाब साहब मुझसे नाराज़ हैं। अगर मेरी चिट्ठी का जवाब ला दो तो पांच रुपये इनाम दूंगा।"

चौकीदार ने कहा, "हजूर, पांच रुपये मैं कमा नहीं सकता। सलीमा यहां नहीं है। वह नवाबगंज ले जायी गयी है। वहां ख्याल है, क़ैद है।"

विनोद यह सुनकर खड़ा होगया और जेब से पांच रुपये का नोट निकालकर चौकीदार को देते हुए बोला, "यह पांच रुपये तुम ले लो। तुमने मेरी कुछ तो मदद की है।"

चौकीदार ने रुपये हाथ में पकड़ते हुए कहा, "पांच तब मिले थे और पांच अब। शुक्रिया!"

"कब मिले थे ?"

"जब वह घर से पहले भागी थी।"

विनोद को किस्सा याद आगया। वे दोनों हलवाई की दुकान पर पहुंच गये थे। चौकीदार बच्चे को दूध पिलाने लाया था। वह वहां खड़ा होगया। विनोद ने भी खड़े होकर कहा,"मैं कल इसी वक्त यहां मिलूँगा। अगर और खबर लाओगे तो पाच रुपये और दूंगा।"

मगर विनोद को इतनी देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दूसरे दिन विनोद जब कॉलेज जाने के लिये अपनी कोठी से बाहर निकला तो चौकीदार, वही बच्चा गोदी में लिये, एक डोली के साथ साथ आता दिखाई दिया। विनोद ने देखा कि वे कोठी में आ रहे हैं। विनोद हैरानी से चौकीदार के पास जाकर पूछने लगा, "क्या है ? यह कौन है ?"

"यह मेरी बीवी है। आप ज़रा एक तरफ चले चले तो यह आपको सलीमा की खबर देगी।"

"सलीमा की !"

"हां साहब, बेचारी बहुत पीटी गयी है और हमको अस्पताल भी जाना है।"

डोली के बीच में से आवाज़ आई, "बाबू अवधबिहारी को बताऊंगी।"

विनोद डोली वाले को बैठकखाने में ले जाने के लिये कह पिता जी को बुलाने चला गया।

बाप-बेटा दोनों आये तो नसीर ने डोली का पर्दा उठा अपनी औरत की ज़ख्मी हालत दिखाई। फिर कहने लगा, "सलीमा बीवी ने परसों शाम को मुझे कहा था कि मैं जमाल की मां को उनके पास भेजूँ। मगर ज्योंही सलीमा बीवी घर पहुँची उनके कमरे में बाहर से ताला लगा दिया गया। यह उनसे मिल नहीं सकी। रात को सलीमा बीवी को नवाबगंज ले गये। मैंने सोचा इसे वहां भेज दूं। मैंने कुछ फल देकर इसे वहां भेजा। वहां सलीमा बीवी इसके हाथ-पांव बांध और इसका

बुर्का पहन, चौकीदारों को धोखा दे, भाग गयी। जब रात को दारोगा की औरत खाना लेकर आई तो इसके हाथ-पांव बंधे देखकर इससे पूछने लगी कि सलीमा बीवी कहां गयी है। यह बेचारी क्या बता सकती थी। चौकीदार आज सुबह इसके हाथ-पाव बांध लखनऊ नवाब साहब के पास ले आये। नवाब साहब को चौकीदारों ने झूँठ बताया कि इसने भगा दिया है। नवाब साहब ने गुस्से में हण्टर से और पाव की ठोकरों से इसे बुरी तरह पीटा। मुझे नौकरी से निकाल दिया है। सलीमा बीवी ने जाते वक्त इसे बताया था कि आपसे मिलेगे तो आप मदद करेंगे।"

मिस्टर माथुर ने नसीर की बीवी को अस्पताल भिजवा दिया और नसीर को नौकरी लगवाने की उम्मीद दिलवाई।

अब समस्या और भी विकट हो गयी थी। सलीमा किधर गयी होगी। विनोद को आशंका होगयी थी कि वह कलकत्ते पथिक के पास गयी होगी। मिस्टर माथुर का भी यही विचार था। अब विनोद ने पथिक को चिट्ठी लिखी जिसमें लिखा कि सलीमा के हक में इंजङ्कशन जारी हो गया है। यदि वह कलकत्ते हो तो उसे बता दिया जाय।

कलकत्ते से जवाब आया कि वह वहां है और अब अपने बाप के घर नहीं आना चाहती। उसे मेडिकल कॉलेज छोड़ने का भारी शोक है परन्तु विवश है। लखनऊ में वह शांति से नहीं रह सकेगी। साथ ही पथिक ने यह लिखा कि वह चाहती है कि उसके घर वालों को उसका पता न बताया जाय।

[१०]

अकरम गया तो था ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में इतिहास पढ़ने, मगर पढ़ाई के साथ वह सीख आया युरोप की कौमों से नफ़रत करना। ऑक्सफोर्ड में बहुत से हिन्दुस्तानी विद्यार्थी थे और युरोप के दूसरे देशों के लोग भी थे। उसे यह देखकर बहुत अचम्भा हुआ कि अंग्रेज, फ्रांसिसी और जर्मन लड़कों से हिन्दुस्तानी लड़कों की अपेक्षा अच्छा व्यवहार करते हैं। एक मित्र के घर दावत पर यह फ़रक उसे स्पष्ट प्रतीत हुआ।

दस-बारह महमानों में दो हिन्दुस्तानी थे, और ये दोनों के दोनों जैसे अछूत होते हैं सब से पृथक बैठाये गये। एक लड़की भी आमन्त्रित थी। अकरम ने कई बार उसे बातों मे लाने का यत्न किया, मगर जब भी अकरम कुछ बात करता था तो वह सुनकर बिना जवाब दिये किसी और से बातें करने लगती थी। जब दो-तीन बार ऐसा हुआ तो अकरम समझ गया कि उससे भेद-भाव का व्यवहार किया जाता है। भिन्न २ युरोपियन जातियों के कारनामों पर बातचीत हो रही थी। एक फ्रांसिसी नैपोलियन की कुछ बातें बता रहा था कि वही अंग्रेज लड़की कहने लगी, "हमारी कौम व्यक्तियों के कारनामों को नहीं गिना करती, अगरचे कहने योग्य व्यक्ति हमारे यहां कम नहीं हुए, परन्तु हमारी कौम सार्वजनिक रूप से कौमी कारनामों पर मान करती है। हमारी कौम का सब से बड़ा कारनामा, जो आज तक किसी कौम ने नहीं किया, वह बत्तीस करोड़ की आबादी वाले मुल्क को डेढ़ सौ वर्षों से अपने मातहत रखना है। यह एक आदमी का काम नहीं। सारी की सारी कौम का यह चमत्कारक काम है।"

इस पर सब उपस्थित लोग अकरम और उसके हिन्दुस्तानी साथी की ओर दया के भाव से देखने लगे। अकरम यह सहन नहीं कर सका और तुरन्त ही घर वालों से छुट्टी पाकर अपने कॉलेज-होस्टल में चला आया।

एक बार एक प्रोफैसर से अकरम ने पूछा, "आपका जर्मनों से व्यवहार क्यों ज़्यादा अच्छा है बनिस्पत हिन्दुस्तानियों के?"

प्रोफैसर का जवाब था, "यह स्वाभाविक है। हिन्दुस्तानी एक गुलाम जाति जो है।"

अकरम ने कहा, "मगर जर्मनी की आपसे दुश्मनी रही है और शायद अब भी एक दो साल में फिर जंग छिड़ जाय।"

"युद्ध के समय हम लड़ेंगे, मगर बहादुर, आत्माभिमान रखने वाली जाति का हम मान किये बिना नहीं रह सकते।"

लंडन में तो कई बार उसको होटलों से सिरफ इसलिये निकाल दिया गया था कि वह हिन्दुस्तानी है।

ऑक्सफोर्ड का एम० ए० करने के बाद वह युरोप के दूसरे मुल्कों में घूमता रहा। वह अमेरिका भी गया और दक्षिणी अफ्रीका के बड़े २ नगरों में भी घूमा। हिन्दुस्तानियों से घृणा का व्यवहार दक्षिणी अफ्रीका में सब से ज्यादा था। एक घटना तो ऐसी हुई कि उसे याद कर उसका खून उबल पड़ता था।

प्रिटोरिया में वह घूम रहा था। एक अंग्रेज लड़की ने, जो अपना रास्ता भूल गयी थी, बहुत मिन्नत के साथ अकरम से रास्ता पूछा। अकरम ने रास्ता समझाया। पश्चात् वह अपना मार्ग छोड़ उसे रास्ता दिखाने के लिये आधा घण्टा व्यर्थ खोकर जब उससे विदा होने लगा तो लड़की ने धन्यवाद किया और हाथ मिलाते समय उससे कहा, "क्या मैं जान सकती हूँ कि आप कौन मुल्क के रहने वाले हैं? आपका अंग्रेजी बोलने का ढंग कुछ विदेशी प्रतीत होता है।"

अकरम ने जवाब में कहा, "मैं एक हिन्दुस्तानी हूं। यहा सैर के लिये आया हुआ हूं।"

इतना सुनते ही उस लड़की का रंग तांबे की तरह लाल हो गया। उसके होंठ कापने लगे। उसने वह हाथ जो अकरम से मिलाया था झटके से छुड़ाकर अकरम के मुख पर चांटा लगा दिया और क्रोध में बोली, "यू रास्कल ब्लडी इण्डियन! तुमने मुझको पहले क्यों नहीं बताया? भाग जाओ वरना पुलिस के हवाले कर दूंगी।"

अकरम के मन में आया कि इसको खूब पीटे, परन्तु उसे स्मरण हो आया कि वह दक्षिणी अफ्रीका में है। वहां पर तो उसकी वायसराय हिन्द भी रक्षा नहीं कर सकता। वह चुपचाप अपना क्रोध मन ही मन पी गया।

बर्लिन में उसे एक बङ्गाली नौजवान से मिलने का मौका हुआ। वह नौजवान किसी जमाने में हिन्दुस्तान में एक क्रांतिकारी दल का

संचालन कर चुका था। नाम था धीरेन्द्र। अकरम ने जब यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में अपने अपमान की कहानी सुनाई तो धीरेन्द्र हंस पड़ा और कहने लगा, "तो आप यूरोप में बराबरी के व्यवहार की आशा लेकर आये हैं। भला क्यों? आप इन कौमों के बराबर हैं भी तो नहीं।"

अकरम ने कुछ अभिमान से कहा, "हम किस बात में इनसे कम हैं?"

धीरेन्द्र का उत्तर था, "मनुष्य के अन्दर जितनी अच्छी बातें होनी चाहियें, उन सब में कम हैं और इसका प्रमाण है हमारा मुट्ठी भर अंग्रेज़ों की आधीनता में मजे से रहना। हम डरपोक, कामचोर, मज़हबी दीवाने, परस्पर झगड़ने वाले और स्वार्थी हैं। देश, जाति और अन्य बातों की ओर जिनमें हमारी दिलचस्पी होनी चाहिये हम न तो ध्यान देते हैं और न ही हम जानते हैं कि इनके विषय में हमें क्या करना चाहिये।"

धीरेन्द्र ने अपना कहना जारी रखते हुए कहा, "डेढ़ सौ वर्ष से अंग्रेज़ हिन्दुस्तान में राज्य स्थापित किये हुए हैं। इतने लम्बे काल में हिन्दुस्तानियों ने कौन सा यत्न किया है जिससे हिन्दुस्तान विदेशी शिकंजे से निकल सके। सन् १८५७ के विद्रोह की बात छोड़ दो। उस समय बहुत सी बातें थीं, जिससे विद्रोह असफल होना ही चाहिये था। परन्तु उसके पीछे जो कुछ हुआ वह एक काली कहानी है। सब से पहली बात तो यह हुई कि सन् १८५८ से लेकर सन् १९०७ तक तो किसी ऐसे आदमी का नाम सुनाई नहीं पड़ता जो हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करने की बात करता हो। अगर कोई ऐसी बात करता भी था तो उसे बेवकूफ समझा जाता था। उस समय की राजनीतिक संस्था हिन्दुस्तानियों के लिये ब्रिटिश राज्य के आधीन बड़ी-बड़ी नौकरियां पाने की कोशिश करती रही। स्वराज्य-प्राप्ति का प्रश्न तो किसी पढ़े-लिखे के मन में आता ही नहीं था। इस पर भी मज़ेदार बात यह थी कि मुसलमान अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पका रहे थे। कांग्रेस जो कुछ मांगती थी सर सैयदअहमद और उसके मित्रवर्ग उस मांग का विरोध करते थे। मसलन कांग्रेस ने नमक-कर का विरोध किया तो सर सैयदअहमद ने कांग्रेस का

विरोध किया, मानों नमक-कर के छूट जाने से मुसलमानों को हानि होने वाली थी। इसी प्रकार जब एक्ज़ीक्यूटिव और जुडिशिल पदों को पृथक-पृथक करने की मांग की गयी तो अलीगढ़ से इसका विरोध किया गया। जब यू० पी० में सर्व-साधारण की भाषा हिन्दी लिपि को कचहरी की लिपि बनाने के लिये कहा गया तो फारसी लिपि की हिमायत के लिये अलीगढ़ केन्द्र बन गया। फारसी लिपि का मुगलों से तो सम्बन्ध था क्योंकि वे ईरान के रहने वाले थे, मगर हिन्दुस्तान के मुसलमानों का कोई सम्बन्ध हो सकता है समझ में नहीं आता। ये बेतुकी बातें मुसलमानों की राजनीति में अब तक चली आती हैं। अभी एक समाचार हिन्दुस्तान से आया है कि बम्बई की कांग्रेसी सरकार ने बम्बई में जायदाद पर टैक्स लगाया है। इस टैक्स का विरोध मुस्लिम लीग कर रही है और बम्बई में बड़े-बड़े जलसे-जलूस निकाल रही है। क्या बम्बई में सब जयदाद मुसलमानों की ही है या बम्बई में मुसलमानों की जायदाद हिन्दुओं की जायदाद से अधिक है? यह अयुक्ति-संगत विरोध ऐसे ढंग से हो रहा है कि कोई भी बात हिन्दू करेंगे तो मुसलमान बात की अच्छाई-बुराई का विचार न कर अवश्य विरोध करेंगे। ऐसी अवस्था क्या शोचनीय नहीं है? कुछ अलीगढ़ कॉलेज के अंग्रेज़ प्रिंसिपल इतने चतुर निकले कि सर सैयद-अहमद जैसे बुद्धिमान व्यक्ति को भी बरगला ले गये।"

अकरम ने कुछ चिढ़कर कहा, "क्या आपका यह मतलब है कि हिन्दुस्तान के गुलाम होने का सारा दोष मुसलमानों पर है?"

"नहीं, मैंने तो यह नहीं कहा। मैंने हिन्दुस्तान की राजनीति का एक ही अंग बताया है। हिन्दू लोग सब से बड़े दोषी हैं। १८५७ के विद्रोह के पश्चात् जब सरकार ने हिन्दुओं को नौकरियां देनी आरम्भ कीं तो ये लोग इन छोटी-मोटी रियायतों से इतने प्रसन्न हुए कि न सरकार को राज्य स्थापित करने में सहायता करते रहे, प्रत्युत सरकार के विरोधियों को कुचल डालने का भी यत्न करते रहे। यहां तक कि १९०७ तक इक्के-दुक्के स्वतन्त्रता के लिये आवाज़ उठाने वाले को वे उल्टा नाम

देकर दोषी साबित करते रहे। सबसे अधिक दोष वाली बात हिन्दू राजनीतिज्ञों ने विचारों की कीमत लगाने में की। वे यह समझते थे कि अंग्रेजी सरकार से मागने पर अधिकार मिल जायेंगे। वे समझते थे कि एक हिन्दुस्तानी के डिप्टी कमिश्नर बन जाने से हिन्दुस्तान की मागें पूरी हो जायेंगी। वे समझते थे कि नमक-कर मुआफ करा लेने से हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा सुधर जायेगी। अधिक आवश्यक बातों की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। लार्ड कर्ज़न का यह कहना कि कांग्रेस बंगाली वकीलों की संस्था है कुछ झूँठ नहीं था। काग्रेस वकीलों की भाति वाद-विवाद करने और प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त कुछ नहीं करती थी। राज्य की शक्ति का स्रोत है फौज और पुलिस। इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

"अब भी तो हिन्दुस्तान में यही हो रहा है। काग्रेस अब पहले से अधिक प्रभावशाली संस्था बन गयी है। दो-तिहाई भारत में उसके मन्त्री-मण्डल प्रबन्ध करते हैं और उन्होंने इस समय के लिये भी कोई राजनीतिक प्रोग्राम नहीं बनाया। खद्दर-प्रचार, शराबबन्दी और किसानों के कर्जे मुआफ करना बहुत आवश्यक और जरूरी काम होते हुए भी राजनीतिक काम नहीं हैं। राजनीतिक कार्यक्रम तो ऐसा होना चाहिये था कि जो कुछ मिला था उससे और अधिक राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का यत्न किया जाता। हिन्दू वकील महात्माओं के प्रभाव में पड़कर राजनीति के अर्थ भूल गये हैं।

"हिन्दुओं और मुसलमानों की त्रुटियों को छोड़कर एक और दोष जो प्रायः सब हिन्दुस्तानियों में उपस्थित है वह यह है कि हम व्यक्तिगत उन्नति को सामाजिक उन्नति से ऊंचा समझते हैं। ऐसा समझने में स्वार्थ बहुत भारी अंश में भाग लेता है। परन्तु बुरी बात यह है कि व्यक्तिगत लाभ को हम जातीय लाभ बताने में लज्जा अनुभव नहीं करते।"

अकरम के लिये ये सब सिद्धान्त नवीन थे। उसने इतिहास ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में पढ़ा था। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफैसर बहुत

ईमानदार होने पर भी हिन्दुस्तान से सात हजार मील के अन्तर पर थे। उनके ज्ञान का आधार वे राजा महाराजाओं की कथायें थीं जो लिपि-बद्ध हो चुकी थीं। हिन्दुस्तान में जन-साधारण के आचार-व्यवहार में पतन क्या हुआ है और कैसे हुआ है यह वे नहीं जान सकते थे। अब धीरेन्द्र से हिन्दुस्तानी राजनीति को उलटे मार्ग पर जा रही सुन वह प्रभावित तो हुआ, परन्तु उसे इन बातों पर विश्वास नहीं हुआ। दो बातें वह जान गया था। एक यह कि दुनिया भर के लोग यह जानते हैं कि हिन्दुस्तान एक गुलाम देश है, और इस पर एक छोटी सी कौम अंग्रेज़ राज्य करती है। दूसरी बात वह यह समझा था कि हिन्दुस्तानी स्वयं ही अंग्रेज़ों की हकूमत हिन्दुस्तान में स्थापित किये हुए हैं। एक चपरासी से लेकर बड़े से बड़े अफसर तक सिविल, पुलिस और फौज में सब हिन्दुस्तानी हैं। ये सब राज्य-कार्य को चलाते हैं, परन्तु नीति चलती है विलायत में बैठे सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की जो इंग्लिस्तान के महा-मन्त्री की आज्ञा से काम करता है। हिन्दुस्तान में लगभग तमाम नौकरियां हिन्दुस्तानी हैं। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट नौकरियों का एक बड़ा संगठन और नियन्त्रण-कर्ता है।

ये दो बातें सीखकर अकरम हिन्दुस्तान को लौटा। वह बम्बई में पिताजी और सलीमा से मिलने की आशा करता था। परन्तु वहां कोई नहीं था। लाचार बम्बई पहुँचते ही वह लखनऊ के लिये रवाना होगया।

[११]

"आखिर उसने ऐसा किया ही क्यों? क्या उसका दिमाग ख़राब होगया है?" लखनऊ में अकरम अपने पिता से पूछ रहा था।

"मैं क्या जानूं? पहिली बार भागी तो दिल्ली गयी थी। अब के पता नहीं। सिरफ उसकी शादी की बात हो रही थी। उसने एक हिन्दू वकील के लौंडे के भड़काने पर अदालत में दरख़्वास्त दे दी कि हम उसकी शादी ज़बरदस्ती कर रहे हैं और अदालत ने हम पर इंजङ्क्शन जारी कर दिया।"

अकरम यह जानता था कि उसके पिता कुछ हठी प्रकृति के हैं। इस कारण वह समझ गया कि ज़रूर ज़बरदस्ती हुई होगी। उसने कहा, "आख़िर शादी की इतनी जल्दी क्या पड़ी थी? अभी तो वह कॉलेज में पढ़ती थी। पढ़ाई तो ख़त्म हो लेने देते।"

"अकरम, बात यूं हुई कि सलीमा को डाक्टर बनकर कुछ लेना नहीं था। उसकी दोस्ती हिन्दू लड़कों से बढ़ रही थी। दिन-रात लोग हमें कह रहे थे कि वह किसी हिन्दू से शादी कर लेगी। इसलिये मैंने बहुत कोशिश से एक रिश्ता ढूंढा। बस वह घर से भाग खड़ी हुई।"

"कौन रिश्ता ढूँढा है आपने, जो उसे पसन्द नहीं?"

नवाब साहब ने औरङ्गाबाद वालों का परिचय दिया। अकरम इफ़्तिख़ारअहमद का नाम सुनते ही चौंक उठा और कहने लगा, "वह तो निहायत ही बदचलन आदमी है।"

"तुम उसे कैसे जानते हो?"

"विलायत में उससे मिला था।"

"मगर एक हिन्दू से शादी कर लेने से खराब नहीं था।"

अकरम पांच साल विलायत रह आने के कारण और विदेशों में अपने आपको भी हिन्दू या हिन्दुस्तानी कहे जाने से भूल गया था कि वह मुसलमान है। पिता के कहने से उसे यह बात कुछ अखरी कि हिन्दू से शादी कर लेनी खराब है। कुछ सोचकर पूछने लगा, "आपने पता तो किया होगा कि वह किससे शादी करना चाहती है?"

"उसने बताया ही नहीं। पहले हमें ख्याल था कि बाबू अवधबिहारी माथुर के लड़के विनोद से इरादा है। मगर यह ख्याल ग़लत निकला। अब भागने से कुछ पहले वह कहती थी कि वह किसी से तय कर रही है। मगर आख़िरी फैसला होने से पहले ही वह चली गयी है।"

अकरम की समझ में तो यह आया कि इस मामले को अक्लमन्दी से सुलझाने के स्थान में हठ और जल्दबाज़ी से बिगाड़ दिया गया है।

"यहां उसकी किस किस से ज्यादा मेल-मुलाकात थी?"

"विनोदकुमार से। वह भी उसी के कॉलेज में पढ़ता है।"

उसी दिन दोपहर को अकरम मेडिकल कॉलेज में जा पहुंचा। विनोद को ढूंढ़कर उसके सामने जा खड़ा हुआ। विनोद कॉलेज लॉन में खड़ा मित्रों से बातें कर रहा था। अकरम को चपरासी विनोद के पास खड़ा कर सलाम कर चला गया। अकरम ने पूछा, "आपका नाम विनोद कुमार है?"

"हां जी। मुझे लोग इसी नाम से पुकारते हैं।"

"मैं आपसे कुछ अलहदा में बातचीत करना चाहता हूँ।"

जब से सलीमा भागी थी कई बार पुलिस-अफसर उससे आकर पूछ-ताछ कर गये थे। आज भी उसने यही समझा कि कोई पुलिस-अफसर है। वह तुरन्त, साथियों को छोड़, एक तरफ दूर लॉन में चला गया। अकरम ने कहा, "मैंने सुना है कि आपकी सलीमा से गहरी दोस्ती थी।"

"हां, मगर क्या मैं जान सकता हूँ कि मैं किससे बातें कर रहा हूँ?"

"आप क्या समझते हैं कि मै कौन हूँ?"

विनोद ने ध्यान से अकरम का मुख देखा तो उसे सलीमा की रूप-रेखा के कुछ चिन्ह उसमें भी दिखाई दिये। विनोद कुछ मुस्कराया और हाथ बढ़ाकर बोला, "क्या मै मिस्टर अकरम से बात कर रहा हूँ?"

अकरम ने हाथ मिलाते हुए कहा, "अन्दाज़ा बिल्कुल ठीक है। तो उसने मेरे बारे में आपसे ज़िकर किया होगा।"

"हा, वह आपकी बातचीत अक्सर किया करती थी और मेरा विचार है कि घर भर में केवल आपसे ही उसको स्नेह था।"

अकरम ने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया और विनोद को और कुछ कहने का अवसर देने के लिये उसका मुख देखता रहा।

विनोद ने कहा, "वह बहुत चाहती थी कि आप पन्द्रह दिन पहले पहुंच जाते तो कम से कम कचहरी वाली बात न हो पाती। उसे आपका बहुत विश्वास था।"

अकरम ने कहा, "मालूम होता है कि आपके उससे बहुत गहरे

ताल्लुक़ात थे।"

"वह मेरी बहिन बन चुकी है।"

"बहिन!"

"हां, आपको मालूम होगा कि हिन्दुओं में एक रस्म रक्षा-बन्धन की होती है। इस रस्म के अनुसार अगर कोई लड़की किसी लड़के के हाथ में राखी बाध दे तो उनका बहिन-भाई का रिश्ता पक्का हो जाता है।"

"ओह! तब तो वह आपको अवश्य बता गयी होगी कि वह कहां भागकर जा रही है।"

"अगर भागने से पहले वह मुझे मिल सकती तो भागने की ज़रूरत ही न रहती। हकीकत यह है कि दोनों बार नवाब साहब ने उसे कमरे में कैद कर दिया था। एक बार लखनऊ कोठी में ही और दूसरी बार नवाबगंज कोर्ट में। दोनों बार भागने में उसे बहुत साहस का काम करना पड़ा है। अभी तक जो कुछ पता चला है, वह यह कि एक औरत ने बुर्क़ा पहिने हुए तीसरे दर्जे का फैजाबाद का टिकट खरीदा था। उसके पश्चात् पुलिस को उसका कुछ पता नहीं मिला।"

"आपने उसको ढूंढने की कोशिश की है?"

"हां।"

"क्या नतीजा निकला है?"

"परिणाम सन्तोषजनक है, परन्तु अभी आपको मैं ठीक ठीक बताने में असमर्थ हूँ। आशा करता हूँ कि शायद कुछ दिन बाद मैं आपकी सहायता अच्छी तरह कर सकूँगा।"

विनोद ने इससे अधिक बताना उचित नहीं समझा। वह पहले अकरम के विचार जान लेना चाहता था। साथ ही बिना सलीमा से पूछे वह उसका पता बताने का अधिकार भी नहीं रखता था।

"वह है तो ठीक तरह से।"

"जहां तक मुझे मालूम हुआ है वह भली भांति है।"

"आप मुझे वहां ले क्यों नहीं चलते?"

"इस कारण कि बिना सलीमा की इच्छा के ऐसा नहीं हो सकता।"

"आप तो कहते हैं कि वह मुझसे ख़ास मुहब्बत रखती है। फिर वह मुझसे मिलना क्यों नहीं चाहेगी?"

"वह मेरा अनुमान था। निश्चय करना चाहता हूं।"

"किससे?"

"आप दोनों से।"

"मुझसे क्या जानना चाहते हैं?"

"यही कि आपकी मुहब्बत उससे कितनी है और किस किस्म की है?"

"इसका मतलब?"

"देखो भैया अकरम, मैं आपसे उम्र में छोटा हूँ और मैं आपको शिक्षा देने का अधिकार नहीं रखता। हां, आपके विचार जानने में मैं पाप नहीं समझता। किस्सा यह है कि वह एक हिन्दू युवक से प्रेम करती है। वह युवक उसको प्रेम करता है या नहीं, मैं नहीं जानता। सलीमा भागकर उसी के पास गयी है। अब आप इसको अच्छा समझते हैं या खराब, यह मैं आपसे जानकर उसको लिखना चाहता हूँ।"

"परन्तु वह कौन साहब हैं? बिना उनको देखे और जाने मैं क्या कह सकता हूँ?"

"परन्तु आपके वालिद साहब ने तो बिना देखे-जाने ही इन्कार कर दिया था। एक और बात हुई कि उनको एक वक़्त वहम हो गया था कि वह मुझसे विवाह करना चाहती है। वह मेरे पिता के पास गये और कह आये कि इस विवाह के लिये मुझे मुसलमान होना पड़ेगा।"

अकरम के लिये यह बात कोई अचम्भे में डालने वाली नहीं थी। इस कारण उसने अब पूछा, "तो क्या अब सलीमा को हिन्दू होना होगा?"

"यह तो मैं नहीं जानता। एक दफा सलीमा ने यह कहा था कि वह उसे प्रेम करती है। अब मुझे मालूम हुआ है कि वह उसके ही पास है।"

"मिस्टर विनोद, मैं आपका बहुत मशकूर हूँ कि आपने इतने खुले दिल से बातें की हैं। मैं शादी के मसले में दख़ल देना नहीं चाहता, लेकिन मेरा हक़ है कि मैं जानूं कि वह कौन साहब हैं जो मेरे बहनोई बनना चाहते हैं या बनाये जाने वाले हैं। क्या मैं ग़लत कह रहा हूँ?"

"मै आपकी अवस्था को समझता हूं। अगर मैं आपके स्थान पर होता तो यही बात कहता। मगर यह मेरी बात नहीं है। मैं इसमें हस्ताक्षेप नहीं कर सकता।"

"अगर मैं चिट्ठी लिखूं तो आप उसे भेज देंगे?"

"मै इसमें कोई आपत्ति नहीं देखता।"

इस पर दोनों कॉलेज-हॉल में चले आये। अकरम ने एक कागज ले चिट्ठी लिख दी। चिट्ठी अंग्रेजी में थी :—

प्रिय बहिन,

मै आज लखनऊ पहुँच गया हूँ। पांच साल के बाद तुम्हें मिलने की बड़ी चाह थी और तुम्हें यहां न देखकर बहुत दुःख हुआ। किस्मत से मिस्टर विनोद से मुलाकात हुई है और उन्होंने वायदा किया है कि यह चिट्ठी तुम्हें पहुँचा देंगे। मुझे तुम्हारे यहां से चले जाने के सब कारण मालूम नहीं इसलिये मैं नहीं कह सकता कि तुमने अच्छा किया है या बुरा। हां, तुम्हारे कचहरी में इंजङ्क्शन की अर्जी करने से अम्मी और अब्बाजान के दिल को बहुत दुःख पहुँचा है। बहुत अच्छा होता अगर मेरे आने तक तुम ऐसा न करतीं।

इस पर भी क्या मैं तुमसे मिल सकता हूँ? कहां? चाहे कुछ हो भाई के लिये बहिन बहिन ही रहेगी।

तुम्हारा भाई, अकरम

पाच दिन के बाद चिट्ठी का उत्तर आया और विनोद ने वह उत्तर अकरम को पहुँचा दिया। लिखा था :—

भाई जान,

आपकी छोटी बहिन का आदाब कबूल हो। मै आपके वापिस आने

की घड़ियां गिन रही थी। मुझे विश्वास था कि आप अगर होते तो यह सब खटपट न होती। मगर हालात ऐसे हो गये थे कि मैं वह करने पर मजबूर हो गयी, जो मैंने किया। मैं अब भी समझती हूं कि उस अवस्था में मुझे वही करना चाहिये था। इस पर भी मुझे सख्त अफसोस है कि अब्बाजान को मेरे कामों से रंज हुआ है। मैं तो अब भी हाज़िर होकर मुआफी मागने के लिये तैयार हूँ। मगर भैया, इन पाच सालों में मेरे ख्यालो में बहुत फर्क पड़ गया है। यूं तो मै उम्मीद करती हूँ कि आप भी बहुत कुछ बदल गये होंगे। आप दुनिया भर में घूमे हैं। हजारों लोगों से वास्ता पड़ा होगा और उनके विचारों से आप में भी कुछ तो तबदीली जरूर हुई होगी। हां, यह नहीं जानती कि आप में और मुझ में तबदीली का बहाव एक ही ओर हुआ है या दूसरी ओर।

मै आपसे मिलने के लिये बेताब हो रही हूँ और चिट्ठी मिलते ही लखनऊ के लिये रवाना होती मगर यहा एक लगाव है। मैं उस लगाव में उलझ गयी हूँ। मुझे डर लगा रहता है कि लखनऊ मुझसे वह छीन न ले। औरंगाबाद वाला क्या कुछ नहीं कर सकता। उसकी तो सूरत से ही खूंखारपन टपकता है।

और यहा एक काम भी है जिसके लिये मैं क्या कुछ नहीं कर कती। उस काम को पूरा करने के लिये बहुत कम समय रह गया है र यहां से एक काम करने वाले का चला जाना निश्चय ही अच्छा न गा। यह काम क्या है, विनोद भैया से जान सकते हैं।

इस पर भी एक दो दिन के लिये तो लखनऊ आ ही सकती हूं। ार क्या मेरी इस जिन्दगी को आप पसन्द करेंगे? यहां मैं एक नवाब ो लड़की नहीं हूँ। एक मामूली लड़की हूँ और अपनी रोटी आप कमाने के लिये तैयार हूं। क्या मैं मिलने आ सकती हूँ?

सलीमा

अकरम लिखने के ढङ्ग से चकित था। चिट्ठी में संक्षेप से बहुत कुछ लिख दिया गया था। हा तो यह काम क्या है जिसमें वह लगी है।

विनोद इस काम को जानता है, और चिट्ठी में अपने प्रेम का परिचय भी दिया था। अकरम जवाब पाकर खुश था। वह आने के लिये लिखने वाला था कि कुछ सोचकर चिट्ठी लिये हुए वह नवाब साहब के पास पहुँच गया। बेगम साहिबा भी वहीं बैठी थीं।

"अब्बाजान, सलीमा की चिट्ठी आई है," अकरम ने कहा।

नवाब साहब ने चौंककर कहा, "कहा से ?"

"सो तो नहीं लिखा, मगर यहां आने के लिये पूछा है।"

"तुम्हें कहां से मिली है ?"

"विनोद ने भेजी है।"

"यह सब उसी बदमाश की शरारत है। हा तो क्या लिखती है ?"

अकरम ने चिट्ठी पढ़कर सुनाई। बेगम की आखे भर आई थीं। नवाब साहब ने सुनकर कुछ अकड़कर कहा, "लिख दो, यहां न आये।"

"न आये ?" अकरम ने हैरानी से पूछा।

"नहीं। न जाने किस आवारा से शादी कर ली है। मैं उसका मुंह देखना नहीं चाहता।"

"मगर उसने तो नहीं लिखा कि शादी कर ली है।"

"तो इसके क्या मायने हैं कि मेरा लगाव हो गया है ? वह कोई हिन्दू काफिर है जिससे उसकी शादी हो गयी है।"

अकरम ने अभी भी बहुत नरमी से कहा, "अब्बाजान, इसके अर्थ यह नहीं हैं। अगर मान भी ले कि उसने शादी कर ली है तो फिर क्या हुआ ? हमारा रिश्ता तो उससे टूट नहीं सकता।"

"मैं किसी गैर मुस्लिम से रिश्ता रखना नहीं चाहता।"

"मगर हमारे बुज़ुर्ग भी तो एक वक्त हिन्दू थे। मेरे नगरदादा हिन्दू थे। एक औरत के इश्क में मुसलमान हो गये। मुसलमान हो जाने पर भी वह अपने बाप-दादाओं की जागीर के मालिक बने रहे। यह ताल्लुकदारी हमारे मुसलमान होने से हमसे छिन नहीं गयी। अगर एक लड़की फिर हिन्दू हो गयी तो क्या फरक पड़ जायेगा। रिश्तेदारी तो जुदा चीज़

है। मज़हब से खून ऊँचा है।"

"तुम आजकल के हिन्दुस्तान की हालत नहीं समझते। पहले मज़हब एक मामूली बात थी। कभी किसी हिन्दू ने किसी को मज़हब तब्दील कर मुसलमान होते देख परवाह नहीं की थी। जब मेरे दादा मुसलमान हुए थे तो किसी ने कोई झगड़ा नहीं किया। बल्कि हिन्दू इससे खुश थे। मगर अब हालत दूसरी है। जब से आर्य-समाज ने मुसलमानों को हिन्दू बनाना शुरू किया है हालत बदल गयी है। अब एक हिन्दू का मुसलमान होना गवारा नहीं किया जाता। बसभर यह कोशिश की जाती है कि वह फिर हिन्दू हो जाय। इन हालात में मैं एक मुसलमान का हिन्दू होना कैसे मान सकता हूं और वह भी खुद अपनी लड़की का। पहले तो चाहे मुसलमान औरत हिन्दू मर्द से शादी करे और चाहे मुसलमान मर्द हिन्दू औरत से शादी करे दोनों हालतों में नतीजा एक ही होता था। इस्लाम फैलता था। अब तो लोग हिन्दू भी हो जाते हैं।"

अकरम नवाब साहब की दलील पर मन ही मन हंसता था। उसने समझा कि इस युक्ति में दोष है। उसने इस दोष को बताने के लिये कहा, "अब्बाजान, अगर कुछ मुसलमान हिन्दू हो जाते हैं या कुछ हिन्दू मुसलमान हो जाते हैं तब क्या हो जायगा? अगर इस्लाम में कुछ खूबी हैं तो आपको उसकी चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। उसकी खूबियां उसे फैलायेंगी।"

"मियां, तुम नहीं जानते। आज हिन्दुस्तान में यह खींचातानी चल रही है कि किस मज़हब के लोग अधिक हैं। जिस मज़हब के मानने वाले ज़्यादा होंगे उसी का बोलबाला होगा।"

"बोलबाला का क्या मतलब?"

"मतलब यह कि हकूमत उस मज़हब वालों के हाथ में होगी जिसके मानने वाले ज़्यादा होंगे।"

"तो आप हिन्दुस्तान में मज़हबी हकूमत के ख़्वाब देख रहे हैं?"

"तो मुस्लिम तन्ज़ीम के मायने ही क्या हैं ? देखो कांग्रेस हिन्दू जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की। हिन्दुस्तान में हिन्दुओं की तादाद ज़्यादा है इसीलिये कांग्रेस सात सूबों में वज़ारतें बना सकी है। हम चाहते हैं कि ऐसा न हो सके।"

"मगर कांग्रेस-वज़ारतों में मुसलमान वज़ीर भी तो हैं।"

"यह सिरफ धोखा देने के लिये है। हकीकत में ये लोग मुसलमान नहीं है।"

"क्यो ?"

"मुसलमानों की नुमाइन्दा जमात मुस्लिम लीग है। उससे बाहर मुसलमानों को नहीं जाना चाहिये।"

"चाहे वह लीग मुसलमानों के हकीकी मफाद की परवाह न भी करे।"

"यह कैसे हो सकता है ? मुसलमानों की जमात मुसलमानो की हिमायत करेगी।"

अकरम के लिये यह राजनीति कुछ अर्थ नहीं रखती थी। उसने इस व्यर्थ की बहस में न पड़ते हुए कहा, "तो सलीमा के लिये इस घर में जगह नहीं है ?"

"तब तक नहीं है जब तक कि वह किसी मुसलमान से शादी करने पर तैयार न हो या जब तक वह, जिससे शादी होनी है, मुसलमान बनने के लिये तैयार न हो जाय।"

अकरम निराश अपने कमरे में लौट आया।

[१२]

अगले दिन अकरम विनोद से मिलने उसके घर गया। विनोद ने उसे बहुत आदर-सत्कार से बैठाया और वहां आने का कारण पूछा। अकरम ने सलीमा की चिट्ठी विनोद के सामने रख दी। विनोद ने पढ़कर कहा, "बहुत अच्छी लिखी है।"

"किस ख्याल से इसे आप अच्छी कहते हैं ?"

"अपने भावों को संक्षेप में और यथार्थ शब्दों में लिखने में। मैं समझता हूं कि आप सारी बात जान गये हैं।"

"एक बात मैं आपसे पूछने आया हूं। यह क्या काम है जिसे पूरा करने के लिये बहुत कम समय रह गया है?"

"तो आप नहीं जानते? एक हिन्दुस्तानी युवक-संघ बनाया गया है। उस संघ में केवल यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थी सम्मिलित हैं। आठ-नौ हज़ार के करीब भर्ती हो चुके हैं। हमारे लखनऊ में पाच सौ से ऊपर इसमें शामिल हैं। अभिप्राय यह है कि दस हजार सदस्य बनाये जायेंगे। उन सदस्यों को साहित्य, जो उनके लिये खास लिखा गया है, बाँटा जायगा और गर्मियों की लम्बी छुट्टियों में दस हजार विद्यार्थी देश भर में घूमेंगे और उन बातों का प्रचार करेंगे जो उस साहित्य में उनको बतायी गयी हैं।"

"इस सहित्य में क्या लिखा है?"

"लखनऊ में साहित्य बंट रहा है। आप एक प्रति मुझसे लेकर पढ़ सकते हैं।"

"इस प्रचार से क्या होगा?"

"देश के लोगों को अपनी पराधीन अवस्था का परिचय मिलेगा। उनको ज्ञान होगा कि विदेशी राज्य की नींव किन बातों पर है। उनको यह भी बताया जायगा कि हिन्दू-मुसलमान इकट्ठे कैसे रह सकते हैं। सब से बड़ी बात तो यह है कि लोगों को यह बताया जायगा कि स्वराज्य-प्राप्ति पर हम क्या होंगे और दुनिया में हमारा कितना मान होगा।"

अकरम इस योजना की रूप-रेखा सुन चकित रह गया। उसने पूछा, "इस स्कीम (योजना) पर कितना खर्च होगा और वह कहा से आयेगा?"

"स्कीम में दस हज़ार विद्यार्थी होंगे। पांच-पाच की दो हज़ार मंडलियां बनेंगी। हिन्दुस्तान को दो हज़ार हलकों में बांटा जा रहा है। एक हलके में एक एक मण्डली भ्रमण करेगी। दो महीने तक यहां काम होगा। एक एक विद्यार्थी पर पचास-पचास रुपये के खर्चे का अन्दाज़

लगाया है। इस प्रकार पांच लाख रुपये का खर्चा है। हमें नेता ने विश्वास दिलाया है कि पाच लाख रुपया उनके पास इस कार्य को चलाने के लिये रखा है।"

"ओह। और वह नेता कौन हैं?"

"वही जिनसे सलीमा का लगाव होगया है।"

अकरम नौजवानों के इस प्रयास को देख उत्साह से भर गया था। वह यूरोप से अत्यंत अपमानित होकर लौटा था और अपने देश में देश को स्वतन्त्र करने की पहली बात लोगों में अपनी परिस्थिति से असन्तोष पैदा करने की योजना बनी देख बहुत प्रसन्न हुआ। यह जानकर कि उसकी बहिन सलीमा भी इस स्कीम को चलाने में लगी है, उसे और भी खुशी हुई। मगर वह कौन है जिसके पास लाखो रुपये ऐसे कामों के लिये हैं वह जानना चाहता था। उसने विनोद से कहा, "मैं सलीमा को लखनऊ नहीं बुला सकता। अब्बाजान पसन्द नहीं करते। मगर मैं उससे मिलना चाहता हूं। आपका अब क्या ख़्याल है?"

"मैं आपको पता बता दूंगा।"

[१३]

सलीमा अभी डाक्टर घोष के घर रहती थी। डाक्टर और उनकी धर्म-पत्नी सलीमा से ऐसा व्यवहार करते थे कि उसे यह कभी अनुभव नहीं हुआ कि वह किसी पराये घर में रहती है। डाक्टर घोष की दो लड़कियां थीं, एक का नाम मलिन्द था और दूसरी का कल्याणी। दोनों पथिक की योजना में संलग्न थीं। कल्याणी तो कॉलेज की बी० ए० की श्रेणी में पढ़ती थी और मलिन्द एम० ए० पास कर चुकी थी। कल्याणी कलकत्ते में हिन्दुस्तानी युवक-संघ के सदस्य बनाने में लगी थी, और मलिन्द दफ्तर का काम संभाले हुई थी। पथिक को अब संघ के संगठन-कार्य के लिये इधर-उधर जाना पड़ता था और पीछे चिट्ठी-पत्री का काम मलिन्द ने संभाल लिया था। ज्यों-ज्यों सदस्यों की संख्या बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों चिट्ठी-पत्री का काम बढ़ता जाता था। अब सलीमा के आजाने

से मलिन्द उसे भी साथ ले आती थी और दोनों मिलकर काम भली भांति कर सकती थीं।

पथिक सलीमा को काम में व्यस्त देख बहुत प्रसन्न था। वह सलीमा के विषय में अभी निर्णय नहीं कर सका था। उसने सुरेश को लिखा था कि एक इस प्रकार की लड़की है जिसके मैडिकल कॉलेज में पढ़ाने का प्रबन्ध करना है। वह क्या प्रबन्ध कर सकता है। सुरेश की चिट्ठी आने पर वह अब सन्तोष से सलीमा के सम्मुख बात करने के लिये तैयार हो एक दिन डाक्टर घोष के मकान पर पहुंचा।

सलीमा ने पथिक से पहले दिन की कलकत्ते में भेंट के पश्चात् अपने विषय में कभी बातचीत नहीं की थी और अब तो, जब से मलिन्द के साथ वह हिन्दुस्तानी युवक-संघ का काम करने लगी थी, उसे अपने विषय में सोचने का अवसर ही नहीं था। इसके अतिरिक्त पथिक प्रायः कलकत्ते से बाहर रहता था। इस बीच में अकरम की चिट्ठी आई और उसने चिट्ठी का उत्तर भी दे दिया। वह आशा लगाये हुए थी कि अकरम उसे वापिस लखनऊ बुलायेगा और वह, कम से कम अपनी सफाई देने के लिये, कुछ दिन के लिये जायगी। परन्तु न तो अकरम की चिट्ठी आई और न ही अकरम आया।

पथिक डाक्टर घोष के घर में घर का आदमी ही समझा जाता था। वह घर के लोगो से बिल्कुल हिलमिल गया था। मलिन्द की माता को वह मां जी कहता था। उस दिन सायंकाल जब वह आया तो मलिन्द की माता को बैठक में देख बोला, "मां जी, आज खाना यहीं खाऊंगा। पंजाब में गेहूँ की रोटियां खाते खाते जी ऊब गया है। दाल-भात खाने के लिये मन चाहता है।"

"मांगी भी तो बहुत बढ़िया चीज़, दाल-भात," मलिन्द ने जो मा के पास बैठी थी कह दिया। मां ने कह दिया, "जाओ देखो तो खाने में कितनी देरी है? ज़रा जल्दी तैयार करा दो।" मलिन्द चली गयी और पथिक मलिन्द वाली जगह पर बैठ गया। मलिन्द की मां

डाक्टर साहब के एक पुराने कोट की मरम्मत कर रही थी। सुई कोट में टाककर पथिक के मुख पर देखते हुए बोली, "सलीमा के विषय में तुमने क्या निश्चय किया है?"

"क्यों, क्या वह कुछ कहती थी?"

"नहीं, बेटा, वह तो बिल्कुल बकरी की भांति जिधर लगाओ लगी रहती है। उसने एक दिन भी इस विषय पर बात नहीं की। मगर मैं तो समझती हूं। कम से कम तुम दोनों के परस्पर सम्बन्ध का निश्चय हो जाना चाहिये।"

"मा जी, आप इतनी अधीर क्यों हैं? इसकी जल्दी ही क्या है? आजकल काम इतना अधिक है कि हमारे पास इस झगडे को सुलझाने का समय नहीं है। इस पर भी मैं एक प्रस्ताव लेकर आया हूँ। वह प्रस्ताव आपके सम्मुख ही मैं उसको बताना चाहता हूँ। आप उसे यहीं बुला लीजिये न।"

सलीमा को माता जी कल्याणी के कमरे में बुला लाईं। सलीमा, पथिक और माता जी को विशेष रूप से गम्भीर देख कुछ डर गयी। वह अनुमान लगाने लगी थी कि लखनऊ से कोई पत्र आया है, अथवा उसके पिता जी ने कोई और झगड़ा खड़ा कर दिया है। वह अपने भाग्य-चक्र का फल सुनने के लिये चुपचाप आ बैठी। पथिक ने कहना आरम्भ किया, "मेरा विचार था कि तुम्हारी डाक्टरी की शिक्षा के जारी रखने का प्रबन्ध कर दूं। इस विचार से मैंने अपने एक मित्र को लिखा था। उन्होंने तुम्हारे लिये रहने का प्रबन्ध और एक सौ रुपया महीना खर्चे के लिये देने का प्रबन्ध कर दिया है।"

सलीमा ने उत्साहहीनता दिखाते हुए कहा, "डाक्टरी पढ़ने से क्या होगा?"

"यह प्रश्न तो उस समय किया जाता है जब पढ़ाई आरम्भ की जाय। अब जब दो वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तो इसके कुछ अर्थ नहीं।"

"मैं अब डाक्टरी पढ़ना नहीं चाहती।"

"क्यों ?"

"मैं अब यहा से जाना नहीं चाहती।"

"क्यों ?"

"मैं नहीं जानती। हां, अगर माता जी को मेरे यहां रहने में असुविधा है तो मैं एक-दो दिन में कहीं और ठहरने का प्रबन्ध कर लूंगी।"

इस पर मलिन्द की मा ने कहा, "यह तो मैंने नहीं कहा। हमें तो तुम्हारे यहां रहने से बहुत खुशी है। कल्याणी की बात तो तुम देख ही रही हो। वह तो तुम्हारे बिना खाना भी नहीं खा सकती।"

"तो फिर यह सब झगड़ा क्या है ?"

इस पर पथिक ने कहा, "पढ़ना अथवा न पढ़ना तो तुम्हारी रुचि पर है। तुम पहले पढ़ती थी इस कारण मैंने समझा इसका प्रबन्ध होना ही चाहिये। सो प्रबन्ध हो गया है।"

सलीमा ने वैसे ही शांति से कहा, "धन्यवाद। मुझे लखनऊ में जाना नहीं है। पढ़ाई में मेरी रुचि नहीं रही।"

"तो तुम क्या चाहती हो ?"

"मैं क्या चाहती हूँ ? कुछ नहीं। यहा ही कहीं इधर-उधर समीप रहना, जिससे आपको देख लिया करूं और यदि अवकाश हो तो उस प्रश्न का उत्तर भी, जिसको आपने मेरे कलकत्ते में आने के पहले दिन देने का वचन दिया था, पा लूं।"

"ओह !"

"आपने कहा था, 'जो तुम कहती हो वह क्या मैं समझता नहीं हूँ ? परन्तु क्या तुम उसका उत्तर पाये बिना चली जाओगी ?' मैं उसी उत्तर की प्रतीक्षा में यहा ठहरी हूँ। मेरा भविष्य का प्रोग्राम उसी उत्तर पर निर्भर है।"

"तो तुम्हें अभी उस बात का उत्तर नहीं मिला ?"

"तो क्या आपने उत्तर दे दिया है ?"

"मैं अपने मन में तो यही समझता हूँ कि उत्तर दे चुका हूँ।"

सलीमा विस्मय में पड़ गयी। वह इस बात का अर्थ लगाने में अपने आपको असमर्थ पाती थी। पथिक के इस कहने को, वह हां समझे या न, वह निश्चय नहीं कर सकी थी। कुछ काल तक वह सोचती रही। जब कुछ नहीं जान सकी तो उसने पथिक के मुख से अनुमान लगाने के लिये आंखे उठा उसको देखना शुरू कर दिया। पथिक इतना कह सलीमा के मुख पर अपने उत्तर का प्रभाव देख रहा था। जब दोनों की आखें मिलीं तो दोनो एकदम हंस पड़े। मलिन्द की मा भी हंसने लगी।

इस समय मलिन्द रसोईघर से और कल्याणी अपने कमरे से हंसी का कहकहा सुन चली आईं और प्रश्न भरी दृष्टि से तीनों को देखने लगीं। मलिन्द ने पूछा, "मां क्या है?"

मां ने कहा, "एक पहेली है। बेटी सलीमा कहती है कि उसके एक प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। बेटा पथिक कहता है कि उसने दे दिया है। दोनों हंस पड़े हैं। प्रतीत होता है कि सलीमा को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया है और पथिक को उत्तर देने से छुट्टी हो गयी है। इस कारण दोनों हंस रहे हैं। क्यों सलीमा ठीक है न?"

सलीमा ने कहा, "मुझे तो मेरे प्रश्न का अभी उत्तर नहीं मिला। मैं तो इस कारण हंसी थी कि यह ठग सब को ठग लेते हैं परन्तु मुझे नहीं ठग सके।"

"मा जी, मैंने तो उत्तर दे दिया था, उसी समय। यह नहीं समझी। कितनी भोली है यह। इसी से हंस पड़ा था।"

मलिन्द ने कहा, "पहले, प्रश्न का पता चले तो पश्चात् उत्तर का भी सोचा जायगा।"

"उत्तर देने वाले को प्रश्न का पता नहीं तो उत्तर कैसे दे दिया है?" मलिन्द की मां ने कहा।

कल्याणी ने कहा, "मैं जान गयी हूँ।"

पथिक ने पूछा, "क्या?"

"प्रश्न भी और उत्तर भी।"

"ओह! तब तो दोनों को छुट्टी हुई। न प्रश्नकर्ता को प्रश्न करने की जरूरत रही और न उत्तरदाता को उत्तर देने की। योग्य ज्योतिषी मिल गया है और वह सब कुछ जान गया है।"

"हां, मगर बिना फीस लिये बताऊंगी नहीं।" कल्याणी ने अब सलीमा के पास बैठ उसके गले में बाँह डालकर कहा, "दीदी, खिलाओ न मिठाई।"

पथिक ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "मिठाई! कैसे जाना कि मेरा उत्तर मिठाई खाने योग्य है?"

"और कैसे जाना कि मेरा प्रश्न मिठाई वाले उत्तर की जिज्ञासा रखता है?" सलीमा ने शर्म से लाल होते हुए कहा।

"देखो दादा, दो और दो चार होते हैं या नहीं।"

"दो और दो चार! हा, लोग कहते तो हैं।"

"बस ऐसे ही जहाँ भाई होगा वहा भाभी होगी और मिठाई खाई जायेगी।"

सब हंसने लगे।

"मगर कल्याणी बहिन, दो और दो चार होते हैं ठीक, परन्तु ये दो और दो हैं, इसकी तो जाच होनी चाहिये न। कहीं जिसे तुम दो समझ रही हो वह एक ही न रह जाय और जोड़ चार की बजाय तीन ही रहे।"

अब मलिन्द ने कहा, "इससे तो और भी मिठाई मिलेगी। अगर जोड़ तीन हो तो मिठाई की मात्रा बढ़ जानी चाहिये।"

इस पर तो हंसी और वेग से होने लगी।

मलिन्द की मां ने कुछ डाटकर कहा, "यह बेहूदापन बस करो। हाँ तो सलीमा तुम उत्तर से सन्तुष्ट हो?"

सलीमा के बोलने से पहले पथिक बोल पड़ा, "नहीं, कुछ भ्रम हो रहा है माँ जी। इन दोनों बहिनों ने मिलकर सब सत्यानाश कर

दिया है। मुझे अपना उत्तर स्पष्ट भाषा में बताना होगा।"

"यही तो मैं चाहती हूं," सलीमा ने आँखें नीची किये हुए कहा। वह अब बुरा से बुरा उत्तर सुनने के लिये तैयार थी।

"देखो दादा," कल्याणी ने बात बीच में ही टोककर कहा, "अगर उत्तर के परिणाम में मिठाई न मिली तो आयु भर क्षमा नहीं करूंगी।"

सलीमा ने कल्याणी के चुटकी काटकर कहा, "चुप रहो बहिन, भला धमकी से भी कोई बात हो सकती है?"

"उई," कल्याणी चुटकी काटने पर सलीमा के पास से उठ खड़ी हुई। वह अपनी जांघ पर, जहां सलीमा ने चुटकी काटी थी, हाथ से मलती हुई बोली, "धमकी से तो ब्रिटिश साम्राज्य चलता है, क्या भैया-भाभी की नहीं चलेगी?"

पथिक ने उठकर पीटने का भाव दिखाते हुए कहा, "हट चुड़ैल, जैसे ब्रिटिश प्राइम-मिनिस्टर बनकर आई है।"

कल्याणी कमरे से भाग गयी। पथिक अपने स्थान पर बैठ गया। मलिन्द जो अभी तक खड़ी थी सलीमा के पास कल्याणी वाले स्थान पर जा बैठी। पथिक ने कुछ देर में अपने विचारों को एकत्रित कर कहना शुरू किया, "मो जी, बात यह है कि सलीमा एक नवाब की लड़की है। इसके बाप की लाखों की आय है। बिना तिनका तोड़े यह सुख-चैन से जीवन व्यतीत कर सकती है। यह पढ़ी-लिखी, सुशील, चरित्रवान और सुन्दर है। कोई धनी आदमी इसके लिये लाखों रुपये न्योछावर कर सकता है। और मैं! मुझे अपने माता-पिता का नाम स्मरण नहीं। कुछ ही काल पूर्व मैं पागल था। देवा के लोग इस बात के साक्षी हैं। उस पागलपन से पूर्व मैं क्या था कोई नहीं जानता। मेरे पास जेब में एक फूटी कौड़ी भी नहीं और मेरा काम है राज्य में विप्लव करना। किसी भी दिन पकड़कर फांसी के तख्ते पर लटकाया जा सकता हूं। जेल भेज दिया जाना तो एक बहुत ही साधारण सी बात है। मैं कैसे सलीमा के प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दे सकता हूँ?"

पथिक कुछ देर ठहर गया। सब चुपचाप इस आशा में थे कि उसे अभी कुछ और कहना है। पथिक ने लम्बा सास खींचकर कहा, "एक आवारा, जिसके माँ-बाप का पता नहीं, जिसकी न जायदाद है न कोई रिश्तेदार, जिसकी जान हमेशा खतरे में है वह सलीमा जैसी लड़की से शादी कर अन्याय का भागी नहीं बन सकता। और फिर मैं कट्टर हिन्दू हूँ। वेद, उपनिषद, गीता की फिलॉसफी को सत्य मानता हूँ। हिन्दुस्तान क्या, जगत का उद्धार इसी संस्कृति मे होना मानता हूं। मैं कैसे मुसलमान परिवार के वातावरण में पली लड़की को ज़बरदस्ती अपने जगत में घसीटकर ला सकता हू ?"

इसके आगे पथिक नहीं बोल सका। उसका गला भर्रा उठा। वह उठकर वहा से भाग जाना चाहता था। उसने उठकर चुपचाप नमस्ते करने के लिये हाथ जोड़ दिये। परन्तु सलीमा उठकर मार्ग मे खड़ी हो गयी। उसका सारा शरीर थर-थर काप रहा था। मलिन्द और उसकी मा अवाक-मुख इस जीवन-नाटक के एक अंक को देख रही थी।

सलीमा ने कापती हुई आवाज़ में कहा, "ज़रा बैठ जाइये। बात अधूरी रह जानी ठीक नहीं। आपने मेरा भारी अपमान किया है। जिसे आप मेरी प्रशंसा मानकर कह रहे हैं, मैं चाहती हूँ कि आपको पता लग जाय कि मैं उसे अपमान समझती हूँ। आप पत्थर की मूर्तियां पूजते-पूजते हृदय से पत्थर हो गये हैं। इसीलिये एक रक्त-मास के बने हृदय की कोमलता का अनुमान नहीं लगा सकते। मैंने आपसे खाने-पहनने अथवा बिना तिनका तोड़े सुख-चैन का जीवन व्यतीत कर सकने का प्रश्न कब किया था ? नवाबी ढंग और ठाट-बाट आपने मुझ में कब देखा है ? आपके हिन्दुत्व को मैं नहीं समझती। इस पर भी मैंने तो आशा उस दिन बाधी थी जब मैंने पूछा था कि हिन्दू-मुसलमान परस्पर विवाह करें तो मज़हब किसे बदलना चाहिये और आपने बताया था कि किसी को भी नहीं। तो अब क्या हो गया है ? मेरा प्रश्न यह नहीं था जिसका आपने उत्तर दिया है। मेरा प्रश्न था·····"

इस समय वह चुप कर गयी। एक-एक शब्द मुख से कहना कठिन हो रहा था। कुछ ठहरकर वह फिर कहने लगी, "कुछ नहीं, अब इसे जाने दो। मैं आपको एक बात कहे देती हूँ। मैं आपके पास रहने के लिये आई थी, बिना किसी प्रकार की शर्त किये। मै आपके पास रहना चाहती हूँ अब एक शर्त के साथ। आप मुझे नहीं देख सकियेगा। आप पर एक नवाब की या एक मुसलमान परिवार के वातावरण में पली लड़की की परछाईं नहीं पड़ेगी। कभी जब कुदरत को मंजूर हुआ·····" सलीमा और आगे नहीं कह सकी। वह वहा से भागकर बाहर निकल गयी। मलिन्द उसके पीछे बाहर चली गयी।

मलिन्द की मा ने कहा, "बेटा, यह क्या किया है तुमने?"

"मा जी, क्या मै दोषी हूँ?"

"तुम बस लैक्चर देना ही जानते हो और कुछ नही।"

[१४]

लखनऊ में 'अंजुमन-ए-तन्ज़ीम-इस्लाम' का जलसा हो रहा था। नवाब मुर्तज़ाअली साहब जल्से के स्वागताध्यक्ष थे। देश भर से प्रतिनिधि इसमें आये हुए थे। अंजुमन की कार्यकारिणी के बहुत से सदस्य आपकी ही कोठी में ठहरे हुए थे। कोठी में खूब चहल-पहल थी। नौकर और मालिकों के आने-जाने का ताता लगा था।

नियमित रूप से कार्यकारिणी के अधिवेशन में अभी दो दिन थे। परन्तु जो लोग आगये थे वे सामयिक बातों पर चर्चा कर रहे थे। अंजुमन के जल्से में क्या-क्या प्रस्ताव होने चाहिये, भविष्य में मुसलमानों का अपना क्या प्रोग्राम होना चाहिये, मुल्क में किस प्रकार वे अपना प्रभाव रख सकते हैं, युरोप में जंग छिड़ जायेगा या नहीं और जंग छिड़ जाने पर हिन्दुस्तान की क्या अवस्था होगी, इस अवस्था में मुसलमानों का क्या रवैया होना चाहिये, ये सब विषय थे जिन पर दिन-रात बातचीत होती रहती थी।

नवाब साहब मेहमानों की आवभगत में लगे थे। इस कारण वार्तालाप

में कुछ विशेष भाग नहीं ले सकते थे। फिर भी आते-जाते थोड़ी बहुत टीका-टिप्पणी करते रहते थे। एक साहब खान बहादुर थे। टर्की से इंगलैण्ड तक सब मुल्क घूम चुके थे। बड़े बड़े लोगों से सम्बन्ध था और इस अंजुमन के कर्ताधर्ता थे। वह कह रहे थे, "इस वक्त हमारी अंजुमन की हालत ऐसी होती जाती है कि हम अपने आपको हिन्दुस्तान के मुसलमानों का नुमाइन्दा कहें तो कोई मुग़ालता न होगा। सरकार मुसलमानों में हम ही लोगों से बातचीत करती है। काग्रेस वाले हमी से समझौता करने आते हैं। अब हम मनमानी बातें मनवा सकते हैं।"

अकरम कुछ उदासीन था। वह इन बातों में दिलचस्पी नहीं रखता था। इन लोगों की मानसिक अवस्था जानने के लिये कभी कभी इनमें बैठता था। आज वह अपने कमरे से नीचे आया तो लोगों को बहुत ध्यान से खान बहादुर की बाते सुनता देख वह भी समीप आ खड़ा हुआ। अकरम इन बातों को नीरस पा वहा से जाने ही वाला था कि एक मिस्टर तर्की बोल उठे, "मिस्टर अकरम, आइये, बैठिये न।"

अकरम रुक गया और शुक्रिया अदा कर बोला, "उम्मीद है आप मुझे माफ़ करेंगे।"

इस पर खानबहादुर बोले, "आपको राजनीति में कुछ दिलचस्पी नहीं है शायद।"

अकरम जवाब देने पर मज़बूर होगया। उसने कहा, "खानबहादुर साहब, है तो, मगर मेरी दिलचस्पी आपसे कुछ दूसरी किस्म की है।"

"ओह! तो राजनीति और राजनीति में कुछ फ़रक है?"

"हां साहब, आपका पौलिटिक्स गुलामी को लम्बा करने वाला है और मैं गुलामी कम करने वाले पौलिटिक्स में यक़ीन रखता हूं।"

"किसकी गुलामी?"

"हिन्दुस्तान की।"

"हिन्दुस्तान कोई एक मुल्क नहीं है। यह बर्रे-आज़म है। इसमें कई मुल्क शामिल हैं।"

"मैं तो इसको नहीं मानता। हिन्दुस्तान में रहता हुआ और आंखें रखता हुआ आदमी आपके विचार को नहीं मान सकता। उसे तो हिन्दुस्तान के लोगो में समानता दिखाई देती है। एक काश्मीरी ब्राह्मण और एक मद्रासी ब्राह्मण के विवाह-शादी की रस्मों को और उनके विचार और विश्वास को आप देखें तो आप समझ जायेंगे कि हिन्दुस्तान में रहने वाले एक ही सूत्र में बंधे हैं या नहीं। अंग्रेजी एजेन्टों ने आपको बहका दिया है।"

"अंग्रेज़ी एजेन्ट! कहां हैं वे?"

"स्कूलों और कॉलेजों के अंग्रेज़ प्रोफैसर, अंग्रेज़ी तारीख़ लिखने वाले और अंग्रेज़ अख़बारनवीस, जो हिन्दुस्तान की बाबत कुछ न जानते हुए भी कहते हैं कि बहुत कुछ जानते हैं। ये लोग ज़बानों में फरक देख समझने लगते हैं कि लोगों में फरक है। इन ज़बानों के फरक के नीचे वही उपनिषदों और शास्त्रों की फिलॉसफी, वही राम और कृष्ण पर भक्ति और वही वेद-मन्त्रों से रस्मों का अदा होना, गौ-ब्राह्मण के लिये मान इत्यादि हैं। ये चीज़ें वे लोग न तो समझने की कोशिश करते हैं और न ही वे समझ सकते हैं। उनका इन बातों की ओर ध्यान न देना भी किसी मतलब से है। वे तो चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी अपने को एक दूसरे से अलहदा-अलहदा समझें तो वे हिन्दुस्तान के छोटे छोटे लुकमे कर निगल सकें। सारा हिन्दुस्तान आसानी से हज़म नहीं हो सकता।"

"हज़रत, हज़म हो सकने से आपका क्या मतलब है?"

"किसी ज़माने में हिन्दुस्तान उन्नत अवस्था पर था। अपने बुरे कामों से यह देश विदेशियों के आधीन होगया। इस पर भी हिन्दुस्तानी अपनी पुरानी शानो-शौकत को मान की नज़र से देखते हैं। हर वक्त हर बशर को फिर अपनी पुरानी इज्ज़त और रसूख पाने की लालसा लगी रहती है। यह किसी कौम के न हज़म हो जाने के निशानात हैं। विदेशी कौम की हकूमत का प्रभाव हमेशा यह होता है कि वहां के लोग अपने बुज़ुर्गों को बेवकूफ, कमअकल, चरित्रहीन, जङ्गली और

अनपढ़ समझने लगते हैं और उनके मुकाबिले में अपने शासकों के साहित्य, चालचलन, और तोरोतरीके को काबिले अमल। अगर यह बात मुकम्मिल तौर पर हो जाय तो एक कौम हज़म होगयी समझनी चाहिये। हिन्दुस्तानी सुसाइटी की, बावजूद सियासी, आर्थिक, तालीमी और मज़हबी हमलों के भी, पूरी तौर पर अभी विजय नहीं हुई, इसलिये दूसरा तरीका अमल में लाया जायगा। वह यह है कि हिन्दुस्तान के टुकड़े टुकड़े किये जायें और फिर इनको बारी बारी से हज़म किया जाय।

"मसलन अगर एक टुकड़ा दक्खिन कर दिया जाय तो इसे हिन्दुस्तान से अलहदा करने से यहा के लड़के-लड़कियों को हिन्दुस्तान का इतिहास पढ़ाने की जरूरत नहीं रहेगी। उनके सामाजिक जीवन में से राम, कृष्ण, गीता, शास्त्र, उपनिषद, या अकबर और बाबर के कारनामे या प्रताप और शिवा जी की देश-भक्ति निकल जायेगी। ये सब बातें उनके लिये एक विदेशी कारनामें हो जायेंगे और उनका साहित्य, इतिहास और मज़हब ग़रीब हो जायेगा। तब वे लोग आसाना से हज़म किये जा सकेंगे।"

अकरम अभी अभी हिन्दुस्तानी युवक-संघ के साहित्य में से ये बातें पढ़ रहा था। यह साहित्य उसे विनोद से मिला था और इससे वह प्रभावित हुआ था, परन्तु खान बहादुर और दूसरे मजलिसे-तन्जीम-इस्लाम के मेम्बरों पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। खान बहादुर बोले, "यह तो सब बात तुमने हिन्दू नुक्ता-निगाह से कही है। हम मुसलमानों को इससे क्या फायदा होगा? हम तो हिन्दुओं से एक अलहदा ज़मात हैं।"

अकरम ने फिर युवक-संघ की किताब में से पढ़ी बात कह दी, "ठीक है। हम मज़हबी तौर पर हिन्दुओं से एक अलहदा जमात हैं मगर सियासी विचार से नहीं। राम, कृष्ण, सीता, सावित्री, उपनिषदों और गीता के लिखने वाले हमारे भी बुजुर्ग थे। उनके कमाल के ख्यालात और बारीक सूझ पर हम भी उतना ही फ़ख्र कर सकते हैं जितना कि हिन्दू। मज़हबी सुधार के यह मायने कहां हैं कि इन्सानी खूबियों में जो कुछ हमारे बुजुर्गों की मालूमात (अविष्कार) हैं उनको भी छोड़ बैठें।

हम माने चाहे न माने, मगर उन बुजुर्गों का, जिन्होंने उस अंधेरे जमाने में जब खुदा के रसूल हज़रत सुलाउल इस्लाम का आना नहीं हुआ था तब भी जिन्दगी के वे उसूल मालूम किये थे जो कमाल की लियाकत और दूरबीनी का सबूत हैं, क्या हमें फख्र नहीं करना चाहिये ?"

"तुम तो किसी हिन्दू पण्डित की पाठशाला से पढ़कर आये हो। मियां, तुम्हें तो ऑक्सफोर्ड भेजा गया था। यह कैसे हुआ ? मगर साहब एक बात हम बता देना चाहते हैं। वह यह कि मुसलमानी हुकूमत कायम करना हमारा मकसद है। हम तमाम हिन्दुस्तान पर अपनी हुकूमत कायम करना चाहेंगे या नहीं यह न हम अभी बताना चाहते हैं, न बता सकते हैं। कम से कम यह तो हम साफ कह देना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के उन हिस्सों में जहा मुसलमान ज़्यादा तादाद में हैं मुसलमानी हुकूमत होगी।"

"मुसलमानी हुकूमत के तौर-तरीके क्या होंगे ?"

"जैसे किताबे-पाक में बयान किये गये हैं।"

"आपने किताबे-पाक पढ़ी है ?"

"कम से कम समझता जरूर हूँ।"

"अच्छा बताइये आपकी शरीयत के मुताबिक औरतें पर्दे में रहेंगी या जैसे टर्की में अब रहती हैं ?"

खान बहादुर निरुत्तर थे। अकरम ने फिर पूछा, "आप लोग मुझे बतायें कि वह कौनसी बात है जिसे हिन्दुओं के साथ साझी हुकूमत रखने पर आप नहीं कर सकेंगे ?"

"मुस्लिम तहज़ीब की हिमायत हम सहूलियत से नहीं कर सकेंगे।"

"तहज़ीब किसे कहते हैं ?"

"रहन-सहन के तौर-तरीके को।"

"भला बताइये कि आपके रहन-सहन के ढंग और आपके एक हिन्दू पड़ौसी के रहन-सहन के ढंग में क्या फ़रक है ?"

"फ़रक क्यों नहीं ? बहुत फ़रक है। उस बुतपरस्त के तरीकों में और एक खुदा-परस्त के तरीकों में तुम फरक नहीं समझते ?"

"तो मैं और मेरे जैसे लाखों, जो खुदा को ही नहीं मानते, आपके पाकिस्तान में शामिल नहीं हो सकेंगे। और देखिये अस्सी फीसदी से ज़्यादा मुसलमान पीरों और मजारों को पूजते फिरते हैं। उनको तो आप वोट का हक नहीं देंगे। भला पाकिस्तान में मुझ जैसे खुदा के न मानने वालों या आगाखानी जैसे पीर-परस्तों को आप क्या समझेंगे ? हिन्दू या मुसलमान ?"

"मिस्टर अकरम, तुम नही समझते। तुम एक मुसलमान के फ़रजन्द (सुपुत्र) हो। तुम्हें सब मुसलमानी हक-हकूक हासिल होंगे।"

"मगर साहब, हमारा दादा एक हिन्दू था और हम उसकी औलाद होने से एक हिन्दू क्यों नहीं हैं ?"

यथार्थ में इन युक्तियों और उक्तियों की भरमार से खान बहादुर घबरा गये थे। उन्होंने पीछा छुड़ाने के लिये कह दिया, "नहीं साहब, तुम नहीं समझते।"

"अज़ी हज़रत ! खूब समझता हूँ। आप में कोई नवाब है, कोई खान बहादुर, कोई खा साहब और कोई जागीरदार। आप लोग जो कुछ हैं अंग्रेजी सरकार की मेहरबानी से हैं। इसलिये आप सरकार को, जिसने आपको बड़ा बनाया है, हानि पहुँचती नहीं देख सकते। जब जब हिन्दुस्तान के आज़ाद होने के लिये कोई मौका आता है आप लोग घबराकर आज़ादी की तहरीक की मुखालफत करने लगते हैं। यह पाकिस्तान, सच बताइये, इसी घबराहट का नतीजा नहीं है क्या ?"

इस पर खान बहादुर कुछ धीरे से कहने लगे, "मिस्टर अकरम, तुम मेरे दोस्त के साहबजादे होकर भी ऐसी बाते करते हो। देखो मैं तुम्हें राजनीति का एक राज़ (भेद) बताऊं। तुम विलायत में जाकर भी छोटे तबके के लोगों में रहे हो। मैं उन लोगों की संगत में रहा हूँ जो आज सिर्फ इंग्लिस्तान ही नहीं बल्कि तमाम सल्तनत पर हुकूमत करते

हैं। जिनके इशारों पर इंग्लिस्तान के शाह भी गद्दी पर से उतारे जा सकते हैं। जिनकी उंगलियों पर दुनिया भर की कौमें नाचती फिरती हैं। मैं उनकी बात बताता हूं। वे लोग भी अपने मतलब के लिये ही इतनी बड़ी सल्तनत चला रहे हैं। आम लोगों के लाभ, तहज़ीब और कलचर (सभ्यता और संस्कृति) की बातें, इन्सानियत (मनुष्यता) का ढोंग, सब आम लोगों को धोखा देने के लिये है। असली बात तो हुकूमत चलाने वालों की ज़ाती गर्ज़ है। अगर हिन्दुओं के साथ हम शामिल रहते हैं तो वे लोग तादाद, लियाक़त, काबलीयत और दूरन्देशी में हम से आगे बढ़े हुए होने से हमेशा हम लोगों को दबाये रखेंगे। ऐसे स्वराज्य से हम लोगों को क्या लाभ? मुसलमानों में हम लायक हैं। अगर मुसलमानों को रियायतें मिलेंगी तो, हकीकत में, हम लोगों को फायदा होगा।"

इस बात का भाव पूर्ण करते हुए अकरम ने कहा, "और आम मुसलमान तो ज्यों के त्यों ही रहेंगे।"

"नहीं, उनको नमाज़ पढ़ने, रोज़ा रखने, हज करने, मसजिदें बनवाने, हिन्दुओं के बाजे बन्द करने, मन्दिर तोड़ने और सैंकड़ों और ऐसी ही बातें करने की सहूलियत मिल जायेगी। और वे लोग चाहते भी तो यही हैं। देखो, हम चाहते हैं ताकत, हकूमत, ऐशो-आराम के समान और सब किस्म की आज़ादी और आम मुसलमान चाहते हैं मज़हबी जनून (पागलपन), काफ़िरों को तह तेग़ करना, उनकी बीवियों और लड़कियों से शादी करना। ये दोनों बातें हिन्दुओं के साथ रह कर नहीं हो सकतीं। इसके लिये पाकिस्तान का बनना लाज़मी है।"

अकरम इस विकृत मानसिक अवस्था को देख चकरा गया। वह तो यह समझता था कि ये लोग, हज़ारों मीलों का सफर तय कर, अपने काम-धन्धे छोड़कर, आम ख़लकत (प्रजा) के लाभ के लिये एकत्रित हो रहे हैं। उसका विचार था कि ये लोग मनुष्यों के हित-चिन्तन में पागल हुए, शुद्ध हृदय से त्याग कर रहे हैं। अब इनको स्वार्थपरता की

नंगी मूर्ति देख वह चकित रह गया। उसकी हैरानी इतनी थी कि उसके मुख से कोई बात नहीं निकली। उसके चुप रहने को उसका निरुत्तर होना समझ एक साहब बोल उठे, "बरखुरदार, तुम अभी कुछ नहीं जानते। यह है राजनीति। इसमें ऐसा ही होता है। यह झगड़ा अगरचे दो कौमों के नाम पर हो रहा है, पर हकीकत में यह झगड़ा हिन्दू धनिकों और मुसलमान धनिकों का है। भला सारी की सारी कौम न तो सरकारी नौकरिया कर सकती है, न जागीरदारी ही।"

आखिर में अकरम ने एक लम्बी सास खींचकर कहा, "तो हिन्दू-मुसलमान चन्द लोगों के लाभ के लिये लड़ मरेंगे?'

"लड़ मरेंगे तो ये अपने पागलपन की वजह से। हा, देखना यह है कि इस झगड़े से लाभ हिन्दुओं के बड़े लोगों को होता है या मुसलमानों के बड़ों को।"

मुसलमानों की इस प्रमुख सभा के प्रमुख नेताओं के विचार सुन अकरम का सिर चकराने लगा। वह इन लोगों को सुधार से दूर समझ वहा से उठकर बाहर की तरफ चल पड़ा।

उसके मन को भारी चोट लगी। वह हिन्दुस्तानियो की दुर्गति यूरोप के देशों में देख आया था और अब करोड़ों हिन्दुस्तानियो के लीडरों को केवल अपने लाभ के लिये हिन्दुस्तान के हिस्से करते देख लज्जा से सिर झुकाये कोठी से बाहर निकल किसी एकान्त स्थान की ओर चला जाना चाहता था।

वह अभी कोठी के बाहर चबूतरे पर ही खड़ा था कि पीछे से नवाब साहब ने पुकारा, "अकरम! अकरम! जरा इधर आना।"

अकरम ने घूमकर देखा। नवाब साहब हाथ मे एक समाचार-पत्र लिये कोठी के भीतर, बड़े हॉल में जहा दूसरे मेहमान बैठे हुए थे, जा रहे थे। अकरम को बुलाकर कहने लगे, "जरा इधर आना, एक काम है।"

अकरम लौट पड़ा और नवाब साहब के पीछे-पीछे फिर कोठी के

हॉल में जा पहुँचा। नवाब साहब एक कुर्सी के बाजू पर बैठकर बोले, "अकरम, एक रिज़ोल्यूशन का ड्राफ्ट बना देना ज़रा।"

अकरम नवाब साहब का खड़े-खड़े मुख देख रहा था। नवाब साहब ने उसे एक कुर्सी जो मेज़ के पास रखी थी दिखाकर कहा, "बैठ जाओ। यह कागज़ लो और यह कलम।"

अकरम ने नवाब साहब का बढ़िया पार्कर पैन पकड़कर कहा, "क्या लिखूं?"

"एक रिज़ोल्यूशन। मैं यह मजलिस की इन्तज़ामिया में पेश करना चाहता हूं।"

"मगर अब्बाजान, किस की बाबत रिज़ोल्यूशन होगा?"

"ओह! ठीक! यह तो बताया ही नहीं।"

सब लोग नवाब साहब के चारों ओर एकत्रित हो गये थे। नवाब साहब ने समाचार-पत्र को खोलकर कहा, "मद्रास के कांग्रेसी प्रीमियर का एक बयान छपा है। पहिले यह सुन लो तो फिर इसके जवाब में रिज़ोल्यूशन होगा। नवाब साहब ने समाचार-पत्र में से पढ़ना आरम्भ कर दिया। लिखा था :—

"हिन्दी सब मुल्क की कौमी ज़बान होगी। इसमें कुछ भी सन्देह की बात नहीं है। इस कारण कि कहीं स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के राज्य-प्रबन्ध में मद्रास प्रान्त के लोगों का हाथ कम न हो जाय, मैं चाहता हूँ कि मद्रास में अधिक और अधिक नव युवक हिन्दी भाषा सीखने में यत्नशील हों। मैंने हिन्दी को स्कूलों में एक आवश्यक विषय रखकर मद्रास प्रांत के युवकों के लिये पूर्ण हिन्दुस्तान के व्यापार और भविष्य की सरकारी नौकरियों के द्वार खोल दिये हैं। मेरी आत्मा जानती है कि मैं हिन्दी के विषय में जो हठ कर रहा हूं वह प्रान्त के भविष्य को अधिक और अधिक उज्ज्वल करने के लिये कर रहा हूँ।"

इतना पढ़कर नवाब साहब ठहर गये। अकरम इस वक्तव्य में कोई आपत्तिजनक बात न देख सब का मुख देख रहा था। मजलिसे-तन्ज़ीम-

इस्लाम के नेता लोग क्रोध से लाल-पीले हो रहे थे। अकरम ने पूछा, "अब्बाजान, क्या लिखा जाय ?"

"बस इसके खिलाफ लिख दो।"

"मुझे तो इसके खिलाफ लिखने को कुछ सूझ ही नहीं रहा।"

"बस लिख दो कि यह बयान मुस्लिम मफाद के खिलाफ है।"

"मुसलमानों के खिलाफ इसमें क्या है ?"

"उफ़ ! तुम तो कुछ समझते ही नहीं। मैं तुम्हारे जितनी अंग्रेजी जानता होता तो लिखकर रख भी देता।"

"अब्बाजान, हिन्दुस्तान की ज़बान तो हिन्दी होगी, क्योंकि कसीर तादाद में लोग हिन्दी पढ़-लिख सकते हैं। मुसलमान जो पंजाब और सिन्ध में रहते हैं उनको कुछ समय के लिये फारसी हरूफ इस्तेमाल करने की इजाज़त दे दी जायगी, मगर इन गैर मुल्की हरूफों को हम हिन्दुस्तान में हमेशा के लिये रहने देंगे, यह शायद मुमकिन नहीं।"

यह बात भी अकरम हिन्दुस्तानी युवक-संघ के साहित्य में से पढ़ कर आया था और उसके मन लगी थी।

"ओह ! तो तुम यह समझते हो कि ये फारसी हरूफ यहां नहीं रह सकेंगे।"

"नहीं। कुछ वक्त के लिये रियायतन इनको फारसी हरूफ पढ़े-लिखे लोगों के लिये रहने दिया जायगा। मगर ये हरूफ विदेशी हैं, कम हिन्दुस्तानी इन्हें पढ़ते हैं, और फिर इनमें कोई विशेष साहित्य हो, ऐसी बात भी नहीं। क्यों इनको गले बांध रखा जाय ? मुग़लों के ज़माने में मुग़ल बादशाह ईरानी होने की वजह से ईरानी हरूफों में लिखत-पढ़त करते थे। अब वे नहीं रहे। न ही उनके फिर हिन्दुस्तान में हुक्मरान होने की उम्मीद है। तो हम क्यों इन हरूफो को गले में बांध रखे ?"

नवाब साहब आजकल अकरम की बातों को पसन्द नहीं करते थे। अब फिर इस तरह सब के सामने अकरम को अपने राजनीतिक विश्वास पर टीका-टिप्पणी करते देख चिढ़ गये। बोले, "छोड़ो कलम, तुम नहीं

लिख सकोगे।"

"हां, अब्बाजान। मुल्क के साथ यह गद्दारी मुझसे नहीं होसकती।"

इतना कह अकरम जल्दी-जल्दी कोठी से बाहर निकल गया।

[१५]

अकरम कोठी से निकला तो सीधा विनोद के घर पहुंचा। विनोद अपनी परीक्षा की तैयारी में लगा था, इस कारण वह घर से बाहर बहुत कम निकलता था और उसे अकरम से मिले एक महीने के लगभग हो चुका था। वह एकाएक अकरम को धड़ाधड़ अपने कमरे में घुसते देख समझा कि सलीमा की कुछ खबर लाया है। इसलिये उसने अकरम से उसके कुर्सी पर बैठते ही पूछा, "क्या कलकत्ते से कोई चिट्ठी आई है?"

"नहीं भैया विनोद, तुमने मुझे पता तो ठीक दिया था? दो चिट्ठियां लिख चुका हूँ। कुछ तो उत्तर आना चाहिये था।"

"पता तो ठीक दिया था। लो देखो," इतना कह उसने अपनी मेज़ के दराज़ से एक पथिक की चिट्ठी निकाल कर दिखाई। उस पर पता छपा था, १०५ रासबिहारी एविन्यू।

"मिस्टर पथिक, यहां लखनऊ में, पन्द्रह-बीस दिन तक आने वाले हैं। तब तक मेरी परीक्षा समाप्त हो जायेगी। फिर हम इस स्कीम को सुचारु रूप से चला सकेंगे।"

"लेकिन सलीमा ने चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? मुझे तो यह आशा न थी।"

"तो कलकत्ते से कोई चिट्ठी नहीं आई? शेखरानन्द पिछले सप्ताह कलकत्ते गया था। उसने सलीमा को वहां देखा था। सलीमा ने बताया तो कुछ नहीं, परन्तु दादा का अनुमान है कि वह चिंतित थी। वह डाक्टर घोष के मकान पर उसकी लड़कियों के साथ रहती है और नित्य संघ के दफ़्तर में काम करने जाती है।"

"मगर मेरी चिट्ठी का उत्तर क्यों नहीं दिया?"

"आपने चिट्ठी स्वयं डाक में जाकर डाली थी?"

"खुद ? क्यों ? खुद तो डालने नहीं गया । रोज़ डाक छोड़ने चपरासी जाता है ।"

"तो बस ठीक है । एक बार सलीमा की एक चिट्ठी भी चपरासी से नवाब साहब ने रोक ली थी ।"

"मगर क्यों ?"

"यह तो मैं नहीं जानता । परन्तु है बात सत्य । सलीमा ने मुझे खुद बताया था ।"

अकरम के मुख पर कुछ घृणा का भाव प्रकट होने लगा । वह कुछ देर तक विचार-मग्न रहा । फिर कहने लगा, "मैं आज ही कलकत्ते के लिये रवाना हो जाऊंगा । मुझसे यह नादिरशाही नहीं सही जा सकती ।"

"मैं तो यह समझ रहा था कि आप कलकत्ते में हैं ।"

"मैंने चला जाना था; लेकिन एक तो सलीमा का जवाब नहीं आया, दूसरे अंजुमन-तन्ज़ीम-इस्लाम का जल्सा है । मैंने समझा था कि उन पर अपने विचारों का प्रभाव डाल सकूँगा ।"

"परन्तु जल्सा तो अभी होगा न ।"

"हां, परसों है । परन्तु मुझे उसमें अरुचि हो गयी है । वे और मैं ज़मीन और आसमान में विचरते हैं ।"

अकरम उलटे पाव कोठी को लौट आया । आते ही उसने नौकर को बुला कलकत्ते जाने की तैयारी कर दी । डाक ले जाने वाले चपरासी को बुलाकर बहुत डाटा तो वह बक गया । उसने कहा, "हज़ूर, बड़े सरकार का हुक्म है कि घर भर की डाक जाने से पहिले उनको दिखाई जाया करे और वे कुछ चिट्ठिया निकाल लिया करते हैं ।"

अकरम ने और कुछ नहीं कहा । जब उसका बिस्तर और सूटकेस मोटर गाड़ी पर रखा जा रहा था तो नवाब साहब ने देख लिया । पूछा, "ड्राइवर, कौन जा रहा है ?"

"हज़ूर, छोटे सरकार स्टेशन पर जा रहे हैं ।"

इतने में अकरम नीचे उतर आया ।

"शाहज़ादा साहब की सवारी किधर जा रही है ?"

"अब्बाजान, सलीमा से मिलने जा रहा हूँ।"

"सलीमा से ? तुमको यह पता होना चाहिये कि उसने हमारी कितनी बदनामी की है। उस बदकार लड़की ने मुझे कहीं का नहीं रखा। मैं नहीं चाहता कि तुम.....।"

अकरम के दिल पर छुरियां चल रही थीं। वह और ज्यादा सुन नहीं सका। लपक कर मोटर में सवार हो गया और बोला, "अब्बाजान, गाड़ी का वक्त हो गया है। खुदा हाफिज़।"

गाड़ी भर्र से स्टार्ट हो निकल गयी और नवाब साहब मुंह देखते रह गये।

मिस्टर तक़ी ज़िला मुरादाबाद के रहने वाले थे। कोठी के बाहर चबूतरे पर खड़े, बाप-बेटे में झगड़ा सुन रहे थे। जब मोटर चली गयी और नवाब साहब सिर झुकाये चबूतरे पर चढ़ रहे थे तो मिस्टर तक़ी उनके पास पहुंच पूछने लगे, "कहां गये हैं मिस्टर अकरम ?"

"भाईजान क्या करूं ? मेरे तो इन भाई-बहिन ने नाक में दम कर रखा है।"

मिस्टर तक़ी ने नवाब साहब के कान में कुछ कहा।

"मगर यह होगा कैसे ? कौन करेगा इसको ?"

"आप कितना रुपया खर्च करने को तैयार हैं ?"

"कितना खर्च करने से काम चल जायेगा ?"

"पाच-छै हज़ार इस काम के लिये और अन्दाज़न बीस-तीस हज़ार मुकदमा लड़ने के लिये। मुकदमा नाकामयाब होने पर उसके घरवालों को पैन्शन।"

"कोई मिला दो न। मैं तो बहुत तंग आगया हूँ।"

"आदमी तो ऐसा दूं कि काम पूरा करके ही छोड़ेगा।"

[१६]

सलीमा पथिक को अपने मन की बात पूरी पूरी नहीं बता सकी थी।

वह समझती थी कि पथिक कहेगा कि वह उससे प्रेम नहीं करता। परन्तु पथिक ने यह नहीं कहा। उसने जो आपत्ति उठाई थी वह प्रेम के आधार पर नहीं थी, प्रत्युत दोनों में परिवार सम्बन्धी तथा मज़हब सम्बन्धी अन्तर के आधार पर थी। सलीमा अपने मन के भावों को मन के उद्‌गारों के कारण प्रकट नहीं कर सकी। वह जब बैठक से निकली तो कल्याणी के कमरे में चली गयी। कल्याणी ने सलीमा के पीतवर्ण मुख को देख समझ लिया कि झगड़ा होगया है। उसने कहा, "दीदी···!"

और आगे पूछने का वह साहस नहीं कर सकी। सलीमा अपने पलंग पर लेट गई और उसने चादर से अपना मुख ढक लिया। इस समय मलिन्द भी आगयी। वे दोनों सलीमा के पलंग पर बैठ गयीं। सलीमा को कल्याणी ने फिर पुकारा, "दीदी!"

सलीमा ने मुख से चादर नहीं उठाई। तब मलिन्द ने गले में बांह डालकर चादर मुख से खींच ली और बोली, "सलीमा बहिन, भैया का मतलब तुम नहीं समझी। उसका मतलब यह नहीं था जो तुम समझी हो।" सलीमा की आखें आंसुओं से भर रही थीं। सलीमा चुप थी और छत की ओर देख रही थी। यथार्थ में उसे बहुत दुख हुआ था और वह अभी भी बोलने में अशक्त थी। मलिन्द ने फिर कहा, "उसने तो केवल यह कहा है कि वह सलीमा को 'हां' कैसे कर सकता है। संसार की दृष्टि में वह तुमसे छोटा है। बहिन यह कोई रोने का विषय थोड़े ही है।"

सलीमा के आसू मलिन्द ने अपने रूमाल से पोंछने शुरू कर दिये। सलीमा भी उठकर बैठ गयी और बोली, "तो तुम क्या समझती हो कि मैं यह समझती नहीं? मुझे तो अफसोस इस बात का हुआ है कि इतनी देर में वह यह भी नहीं समझे कि इन बातों की, जिनका उन्होंने जिकर किया है, मैं कुछ कीमत नहीं समझती। नवाबी का शौक होता तो लखनऊ और औरंगाबाद में बहुत मिल सकती थी। मुसलमानी आपने मेरे में क्या देखी है? ये बाधायें उनके मन में कहां से आईं?"

मलिन्द ने कहा, "यही तो मैं कह रही हूं कि संसार ऐसा कहता

है। इस कारण बहिन यह तुम्हारा काम था कि उनको बता देतीं कि तुम इन बातों को बाधा नहीं समझतीं।"

"तो क्या यह सब मैंने अपने आचरण से सिद्ध नहीं कर दिया है। इसको मैं अपना अपमान समझती हूं। अब तो मैंने एक बात का निर्णय कर लिया है कि मैं उन्हें यह बात अपनी जिन्दगी से स्पष्ट कर दूंगी कि मैं उन्हें छोटा नहीं, अपने से बड़ा समझती हूँ। मैं उन्हें हिन्दू नहीं मानती। मेरे दिमाग़ में तो वह एक हिन्दुस्तानी, एक आला हिन्दुस्तानी ही हैं। उनके देवी-देवता उनके हैं, मुझे उनसे कोई मतलब नहीं है।"

मलिन्द ने सलीमा को गले से लगा लिया और बोली, "हम तुम्हें मुसलमान तो कभी नहीं समझते थे। हम तो तुम्हें एक हिन्दुस्तानी लड़की ही मानते रहे हैं। परन्तु अब जो बात तुमने कही है उससे तो मैं समझी हूँ कि तुम श्रद्धा और भक्ति में एक हिन्दू औरत को भी मात कर गयी हो। प्राचीन काल की हिन्दू स्त्रियों में यदि कोई ख़ूबी की बात रही है, और जो आजकल की यूरोपियन सभ्यता में पली स्त्रियों में नहीं है, तो वह यही है कि वे पग पग पर 'माई डियर,' 'डार्लिंग,' 'माई लव' इत्यादि शाब्दिक प्रेम-प्रलाप न करके अपने क्रियात्मक जीवन से अपने पति को मन का देवता बना रखती थीं। तुम में यह भावना देख कर तुम्हें तो कोई भी कट्टर हिन्दू ही मान लेगा।"

अब तक सलीमा अपने मन में अपना व्यवहार तय कर चुकी थी। उसने कहा, "बहिन, अब तो मुझे आपका घर छोड़ना ही होगा।"

ये शब्द मलिन्द की मां ने सुन लिये थे। वह उसे मनाकर वापिस पथिक के पास ले जाने के लिये आई थी। उसने कहा, "नहीं, नहीं बेटी, ऐसा नहीं हो सकता। भला हमसे तुम क्यों नाराज़ हो? हम यह बात तुम्हारी नहीं मान सकते। देखो डाक्टर साहब के आने का समय हो गया है और मैं चाहती हूं कि तुम उसे चलकर यह कह दो कि जैसा वह है वैसा ही तुम्हें स्वीकार है। बस इतनी ही तो बात है।"

कल्याणी अभी तक चुप थी और वार्तालाप में कोई भाग नहीं ले रही थी। उससे अब नहीं रहा गया। कहने लगी "मां, अन्धे को दीपक दिखाने से क्या होता है ? क्या भैया को अभी तक ज्ञात नहीं हुआ कि उसके ही लिये मा, बाप, भाई सब कुछ छोड़ा गया है ? पुरुष सब अन्यायी होते हैं। उनके लिये जो कुछ भी किया जाय वे कम समझते हैं। देखो सलीमा दीदी, यहां से मत जाना। ज़रूरत है तो भैया यहा आकर क्षमा माग ले। नहीं तो जाये जहा उनकी इच्छा है। मैं तो उनका मुँह भी देखना नहीं चाहती।"

माँ ने त्यौरी चढ़ाकर कल्याणी को देखा। वह उसे डाटने ही वाली थी कि सलीमा ने कहा, "माँ जी, मुझे बाते करने का ढग नहीं आता। मैं उनसे अब कुछ नहीं कहूँगी। मैं अपना जीवन ऐसा बनाना चाहती हूँ कि उनको मेरे इस कहने की आवश्यकता ही न जान पड़े। मै तो समझी थी कि मैं अपने रहन-सहन और व्यवहार से उन तक पहुँच गयी हूँ, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी तपस्या में अभी कमी है। मुझे अभी अपने जीवन को और पाक करना चाहिये। मैं बातों से किसी के मन को जीतना नहीं चाहती। आप उनसे कह दे कि मेरी तपस्या में कुछ त्रुटि रह गयी है। उसे पूरा कर मै फिर चरणों में उपस्थित होऊगी। अभी मुझे क्षमा करे।"

"नहीं बेटी, ऐसा न कह·····।"

"नहीं मां जी, अभी नहीं। मुझे क्षमा करे और यदि आपने उन्हें या मुझे मज़बूर किया तो मैं आत्मघात कर लूंगी।"

मलिन्द की मां लौट गयी। सलीमा ने मलिन्द और कल्याणी से कह दिया, "मैं कल अपने रहने के लिये स्थान ढूँढ लूंगी और आप बहिनों से अपनी सब भूल-चूक के लिये क्षमा मांगती हूँ।"

मलिन्द ने बहुत समझाया कि यह कलकत्ता है। यहां मकान मिलना और फिर अकेले रहना बहुत कठिन है। परन्तु सलीमा बोली, "कोशिश तो करने दो, बहिन। नहीं मिलेगा तो फिर विचार कर लिया जायेगा।"

रात को कल्याणी और सलीमा एक ही कमरे में सोती थीं। आज दोनों एक ही पलंग पर सो रही थीं। कल्याणी समझती थी कि सलीमा को रोकने के स्थान उसे अपने विचारों की पूर्ति में सहायता देनी चाहिये। वह मा और मलिन्द की भांति शिक्षा देने के स्थान सहानुभूति का बर्ताव रखना अधिक उचित समझती थी। बहुत कहने और कई प्रकार के आश्वासन दिलाने के पश्चात सलीमा मान गयी।

उसने कहा,"अच्छी बात है। मैं तुमसे छुपाकर कुछ नहीं करूंगी। तुम मुझे मिल सका करोगी, मगर कुछ शर्तें हैं। वे तुम्हें माननी होंगी। पहली यह कि किसी को यानी माजी, मलिन्द, अपने भैया अथवा पिता जी को भी नहीं बताना होगा कि मैं कहाँ हू, क्या करती हूँ और किस प्रकार अपनी बात उनके मन पर अंकित करने का यत्न कर रही हूं। दूसरी यह कि मुझे मेरी स्कीम में सहायता देनी होगी। और बाकी बात फिर बताऊंगी। बहिन कल्याणी, मैं यह उनको दिखा देना चाहती हूँ कि उनके प्रेम के सम्मुख मेरे लिये और कोई भी वस्तु कुछ भी कीमत नहीं रखती।"

समझौता होगया। अगले दिन कल्याणी की एक सहेली, जो कारपोरेशन के एक स्कूल की मुख्याध्यापिका थी, सलीमा को अपने पास रखने के लिये तैयार हो गयी। सलीमा स्वयं रोती हुई और घर भर को रुलाती हुई डा० घोष के घर से अकेली विदा होगयी। घर भर में से कल्याणी ही एक थी जो गम्भीर विचार में पड़ी सोच रही थी और कुछ नहीं कह रही थी।

[१७]

इस दिन मलिन्द कुछ देरी से संघ के दफ्तर में पहुँची। पथिक उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसके आते ही पूछने लगा, "मलिन्द बहिन, सफलता हुई?"

मलिन्द ने सिर हिलाते हुए कहा,"नहीं मानी। आज चली गयी है।"

"कहा?"

"बता नहीं गयी।"

"मां जी ने और तुमने उसे रोका नहीं?"

"वह नहीं मानी।"

पथिक चुप था। कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। पश्चात् एक लम्बी सांस खैंचकर अपने काम में लग गया।

आज कॉलेज के पश्चात् कल्याणी भी संघ के दफ्तर में आई थी और बहुत देर तक बैठी रही। मलिन्द जब दिन भर का काम समाप्त कर चुकी तो उठी।

मोहन देवा गया हुआ था। संघ के दफ्तर में अकेला पथिक रहता था। मलिन्द और कल्याणी जब वहां से जाने लगीं तो कल्याणी ने कहा, "दादा, यहां बैठे अब क्या करोगे? चलो हमारे साथ। हम झील पर घूमने जा रही हैं।"

मलिन्द ने अचम्भे में कहा, "झील पर?"

"हां! हां! मै मां जी से कह आई हूँ और यह भी कह आई हूँ कि आप खाना वहीं खायेंगे।"

सब झील की ओर चल पडे। रासबिहारी एविन्यू से बालीगंज की ट्राम में बैठ वे वहां से पैदल झील पर जा पहुचे। पथिक अपना प्रोग्राम बता रहा था, "सब से पहले संयुक्त प्रान्त में काम होगा। तमाम प्रान्त को दो सौ हलकों में बाट दिया है। एक-एक हलके में पांच २ विद्यार्थियों की मण्डली काम करेगी। सब मण्डलियों को अपने अपने हलके का भूगोल समझा दिया गया है। उनका दो मास का प्रोग्राम भी निश्चित कर दिया गया है। प्रत्येक बीस हलकों पर एक अधिकारी नियत कर दिया है और तमाम प्रान्त भर का एक नेता। संयुक्त प्रान्त में शेखरानन्द प्रान्त भर का एक नेता नियत किया गया है। पन्द्रह अप्रैल से काम आरम्भ हो जायगा। एकदम एक ही दिन प्रान्त भर में दो सौ स्थानों पर एक ढंग का प्रचार आरम्भ हो जायेगा। काम आरम्भ होने के दिन मैं इलाहाबाद में रहूँगा। जब कार्य चल पड़ेगा तो पंजाब में सगठन पूरा करने के लिये मैं वहां

चला जाऊंगा। वहां मिस पुरी सब प्रबन्ध कर रही है।"

"मोहन भैया कब तक लौटेंगे ?" कल्याणी ने पूछा।

"वह अभी जल्दी यहां नहीं आयेगा। देवा से आकर वह इलाहाबाद में मुझे मिलेगा। संयुक्त प्रांत वालों को रुपया बाटना है। मोहन इलाहाबाद में ही रहेगा। जब मैं पंजाब से लौटूंगा तब वह भी मेरे साथ लौट आयेगा।"

इस समय वे झील के किनारे चलते हुए एक एकान्त के कोने में जा पहुंचे थे। वहां सिरफ दो औरतें और बैठी थीं। एक मुसलमानी थी। उसने पथिक की पार्टी को दूर से आते देख बुर्का नीचे कर लिया था। दोनों एक बैंच पर बैठी हुई थीं। समीप पहुँचने पर कल्याणी ने बिना बुर्केवाली को पहिचान लिया था। उसने मलिन्द से कहा, "वह विभूतिदेवी बैठी हैं।"

मलिन्द, जो पथिक की बातों में लीन थी, विभूति का नाम सुन उधर देखने लगी। "यह साथ कौन है ?" उसने पूछा।

"उनके स्कूल में एक उर्दू टीचर रखी गयी है। शायद वही होगी।"

इस समय वे सब भी उसी बैंच के पास पहुँच गये थे। मलिन्द और कल्याणी पथिक को पीछे छोड़ विभूतिदेवी से मिलने के लिये चली गयीं। कुशल-मङ्गल पूछने के पश्चात् विभूतिदेवी ने पथिक की ओर संकेत कर पूछा, "मलिन्द, यह कौन हैं ?"

"भैया पथिक, वही युवक-संघ के कर्ता-धर्ता।"

"ओह ! तो तुम इनसे परिचय नहीं कराओगी ?"

"हां हां, क्यों नहीं ? आओ अभी करवा दूं।" मलिन्द यह कहती हुई विभूतिदेवी का हाथ पकड़कर पथिक के समीप ले गयी। कल्याणी उस बुर्के वाली औरत के पास बैठकर बातें करने लगी।

"सलीमा बहिन !"

"बहिन शुक्रिया। और दूसरी बात ?"

"हां, वह भी। यह लो।" इतना कह उसने एक चाबी निकाल

कर सलीमा के हाथ में दे दी। सलीमा ने उसे बुर्के के अन्दर छुपा लिया। अब कल्याणी कहने लगी, "यहां से वे लखनऊ और इलाहाबाद जायेंगे। वहां से लाहौर। लाहौर से वापिस इलाहाबाद और फिर कलकत्ते का प्रोग्राम है। तारीखें फिर बताऊँगी।"

इतने में मलिन्द, विभूतिदेवी और पथिक धीरे धीरे चलते हुए बैंच के पास आ पहुँचे। सलीमा और कल्याणी बैंच से उठ खड़ी हुईं। पथिक ने कहा, "बैठी रहो, बैठी रहो।"

विभूतिदेवी ने कहा, "यह हमारे स्कूल में उर्दू टीचर लगी हैं। अभी नई नई कलकत्ते में आई हैं। इन्हें घूमने का बहुत शौक है। मेरे साथ झील देखने चली आई हैं।"

इसके पश्चात पथिक ने विभूतिदेवी को नमस्ते की। बुर्के वाली औरत ने विभूतिदेवी के कान में कुछ कह दिया। विभूतिदेवी ने मुस्कराते हुए पथिक की ओर देखकर कहा, "यह आपको सलाम कहती हैं।"

पथिक ने कह दिया, "तसलीमात।"

पश्चात पथिक की मण्डली चली गयी। विभूतिदेवी और वह बुर्के वाली औरत फिर बैंच पर बैठ गयीं। विभूतिदेवी ने कहा, "सलीमा, चाबी मिली?"

"हां मिल गयी और प्रोग्राम भी कुछ कुछ पता चल गया है। वह यहां से लखनऊ जायेंगे और फिर इलाहाबाद। वहां से लाहौर और वापिस यहां। और हां, मेरा नाम तुमने इनको क्या बताया है?"

"असगरी बेगम।"

"बहुत ठीक, परन्तु घर पर मैं हूंगी कीर्तिदेवी। देखो आज का दिन बहुत मुबारक है। एक तो मैं तुम्हारे घर में आई, दूसरे मुझे एक सौ तीस रुपये की नौकरी मिल गयी, तीसरे यह चाबी और उनके दर्शन। आज किसी भाग्यवान का मुख देखा है।"

विभूतिदेवी ने पूछा, "और हां, नौकरी कैसी है? देखना जिस मार्ग पर तुम चल पड़ी हो उसमें यह जरूरी है कि चरित्र पर दाग न

लगने पाये। नहीं तो कुछ फल न होगा।"

"कैसी बातें करती हो बहिन तुम? वे बहुत भले लोग प्रतीत होते हैं। डाक्टर घोष कभी-कभी उनका ज़िकर किया करते थे। सेठ कुंजबिहारी मालिक 'सेठ एण्ड कम्पनी' कलकत्ते के एक नामी आदमी हैं। मैं जब घर से निकली तो मैं वहीं जाना चाहती थी और आशा रखती थी कि वह मेरी सहायता करेंगे। मैं गयी और अपनी इत्तला कराई। सेठ साहब साठ वर्ष के वृद्ध हैं। मुझे अपने दफ्तर में बुला भेजा। मैं गई तो पूछने लगे, 'मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ?'

"मैंने कहा, 'नौकरी की खोज में हूँ। क्या आप मुझे कोई काम दे सकते हैं?'

'कितना पढ़ी-लिखी हो?'

'वैसे तो इन्टरमीडियेट पास हूँ मगर मेरी अंग्रेज़ी, उर्दू, और हिसाब की लियाकत किसी ग्रेजुएट से कम नहीं है। आप मुझसे कोई ड्राफ्ट बनवाकर देखिये।'

"उन्होंने बर्न एण्ड कम्पनी की फाइल मेरे सामने रख दी और उनकी आखिरी चिट्ठी मुझे देकर कहा, 'इसे पढ़ो और फिर इस चिट्ठी का जवाब बना दो। उस मेज़ पर जा बैठो और इतमीनान से जवाब बनाओ। घबराओ नहीं।'

"मैं फाइल और चिट्ठी लेकर मेज़ पर जा बैठी। सारी फाइल को पढ़कर समझने में एक घण्टा लगा। जब बात मेरी समझ में आगयी तो मैंने चिट्ठी का जवाब लिख दिया।

"चिट्ठी पढ़ सेठ साहब ने टाइपिस्ट को दे दी और टाइप कर लाने को कह दिया। जब चिट्ठी टाइप हो गयी तो उन्होंने कम्पनी के जनरल मैनेजर को बुला भेजा और वह टाइप किया ड्राफ्ट उसको दिखाकर कहने लगे, 'यह लड़की नौकरी की तलाश में आई है। मैंने बिना कुछ कहे फाइल दिखाकर कहा इसका जवाब लिखकर दिखाओ। यह जवाब इसने लिखा है। आप क्या समझते हैं?'

"जनरल मैनेजर ने मेरे उत्तर को पढ़ा और कहा, 'बहुत अच्छा लिखा है। क्या वेतन मांगती है ?'

"मुझे बुलाकर सेठ साहब ने पूछा, 'क्या वेतन लोगी ?'

"मैंने कह दिया, 'जनाब, मांगने से तो कुछ नहीं मिलता। आप जो मुनासिब समझें कह दें। मेरा गुजर न हो सकेगा तो ना कर दूंगी।'

"सेठ साहब ने मैनेजर के मुख पर देखा। मैनेजर ने कह दिया, 'एक सौ तीस आरम्भ में। एक वर्ष के पश्चात् एक सौ पचास, फिर दस रुपये वार्षिक उन्नति।'

"मैंने कह दिया, "मंजूर ! मगर नौकरी छोड़ने पर नोटिस कितने दिन का होगा ?'

"मैनेजर ने कहा, 'अभी नौकरी लगी नहीं और छोड़ने की बात पहले ही तय कर रही हैं ? हमारे यहां नौकरी के नियम बने हुए हैं, जिन्हें आप देख सकती हैं।'

"मैंने मंजूर कर लिया। सेठ साहब ने मेरे सामने फाइलों का ढेर लगा दिया और कहा, 'अच्छी बात, आज ही से शुरू कर दो।'

"मैं साढ़े नौ बजे सेठ एण्ड कम्पनी में दाखिल हुई थी और ग्यारह बजे काम पर बैठ गयी। पांच बजे काम बन्द हो गया। मुझे चिट्ठियों के ड्राफ्ट बना बनाकर चपरासी के हाथ मैनेजर के पास भेजने होते हैं। वह थोड़ा-बहुत संशोधन कर टाइपिस्ट के पास भेज देते हैं। टाइप होकर सेठ साहब के दस्तखत होकर चिट्ठी डिस्पैचर के पास चली जाती है। इस प्रकार आज मैंने सात-आठ चिट्ठियां लिखी हैं और चार रुपये की मज़दूरी कर घर लौट आई हूँ।

"जनरल मैनेजर भी बहुत भले आदमी प्रतीत होते हैं। उनका नाम है मिस्टर सक्सेना। ठीक पांच बजे उनकी बीवी अपने बच्चे को साथ लिये वहां पहुँच गयी। मैं अभी काम बन्द ही कर रही थी कि मिस्टर सक्सेना मिसेज़ सक्सेना को लेकर मेरे पास आगये और बोले, 'कीर्तिदेवी, यह मेरी धर्मपत्नी श्रीमती तपस्विनीदेवी हैं। आपसे परिचय चाहती थीं।

और यह देखो, यह बन्दर, मास्टर सक्सेना है। बाप के कान मरोड़ने में इसे बहुत मज़ा आता है।'

"तपस्विनीदेवी चाहती थी कि मैं उनके घर चलूं। मगर मैंने कहा, 'अभी मैं नहीं जा सकती। मेरी बहिन मेरी प्रतीक्षा में होगी।'

दोनों इसी प्रकार की बातें करतीं करतीं धीरे धीरे झील से चल पड़ीं। अन्धेरा हो रहा था। वे ट्राम में रासबिहारी एविन्यु के लिये बैठ गयीं।

[१८]

पथिक डा० घोष के यहां से बहुत रात गये लौटा था। आते ही बिस्तर पर लेट गया और गहरी नींद में सो गया। प्रातःकाल उठकर अपने नित्य प्रति के संगीत के अभ्यास में लग गया। वह गाने लगा :—

मेरा मन भूला भूला रे
घटाटोप अन्धेरा छाया मन में मोह मलिन मद माया।
हाथ पसारे कछु नहिं आया मन मेरा प्रतिकूला रे॥
मेरा मन भूला भूला रे

आज पथिक का मन संगीत में नहीं लगा। वह जल्दी ही आसन से उठ बैठा और नित्य से जल्दी ही प्रातः भ्रमण के लिये निकल गया। भ्रमण में भी चित्त की अवस्था वैसी ही थी। पाव कहीं जा रहे थे, परन्तु मन उधर नहीं था। मन जीवन की समस्याओं को सुलझाने में लगा था। वह सोच रहा था, "मैं कौन हूँ? यह सब प्रयास किसके लिये कर रहा हूँ? मुझे इससे क्या मिलेगा? विप्लव यदि सफल भी होगया तो क्या होगा? कुछ वर्ष के पश्चात मर जाना है। पीछे फिर मैं रहूंगा या नहीं। क्या मनुष्य ही बना रहूंगा? मान लो पुनर्जन्म का सिद्धान्त सत्य है तो भी मैं मनुष्य-जन्म पाऊंगा क्या? और मनुष्य होकर भी हिन्दुस्तान में हिन्दू बनूँगा क्या? और फिर क्या मुझे स्मरण रहेगा कि यह विप्लव से उत्पन्न स्वतन्त्रता मेरे ही विपुल प्रयत्न का फल है? असम्भव है। तो फिर यह मैं किस लिये कर रहा हूं? क्या यह सब माया नहीं है? इस माया के लिये ही क्या मैंने सलीमा को छोड़ दिया?

क्या वर्तमान को अनिश्चित भविष्य के लिये त्याग देना बुद्धिमत्ता है ?"

ये अन्टसन्ट विचार, इस समय जब उसकी बृहत योजना का आरम्भ होने वाला था, उसके मन में एकाएक उत्पन्न हो उसे कर्तव्य से विमुख कर रहे थे। वह मन में सोच रहा था कि क्या यह अच्छा नहीं कि इस सब झंझट को छोड़छाड़ कर वह फिर हिमालय की शरण में चला जाय। वहा शांति थी, यहा अशांति है। देवा का दृश्य कितना सुन्दर था। कितना सुख और शांति थी वहां। अब उसे नलिनी स्मरण हो आई। कैसी भोली लड़की है। कैसी मीठी मीठी बाते करती है। वह मन में निश्चय कर कि काम मलिन्द के हाथ में छोड़ एक बार देवा हो आवे घर की ओर लौट पड़ा।

इस दिन पूजा के पश्चात वह फिर प्रातःकाल के विचारों में लीन होगया। दस बजे बाहर बैठक में मलिन्द के आकर बैठने का शब्द हुआ और वह उठ, कपड़े पहन, बैठक में चला आया और डाक देखने लगा।

अभी डाक समाप्त नहीं हुई थी कि बेनी ऊपर आया और बोला, "गुरुदेव, आपसे कोई मिलना चाहते हैं।"

"नाम बताया है ?"

"जी, अकरम, लखनऊ से।"

"ले आओ।"

पथिक ने कह तो दिया, परन्तु उसका मुख मलिन हो गया। वह सोचता था कि यह भद्र पुरुष दो दिन पूर्व क्यों नहीं आगया।

अकरम के आने पर पथिक ने उठकर स्वागत किया और उससे पूछा, "कहां ठहरे हैं आप ?"

"होटल में ठहरा हूं। असबाब वहां रख पहिले यहा आना जरूरी समझ चला आया हूं। कहां है मेरी बहिन ?"

मलिन्द पथिक को दोषियों की भांति निरुत्तर देख बोल उठी, "आपकी प्रतीक्षा तो कई दिन से थी। यदि आप दो दिन भी पहिले आ सकते तो बात शायद यहां तक न पहुँचती।" अब मलिन्द ने सलीमा के आने

से, उसके उनके घर से विदा होने तक की कथा ज्यों की त्यों सुना दी।

अकरम अवाक् मुख बैठा रह गया था। वह भी सोचता था कि उसने आने में देरी क्यों की। उसने पूछा, "आपने उसे ढूंढने की कोशिश नहीं की ?"

"वह जाते समय कह गयी थी कि ज्यों ही वह पक्का ठहरने का प्रबन्ध कर लेगी हमें लिखेगी और आज प्रातः की डाक से हमारी माता जी को उसकी चिट्ठी आई है। उसमें लिखा है कि वह एक औरत के पास रहती है। उसे एक दूकान पर क्लर्की की नौकरी मिल गयी है। वह अब अपने रहने और गुज़ारे के लिये निश्चिन्त है।"

"क्या मैं वह चिट्ठी देख सकता हूँ ?"

"हां, अभी आपको मैं अपने घर ले चलूँगी। चिट्ठी माता जी के पास है।"

पश्चात अकरम अपने विचारों में लीन होगया। मलिन्द और पथिक डाक का जवाब देने में लग गये। बारह बजे तक डाक समाप्त हुई। डाक एकत्रित कर बेनी के हाथ डाकखाने में भेज दी।

पथिक से मिलने के लिये लोगों का आना आरम्भ हो गया था। मलिन्द अकरम को साथ ले अपने घर की ओर चल पड़ी। जब दोनों ट्राम में बैठे तो अकरम ने कहा, "आपने सलीमा को रोकने की पूरी कोशिश नहीं की मालूम होती।"

मलिन्द ने व्यंग के भाव से कह दिया, "आपके पिता और माता ने पूरी कोशिश की थी तो परिणाम क्या निकला ? हम लोग ज़बरदस्ती में विश्वास नहीं रखते।"

अकरम चुप था। मलिन्द ने फिर कहा, "सलीमा बहुत प्यारी लड़की है। उससे मिलकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। हमारे यहां जब तक रही हंसी से दिन-रात घर गूंजता रहा। मेरी बहिन कल्याणी तो भैया पथिक से इसी कारण नाराज़ है। परन्तु सलीमा भी एक दर्जे की हठी लड़की है। जब उसके मन में आया तो फिर माता जी, पिता जी और

मैंने बहुत समझाया। वह नहीं मानी।"

अकरम डा० घोष के घर पहुँचा तो डाक्टर साहब घर पर ही थे। दोनों में बहुत [illegible] भेंट हुई। डाक्टर साहब सलीमा की प्रशंसा करते नहीं थकते थे और सलीमा के चले जाने पर बहुत शोक प्रकट कर रहे थे। मलिन्द की मा ने सलीमा की चिट्ठी लाकर अकरम को दिखाई। चिट्ठी पढ़कर अकरम को प्रतीत हुआ कि वह तकलीफ में नहीं है। इस पर भी वह उसे कलकत्ते जैसे बड़े शहर में अकेली रहने देना पसन्द नहीं करता था और वह उसे मिलने के लिये अधीर हो रहा था।

कलकत्ते में वह धीरेन्द्र का पता जानता था। धीरेन्द्र से उसकी बर्लिन में मित्रता हो गयी थी और वहां से वे दोनों एक ही जहाज में मिश्र और मिश्र से बम्बई तक आये थे। बम्बई में विदा होते समय धीरेन्द्र ने उसे अपना कार्ड दिया था और कभी वहा आने के लिये आमंत्रित किया था। धीरेन्द्र का पता था मार्फत नरोत्तमप्रसाद सक्सेना जनरल मैनेजर सेठ एण्ड कम्पनी। अकरम ने डाक्टर घोष से इस कम्पनी का पता पूछा। डाक्टर घोष ने बताया, "कम्पनी के मालिक और मैनेजर मेरे पुराने मरीज़ों में से हैं। मैं उनके परिवारों का चिकित्सक हूँ और वे बहुत धनी आदमी हैं। बीसियो कारखाने हैं, कई कोयलों की खानों के ठेके लिये हुए हैं। बड़ी बड़ी दुकाने हैं और विदेश से माल मंगवाने और विदेश को माल भेजने का बहुत काम होता है। मैनेजर और मालिक इकट्ठे एक ही मकान में रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आपस में रिश्तेदार भी हैं। कहिये तो परिचय-पत्र दे दूं।"

"हा, दे दीजिये। उनसे मेरा परिचय नहीं। शायद वे सलीमा को खोजने में सहायता दे सकें। मैं एक मिस्टर धीरेन्द्र को जानता हूँ। वह इस कम्पनी के एजेन्ट बन जर्मनी में गये हुए थे। हम दोनों वहां से इकट्ठे आये हैं।"

डाक्टर घोष ने एक चिट्ठी सेठ साहब के नाम दे दी। अकरम ने

खाना वहीं खाया। पश्चात वह यह वचन देकर कि शाम को भी खाना यहीं खायेगा, सेठ एण्ड कम्पनी की ओर चल पड़ा। अकरम सलीमा से फिर कोई सूचना पाने की आशा में था। इसी कारण वह डाक्टर घोष के घर से सम्बन्ध बनाये रखना चाहता था।

[१६]

सलीमा ठीक दस बजे दफ्तर में हाज़िर हो गयी। सेठ साहब ने उसकी मेज़ का मुख दीवार की तरफ करवा दिया था, ताकि आने-जाने वालों का ध्यान उसकी ओर न जाय। सेठ साहब का अनुमान था कि कोई भले घर की लड़की है। किसी मुसीबत के कारण नौकरी करने पर मजबूर हुई है। इस कारण सेठ साहब ने उसे नौकरी देने और अपनी कम्पनी के संरक्षण में लेने का निश्चय तो उसे देखते ही कर लिया था। पीछे नरोत्तम ने भी जब उसे नौकरी देनी स्वीकार कर ली तो वह प्रसन्न थे। नरोत्तम के मन में भी ठीक वही विचार उत्पन्न हुए थे जो सेठ साहब के हुए थे। इसी कारण उसने वेतन भी कुछ उदारता से कहा था। साथ ही जब उसकी स्त्री, नित्य की भाति, दफ्तर में उसे भ्रमणार्थ साथ ले जाने के लिये आई तो उसने उसे समझा कर उससे परिचय करवा दिया। नरोत्तम की इच्छा थी कि दोनों में परिचय हो जाये तो ऐसी लड़की की सहायता की जाय।

सलीमा को आते ही काम मिल गया और वह काम में लीन हो गयी। दस बजे से एक बजे तक काम कर वह लंच खाने के लिये जाने लगी तो नौकर चाय और कुछ खाने का सामान ले आया। उसने पूछा, "किसके लिये लाये हो?"

"आपके लिये।"

"किसने कहा है?"

"यहां सबको मिलता है। सेठ साहब का हुक्म है। यदि यह पसन्द न हो तो और जो कहें आ सकता है।"

सलीमा ने चाय पी, और नाश्ता किया। एक-दो अंगड़ाइयां लेकर वह

अपने काम पर लगने ही वाली थी कि नरोत्तम आगया। उसने कहा, "कीर्तिदेवी जी, हमारे दफ्तर का दस्तूर है कि दोपहर का नाश्ता यहा मिलता है। यह वेतन के अतिरिक्त होता है। आपको यदि यह पसन्द न हो या यदि आप और ज्यादा कुछ खाना चाहें तो खा सकती हैं। आपके लिये तीस रुपये मासिक इस काम के लिये मंजूर हुए हैं। इससे अधिक खर्चा आपको अपने पास से देना होगा।"

"सेठ साहब की बहुत कृपा है। मुझे और कुछ नहीं चाहिये। यह बहुत काफी है।"

"आपने पहले भी किसी दफ्तर में काम किया है?"

सलीमा ने कुछ चौकन्ने होकर कहा, "यह बात तो आपको कल नौकर रखने से पहले पूछनी चाहिये थी।"

नरोत्तम ने कुछ झेंपकर कहा, "इसका मतलब यह नहीं कि आपकी नौकरी पक्की नहीं। मेरा पूछने का अभिप्राय यह था कि मै आपके ड्राफ्ट देखकर समझा हू कि आपको पहले कहीं काम करने का अनुभव है।"

"मिस्टर सक्सेना, नहीं। यह मेरी पहली नौकरी है।" इस उत्तर को देते समय सलीमा के गाल लाल हो गये। नरोत्तम ने समझ लिया कि और आगे पूछना शिष्टाचार के विपरीत होगा। इस कारण वह यह कह कि यदि कोई दिक्कत हो तो वह निःशंक होकर बता दे, चला गया।

सलीमा के मन मे सन्तोष हुआ और वह अपने काम में लग गयी। नरोत्तम अपने कमरे में चला गया। इस समय अकरम दफ्तर में आया। एक चपरासी उसे नरोत्तम के कमरे में ले गया। जाते जाते उसने सलीमा को देखा। उसे सलीमा को देखे पाच वर्ष से ऊपर हो चुके थे और सलीमा की आकृति में भारी अन्तर पड़ चुका था। इस पर भी उसे वह कुछ जानी हुई लड़की प्रतीत हुई। पहले तो उसके मन आया कि जाकर उससे ही पूछ ले। फिर यह सोचकर कि, पहले मैनेजर से मालूम कर लिया जाय तो ठीक है, वह चपरासी के पीछे पीछे चला गया। सलीमा दीवार

की तरफ मुख किये एक चिट्ठी पढ़ रही थी। उसने अकरम को आते नहीं देखा।

नरोत्तम को अकरम ने धीरेन्द्र का कार्ड दिया और बताया, "मैं इनका दोस्त हूँ। मेरा नाम मुहम्मद अकरम है। इनसे कहा मिल सकता हूँ?"

"ओह, आप नवाब मुर्तज़ाअली साहब के फरजन्द हैं! धीरेन्द्र ने मुझे बताया था। देखिये यह मिस्टर धीरेन्द्र सिरफ हमारी कम्पनी के एजेन्ट ही नहीं हैं प्रत्युत वह मेरे गहरे दोस्त भी हैं। यह कहो कि मेरे बड़े भाई हैं। वह आजकल जमशेदपुर कम्पनी के काम से गये हुए हैं। आप कहां ठहरे हैं? इस ग़रीब के घर को आबाद करिये न।"

इस पर अकरम ने डाक्टर घोष की चिट्ठी निकाल कर दिखाई। डाक्टर साहब की चिट्ठी पढ़ नरोत्तम ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "ओह, आप इनको जानते हैं! यह बड़े योग्य डाक्टर हैं। हमारे सेठ साहब को और मुझे इन पर बहुत विश्वास है। आप सेठ साहब से मिलियेगा?"

"मिलना चाहूँगा, मगर पीछे। पहले मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"हां, पूछिये।"

"यह लड़की जो कोने में बैठी है इसका क्या नाम है?"

"कीर्तिदेवी।"

"कब से नौकर है?"

"कल से।"

"मैं समझता हूँ। यह मेरी बहिन है। मैं इसी की तलाश में यहां आया हूं। मुझे इसे देखे पांच साल से ऊपर हो चुके हैं। इसी से कुछ शक हो गया था। अब मुझे यकीन हो गया है। इस पर भी मैं चाहता हूँ कि यह पता निकालूं कि यह कहा रहती है और वहां क्या करती है। क्या इसमें आप मेरी मदद कर सकेंगे?"

नरोत्तम ने कुछ सोचकर कहा, "हां, मैं आज ही इसके पीछे एक आदमी भेज दूंगा। कल तक सब बात मालूम हो जावेगी। यह तो मुझे भी शक हुआ था कि यह किसी बड़े घर की लड़की है, मगर यह मुसलमान होगी और एक नवाब साहब की लड़की होगी, मेरे दिमाग़ में नहीं आ सकता था। आख़िर यह घर से निकल क्यों आई है?"

"यह एक लम्बा किस्सा है। फिर किसी वक्त बताऊंगा। इस वक्त तो मैं इससे मिलना नहीं चाहता। आप यदि यह मालूम कर दें कि यह कहा रहती है और क्या क्या करती है तो मैं बहुत मशकूर हूंगा। और हा, मैं दफ्तर में आपसे न मिलकर कहीं और मिलना चाहूंगा। मैं इस लड़की से यह सब जानने के पश्चात् मिलना पसन्द करूंगा।"

नरोत्तम ने कहा, "आप चिन्ता न करें। मैं सब प्रबन्ध ऐसे ढंग से करूंगा कि इसे पता नहीं चलेगा। आप कल लंच के समय मुझसे फिरपो रैस्टोरेंट में मिलियेगा। मैं ठीक सवा दो बजे वहा पहुंच जाऊंगा।"

इसके पश्चात् अकरम और सेठ साहब में भेंट हुई। पीछे अकरम पिछले दरवाज़े से दफ्तर के बाहर निकल गया।

रात को डा० घोष के मकान में अकरम ने सलीमा के मिल जाने की बात नहीं की।

[२०]

अकरम आज के काम से सन्तुष्ट था। वह सलीमा का पता पा गया था। अब वह यह जानना चाहता था कि गुप्त रहकर वह क्या करना चाहती है, इसमें उसका क्या प्रयोजन है। इतना जानने के पश्चात वह सलीमा से मिलने का विचार रखता था। इस कारण उसने डाक्टर घोष के घर में यह नहीं बताया कि सेठ एण्ड कम्पनी में क्या बातचीत हुई। अकरम पथिक को वहा देख बहुत प्रसन्न हुआ। वह उससे उसकी योजना की बाबत बहुत प्रश्न करना चाहता था। पथिक से मिलने के पश्चात उसने कहा, "मैंने आपके संघ की किताबें पढ़ी हैं। आपके विचार अद्भुत हैं। परन्तु एक-दो बातें मेरी समझ में नहीं आईं। अगर

आप पसन्द करें तो मैं कुछ पूछूं।"

"हां, पूछिये। मैं आपको बताने को तैयार हूं।"

"आपने लिखा है कि हमको हिन्दू और मुसलमान के विचार से एक दूसरे को नहीं देखना चाहिये। क्या आपका मतलब यह है कि हिन्दू हिन्दू-मत को छोड़ दें और मुसलमान इस्लाम को?"

"मैंने तो यह नहीं लिखा। मेरा मतलब यह है कि हमारे सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्ध मज़हब के आधार पर न हों। देखो, हिन्दुओं में यह बात कुछ हद तक मौजूद है। कई घरों में ऐसा है कि पति मांस खाता है और पत्नी नहीं खाती। पति आर्यसमाजी है तो पत्नी देवी-देवताओं की पूजा करती है। पत्नी काली पर बकरा चढ़ाती है तो पति वैष्णव मतानुयायी है। मैं इस सिद्धान्त को अधिक विस्तृत करना चाहता हूं। मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानी परिवार में यह भी हो सके, कि पिता मुसलमान है तो पुत्र शिव का उपासक हो सके; कि पिता अगर वैष्णव है तो लड़की मुसलमान हो सके। इस बात में ऐसे ही कोई आपत्ति न की जाय जैसे एक हिन्दू परिवार में भिन्न भिन्न देवी-देवताओं की पूजा में आपत्ति नहीं की जाती।"

"मगर यह बहुत कठिन है। सदियों के वहम और तास्सुब इस बात के रास्ते में रुकावट बनकर आयेंगे।"

"मैं इसको जानता हूं, मगर ठीक तरीका यही है।"

"मेरा पूछना तो यह है कि जब तक ये वहम मिट नहीं जाते तब तक क्या किया जाय?"

"मैं सारे मुल्क को इस ख्याल का बनाना चाहता हूँ। मगर मेरा राजनीतिक प्रोग्राम इस बात की इन्तजार नहीं करता। मुझे तो दो-चार लाख इस बात में विश्वास रखने वाले चाहियें। यदि वे सच्चे हैं और इस बात को सिद्धान्त-रूप में मानते हैं तो तमाम मुल्क की बागडोर हाथ बदलकर उन लोगों के हाथ में आजायेगी।"

"मान लो कि आपके पास कुछ लाख ऐसे आदमी हैं, जो हिन्दू-

मुसलमानों को ऐसे रूप में देखते हैं, तब भी वे करोड़ों के खिलाफ क्या कर सकेंगे ?"

"मुझे तो हिन्दुस्तान आजाद करने के लिये ठीक विचार रखने वाले और स्वस्थ शरीर रखने वाले सिरफ दो-तीन लाख की ज़रूरत है। देश में जन-साधारण तो भेड़ों को भांति पीछे लगने वाला है। ये दो-तीन लाख नेता बन जायेंगे।"

"आपका कहना उसूल से तो ठीक है, मगर व्यवहार में नहीं आयेगा। बात यह है कि मुसलमान और हिन्दू एक दूसरे को अपने मज़हब में घसीटने का यत्न करते रहते हैं और अगर यह बात जारी रही तो दोनों कौमें हमेशा एक दूसरे को शक की नज़र से देखती रहेंगी। परिणाम यह होगा कि करोड़ों के शक में लाखों का विश्वास भी बह जायेगा।"

"मैं अपने मार्ग की कठनाई को जानता हूं। यह मार्ग कठिन होने पर भी अकेला मार्ग ही है। इसके मुकाबिले में दूसरा मार्ग है कि हिन्दू-हिन्दुस्तान और मुस्लिम-हिन्दुस्तान पृथक-पृथक कर दिये जायें। यह झगड़े को और भी लम्बा करने वाला मार्ग है। देश के दो भाग हो जाने पर भी शांति नहीं होगी। मध्य-भारत अपने दरवाजे पर दूसरों का अधिकार स्वीकार नहीं करेगा। मुस्लिम-हिन्दुस्तान भौगोलिक विचार से सुदृढ़ स्थान पर होने से मध्य-भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहेगा। परिणाम यह होगा कि फिर वही सात सौ वर्षों का इतिहास दुहराया जायगा, जो मुहम्मद गौरी के ज़माने से लेकर मुग़लों के अन्तिम बादशाह शाह अकबर तक चलता रहा था।

"इसके विपरीत मेरा मत है कि सम्प्रदायों (हिन्दू-मुसलमानों) को राजनीति का आधार न बनाया जाय। कौंसिलों और व्यवस्थापिका सभाओं में, दफ्तरों और फौजों में, चाहे वह सामाजिक महत्व रखता हो और चाहे राजनीतिक, सम्प्रदायों अर्थात् मज़हबी विश्वास का विचार न किया जाय। प्रत्येक बात में योग्यता को आधार बनाया जाय। दूसरे शब्दों में फिरकेवार प्रतिनिधित्व धारा-सभाओं में अथवा नौकरियों में

त्याग दिया जाय।"

"यह त्याग तो दिया जाय, परन्तु होगा कैसे ? जब तक करोड़ों लोग यह मानते हैं तो कैसे आप उनके विपरीत कर सकेंगे ? करोड़ों तो विचारशील नहीं होते। विचारशील तो बहुत कम संख्या में हैं।"

"लोगों को समझाना हमारा काम है। जितने भी विचारशील लोग हैं वे अवश्य समझ जायेंगे। जो लोग ऐसी बात को, जो युक्तियुक्त है, नहीं मानेंगे उन्हें बलपूर्वक मनवायेंगे।"

"बल का प्रयोग करना तो बहुत अशाति फैलायेगा।"

"जहां तक देश की स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है वहा तक हम किसी भी व्यक्ति अथवा फिरके को स्वतन्त्रता पाने में बाधा डालने नहीं देंगे। इस बाधा को दूर करने के लिये बल का प्रयोग भी अनुचित नहीं होगा।"

"जो लोग अपने अपने फिरके के अधिकार सुरक्षित करने के लिये माग पेश करते हैं वे स्वतन्त्रता में बाधा डालने वाले कैसे कहे जा सकते हैं ?"

"मांग उपस्थित करना अथवा मांगों के लिये झगड़ा करना अनुचित नहीं। न ही इन मागों को दबाने के लिये बल के प्रयोग की आवश्यकता है। बल-प्रयोग की आवश्यकता तो तब होती है जब अयुक्तिसंगत मागों के आधार पर देश की अथवा दूसरों की उन्नति में बाधा डालने का यत्न किया जाय।"

"यह कौन निर्णय करेगा कि माग अयुक्तिसंगत है ?"

"देश के विद्वान आदमी।"

"जन-साधारण का वोट क्यों नहीं ?"

"यद्यपि मैं जन-साधारण का वोट किसी विषय के न्याययुक्त अथवा अन्याययुक्त होने में प्रमाण नहीं मानता तो भी जन-साधारण ही ले लो। मगर बिना वोट लिये जो अपनी बात मनवाना चाहते हैं और न मानी जाने पर देश-द्रोह की बात करते हैं उनको बलपूर्वक बन्द कराना ही

होगा। यही तो मुस्लिम-लीग का व्यवहार है। वे पाकिस्तान चाहते हैं। जब लोग उनको कहते हैं कि पाकिस्तान के विषय में जन-साधारण के वोट से बनी हुई वैधानिक सभा (Constituent Assembly) जो निश्चय करे वही किया जाय, तब मुस्लिम-लीग वालों को यह मान जाना चाहिये।"

"वैधानिक सभा में हिन्दुओं की संख्या अधिक होगी।"

"निश्चय। हिन्दुस्तान में हिन्दू अधिक बसते हैं। परन्तु यदि वैधानिक सभा का चुनाव हिन्दू-मुसलमानों के संयुक्त वोट से हो तो जो हिन्दू और मुसलमान वहां आयेंगे वे न तो कट्टर हिन्दू होंगे न कट्टर मुसलमान।"

"मुसलमान चाहते हैं कि पाकिस्तान का विषय केवल मुसलमानों के वोट पर छोड़ दिया जाय।"

"क्यों? क्या इससे हिन्दुओं की हानि अथवा लाभ नहीं होगा? यह कोई मुसलमानों के मज़हबी रीति-रिवाज से ताल्लुक रखने वाली बात नहीं है। यह एक ख़ालिस राजनीतिक बात है। इस पर देश में सब रहने वालों को राय देनी चाहिये।"

"मुस्लिम-लीग वाले चाहते हैं कि वे और कांग्रेस दोनों मिलकर बातचीत कर लें। मुस्लिम-लीग मुसलमानों की ओर से और कांग्रेस हिन्दुओं की ओर से।"

"यही तो देखना है कि मुस्लिम-लीग मुसलमानों की ओर से है या नहीं और कांग्रेस हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करती है या नहीं। कम से कम कांग्रेस के नेता तो अपने आपको केवल हिन्दुओं का प्रतिनिधि नहीं मानते। वैधानिक सभा को अगर मुसलमान और हिन्दुओं के मिश्रित वोट से न चुना जाय तब भी कोई हानि नहीं। परन्तु यह कैसे हो सकता है कि हिन्दुओं से पूछा ही न जाय और उस देश के टुकड़े कर दिये जायें जहां हिन्दुओं की संख्या अधिक है?

"देखो मिस्टर अकरम, बात यह है कि युक्ति तो मुसलमानों की

इस मांग का साथ देती नहीं और मुस्लिम-लीग का यह ऐलान कि, जब तक उनकी माग का निर्णय न कर दिया जाय वे स्वराज्य स्थापित होने नहीं देंगे, केवल धींगामस्ती है। इस समय उनका ऐसा कहना चूँकि अंग्रेजी हुकूमत के हक में जाता है, इस कारण वे भी कहने लगते हैं कि हां आपस में फैसला कर लो फिर स्वराज्य की बाबत सोचेंगे।"

अकरम ने पूछा, "माना कि आप जो कहते हैं, ठीक है। अब आप इसका क्या उपाय बताते हैं? यह तिगड्डम है—हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेज। अंग्रेज़ों की मौजूदगी में आप इस उलझन को कैसे सुलझाना चाहते हैं?"

"मेरी योजना केवल प्रचार की है। मैं तो उसी बात का प्रचार कर सकता हूँ जिसे बुद्धि माने। मैं लोगों में युक्तिसंगत बात मानने और युक्ति-युक्त माग उपस्थित करने का प्रचार कर सकता हूँ। इसका परिणाम यह होगा कि देश में लोगों की दो श्रेणियां हो जायेंगी। एक वह जो देश में सब रहने वालों का, बिना हिन्दू-मुसलमान का विचार किये, समान अधिकार मानेगी। दूसरी वह जो अपने अपने फिरके वालों के लिये विशेष अधिकारों की मांग उपस्थित करेगी। हमारा यत्न यह होना चाहिये कि उन लोगों की ताकत बढ़े जो सबको समान अधिकार देने और सबके समान अधिकार लेने के लिये तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार की नीति यह रही है कि वह विशेष रियायतें चाहने वालों का पक्ष लेती रही है। इस कारण दूसरी श्रेणी में ब्रिटिश सरकार भी सम्मिलित है। या यों कहो कि एक श्रेणी में शुद्ध राष्ट्रीयता के पक्षपाती होंगे और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार के पक्षपाती। यह देश-विरोधी पार्टी होगी। इस समय ब्रिटिश सरकार की पक्षपाती पार्टी प्रबल है। उनके पास फौज है और पुलिस है। राष्ट्रीयता के पक्षपाती दुर्बल हैं। मेरे प्रचार का अर्थ यही है कि राष्ट्रीयता के पक्षपाती दूसरे पक्ष से प्रबल हो जायें।"

पथिक के विचारों की स्पष्टता को देख अकरम का साहस बहुत बढ़ रहा था। वह मन में सोचता था कि यह एक ऐसी बात है जिसकी

देश को भारी आवश्यकता है और इसको पूर्णता तक पहुँचाने के लिये जो भी यत्न किया जा सके करना चाहिये। एक बात उसने अन्त में पूछी। उसने पूछा, "आपकी इस प्रकार बनाई गयी दो श्रेणियों में हिन्दू भी होंगे और मुसलमान भी ?"

"हा, मैं चाहता हूं कि अपना अपना मज़हब अलग अलग रखते हुए भी लोग हिन्दुस्तानी हो जाये। और हिन्दुस्तानी वे होंगे जो यहां शुद्ध राष्ट्रीयता के पक्षपाती हैं और दूसरे प्रकार के लोग वे होंगे जो अपने निज के लिये, अपने परिवार के लिये अथवा अपने मज़हबी भाई-बन्दों के लिये खास रियायतों के प्राप्त करने के लिये ब्रिटिश सरकार की हिमायत करते हैं। एक न एक दिन दोनों में भारी युद्ध होगा। मैं चाहता हूँ कि राष्ट्रीयता के पक्षपाती इस युद्ध में सफलतापूर्वक भाग लेने के लिये तैयार हो जायें। यह हिन्दुस्तान का सौभाग्य होगा यदि यह युद्ध केवल युक्तियों और वोटों तक ही रहे और इसमें रक्त की नदिया न बहें।"

[२१]

फिरपो रैस्टोरेंट में ठीक सवा बजे नरोत्तम और अकरम की भेंट हो गयी। लंच लेने का तो बहाना था। दोनों खाना खाकर आये थे। इस पर भी कुछ चाय इत्यादि सामान का आर्डर दे बातें करने लगे। नरोत्तम ने अकरम को उत्सुक देख एक कागज़ जेब से निकाल कहा, "हमने अपनी कम्पनी का काम सुचारु रूप से चलाने के लिये कुछ भेदिये रखे हुए हैं। इनमें से एक को मैंने कीर्तिदेवी का पीछा करने के लिये कह दिया था। उसकी रिपोर्ट यह है।" इतना कह नरोत्तम ने रिपोर्ट पढ़नी आरम्भ की :—

"पाच बजे कीर्तिदेवी दफ्तर से निकल सीधी ट्राम-स्टैंड पर पहुँची। अलीपुर गयी। वहां लेन नं० १०२ मकान नं० १२ सब से ऊपर के फ्लैट में चली गयी। पूछने पर मालूम हुआ कि उस स्थान पर एक विभूतिदेवी, कारपोरेशन के अलीपुर गर्ल्ज़ हाईस्कूल की मुख्याध्यापिका रहती हैं। कीर्तिदेवी तीन दिन से उनके पास ठहरी है। सायंकाल साढ़े

छै बजे दोनों औरतें झील पर घूमने गयीं। वहां से रात के आठ बजे लौटीं। विभूतिदेवी अलीपुर की ट्राम पर बैठ गयी और कीर्तिदेवी रासबिहारी एविन्यू में पहुंची। वहां मकान नं० १०५ के पिछवाड़े के दरवाजे को, जो ताले से बन्द था, खोल कर भीतर चली गयी। मकान के अगली तरफ, मकान का चौकीदार कहो अथवा वहां का चपरासी कहो, रहता है। उससे बातों बातों में पता चला कि एक गुरुदेव जिन्हें लोग पथिक कहते हैं उस मकान में रहते हैं। वह एक विद्यार्थियों की सभा के प्रधान हैं। बहुत विद्यार्थी उनसे मिलने को आते रहते हैं। उस समय वह घर पर नहीं थे। नित्य सायंकाल वह घूमने या डा० घोष के घर चले जाते हैं। रात को दस बजे तक लौटते हैं। और पूछने पर उसने बताया कि डा० घोष की लड़कियां वहां दफ्तर में आती हैं और भी कॉलेज की लड़कियां आती हैं। जब कीर्तिदेवी की बात पूछी गयी तो उसने कहा कि वह सिर्फ तीन लड़कियों के नाम जानता है। डा० घोष की लड़कियों के अतिरिक्त एक और लड़की लखनऊ से आकर डा० घोष के घर ठहरी है। उसका नाम सलीमा है। अब दो-तीन दिन से वह नहीं आती।

"लगभग एक घण्टे के बाद कीर्तिदेवी पिछवाड़े की गली से निकली। वहां से वह कालीघाट ट्राम-स्टैंड तक पैदल गयी। फिर वह अलीपुर वाले मकान पर पहुंची। रात के बारह बजे तक वह वहां से नहीं निकली। जब उनके कमरे की बिजली बुझ गयी तो मैं वहां से लौट आया।"

"यह आपका भेदिया बहुत ही चतुर प्रतीत होता है। एक ही दिन में इसने इतना कुछ जान लिया है।"

इस पर नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा "मगर साहब यह कीर्तिदेवी उससे भी अधिक चतुर प्रतीत होती है। आज सुबह ही जब वह दफ्तर में आई तो मेरे कमरे में चली आई। पूछने लगी, 'क्या मैं आसकती हूँ?'

"मैंने कहा, 'हां, हां, बताइये। मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ?'

"बोली, 'आप मुझे यहां नौकरी करने देंगे या नहीं?'

"मैंने बहुत हैरानी से पूछा, 'क्यों ? क्या हुआ है, बहिन ? कौन अनुचित बात हो गयी ? बताइये न आपको क्या कष्ट है ?'

"इस पर वह कुछ नरम हो गयी। बोली, 'बहिन ? अच्छा, भैया, यह आपने बहिन के पीछे भेदिया क्यों छोड़ दिया ?'

'इस कलकत्ते जैसे नगर के दूषित वातावरण में बहिन की रक्षा के लिये।'

"इस पर वह निरुत्तर हो गयी। बोली, 'मिस्टर सक्सेना, मुझे क्षमा करना। मैं कुछ और समझी थी।'

इतना कह वह अपनी मेज़ पर जा बैठी।

अकरम ने कहा, "मैं उससे मिलना चहता हूँ।"

"कहा मिलियेगा ?"

"अगर आपको आपत्ति न हो तो आपके दफ्तर में।"

"चलिये।"

वे दोनो वहा दफ्तर में पिछवाड़े के मार्ग से दाखिल हो गये। नरोत्तम ने चपरासी के हाथ कीर्तिदेवी को बुला भेजा। कीर्तिदेवी कुछ खीझी हुई थी। अभी अभी कल्याणी उसके पास से होकर गयी थी। वह बता गयी थी कि उसका भाई अकरम कलकत्ते में आया है। वह उससे मिलने और मिलकर क्या करना चाहिये इस पर विचार कर रही थी। ऐसे अवसर पर नरोत्तम का बुलावा आया।

वह जब मैनेजर के कमरे में पहुंची तो माथे पर त्योरी चढ़ी हुई थी। खास कर जब उसने देखा कि मैनेजर साहब अकेले नहीं हैं तो उसका क्रोध और भी बढ़ गया। उसके भीतर आते ही अकरम खड़ा हो गया और कीर्तिदेवी को एक बार सिर से पावों तक देख पहिचान गया, वह बोला, "सलीमा।"

"भैया !" और सलीमा अकरम की बाहों में थी। एकाएक उसकी आंखो से आंसू बहने लगे। अकरम ने उसके सिर पर हाथ फेरकर प्यार से पूछा, "सलीमा, तुम रोती हो ! क्यों ?"

"भैया, चलो चलें।"

इतना कह वह मैनेजर से छुट्टी मागने वाली थी कि अकरम ने कहा, "देखो सलीमा, बैठो। यह मिस्टर सक्सेना मेरे एक मित्र के मित्र हैं। कलकत्ते में इनकी बड़ी पोज़ीशन है। यह मेरी खुश-किस्मती है कि तुम इनके यहां नौकरी पर आई और मैं तुम्हें यहा पहुँचने के पहिले ही दिन पा गया।"

नरोत्तम ने अकरम से हाथ मिलाते हुए कहा, "यह एक बहुत ही सुखदायक घटना हुई है। मैं अपनी तरफ से और मिसेज़ सक्सेना की तरफ से आप दोनों को अपने घर पर रात के भोजन के लिये आमन्त्रित करता हूं। उम्मीद है कि आप इन्कार नहीं करेंगे। हॉ, सलीमा बहिन आप दफ्तर से जा सकती हैं।"

सलीमा और अकरम दोनों सेठ एण्ड कम्पनी के दफ्तर से बाहर आये तो अकरम ने कहा, "कहां चले?"

"कहीं एकान्त में।"

अकरम ने टैक्सी की और कम्पनी बाग की तरफ चल पड़े।

"तुम घर से भाग क्यों आई हो?"

"तो अब्बाजान ने आपसे कुछ नहीं कहा?"

"मैं तुम्हारी बात सुनना चाहता हूं।"

सलीमा ने पूर्ण वृत्तान्त ज्यों का त्यों स्टूडेन्ट्स फैडरेशन के जलसे में दिल्ली जाने के पूर्व से लेकर नवाबगंज से भागने तक का बता दिया। अकरम यह सब बात सुनकर बहुत दुखी हुआ। वह अपने माता-पिता को इतना निठुर नहीं समझता था। सलीमा ने कहा, "दिल्ली में मिस्टर पथिक से मेरी भेंट हुई थी। तब से ही मेरे मन में उनके लिये एक विशेष भावना उत्पन्न होगयी है। जब मैं घर से भागने पर मजबूर हुई तो मैंने उन्हीं का आश्रय लेना उचित समझा। उन्होंने मेरे लिये एक अति मानयुक्त परिवार में स्थान बना दिया। मैं वहां रहती हुई अपने घर को उस समय भूल गयी थी। परन्तु चार दिन हुए जो घटना हुई

उससे मुझे बहुत क्रोध आया। मिस्टर पथिक ने कहा था कि, 'मैं एक नवाब की लड़की को विवाह करने के लिये कैसे कह सकता हूं ? मैं बहुत छोटे दर्जे का आदमी हूँ। मेरे यहा बिना तिनका तोड़े खाने को नहीं मिल सकता।'

"मुझे क्रोध इस बात का था कि मैं जब से उनके पास आई थी, मैंने अपने आचरण से सिद्ध कर दिया था कि मुझ में न तो नवाबी की गन्ध है और न ही मैं बिना काम किये खाने को अच्छा समझती हूँ। इस पर भी उन्होंने यह एतराज उठाया। परन्तु भैया, मैं अब सोचती हूं कि मुझे नाराज़ नहीं होना चाहिये था। मुझे अपने आपको ऐसा बनाना चाहिये था कि वह मेरे मन के भावों को समझ जाते।"

अकरम ने कुछ सोचकर कहा, "मैं मिस्टर पथिक से मिल चुका हूँ। मुझे तो एक बात समझ में आई है कि वह अपने राजनीतिक काम में इतना लगा हुआ है कि उसे विवाह करने की फुरसत ही नहीं। मिस कल्याणी, डा० घोष की लड़की से, आज सुबह बहुत बातें होती रहीं और मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वह देवता है।"

"तो मैं उनसे जाकर क्षमा माग लूं।"

"नहीं, मेरा विचार है कि हमें, मुझे और तुम्हें भी, उसके राजनीतिक काम में मदद करनी चाहिये। यह काम इतना बड़ा है कि हम जैसे लोगों के कई जीवन इसमें खतम हो जायेंगे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस जमाने में हिन्दुस्तान के पोलिटिकल आसमान पर हिन्दू-मुसलमान का सवाल, काली घटा बनकर मंडरा रहा है। इसका सिरफ एक ही उत्तर है। वह उत्तर मिस्टर पथिक की 'राजनीतिक काम' नाम की पुस्तक में साफ तौर पर लिखा है। वह हिन्दू है। उसकी ज़बान से मुसलमान यह बात मानना तो दूर रहा सुनना भी पसन्द नहीं करेंगे। यह मेरा और तुम्हारा काम है। आओ सलीमा अपने मुल्क के लिये हम भी कुछ करें। विवाह-शादी तो होते रहेंगे। अगर तुम अपने मन के देवता को रिझाना चाहती हो तो यही तरीका ठीक रहेगा। जाकर

क्षमा मांगने से यह तरीका ज्यादा अच्छा और बाइज्ज़त रहेगा।"

सलीमा भाई की तजवीज़ सुनकर फड़क उठी और खुशी से उछलती हुई बोली, "भैया, आप यह करेंगे ? ओ भाईजान ! मै आपसे यही आशा रखती थी। देखो भैया ! ··· ओ हा ··· एक बात मैं बता दूं। बहिन मलिन्द और कल्याणी के साथ रहते रहते मेरी ज़बान और बोलने में कुछ हिन्दीपन आगया है। मुआफ करना, भाईजान।

"हा, मै कह रही थी कि मैं काम तो करूं मगर उनसे छिपकर। अगर मैं इस स्कीम को आगे करने में कुछ भी कर सकी तो ज़ाहिर हो जाऊंगी।"

"इस विषय में अभी सोचेंगे। अभी तक मैं समझता हूँ कि मिस्टर पथिक को और डा० घोष को पता न चले कि मैं तुम्हें पा गया हूं।"

"मगर कल्याणी बहिन तो मुझे कहने आई थी कि आप आगये हैं। और वह आज सायंकाल आपको मुझसे मिलाने का वचन दे गयी है।"

"ओह ! तो वह जानती थी कि तुम यहां हो। बड़ी नटखट लड़की है। मुझे कहती थी कि चलो किसी ज्योतिषी से पूछें कि सलीमा बहिन कब, कहा और कैसे मिलेगी। वह कहती थी कि एक स्कूल की हैड-मिस्ट्रेस हैं। बहुत ज्योतिष जानती हैं। नाम विभूतिदेवी है। उनसे चल कर सलीमा की बाबत पूछेंगे।"

"बड़ी चतुर है। बस केवल वह ही थी जो मेरा पता और मेरे काम को जानती है। आज लंच के समय मेरे पास दफ्तर में आई थी और आपके आने की बात बताकर बोली कि मुझे आज मिल लेना चाहिये। कहती थी मिस्टर अकरम बहुत परेशान हैं और सिरफ मेरे कान मरोड़ेंगे। ज्यादा नहीं।"

*

*

पांचवां भाग

पथिक अथवा मधुसूदन

नरोत्तम ने अपनी स्त्री को जब कीर्तिदेवी का पूर्ण परिचय दिया तो वह हैरान रह गयी। वह बोली, "लड़की बहुत सुन्दर और सुशील मालूम होती थी। परन्तु वह एक नवाब की लड़की होगी यह विचार में भी नहीं आ सकता था और फिर उसने हिन्दू नाम रख लिया। जरूर इसमें कोई प्रेम-गाथा छिपी है।"

"आज वह और उसका भाई तुम्हारे मेहमान होंगे। रात को वे खाना यहीं खाने आयेंगे।"

तपस्विनी यह सुन गम्भीर विचार में डूब गयी। उसे अपना अविवाहित जीवन याद आगया था। नरोत्तम ने इस गम्भीरता का कारण पूछा तो बोली, "कुछ नहीं। इस लड़की की बात सुन अपनी बात याद आगयी है।"

"ओह, तो तुम भी घर से भाग चुकी हो?"

"नहीं। भागी तो नहीं, भागने ही वाली थी। दादा धीरेन्द्र ने शायद आपको बताया नहीं।"

"नहीं। क्या कोई भेद की बात है? मैं सुनना नहीं चाहता।"

"हूं। सुनना नहीं चाहते न। कहने मात्र से। मुझे पूर्ण विश्वास है कि कल ही दादा से पूछने बैठ जायेंगे। श्रीमान, कोई भेद की बात नहीं। घबराओ नहीं। एक बार पिता जी को पता लग गया कि मैं आप की पार्टी में शामिल होगयी हूँ। वह बहुत घबराये। कई रात उनको नींद नहीं आई। जब वह और अधिक देर तक अपने मन को न रोक

सके तो मुझे अपने कमरे में बुलाकर बहुत डांटा, फटकारा और मुझे कुलटा, कुल-कलङ्किनी इत्यादि बातें कहीं। जब मैंने कारण पूछा तो बोले, 'इन लफंगे लड़कों की पार्टी में जाती हो तो और क्या कहा जाय तुम्हें ?'

"मैंने पूर्णिमा का नाम लेकर कहा, 'वह भी तो जाती है।'

"वह बोले, 'उस नचनी को कौन अच्छा समझता है।'

"मुझे अपने पर लाछन लगते सुन क्रोध नहीं आया था। परन्तु पूर्णिमा को मैं पवित्र मोती समझती थी। उसको भी बुरा कहा गया सुन मेरा पारा एक सौ पाच से भी ऊपर चढ़ गया। मैंने कहा, 'पिता जी, मैं आपका मान करती हूं, परन्तु आपके गन्दे विचार सुन मुझे इस घर में रहते लज्जा आती है। मै अब यहां नहीं रहूँगी।'

"इतना कह मैं घर से बाहर निकल आई। ज्योंही मैं घर की ड्योढ़ी से बाहर निकली कि सौभाग्य से दादा मुझे बुलाने आते हुए दिखाई दिये। मैंने दादा से कह दिया, 'मैं घर छोड़ रही हूँ।'

'क्यों ?'

'पिता जी मुझे कुल-कलङ्किनी समझते हैं। पूर्णिमा को तुच्छ नचिनी और आप सब को लफंगे। ऐसे पिता के घर मेरा स्थान नहीं है।'

"दादा हंस पड़े। बोले, 'पगली सी, अज्ञानवश कही गयी बात पर क्रोध करना मूर्खता है। तुम पवित्र हो तो अपने आचरण से उनकी अज्ञानता को दूर करो, न कि क्रोध करके। चलो वापिस।'

"वह मुझे अपने कमरे में भेज सीधे मेरे पिता जी से मिले। उनमें क्या बातचीत हुई मुझे मालूम नहीं। न तो पिता जी ने फिर कभी इस विषय पर बात की और न ही दादा ने। अब इस लड़की की बात सुन कर मेरे मन में यही बात आरही थी। सम्भव है इसके भागने में भी मेरे समान कोई मूर्खता की बात हो। दादा धीरेन्द्र सब स्थान पर तो होते नहीं।

"जब मेरे विवाह की चर्चा हुई और मैंने चिट्ठी लिख कर अपना निश्चय आपसे शादी के लिये बताया तो मैं आशा करती थी कि फिर

डांटी-डपटी जाऊंगी। सोचती थी कि आपको अभी भी वह एक नचनी के भाई समझते होंगे। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ और मुझे आपके घर भेज कर पिता जी को कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ।"

"वह देवता हैं।"

तपस्विनी चुप थी। एक लम्बी सांस खींच कर वह बोली, "यदि पूर्णिमा अब होती·····।" उसकी आंखें कुछ भीग गयी थीं।

रात के आठ बजे अकरम और सलीमा खाना खाने आये। तपस्विनी ने सलीमा को अपने पास बैठाकर खाना खाते खाते तंग कर दिया, "बताती नहीं, बहिन! कौन चुराकर लाने वाला है तुम्हें।"

पहिले तो सलीमा संकोच के मारे चुप बैठी रही, परन्तु सबको बेतकल्लुफी से बातें करते देख वह कुछ कुछ खुलने लगी। नरोत्तम ने तपस्विनी के घर से भागने का किस्सा जब बताया तो सलीमा अब अपने को सर्वथा स्वाभाविक वातावरण मे अनुभव करने लगी। उसने आखिर कह दिया, "भाभी, ननद की बातो पर परदा डालना चाहिये, न कि ढिंढोरा पीटना।"

सब हंस पड़े।

डाइनिंग-हॉल से वे ड्राइंग-हॉल में आगये। वहां नरोत्तम की मां थी। नरोत्तम ने सलीमा का परिचय दिया। उसने लड़की के सिर पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया। सलीमा तपस्विनी के लड़के को गोदी में उठा कर रेडियो के पास जाकर खड़ी हो गयी। लड़का गाना सुनने का बहुत शौकीन था। वह गाना सुनने में लीन हो गया। रेडियो-सैट पर एक लड़की की तस्वीर रखी थी। सलीमा को ऐसा अनुभव हुआ कि उसने यह तस्वीर कहीं देखी है। वह तस्वीर को उठाकर ध्यान से देखने लगी। उसने उसे पहिचान लिया। इसी लड़की की तस्वीर पथिक के सन्दूक में ग्रॉयल-पेंटिंग (तैल-चित्र) की बनी वह देख चुकी थी। उस तस्वीर के नीचे नलिनी लिखा था। पथिक से पूछने पर उसने बताया था कि यह मोहन की बहिन की है। उसी लड़की की फोटो की बनी यह तस्वीर

देख, और इन लोगों के घर, वह चकित रह गई। उसने तस्वीर रेडियो पर से उठाकर एक बार फिर ध्यान से देखी। जब उसे विश्वास होगया कि यह वही लड़की है तो वह तस्वीर हाथ में लिये तपस्विनी के पास जाकर बोली, "भाभी, इस लड़की को तुम जानती हो ?"

"मैं ? और तुम भी जानती हो ?"

"हा !"

"हा ! अरी यह क्या कहती हो ?" वह सलीमा और तस्वीर को नरोत्तम के पास ले गयी। नरोत्तम और अकरम ड्राइंग-रूम के एक कोने में बैठे बात कर रहे थे।

"देखो जी, यह इस लड़की को जानती है।"

नरोत्तम ने भी अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "कहां देखा था आपने इसे ?"

"देखा तो नही। हां, उनके सन्दूक में इसकी तस्वीर देखी थी।"

"किसके सन्दूक में ?"

अब अकरम ने पूछा, "मिस्टर पथिक के ?"

"हां, एक दिन मैं सन्दूक की तलाशी ले रही थी तो दो तस्वीरें इसी लड़की की मिलीं। एक तैल-चित्र (oil painting) था और दूसरी पैन्सिल-ड्राइंग। तस्वीरों के नीचे लिखा था 'नलिनी।' आपकी यह लड़की क्या लगती है ?"

"बहिन ! उसे मरे आठ वर्ष से ऊपर हो चुके हैं।"

"तब यह और है। मगर बिलकुल एक जैसी है।"

"क्या मैं वह तस्वीर देख सकता हूँ ?"

"तस्वीर ?" यह कह सलीमा कुछ सोचने लगी। फिर बोली, "हां चोरी करके ला सकती हूँ। वह रासबिहारी एविन्यू नं० १०५ में रखी है।"

नरोत्तम सब समझ गया। कुछ सोचकर बोला, "अगर आप यह बता दें कि मकान के किस कमरे में कहां सन्दूक रखा है और चोरी करने का कौन समय ठीक है तो आपके जाने की जरूरत नहीं होगी। तस्वीर

यहीं आजायेगी।"

"आपके भेदिये लोग ? नहीं, मैं उन्हें नहीं बताऊंगी। न ही उन्हें चाबी दूंगी।"

नरोत्तम के मन में उस तस्वीर को देखने की बहुत लालसा हो रही थी। उसने बड़ी नम्रता से कहा, "बहिन, घबरा'ओ नहीं। भाई साहब ने सब बात कह दी है। तस्वीर सुबह आयेगी और अगले दिन वापिस हो जायेगी। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि और कुछ भी चोरी नहीं जायेगा। और अब मैं आपको वहां नहीं जाने दूंगा। हमने निश्चय कर लिया है कि अब से ही आप हमारे यहां रहेंगे, ताकि डा० घोष की लड़की न जान सके कि आप कहां हैं। उसे बता दूंगा कि आप दफ्तर नहीं आईं।"

[२]

कल्याणी अकरम की प्रतीक्षा करती रही। वह नहीं आया। उस रात जब पथिक उनके घर में आया तो वह यही सोच रही थी कि अकरम सलीमा से मिलने के लिये क्यों नहीं आया। वह सलीमा को वचन दे आई थी कि अकरम को लेकर विभूतिदेवी के घर पहुँचेगी। वह सोचती थी कि सलीमा प्रतीक्षा करती होगी।

पथिक ने कल्याणी को शोकग्रस्त देखा तो पूछने लगा, "क्या बात है बहिन ? आज मुख मलिन क्यों है ?"

कल्याणी ने मन की बात छुपाते हुए कहा, "कुछ भी तो नहीं। यही सलीमा के विषय में सोच रही थी कि उसका फिर कोई पता नहीं आया।"

"आजायेगा। मुझे उस पर विश्वास है। वह जब सोचेगी तो समझ जायेगी कि उसका स्थान हमारे साथ है। हमसे दूर नहीं।"

"क्या सोचेगी दादा ? सोचना तो आपको चाहिये था। उस बेचारी का क्या दोष है ?"

"अच्छा बहिन, अब तुम उसको ढूंढ निकालो तो मैं वहां जाकर उसे मना लाऊंगा।

"ठीक। वचन दो तो मैं ढूंढने का यत्न करूं।"

"हां ! हां !! वचन दिया।"

"अच्छी बात, अखबार में विज्ञापन दिलवा देती हूं।"

इसी समय डा० घोष आगये और भविष्य के प्रोग्राम की बातें होने लगीं। पथिक ने कहा, "डाक्टर साहब, बम्बई में काम में दिक्कत हो रही है। एक तो वह कांग्रेस का घर है, दूसरे वहां के मुसलमान-विद्यार्थी बहुत बाधा डाल रहे हैं। हमारे आंदोलन में मुसलमान केवल उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। अब वहा किस को भेजूं समझ में नहीं आता। कुछ मुसलमान विद्यार्थी मिल जाते तो बात ठीक हो जाती।"

दूसरे दिन प्रातःकाल ही कल्याणी विभूतिदेवी के घर सलीमा से क्षमा मांगने गयी; परन्तु उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब विभूतिदेवी ने उसे बताया कि वह रात आई ही नहीं। अब अकरम को ढूँढने के अतिरिक्त और कोई चारा न था। उसे होटल का पता मालूम था, जहा वह ठहरा हुआ था। वह वहा पहुँची तो उसे पता चला कि अकरम अपना सामान ले चला गया है। अब उसने निश्चय किया कि वह सेठ एण्ड कम्पनी में जाकर पता करे। कम्पनी का दफ्तर खुलते ही वह वहां पहुंची। ज्योंही उसने चपरासी से कीर्तिदेवी के विषय में पूछा चपरासी ने कहा, "आपसे मैनेजर साहब मिलना चाहते हैं।"

"मुझसे ? भला बताओ मैं कौन हूं ?"

"आप कल कीर्तिदेवी से मिलने आई थीं न।"

विवश कल्याणी मैनेजर के कमरे में पहुँची। उसने पूछा, "आपको मुझसे क्या काम है ?"

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा, "मिस घोष, आपको हमारे दफ्तर में क्या काम है ? आप कल भी आई थीं और आज फिर आने की कृपा की है।"

"तो आप मुझे पहिचानते हैं ?"

"हां, आपका नाम कल्याणीदेवी है न। आप बैठिये और अपने यहां आने का कारण बता दीजिये तो अत्यन्त कृपा होगी।"

"आपके दफ्तर में एक कीर्तिदेवी नौकर हुई थी। वह मेरी सहेली है। उससे मिलने कल आई थी और आज उसे ढूंढने आई हूँ।"

"ढूंढने क्यों?"

"कल से वह लापता है।"

नरोत्तम हंस पड़ा।

"तो आपको मालूम है कि वह कल कहां रही है?"

"हां, मेरे घर में।"

"ओह। उसने मुझे भी नहीं बताया।"

"उसने मुझे कह दिया था कि अगर कल्याणी बहिन मिलने के लिये उत्सुक हो तो मिला देना।"

"और आप क्या समझते हैं कि मैं उत्सुक हूं या नहीं?"

"यही जानने के लिये तो आपको बुला भेजा है। अब आप मेरे घर जाना चाहेंगी?"

"मैं अभी कुछ निश्चय नहीं कर सकी।" वह पराये घर में ऐसे जाना नहीं चाहती थी।

"तो आपके निश्चय करने में मैं सहायता कर दूं? देखिये, मिस्टर अकरम ने कीर्तिदेवी के प्रोग्राम में परिवर्तन कर दिया है। मेरा विचार है कि आपको उसका नया प्रोग्राम जानना हो तो उससे मिल लेना चाहिये।"

"मैं सोच रही हूँ कि आखिर मुझे उसका प्रोग्राम जानने की क्या आवश्यकता है। जब तक वह अपने भाई से नहीं मिली थी मैं अपने आपको उसकी देख-भाल का उत्तरदायी समझती थी। अब·····।"

कल्याणी ने कुछ सोचकर कहा, "अब मेरी दिलचस्पी नहीं है।"

इतना कह वह दफ्तर से बाहर आने के लिये उठ खड़ी हुई। इसी समय अकरम दफ्तर में दाखिल हुआ। उसने कल्याणी को देखते ही कहा, "कल्याणीदेवी, आप मिल गयीं। बहुत अच्छा हुआ। मैं आपके घर से ही चला आ रहा हूं। आपकी मां जी कह रही थीं कि आप बहुत सुबह से ही लापता हैं। मैं तो ज्योतिषी के पास चलने के लिये

तैयार होकर आया था।"

"क्या अभी ज्योतिषी से कुछ पूछने की आवश्यकता है? मुझे मैनेजर साहब ने सब बता दिया है।"

"पूछने की नहीं। अब उन्हें बताने की आवश्यकता है। उनको धन्यवाद देना चाहता था। आप लोगों का तो धन्यवाद करने की ज़रूरत नहीं। आप तो घर के से मालूम होते हैं। हां, विभूतिदेवी जी को धन्यवाद देने ज़रूर जाना था।"

"तो सलीमा अपने आप चली जाती। मेरे जाने की क्या ज़रूरत है?"

"वह नहीं जा सकती। जानती हैं क्यों? उनको मैनेजर साहब की बीवी ने कैद कर रखा है।"

"कैद? कोई भारी जुर्म किया होगा।"

नरोत्तम हंस पड़ा और बोला, "कभी कभी बिना जुर्म के भी लोग कैद हो जाते हैं।"

"तो दारोग़ा साहब मुझे मुलाकात की इज़ाजत दे रहे हैं?"

नरोत्तम और अकरम दोनों हंसने लगे। नरोत्तम बोला, "हाँ, आप ठीक समझी हैं। देखिये, कैदी आपसे मिलना चाहता है।"

कल्याणी ने विवशता प्रकट करते हुए कहा, "मज़बूर हूँ।"

अकरम कल्याणी को लेकर सलीमा के पास गया। सलीमा ने अपना प्रोग्राम बताया और कहा, "भैया अकरम आज उनसे मिल आये हैं। उन्हें बम्बई में कुछ मुसलमान काम करने वालों की सख़्त ज़रूरत है। भैया वहां जा रहे हैं। मैं भी उनके साथ जाऊंगी, मगर बहिन उनसे न बतानां। वह अकरम से पूछते थे कि मेरा क्या होगा? अकरम ने बताया है कि यहां वह अपने मित्रों से मेरी खोज करने को कहकर जा रहे हैं। मैंने आज माता जी को एक और चिट्ठी लिखी है। उसमें अपने बहुत अच्छी तरह से होने की बाबत लिखा है। ऐसी चिट्ठियां आपको मेरी मिलती रहा करेंगी।"

कल्याणी ने कहा, "मुझे तो तुम्हारी आंख-मिचौनी का खेल पसन्द नहीं है। मैं तो चाहती हूं कि एक बार तुम दोनों को मिला दूं। यदि हो सके तो विवाह भी हो जाये। अब मिस्टर अकरम भी हैं। सब बात ठीक है। वह स्वयं आ तुमको मनाकर ले जायेंगे।"

"नहीं, नहीं। मैं यह नहीं चाहती। उनका इस वर्ष का प्रोग्राम जब तक चल रहा है, तब तक नहीं। मैं इसमें विघ्न बनना नहीं चाहती।"

कल्याणी चुप थी। यथार्थ में वह भी अनुभव करती थी कि विवाहित पथिक से अकेला पथिक इस कण्टकाकीर्ण पथ को अधिक उत्तमता से पार कर सकेगा।

[३]

संयुक्त-प्रांत में युवक-संघ के प्रचार का काम पथिक ने स्वयं इलाहाबाद से आरम्भ किया। इलाहाबाद अकेले में से साठ मंडलियां प्रचार के लिये जाने वाली थीं। पथिक ने पहले तो इन मंडलियों में जाने वाले विद्यार्थियों की एक सभा में उपदेश दिया। इस समय तो उसने केवल यह बताया कि देहातों में विद्यार्थियों को कैसा आचरण रखना चाहिये। सायंकाल इलाहाबाद में एक सार्वजनिक सभा में प्रचार का कार्य आरम्भ किया गया। इसमें पथिक का व्याख्यान मुख्य रूप से हुआ। उसने अपने कार्य को और उस कार्य के प्रयोजन को भली भांति लोगों को समझाया। इसके पश्चात् लोगों को बताया कि उन्हें क्या करना चाहिये। संक्षेप में उसका कहना था कि लोगों को राजनीतिक रूप में उन्नति करने के लिये राजनीतिक मानसिक अवस्था (Political mindedness) अपने में उत्पन्न करनी चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं कि लोग अपने धर्म, कर्म, सामाजिक और मज़हबी जीवन को छोड़ बैठें। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक अपने आपको हिन्दुस्तान का रहने वाला समझे। ऐसा समझते हुए वह दूसरे हिंदुस्तानियों से अपना विशेष सम्बन्ध समझे। प्रत्येक यह समझे कि इस समय देश में विदेशी राज्य है और इस राज्य से मुक्ति प्राप्त करना अत्यावश्यक है। उन सब बातों से घृणा करे जिनसे विदेशी

राज्य यहां स्थापित है और उन बातों को भला समझे जिनसे स्वराज्य स्थापित होना है। यह कोई बहाना नहीं हो सकता कि किसी की विशेष परिस्थिति ऐसी है कि वह सरकार के पोषक कामों में संलग्न हो रहा है। यदि कोई आदमी ऐसी परिस्थिति में है तो उसे अपनी परिस्थिति में परिवर्तन करना चाहिये। यह कैसे हो सकता है कि कोई आदमी न तो अपनी अवस्था और परिस्थिति बदलता है, साथ ही वह यह भी कहता है कि परिस्थिति से विवश है और सरकार को सुदृढ़ करने के काम के अतिरिक्त उसके पास करने को और कोई काम ही नहीं। पथिक ने इसमें एक उदाहरण भी दिया। बताया कि एक पिता अपने पुत्र को क्लर्क बनने की शिक्षा देता है और उस शिक्षा के पश्चात कुछ थोड़े वेतन के लिये सरकारी दफ्तर में भर्ती करा देता है, और इस पर वह कहता है कि उसका लड़का सरकारी नौकरी न करे तो और क्या करे। वह तो और किसी काम करने के योग्य नहीं है। ऐसा कहनेवाला या तो महामूर्ख है या अव्वल दर्जे का धूर्त। स्पष्ट बात उसे स्वीकार कर लेनी चाहिये कि वह सरकार का सहायक बनना चाहता है। इससे भी लाभ ही होगा। प्रत्येक राष्ट्रीय काम करने वाले को यह स्पष्ट रूप से विदित हो जायगा कि कौन सरकार की मशीनरी को चला रहा है या चलाना चाहता है!

पथिक ने अपना प्रोग्राम बताते हुए कहा, 'राष्ट्रीयता को सर्वोपरि समझो। यह आपके जीवन में रक्त का काम करती है। कोई भी व्यक्ति चिरकाल तक व्यक्तिगत लाभ के आधार पर जी नहीं सकता। हम देश-वासियों का जीवन परस्पर इतना ओतप्रोत है कि हम बिना एक दूसरे की उन्नति का ध्यान किये वास्तविक उन्नति नहीं कर सकते। जो व्यक्ति अथवा फिरका केवल अपनी उन्नति का ध्यान रखेगा और देश के सब लोगों की सामूहिक उन्नति को दूसरे स्थान पर रखेगा, वह व्यक्ति अथवा फिरका उन्नति नहीं कर सकता। अवश्य अवनति की ओर जायगा।"

[४]

यद्यपि प्रांतीय सरकार की ओर से यह आज्ञा निकल चुकी थी कि

पब्लिक जल्सों में खुफिया-पुलिस के रिपोर्टरों के जाने की आवश्यकता नहीं है, इस पर भी रिपोर्टर जाते ही थे। महकमा-पुलिस मन्त्री-मण्डल के आधीन नहीं था और इसका संचालन गवर्नर बहादुर स्वयं प्रान्तीय सरकार के चीफ सेक्रेटरी द्वारा करते थे।

इलाहाबाद की उस मीटिंग में भी, जिसमें पथिक व्याख्यान दे रहा था, एक इन्सपैक्टर दो रिपोर्टरों के साथ मौजूद था। इन्सपैक्टर का नाम था ज्योतिप्रसाद मिश्र। इन्सपैक्टर ने जब पथिक को देखा तो उसे प्रतीत हुआ कि वह कोई देखा-भाला आदमी है। जब तक जल्सा होता रहा वह यह स्मरण करने का यत्न करता रहा कि वक्ता को उसने कहा देखा है। वह बार बार उसके मुख की ओर देखता था और फिर आंखें मूंद कर अपने पूर्व परिचित लोगो का स्मरण कर उनकी मुखाकृति मिलाता था, परन्तु वह कहीं ठीक मिलती नहीं थी। पुलिस के दूसरे लोग जल्से की कार्यवाही लिखने में लगे हुए थे और इन्सपैक्टर पथिक को पहिचानने में।

जल्सा समाप्त हुआ और इन्सपैक्टर अभी भी अपने प्रयत्न में असफल ही था। जब पथिक हॉल से बाहर निकला तो इन्सपैक्टर समीप जाकर एक अंतिम प्रयत्न करना चाहता था। उसने पथिक से हाथ मिलाकर कहा, "आपके विचार सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है।"

पथिक ने सहज भाव से कह दिया, "आप लोगों की प्रसन्नता देख कर कुछ उत्साह बढ़ता नहीं है।"

इन्सपैक्टर ने हाथ मिलाने में निसंकोच भाव तथा निर्भयता पर विशेष ध्यान दिया। इसका भी कुछ परिणाम नहीं निकला। उसका मन कहता था कि वह कोई पुराना राजनीतिक दोषी है, और किसी मुकदमे में फंस चुका है। पिछले कई वर्षों के मुकदमों के दोषी तथा सन्देहोत्पादक व्यक्तियों के चित्र खुफिया-पुलिस के दफ्तर में रखे थे। उसने एक एक चित्र ध्यान से देखा। परन्तु उसका चित्र वहां नहीं था।

ज्योतिप्रसाद मिश्र ने इतने से आशा नहीं छोड़ी। उसने दो सफेद-

पोश पथिक के पीछे लगा दिये। स्वयं उसने पथिक के मामले में खोज करने के लिये संघ के कार्यालय कलकत्ते में जाने का निर्णय कर लिया।

कलकत्ते में जब वह संघ के कार्यालय में पहुँचा तो वहां मलिन्द और कल्याणी बैठी डाक देख रही थीं। ज्योतिप्रसाद ने सूचना भिजवाई। कार्यालय मे पहुँचने पर मलिंद ने उसे बैठने का संकेत कर पूछा, "आप क्या चाहते हैं?"

"पथिक का पूर्व परिचय।"

"हम लोग नहीं जानते।"

"वह यहा किस स्थान से आया था?"

एक गांव और ताल्लुकेदारी है जिसे देवा कहते हैं। वहां से।"

ज्योतिप्रसाद वहा से सफल न हो देवा पहुंचा। देवा मे वह थाने में गया। थानेदार ने, जो कुछ परिचय वह जानता था, बताकर कहा, "वह यहा के ताल्लुकेदार सुरेश बाबू का बहुत मित्र है। सुरेश बाबू का एक मित्र है विजयबहादुर। वह गाव मे सरकारी मुखबिर (लोगों के समाचार देने वाला) है। विजयबहादुर की पथिक से शत्रुता रही है, इस कारण वह आपको बहुत सी बाते और बता सकेगा।"

परिणामस्वरूप बिजयबहादुर बुलाया गया। उसने बताया, "कुछ दिन हुए कलकत्ते के एक सेठ और उनके मैनेजर यहां आये थे। वे सुरेश बाबू के मेहमानखाने में ठहरे थे। उन्होंने मोहन की बहिन नलिनी से और मोहन की मा से बहुत बातें पूछी थीं और अन्त में सेठ साहब ने कहा था, 'यह अवश्य वही है।' सुरेश बाबू के पूछने पर उन्होंने बताया था कि वह पथिक को जानते हैं।"

ज्योतिप्रसाद इस सूचना से फड़क उठा। उसने बिजयबहादुर से पूछा, "तुम्हें इसका कैसे पता चला? क्या यह बात तुम्हारे सम्मुख हुई थी?"

"नहीं, मुझे एक नौकर ने बताई थी जो सेठ साहब की खिदमत करने में लगा था।"

"सेठ साहब का नाम बता सकते हो?"

"सुरेश बाबू को मालूम है। मुझे मालूम नहीं।"

"तुम मालूम कर सकते हो?"

"नहीं साहब। सुरेश से मेरी बातचीत बन्द हो गई है।"

इस समय ज्योतिप्रसाद को एक तरकीब सूझी। उसने देवा के थानेदार को सुरेश के पास भेज कलकत्ते के सेठ साहब का पता मंगवा लिया। पता था:—"सेठ एण्ड कम्पनी कलकत्ता के मालिक सेठ कुँजबिहारी।"

सेठ कुँजबिहारी का नाम वह जानता था। इलाहाबाद के एक बड़े रईस थे जो अब कलकत्ते जा बसे थे। एकाएक उसे यह स्मरण हो आया कि सेठ साहब सन् १६२६ में एक ब्राह्मण के लड़के में भारी दिलचस्पी ले रहे थे। उस लड़के का नाम मधुसूदन था और मधुसूदन के खिलाफ उन्हीं के घर डाका डालने में सहायता देने का दोषारोपण था। पुलिस जब यह सिद्ध नहीं कर सकी थी तो उसे रैग्युलेशन १८१८ का बन्दी बना लिया गया था। सेठ साहब का नाम सुनते ही ये बातें इंसपैक्टर ज्योतिप्रसाद के मन में प्रस्फुरित हो उठीं।

वह देवा से इलाहाबाद लौटा तो अपनी सफलता पर अति प्रसन्न था, परन्तु जब उसने मधुसूदन का रिकार्ड निकलवाकर देखा तो उसके जङ्गल में बाघ से मारे जाने की बात पढ़कर अति निराश हुआ। वह अपनी इस चमत्कारक खोज से अपने अफसरों को खुश कर देना चाहता था, परन्तु वह सोचता था कि अब उसे यह सिद्ध करना पड़ेगा कि मधुसूदन मरा नहीं था। उसके मरने की रिपोर्ट ग़लत थी। यह सीधी बात नहीं थी। अतएव उसने रिपोर्ट और उसके साथ मृत्यु पर खोज (inquest) की कार्यवाही पढ़ी। उसमें किसी प्रकार का छिद्र न देख कोई अन्य उपाय सोचने लगा। एकाएक उसके मन में आया कि सेठ कुंजबिहारी से जाकर पूछना चाहिये। शायद कोई बात का पता चल जाये।

[५]

नरोत्तम से सलीमा ने जब नलिनी की तस्वीर और पूर्णिमा की

तस्वीर में समानता का वर्णन किया था तो उसके मन में केवल शुद्ध जिज्ञासा का भाव ही उत्पन्न हुआ था। वह जानना चाहता था कि वह कौन लड़की है, जो पूर्णिमा से इतनी मिलती-जुलती है। उसी समय उसने अपने एक भेदिये को रासबिहारी एविन्यू नं० १०५ की चाबी देकर भेजा कि वहा अमुक कमरे में पड़े सन्दूक में रखी एक लड़की की दो तस्वीरों को उठा लाये। अगले दिन वह भेदिया प्रातःकाल, जब पथिक भ्रमणार्थ जाया करता था, घर में घुसकर उस सन्दूक में रखी कई तस्वीरें उठा लाया। नरोत्तम ने जब नलिनी की तस्वीरों को देखा तो वह उनकी पूर्णिमा से समानता देख चकित रह गया। उन तस्वीरों में, जो भेदिया लाया था, एक तस्वीर पथिक की अपनी थी। इस तस्वीर को देख तो नरोत्तम सन्न रह गया। यह तस्वीर उसके एक परम मित्र मधुसूदन की थी। मधुसूदन से ही उसकी स्वर्गीय बहिन पूर्णिमा का विवाह होने वाला था। उसने सलीमा से पूछा, "क्या यही आपके पथिक साहब हैं?"

"जी हा," सलीमा ने आंखे नीची किये हुए कहा।

"ओह!" इसके आगे नरोत्तम कुछ नहीं कह सका। वह तुरन्त सेठ साहब के पास गया और उन्हें पथिक का चित्र दिखाया। सेठ साहब ने चश्मा चढ़ाकर उस तस्वीर को बहुत ध्यान से देखा और जब उन्होंने कह दिया कि यह मधुसूदन की तस्वीर है तो सन्देह को स्थान नहीं रहा।

सेठ साहब तुरन्त मधुसूदन से मिलने चल पड़े। परन्तु होनी ऐसी नहीं थी। जब ये लोग रासबिहारी एविन्यू में पहुंचे तो पथिक मद्रास के लिये रवाना हो चुका था। वहां मिली मलिन्द। नरोत्तम ने पथिक के विषय में बहुत प्रश्न किये, परन्तु सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। सेठ साहब ने यह सोचा कि पहिले देवा से पता करना चाहिये। वहां के लोग पथिक के विषय में मलिन्द से अधिक जानते होंगे। साथ ही नरोत्तम पूर्णिमा का प्रति-रूप नलिनी को देखने के लिये व्याकुल हो रहा था। अतएव दूसरे ही दिन वे लोग देवा के लिये रवाना हो गये। देवा में वे तीन दिन रहे। सुरेश बाबू से मिले और मोहन की मां और नलिनी से

मिले। नलिनी सत्य ही पूर्णिमा की ठीक प्रतिलिपि थी। जब नलिनी के जन्म-दिन का पता किया गया तो वे लोग यह देखकर चकित रह गये कि वह पूर्णिमा के देहावसान से ठीक तेरह दिन पीछे की बात है। उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब मोहन की मा ने बताया कि नलिनी ने पथिक को देखते ही यह कहा था कि वह उसे जानती है और उसने उसे पहले कहीं देखा है। नलिनी से पूछने पर उसने आंखें मूँदकर फिर कहा, "पथिक को मैंने देखा है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह मेरा कोई निकटस्थ सम्बन्धी है।"

नरोत्तम ने नलिनी से बहुत प्रश्न पूछे। उनके उत्तर भी स्पष्ट नहीं थे। कुछ धुंधली स्मरण-शक्ति वाला वृद्ध जैसे बचपन की बातें करता है वैसे ही वह अन्टसन्ट कहने लगती थी। यद्यपि कोई प्रमाण नहीं था तो भी नरोत्तम को विश्वास सा हो गया था कि उसकी बहिन पूर्णिमा का ही पुनर्जन्म नलिनी के रूप में हुआ है। पथिक के विषय में उन्हें कुछ विशेष पता नहीं चला।

उनके कलकत्ते लौटने के लगभग एक मास पश्चात ज्योतिप्रसाद देवा और इलाहाबाद में खोज करता हुआ वहां पहुँचा। सेठ साहब इन्सपैक्टर को देख मधुसूदन के विषय में आशंका करने लगे। उन्होंने इन्सपैक्टर को बैठने का संकेत कर पूछा, "क्या काम है?"

इन्सपैक्टर ने बैठते हुए पूछा, "क्या आप मुझे पहिचानते हैं?"

"खूब! बहुत अच्छी तरह। आप खुफिया-पुलिस के इन्सपैक्टर हैं।"

"आपकी स्मरणशक्ति की मैं प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। मैं आपसे कुछ बातें पूछने आया हूँ।"

"हां पूछिये।"

"यह मिस्टर नरोत्तम आपके क्या लगते हैं?"

"मेरे कारोबार के जनरल मैनेजर हैं।"

"आपने उन्हें इतने बड़े काम पर नियुक्त कर उन पर बहुत भरोसा किया हुआ है।"

"वह बहुत ही ईमानदार आदमी है।"

"आप युवक-संघ की बाबत कुछ जानते हैं?"

"नहीं।"

"मिस्टर पथिक से आप कभी मिले हैं?"

"कौन पथिक? मैं किसी पथिक को नहीं जानता।"

"आप देवा किस लिये गये थे?"

"सुरेश बाबू से कुछ काम था।"

"मगर वहां पथिक के विषय में भी तो पूछ-गीछ की थी आपने।"

"बातों ही बातों में ज़िकर आया था, परन्तु मैंने पथिक को देखा नहीं, न ही पहिचानता हूँ।"

"आपको याद होगा कि १६२६ में आपका एक परिचित पकड़ा गया था और रैग्युलेशन १८१८ का बन्दी बना लिया गया था।"

"हां, हमारे पुरोहित के लड़के को।"

"आपके पास उसका कोई चित्र है?"

"नहीं। क्यों?"

"कुछ नहीं। मुझे कुछ सन्देह होता है कि मैंने उसे कहीं देखा है। परन्तु मैं हैरान हूँ कि यह कैसे हो सकता है।"

सेठ साहब ने हंसते हुए कहा, "अब आप पैन्शन ले लें तो ठीक रहेगा। आपको अब मरे हुए भी दिखाई देने लगे हैं।"

"अभी तक तो मेरी आखें और दिमाग़ ठीक काम करते हैं।"

"दिमाग़ तो आपका उस समय भी ख़राब था जब आपने उसे पकड़कर बन्दी बनवाया था।"

ज्योतिप्रसाद हंस पड़ा और कहने लगा, "अभी आप उस समय की बात भूले नहीं हैं।"

"और आपके दिमाग़ में तो वह बेचारा अभी भी चक्कर काट रहा है। अच्छा तो बताइये, अब उस बात को दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, क्या इतने समय में भी आप उसके विपरीत कुछ प्रमाण पा सके हैं?"

"सत्य बताऊं ?"

"और क्या, यहां कोई अंग्रेजी अदालत थोड़े ही बैठी है जो झूठ बोलकर धोखा दे दोगे।"

ज्योतिप्रसाद ने हंसते हुए कहा, "सबूत तो नहीं मिला। परन्तु मेरा मन कहता है कि उसका सम्बन्ध क्रान्तिकारी लोगों से था ज़रूर। वह सर्वथा निर्दोष नहीं था।"

"और आपका मन अब कहता है कि वह कलकत्ते में कहीं घूम रहा है। अरे बाबा! किसी और निर्दोष को फंसाने की नियत क्यों बना ली है? क्या तुम्हारी आत्मा तुमको धिक्कारती नहीं है? तनिक विचार करो कितने निर्दोषों को फांसी के तख्ते पर लटकवा चुके हो। तुम्हारे कोई बहिन, भाई, बेटा, बेटी नहीं है जिनसे तुम्हारा कुछ भी प्रेम हो? यदि तुमको केवल संशय-मात्र पर काल-कोठरी में डाल दिया जाय तो तुम्हारे स्त्री, पुत्र, भाई अथवा बहिन के मन पर क्या बीतेगी? उनके रोने-धोने, उनकी आर्थिक दुर्दशा का ध्यान करो और फिर सोचो कि जिस निर्दोष को तुमने फसाया था उसका भी कोई सम्बन्धी था और उस सम्बन्धी को भी दुःख हुआ होगा।"

इस प्रकार सम्बोधन किये जाने पर ज्योतिप्रसाद के मस्तक पर से पसीने की बूँदें टपकने लगीं। उसकी आत्मा में भय समा गया था। क्या जाने कितने मुकदमों में झूठी गवाही पैदा कर उसने मुकदमों की स्वाभाविक त्रुटियों को मिटाया था। जब सेठ साहब उसके पुत्र-स्त्री की अवस्था का उसके पकड़े जाने पर वर्णन कर रहे थे, वह कानों में उँगलियां देकर उठ खड़ा हुआ और बिना कुछ कहे दफ्तर से बाहर निकल गया।

सेठ साहब इन्सपैक्टर पुलिस को भयभीत कर निश्चिन्त नहीं हुए। वह भली भांति समझते थे कि ऐसे आदमियों का पश्चाताप स्थाई नहीं हो सकता। इस प्रकार के लोग अपने अफसरों को प्रसन्न करने के लिये सच-झूठ की परवाह न कर अपनी कारगुज़ारी दिखाते रहते हैं। ऐसा करना उनके लिए अनिवार्य है। उनके वेतन में, मान-मर्यादा

में और पदवी में उन्नति का आधार मुकदमों को सफल बनाना है। सेठ साहब भली भांति समझते थे कि अगले ही दिन वह पश्चाताप, जो पुलिस-इन्सपैक्टर के मन में व्याप्त दिखाई देता है, मिट जायगा और फिर अपने अफसरों को प्रसन्न करने के लिये और कुछ न कुछ कार-गुज़ारी कर दिखाने के लिये वह फिर निरापराधों को फंसाने में लग जायगा।

इस प्रकार विचार कर सेठ साहब ने नरोत्तम को बुलाकर सब बात बताई और कहा, "इसमें अब सन्देह नहीं रहा कि पथिक मधुसूदन है और इसको भी निश्चय ही समझो कि पुलिस को भी सन्देह हो गया है। ऐसी अवस्था में मधुसूदन का पकड़ा जाना बहुत सम्भव है। यदि उससे मिलकर उसको सचेत कर दो तो कुछ बचाव की सूरत हो सकती है।"

[६]

युवक संघ के प्रचार-कार्य से संयुक्त-प्रांत भर में ऐसी हलचल मच गई थी कि जिसका वर्णन करना सहज नहीं था। प्रांत भर के पुलिस-थानों से विद्यार्थियों के इन कामों की रिपोर्टें लखनऊ में धड़ाधड़ आने लगी थीं। यह आन्दोलन अभी एक सप्ताह तक भी नहीं चला था कि पुलिस-अफसरों और प्रांतीय सरकार के चीफ सेक्रेटरी तक के कान खड़े हो गये। ये लोग रिपोर्टों को पढ़कर सोचते थे कि यह क्या आंदोलन है? इसका प्रयोजन क्या है? कौन इसे चला रहा है और इस आंदोलन का फल क्या होगा? चीफ सेक्रेटरी ने वह पुस्तक मंगवाई जो पथिक ने संघ के सदस्यों के प्रचार में सहायतार्थ लिखी थी। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् उसकी बेचैनी का ठिकाना नहीं था। बात यह थी कि पुस्तक में कोई भी बात कानून के विरुद्ध नहीं थी। इस पर भी मूल रूप से वह लोगों को सरकार के विरुद्ध संगठित करने के लिये भारी प्रभाव रख सकती थी। इसी पुस्तक की बातों का प्रचार गांव २ में, कस्बे २ में, नगर २ में और नगरों में मुहल्ले २ में हो रहा था। ऐसे विस्तृत और व्यापक

आंदोलन को चलाने वाला कौन है, यह स्पष्ट नहीं था। चीफ सेक्रेटरी का सन्देह स्वाभाविक रूप में मन्त्री-मंडल पर गया। इस कारण वह सीधा गवर्नर के पास पहुंचा। लगभग एक घण्टे के वार्तालाप के पश्चात् चीफ सेक्रेटरी बहुत लम्बा मुख बनाये गवर्नर की कोठी से निकला।

कृष्णकुमार एक जत्थे के साथ लखनऊ से चलकर रायबरेली पहुंचा और वहा से वह साथियों सहित देहात में प्रचार के लिये निकल पड़ा। पहिले आठ दस दिन तो बहुत सुभीते के निकल गये। पुलिस के कर्मचारी और अन्य सरकारी अफसर या तो इन लोगों को कुछ कहते ही न थे या कहते थे तो वे इनके रहने, खाने पीने में सहायता देने के लिये। परन्तु एक दिन एकाएक व्यवहार में परिवर्तन हो गया।

विनोद अवध भर का नायक था। वह एक-एक दो-दो दिन प्रत्येक मण्डली के साथ रहकर उनके काम का निरीक्षण कर रहा था। कृष्ण-कुमार की मण्डली घूमती हुई एक गांव कृष्णगंज में पहुंच चुकी थी। विनोद आज उनके साथ काम करने के लिये पहुँचा था। ये लोग रात को एक मन्दिर में सोये। प्रातःकाल उठे तो विनोद वहां पहुँच गया। स्नानादि कर गांव में घोषणा करने के लिये एक विद्यार्थी ने डुग्गी गले में लटका ली। वह एक और को साथ लेकर जाने ही वाला था कि वहा पुलिस आ धमकी। एक कांस्टेबल एक दस्ती लिखा कागज का टुकड़ा लिये आ पहुँचा। लिखा था, "शिव मंन्दिर में जितने गांव से बाहर के लोग आये हैं, थाने में उपस्थित करो।"

यह पैन्सिल से लिखा कागज का टुकड़ा जब विनोद ने पढ़ा तो उसने पूछा, "इसका लिखने वाला कौन है?"

"दारोगा साहब।"

"कैसे पता चले? नाम तो किसी का लिखा नहीं।"

"वहा चलकर पता चल जायगा।"

"आखिर हम लोग वहां जायें ही क्यों?"

"तुम सब बदमाश हो इसलिये।"

विनोद का देहाती पुलिस से पहला वास्ता था। वह कुछ सोचकर साथियों से बोला, "कुछ ग़लती होगयी प्रतीत होती है। मैं चाहता हूँ कि व्यर्थ का झगड़ा न खड़ा हो जाय, इसलिये थाने चला ही जाना चाहिये।"

मण्डली के सब के सब लोग थाने पहुँचे। थानेदार अभी घर से बाहर नहीं निकला था। विवश वे लोग उसकी प्रतीक्षा करने लगे। बारह बजे तक दारोग़ा थाने में आया। इस समय वह कांस्टेबल जो विद्यार्थियों को बुलाकर लाया था खाना खाने चला गया था। एक बार विनोद ने दारोग़ा से जाकर कहा भी, "फरमाइये हमें क्यों बुलाया है?"

विनोद को उत्तर मिला, " अभी ठहरो "

"साहब हमने खाना नहीं खाया। सबको भूख लग रही है।"

"तो मैं क्या करूं?"

विनोद इस छोटी सी बात से सारी योजना को बदनाम नहीं करना चाहता था। अतएव क्रोध को भीतर ही भीतर पी गया। दो घण्टे की और प्रतीक्षा के बाद वही कान्स्टेबल एक अधेड़ उमर की औरत को साथ लिये थाने में आ पहुँचा। औरत को दारोग़ा साहब के सम्मुख पेश कर उसका बयान लिखा दिया। बयान इस प्रकार था, "आधी रात गुजर चुकी थी कि मेरे मकान के सेहन में खड़ाक के शब्द से मेरी नींद खुल गयी। मैं उठकर खाट पर बैठ गयी। मैं चिल्लाकर शोर मचाना ही चाहती थी कि दो आदमियों ने मेरे मुख में कपड़ा ठूंस दिया और पीछे उन्होंने मेरे साथ व्यभिचार किया। बारी बारी से सब ने। लगभग एक घण्टे के पश्चात् वे वहां से दीवार फांदकर चले गये। चांद की चांदनी में मैंने देखा कि सब छै जने थे।"

बयान लिखने के पश्चात् दारोगा ने पूछा, "तुम उनको पहिचानती हो?"

"वही लौंडे थे जो कल बाजार में लोगों को बतला रहे थे।"

"तुम उनको पहिचान लोगी?"

"हां, जरूर पहिचान लूँगी।"

दारोगा ने विनोद और दूसरे लड़कों को कमरे के भीतर बुला लिया। सब को एक पंक्ति में खड़ा कर दारोगा ने उस औरत से कहा, "देखो तो इनमें कोई है ?"

औरत ने लड़कों के समीप आकर देखा। विनोद पर हाथ रख बोली, "इसने मेरा मुख बन्द किया था।"

फिर एक और की ओर संकेत कर कहने लगी, "इसने मेरे मुख पर पट्टी बाधी थी।" पश्चात बोली, "ये सब थे जिन्होंने मेरे साथ दुराचार किया था।"

सब लड़के अवाक मुख खड़े रह गये। दारोगा ने हुक्म दिया, "सब को हवालात में डाल दो।"

विनोद तो यह सब माजरा देख संज्ञा-शून्य हो कितनी ही देर खड़ा रहा। आखिर कहने लगा, "मैं अपने घर समाचार भेजना चाहता हूँ।"

"कैसे भेजोगे ?"

"तार द्वारा।"

दारोगा ने सोचकर स्वीकृति दे दी।

[७]

विनोद का तार मिस्टर माथुर को सायंकाल मिला। लिखा था, "मैं साथियों सहित जबर-ज़नाह के दोष में पकड़ा गया हूं। विनोद।"

मिस्टर माथुर यह तार पाकर दंग रह गये। उन्हें अपने लड़के पर भारी विश्वास था। इस पर भी उन्हें बहुत क्रोध चढ़ आया। उनके मुख से निकल गया, 'लड़का अब कष्ट देने लगा है।' इस समय कुछ मित्र समीप ही बैठे थे। एक ने पूछा, "दादा क्या है ?"

मिस्टर माथुर ने तार उसके हाथ में दे दिया। सब मित्र उठकर तार पढ़ने लगे। सबके मुख क्रोध से लाल हो गये। एक ने कहा, "यह झूठ है।"

मिस्टर माथुर ने कहा, "यह तो मैं भी समझता हूँ, परन्तु लड़का

बदनाम तो हो जायगा।"

इस पर सब बोल उठे, "विनू का क्या दोष है?"

मिस्टर माथुर जानते थे कि शेखरानन्द प्रान्त भर का नेता है। उसने संघ का दफ्तर अमीनाबाद पार्क में बना रखा था। इस कारण वह पहिले शेखरानन्द से ही मिलने गये। शेखरानन्द अपने दफ्तर में बैठा तारों और चिट्ठियों के ढेर को सामने रखे बड़े सोच में पड़ा था। वह विनोद के पिता को आया देख खड़ा हो, नमस्ते कर, प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगा। मिस्टर माथुर ने विनोद का तार उसके सामने कर दिया। शेखरानन्द ने तार को पढ़ा। मिस्टर माथुर को एक कुर्सी पर बैठा शेखरानन्द ने मेज पर तारों और चिट्ठियों के ढेर में से एक तार उठा कर सामने कर कहा, "जरा इसे भी पढ़िये।"

लिखा था, "सारी मंडली चोरी के इल्ज़ाम में पकड़ी गई है।"

शेखरानन्द ने एक और तार दिखाया। इसमें लिखा था, "सब पकड़े गये हैं। कुछ कारण नहीं बताया।"

एक और तार दिखाया। लिखा था, "जलसे में पुलिस ने लठिया चलाई और पीछे बलवे का दोष लगाकर पकड़ लिया है।"

अब शेखरानन्द ने एक चिट्ठी दिखाई। लिखा था, "सारी पार्टी में से तीन को एक औरत को बेइज्ज़त करने के कारण पकड़ लिया है।"

मिस्टर माथुर अब एक एक कर सब डाक पढ़ने लगे। प्रान्त भर में यही दमन नीति चलाई गई थी। अब उन्हें वह क्रोध जो विनू पर था बदलकर सरकार के विपरीत हो गया। उन्हें विश्वास हो गया था कि प्रान्त भर में जब एक ही नीति चल रही है तो निश्चय लखनऊ से आज्ञा जाने पर ऐसा हुआ है। उन्होंने सब डाक बटोरकर एक बड़े लिफाफे में डाल ली और शेखरानन्द को साथ ले महामन्त्री के पास पहुंचे।

महामन्त्री को विद्यार्थी-संघ की सूचना तो मिल चुकी थी, परन्तु वह यह नहीं जानता था कि ये लोग क्या कर रहे हैं और कहां कहा कर

रहे हैं। शेखरानन्द ने कार्यक्रम महामन्त्री को समझाया और पश्चात बताया, "दो सौ से ऊपर विद्यार्थियों की मंडलियां प्रान्त में भिन्न२ स्थानों पर प्रचार कर रही थीं। कुछ दिन तक तो सब की सूचना भली भांति कार्य चलने की आती रही, परन्तु कल से ये तार और चिट्ठियां आ चुकी हैं। एकाएक ही यह झगड़ा पुलिस की ओर से खड़ा हो गया है।"

महामन्त्री बहुत परेशान था। वह यद्यपि इतने विस्तृत आन्दोलन को पसन्द नहीं करता था, परन्तु वह यह भी पसन्द नहीं करता था कि उस प्रान्त में जहां का वह महामन्त्री है ऐसा अनर्थ हो। वह सोचता था कि एक ही दिन-रात में एक हज़ार से ऊपर विद्यार्थी ऐसे झूठे लांछनों पर पकड़े गये। सब के सब राजनीतिक काम करने वाले, परन्तु चरित्र सम्बन्धी दोषों में दोषी बनाये गये। उसके लिये यह सब अवस्था शोचनीय हो उठी थी। मिस्टर माथुर ने कहा, "मैंने तो आपसे पहिले ही कहा था कि सन् ३० और ३२ में अन्यायपूर्ण व्यवहार करने वाले अफसरों पर जांच-कमेटी बैठा देनी चाहिये थी। इसका परिणाम यह होता कि, जो अन्धेरगर्दी ये लोग अपने अफसरों के इशारों पर कर देते हैं, अब करते समय झिझकते।"

"आप कहते तो ठीक हैं," महामन्त्री ने सिर झुकाये हुए कहा, "मगर गवर्नर इस बात की स्वीकृति न देता।"

"तो क्या आप केवल वही काम करने के लिये मन्त्री बने हैं, जो गवर्नर को पसन्द होंगे?"

"परन्तु एक और बात भी है। जब एक पार्टी शक्ति हाथ में ले तो क्या वह दूसरी पार्टी के समय काम करने वाले अफसरों पर जांच-कमेटी बैठाया करे? यह सिद्धान्त-रूप से ग़लत बात है।"

"ओह! तो आप गवर्नर और अंग्रेज़ी सरकार को देश की एक राजनीतिक-पार्टी समझते हैं। लोगों ने कांग्रेस को एक पार्टी समझकर वोट नहीं दिया था। लोग तो आपको देश के प्रतिनिधि समझते हैं। देशी और विदेशी दो दल हैं। यह वैसी पार्टी नहीं जैसी इंगलैण्ड में

टोरी और विग थे। आपको तो यह जांच करने का पूरा अधिकार था कि विदेशियों के आधीन किस किस ने नियम के प्रतिकूल देशवासियों को कष्ट पहुँचाया है। अब इस विषय में भी आप कुछ करियेगा या नहीं?"

महामन्त्री ने कहा, "मैं कल सुबह यत्न करूंगा।"

मिस्टर माथुर उसी रात कृष्णगज पहुँचे और दूसरे दिन रायबरेली की जिला कचहरी में ज़मानत दिलवाकर विनोद और उसकी पार्टी को छुड़ा लाये। दूसरी ओर महामन्त्री के प्रयत्न का यह फल निकला कि चीफ सेक्रेटरी इस बात के लिये राजी होगया कि सब पकड़े हुए विद्यार्थियों को ज़मानत-मुचलकों पर छोड़ दे और पुलिस की कार्यवाही की जाच के लिये दो-चार 'टैस्ट केसेज़' (नमूने के मुकदमे) चलने दिये जायें।

युवक-संघ के प्रायः सब लोग छूट तो गये, परन्तु ज़मानत-मुचलकों में यह लिखा लिया गया था कि वे लोग अब अपने अपने हल्कों में भ्रमण नहीं करेंगे। इस प्रकार पहिले ही प्रान्त में पथिक की योजना केवल एक ही सप्ताह तक चल सकी।

पंजाब में केन्द्रीय सरकार की सूचना आने पर ही सब कॉलेजों के प्रिन्सिपलों को डायरेक्टर ऑफ एजुकेशन (Director of Education) का डी० ओ० आगया कि युवक-सघ एक अस्वीकृत संस्था (unauthorized organization) है और किसी भी युनिवर्सिटी से प्रमाणित (recognized) कॉलेज के विद्यार्थी उसमें नहीं जा सकते। परिणाम यह हुआ कि कॉलेजों के अधिकारियों ने अपने २ कॉलेज के लड़कों को मना कर दिया। लड़कों को यह धमकी दे दी कि यदि वे इस संस्था से सम्बन्ध रखेंगे तो कॉलेज से निकाल दिये जायेंगे। इस धमकी ने कॉलेज के विद्यार्थियों में एक बार तो क्रोध उत्पन्न किया, परन्तु प्रांत भर से कोई प्रोत्साहन न पाकर उनका क्रोध शीघ्र ही शान्त होगया। लड़कों के इस उत्तम आचरण पर कॉलेजों के प्रिन्सिपलों और प्रान्त के अन्य बड़े बड़े लोगों ने उनको बधाइया दीं। प्रान्त के एक वयोवृद्ध शिक्षा

के विशेषज्ञ ने इस समय एक अंग्रेजी समाचार-पत्र में विद्यार्थियों की अनुशासन-प्रियता की सराहना करते हुए लिखा, "पंजाब को इस बात का मान होना चाहिये कि पंजाब के युवक प्रान्त के दूसरों युवकों से अधिक विचारशील और गम्भीर सिद्ध हुए हैं।"

केन्द्रीय सरकार की ओर से सब प्रान्तों की सरकारों को युवक-संघ की योजना में बाधा डालने के लिये लिखा गया था। पंजाब सरकार ने इस योजना को सरलता से रोक दिया। बंगाल सरकार ने इस संस्था के केन्द्र-स्थान पर अधिकार जमाकर अपनी ओर से इसका स्रोत बन्द कर दिया। बम्बई प्रान्त में कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल को गवर्नर द्वारा संघ की कार्यवाही का रोका जाना पसन्द नहीं आया और मन्त्री-मण्डल ने गवर्नर को पहिले ही सचेत कर दिया कि वे लोगों के अपने विचारों के प्रचार में बाधा पसन्द नहीं करेंगे। जो नीति संयुक्त प्रान्त में चली थी वह बम्बई में दुहराई नहीं जा सकती थी। अतएव बम्बई सरकार बहुत परेशान थी।

देश की परिस्थिति भी सरकार के अनुकूल होती जाती थी। जब कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल बने तो शुद्ध कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल ही बनाये गये। कांग्रेस के लिये ऐसा करना सम्भव था। कारण यह कि कांग्रेस-पार्टी में सब फिरकों (Religions) के लोग सम्मिलित थे। कांग्रेस एक राजनीतिक विचार (Creed) के आधार पर बनी थी। इसके विपरीत मुस्लिम-लीग और हिन्दू-महासभा को पहिले तो कुछ सफलता नहीं मिली। पश्चात् जब दो प्रान्तों में दो मुसलमान पार्टियां बहुसंख्या में चुनाव में चुनी गयीं तो वे कांग्रेस की तरह सब फिरकों के लोगों का मन्त्री-मण्डल नहीं बना सकीं। कारण स्पष्ट था। ये मुसलमान पार्टिया किसी राजनीतिक विचार के आधार पर नहीं थीं, प्रत्युत फिरकेदारी के विचार पर बनी थीं। इसलिये अपने अपने फिरके के लोग ही रखती थीं। परिणाम यह हुआ कि इन मुस्लिम पार्टियों को अपने से विरोधी विचार की पार्टियों में से भी मन्त्री बनाने पड़े। मुसलमान पार्टियों वाले चाहते

तो थे कि वे केवल मात्र अपनी पार्टी में से ही मन्त्री-मण्डल बनायें, परन्तु इन पार्टियों के नेताओं के मन में मन्त्री बनाने का लोभ शायद पार्टी का अधिकार-निर्माण करने से अधिक था। या शायद वे स्वयं भी समझते थे कि पार्टी एक फिरके की होने से प्रान्त में मन्त्री-मण्डल नहीं चला सकेंगे। परिणाम यह हुआ कि उन प्रान्तों में जहां कांग्रेस के सदस्य बहुसंख्या में चुने गये वहां तो शुद्ध काग्रेसी मन्त्री-मण्डल बन गये और जहां मुस्लिम पार्टियों के लोग बहुसंख्या में थे उन्हें मिश्रित मन्त्री-मण्डल बनाने पड़े।

मुसलमान नेता इस बात से लज्जित थे। वे देश भर में एक स्थान पर भी विशुद्ध अपनी पार्टी का मन्त्री-मण्डल नहीं बना सके। ऐसी परिस्थिति में इसके कारण को जानने और यथार्थ त्रुटि को दूर करने के स्थान पर उन्होंने उस पार्टी पर निराधार दोषारोपण करने आरम्भ किये जो पार्टी अपने विशुद्ध मंत्री-मण्डल बनाने में सफल हुई थी। चाहिये तो यह था कि वे अपनी पार्टी-बन्दी के तरीके में त्रुटि को पहिचानते। उन्हें यह समझना चाहिये था कि राजनीतिक पार्टियां मज़हबी विचारों के आधार पर नहीं बन सकतीं। ऐसी पार्टी में चाहे आप कितनी भी राजनीति पर चर्चा करें जब तक उसके सिद्धान्तों में एक फिरके के लोभ की ही बातें होंगी तब तक दूसरे फिरके वाले उसमें सम्मिलित नहीं हो सकेंगे।

कांग्रेस-नेता स्वयं तो एक राजनीतिक पार्टी बनाने में सफल होगये, परन्तु वे यह नहीं समझ सके कि उनके विपक्षी कोई राजनीतिक पार्टी नहीं हैं। उदाहरण के रूप में कांग्रेस-पार्टी देश को स्वतन्त्र करना अपना ध्येय मानती थी तो क्या विपक्षी देश को स्वतन्त्र न करना अपना ध्येय मानते थे? या यों कहो कि काग्रेस यदि घरेलू दस्तकारियों को प्रोत्साहन देना चाहती थी तो क्या उसके विपक्षी घरेलू दस्तकारी के विरोधी थे? या यदि कांग्रेस वाले किसानों को आर्थिक सुभीता देना चाहते थे तो क्या विपक्षी किसानों को सुभीता देने के विपरीत थे? यथार्थ बात यह थी कि सिद्धान्त रूप से राजनीतिक विचार से विपक्षी, विपक्षी (Opposition

Party) नहीं थे। जब कांग्रेस वाले यह नहीं समझे तो उन्होंने उनके साथ समझौता करने का यत्न किया। मतभेद किसी राजनीतिक विषय पर तो था नहीं, तो समझौता क्या हो सकता था। हां, इस समझौते का परिणाम वही हुआ, जो एक फिरके के लाभ को देश के लाभ से ऊंचा समझने से हो सकता था। राजनीतिक क्षेत्र में फिरके-बन्दी का वातावरण पैदा कर दिया गया। मुस्लिम-लीग को चुनाव में असफलता मिली थी। इस असफलता से उत्पन्न रोष को शांत करने के लिये उसने कांग्रेस को गालियां दीं। कांग्रेस ने उससे समझौता करने के लिये उत्सुकता प्रकट की। परिणाम में मुस्लिम-लीग वालों को यह असत्य बात कहने का अवसर मिल गया कि उनकी मांगे ठीक हैं, नहीं तो कांग्रेस वाले समझौता क्यों करते। समझौता इसलिये नहीं हो सका कि उनकी मांगें, एक बनिये की मांगों की भांति, कांग्रेस देना नहीं चाहती थी।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का प्रभाव भी देश पर हो रहा था। जर्मनी को ज्यों-ज्यों अपने में शक्ति का आभास होता जाता था त्यों-त्यों वह अपने अड़ोस-पड़ोस के देशों को तोड़-मरोड़कर उदरस्थ करता जाता था। यूरोप की राजनीतिक अवस्था डावाडोल थी। दुनिया भर के लोग प्रति-क्षण यह सोच रहे थे कि अभी युद्ध छिड़ा और छिड़ा। हिन्दुस्तान में भी इस युद्ध के छिड़ जाने पर आशायें बांधी जा रही थीं। वे लोग, जिनकी सरकार को युद्ध में आवश्यकता पड़नी थी, देश के दूसरे लोगों से समझौता करने के स्थान पर सरकार से बातें करना अधिक उपयुक्त समझते थे। उन्हें इसी में अपना भला प्रतीत होता था।

ऐसे अयुक्तिसंगत वातावरण में युवक-संघ के कार्यक्रम की नौका डांवाडोल थी।

[८]

नवाब मुतेज़ाअली खां अकरम के चले जाने से भौचक्के रह गये। कई दिन तक तो उनको यह समझ ही नहीं पड़ा कि यह हो क्या गया है। उनकी लड़की भाग गई और एक हिन्दू से विवाह करने के लिये।

उनका लड़का घर से चला गया, हिन्दुओं की राजनीति का समर्थन करता हुआ। वह सोचते थे कि उनके विचार क्यों सलीमा और अकरम को पसन्द नहीं आये। भला एक मुसलमान लड़की मुसलमान से विवाह करने को क्यों पसन्द नहीं करती, और एक मुसलमान लड़का क्यों मुसलमानों के एक नये मुल्क के बनने को पसन्द नहीं करता। ये प्रश्न थे जो उनके मस्तिष्क में चक्कर काटते रहते थे और वह किसी प्रकार भी सलीमा और अकरम के आचरण को युक्तियुक्त मानने के लिये तैयार नहीं थे।

अकरम के चले जाने के पश्चात् कई दिन तक नवाब साहब घर से बाहर नहीं निकले। वह सोचते थे कि एक बार सलीमा से मिलकर फिर उसे समझा सकेंगे। उन्हें सलीमा का पता ज्ञात था। यह पता उन्हें अकरम की सलीमा को चिट्ठियां रोकने से मालूम हुआ था। हर रात को वह कलकत्ते जाने की सोचकर सोते थे, परन्तु प्रातःकाल उठते समय उनका निश्चय ढीला पड़ जाता था और जाने की तैयारी आरम्भ भी नहीं हो सकती थी।

एक दिन उनको अकरम और सलीमा की चिट्ठियां मिलीं। ये चिट्ठियां उन्होंने कलकत्ते से बम्बई जाते समय लिखी थीं। सलीमा ने लिखा था:—

अब्बाजान व अम्मीजान, सलामालैकुम।

भाईजान अकरम से मालूम हुआ है कि मेरे आपके यहां से चले आने पर आपको बहुत तकलीफ हुई है। मैं इसके लिये आपसे माफी चाहती हूँ। मैं हकीकत में, यह जानकर कि आप मेरे लिये फिक्रमन्द हैं, बहुत ही परेशान हूँ। मैं आपकी फिक्र दूर करने के लिये क्या कर सकती हूँ, यह समझ में नहीं आता। आप जानते हैं कि मैं घर से खुशी खुशी नहीं निकली। निकलने पर मजबूर की गई थी। और फिर मैं लड़की की जात हूँ। एक न एक दिन बाप के घर से विदा होना ही था। तो फिर आपको इस बात से तकलीफ नहीं होनी चाहिये। हां, अगर आपको फिक्र

है कि मैं अच्छी तरह खुशीखुर्रम हूं या नहीं, तो मैं आपकी फिक्र दूर करने के लिये लिख रही हूं। मा-बाप को अपनी लड़की को खुश और आराम मे देखकर तसकीन होनी चाहिये। और मैं आपको यकीन दिलाती हूँ कि मैं पूरी तरह से खुश हूँ आर आराम से हूं। मैंने अभी शादी नहीं की। इसलिये नहीं कि मेरी शादी का अभी फैसला नहीं हुआ, बल्कि इसलिये कि अभी शादी करना मुनासिब नहीं। अब मैं भाईजान के साथ रहती हूँ। आपकी एहसानमन्द, सलीमा

अकरम की चिट्ठी इस प्रकार थी:—

अब्बाजान व अम्मीजान, सलामालैकुम।

मैंने जब से घर छोड़ा है मैं लगातार सोचता रहता हूं कि मैंने यह अच्छा किया है या खराब। आज तक मुझे घर छोड़ने में कभी भी अफसोस नहीं हुआ। सिर्फ एक बात है जिससे कभी कभी दिल के आसमान पर काले-काले बादल बनकर मंडराने लगते हैं। वह है आपकी परेशानी। इस पर भी मैं आजकल एक ऐसे काम में लगा हूँ कि जिसके मुकाबिले में आपकी परेशानी कुछ ज़्यादा हकीकत नहीं रखती। यह काम मुल्क, मादरे-वतन की परेशानी को दूर करने के लिये कर रहा हूँ।

मै जानता हूँ कि आप मुझसे मुत्तफिक नहीं हैं और हो भी कैसे सकते हैं। आपने तो दुनिया के मुल्कों की तवारीख़ पढ़ी नहीं। आपने मेरी तरह दुनिया के मुल्कों के तौर-तरीकों को देखा नहीं। इसलिये अगर आप मेरी तरह सोचते नही और मेरी तरह महसूस नहीं करते तो कोई हैरानी की बात नहीं हो सकती। इसलिये मैं आपसे नाराज नहीं हो सकता। आप अपने ख्यालात को रक्खे, तो भी मेरे तो आप मा और बाप हैं। मैं आपकी उतनी ही इज्ज़त करता हूँ, जितनी तब करता, जब आप मेरे ख्याल को दुरुस्त मानते।

मैं आपको अपना हालचाल लिखता रहूँगा और जब मेरा कोई मुस्तकिल पता होगा तब मैं आपको लिख दूंगा। उम्मीद है आप भी मेरे ऊपर नाराज़ न होकर अपनी नज़रे मेहर रखेंगे। फरज़न्द, अकरम

इन चिट्ठियों ने नवाब साहब के क्रोध को शान्त करने के स्थान और भी भड़का दिया। 'मादरे वतन की परेशानी दूर करने में लगा हूँ,' छीः! कौन सी मादरे वतन। ऐसा सोचकर नवाब साहब ने चिट्ठियों को मेज़ की दराज़ में बन्द कर दिया।

इसके लगभग दो सप्ताह पश्चात की बात है। बम्बई से मजलिस-तन्ज़ीमे-इस्लाम के सदस्य खानबहादुर मिया अब्दुलरशीद, बम्बई के एक मशहूर खोजा सौदागर, की चिट्ठी आई। लिखा था:—

मोतरिम नवाब साहब!

आपको निहायत ज़रूरी बात लिख रहा हूँ। यहा बम्बई में पाकिस्तान के ख्याल के हक़ में हमने बहुत मुआफिक फ़िज़ा पैदा कर ली थी। जायदाद-टैक्स के खिलाफ इज़हार करने में लोगों का सरगना बनकर हमने पारसी और मारवाड़ी लोगों को भी अपने मुआफिक कर लिया था। मुसलमानों में तो मानों एक नई रूह फूंक दी थी। क्या लड़के और क्या लड़कियां, क्या मर्द और क्या औरतें, किसी स्कूल, कॉलेज या किसी जल्से में बन्देमातरम् तक का गाना सुनना तक गवारा नहीं करते थे। एक दिन तो गवर्नमेंट कॉलेज के मुसलमान और हिन्दू तुल्बा में इसी बात पर झगड़ा हो गया। खूब जूतपज़ार हुई।

जब यह सब कुछ हो सका था तो लखनऊ के एक नवाबज़ादे, आं जनाब के फरज़न्द, यहा तशरीफ ले आये। उन्होंने कॉलेजों और स्कूलों के लड़कों में घूम घूमकर, उन्हें समझा समझाकर, हमारी सब मेहनत को मिट्टी में मिला दिया है। आपके फरज़न्द के साथ एक लड़की भी है। उसका नाम कीर्तिदेवी उर्फ़ सलीमा है। कोई कहते हैं वह मुसलमान थी अब हिन्दू हो गयी है। दूसरे कहते हैं हिंदू थी अब मुसलमान हो गयी है। दोनों ने बम्बई के तुल्बा में इन्कलाब पैदा कर दिया है। कल ही मैं एक मुसलमान तुल्बा की तरफ से आपके फरज़न्द को दी गयी दावत में हाज़िर था। दावत के पहिले बन्देमातरम् का गीत गाया गया। मैंने इसके खिलाफ़ एतराज़ किया तो एक हज़रत कहने लगे, 'हम इसमें

कोई एतराज़ की बात नहीं देखते।' मैंने कहा, 'यह बुत-परस्ती सिखाता है।' तो वह कीर्तिदेवी या सलीमा, जो कुछ भी वह है, मुझसे पूछने लगी, 'ये लाखों आगाखानी बुतपरस्त हैं या नहीं ?' मैंने कहा, 'यह बंगालियों की चालबाजी है। वे धोखा देकर तुमसे अपनी काली देवी या दुर्गा भवानी की पूजा करवाना चाहते हैं।' इस पर आपके फरजन्द उठ खड़े हुए। कहने लगे, 'बंगाली धोखा दे रहे हैं या कुछ मुसलमान लीडर अपनी लाइलमी का इजहार कर रहे हैं, यह समझाने के लिये मैं आपको बन्देमातरम् गीत के लफ्ज़ी मायने बताता हूँ।' इस पर वह बन्देमातरम् गीत के मायने बताने लगे। हकीकत में मायने तो मुझे भी नहीं आते थे। मैंने जेब से कलम-कागज निकाल लिखना शुरू कर दिया। मिस्टर अकरम बताने लगेः—

बन्देमातरम्—मैं मादरे वतन को सलाम करता हूँ।

सुजला सुफला मलयज शीतलाम—इसमें अच्छी अच्छी नदियां, नाले और तालाब हैं। इसमें अच्छे अच्छे फल पैदा होते हैं, इसमें मलय पर्वत से ठण्डी हवा चलती है।

शस्य श्यामला मातरम्—हरे खेतों से भरी हुई है। इसे हम सलाम करते हैं।

शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्—जिसमें रात दिल को खुश करने वाली चांदनी से भरी हैं।

सुहासिनीम्–सुमधुर भाषिणीम्—जो हंसती रहती है और जिसकी ज़बान में मिठास है।

सुखदां वरदा मातरम्—ऐसी मां से हम सुख मांगते हैं और बरकत मांगते हैं। ऐसा हमारा वतन है। इसे हम सलाम करते हैं।

इसके बाद अकरम साहब कहने लगे, 'बस इतना ही यहां गाया गया है और इसके यही मायने हैं। इसमें क्या कोई बुत-परस्ती कह सकता है ? कुछ बूढ़े, अनपढ़, लाइलम मुसलमान लीडर हिन्दू-मुसलमानों में फिसाद पैदा करने का इसे बहाना बना रहे हैं।' इस पर मैंने फिर कहा,

'यह संस्कृत ज़बान में है। इसलिये एतराज़ की बात है।' अब एक मुसलमान लड़की उठकर कहने लगी, 'मैं नहीं जानती कि यह सस्कृत है या बंगाली है। मेरी मादरी ज़बान गुजराती है और मै इस गीत की ज़बान को बखूबी समझ सकती हूँ। असल बात तो यह है कि इस गीत का जो तरजुमा उर्दू ज़बान में मिस्टर अकरम ने किया है वह मेरे लिये समझना ज़्यादा मुश्किल है।'

नवाब साहब! हमारी महीनों की, बल्कि यों कहो कि, सालों की मेहनत इस तरह ज़ाया की जा रही है। अभी तक ये ख्यालात तालिब-इल्मों तक ही महदूद हैं। आम मुसलमानों तक नहीं पहुँचे। मगर मिस्टर अकरम और उनके साथ सलीमा ने एक स्कीम बनाई है जिसके मुताबिक दो-डेढ़ हज़ार के करीब तालिब-इल्म सूबे भर में घूम घूमकर इन्हीं बातों का प्रचार करेंगे। अगर यह हो गया तो मुसलमानी हुकूमत के ख्वाब काफूर समझिये। हमें इस स्कीम की मुखालफत करनी पड़ेगी। हम यह पसन्द नहीं करेंगे कि हजारों तालिबे-इल्म, पढ़े-लिखे नौजवान, हिन्दू और मुसलमान, मुसलमानों को हिन्दुओं से मेल-मिलाप की तालीम दें।

हम यह चाहते हैं कि एक बार आप यहा आकर अपने बरखुरदार को समझा दें, नहीं तो हमें दूसरे तरीके इस्तेमाल करने पड़ेंगे।

यह लड़की कौन है? क्या यह मिस्टर अकरम की बीवी है या बीवी बनने वाली है? अगर आप आजायें तो सब बात साफ हो जायेगी। मुझे तो कुछ ऐसा मालूम होता है कि इसी लड़की ने अपना गन्दा असर अकरम के दिमाग पर डाल रखा है। अगर मेरा ख्याल ठीक है तो इस लड़की को यहां से हटा देना ठीक होगा, तभी अकरम का दिमाग ठीक हो सकेगा। आप कब आवेंगे? आपका, अब्दुलरशीद

नवाब साहब यह चिट्ठी पढ़ आग-बबूला हो गये। वह सोचते थे कि क्या यह कलंक का टीका उनके माथे पर ही लगना है कि उनका ही लड़का मुसलमानों की उठती हुई ख्वाहिशात (अभिलाषाओं) का मटियामेट करेगा। उन्होंने बम्बई जाने का फैसला कर लिया।

[६]

जब नरोत्तम ने पथिक से मिलने का निर्णय किया तो युवक-संघ का कलकत्ते वाला कार्यालय बन्द हो चुका था। मलिन्द और कल्याणी बन्दी बनायी जा चुकी थीं। यह तो एक सौभाग्य की बात थी कि मोहन वहां नहीं था। नहीं तो वह भी पकड़ लिया जाता। पथिक बिहार और मध्य-भारत का दौरा कर रहा था जब संयुक्त प्रांत में संघ के कार्यकर्ता चरित्र सम्बन्धी दोषों के लिये पकड़ लिये गये थे। वह यह देख चकित था कि उसकी योजना कैसे बन्द की गयी है। उसे परेशानी भी थी कि भले घर के लड़कों को किस प्रकार बदनाम किया गया है।

इसके कुछ दिन पश्चात् पंजाब में डाली गयी बाधा की सूचना भी उसे मिली। इस पर भी वह निराश नहीं हुआ। वह यह सोच रहा था कि मध्य-भारत का दौरा कर पंजाब में जायगा और फिर वहा जीवन-संचार करने का यत्न करेगा। वह यह भी सोच रहा था कि यदि विद्यार्थी-जगत में से पर्याप्त कार्यकर्ता न मिले तो वह बाहर के युवकों को भी इस योजना में सम्मिलित करने का यत्न करेगा। मोहन बाबू को जब कलकत्ते की सूचना मिली तो वह कलकत्ते नहीं गया। वह देवा वापिस लौट गया। वहां वह पथिक की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा कि वह पंजाब में जाये अथवा बम्बई में।

नरोत्तम को डा० घोष के मकान से पता मिला कि मलिन्द के पकड़े जाने के पश्चात मोहन बाबू ही पथिक का प्रोग्राम और मिलने का स्थान बता सकता है। मोहन का पता उसकी मां अथवा सुरेश से मिल सकता है। अतएव नरोत्तम ने सुरेश को पत्र लिख पूछा कि मोहन का पता क्या है। वहा से उत्तर मिला कि मोहन देवा में है। नरोत्तम बिना और समय व्यर्थ खोने के स्वयं देवा जा पहुँचा। वहां वह मोहन से मिला। मोहन को यह तो मालूम हो गया था कि नरोत्तम अपने आपको पथिक के पूर्व परिचितों में समझता है, परन्तु वह नरोत्तम से पहिले कभी मिला नहीं था।

नरोत्तम जब देवा पहुँचा तो थानेदार ने ज्योतिप्रसाद मिश्र को इलाहाबाद चिट्ठी से सूचना दे दी कि कलकत्ते के लोग फिर पथिक की पूछताछ के लिये आये हैं। इधर विजयबहादुर को थानेदार को भड़काने का अवसर मिल गया। वह यद्यपि यह नहीं जानता था कि पथिक की पुलिस वाले क्यों खोज कर रहे हैं तो भी वह यह अवश्य चाहता था कि पथिक पकड़ा जाय। वह अभी तक बेनी की स्त्री का उसे छोड़ देना भूला नहीं था।

मोहन एक दो दिन में पथिक से उत्तर पाने की आशा में था। इस कारण नरोत्तम को वह देवा में ही रोके हुए था। एक दिन सायंकाल मोहन नरोत्तम को सुरेश के मेहमानखाने से साथ लेकर पद्मा के घाट की ओर जा रहा था कि मार्ग में विजयबहादुर मिल गया। वह शराब पीकर मदमस्त हो रहा था। मोहन को देख वहां खड़ा होगया। "ओह! तुम आगये हो?" वह झूमता हुआ कहने लगा, "यह सेठ भी। ओह हो। बहुत मजा हुआ। वोह···वोह···तुम उस पगले को जानते हो न···हुक···" विजयबहादुर को अधिक पी जाने के कारण हिचकियां आ रही थीं। "···ओ हुक···तुम जानते हो न उसे···वह पागल पकड़ा जायेगा···हुक···हा–हा–हा···।"

विजयबहादुर झूमता हुआ मोहन के बहुत समीप आगया और मोहन की आंखों में आखे डालकर देखने लगा। विजयबहादुर के मुख से शराब की ऐसी सख्त दुर्गन्ध आ रही थी कि मोहन ने नाक चढ़ाकर मुख फेर लिया। विजयबहादुर हँसता हुआ पीछे हट गया। कहने लगा, "डर गये···ओ मोहन भैया, डर गये न···पगले के साथ तुम भी पागल ···हुक···डरो···नहीं···हुक···थानेदार कहता था···हुक·····पगला पकड़ा जायेगा···हुक" विजयबहादुर हँसता हुआ आगे बढ़ने लगा कि उसका पांव किसी वस्तु से अटक गया या वह अपने को अपनी टांगों पर स्थिर नहीं रख सका। वह सड़क पर लुढ़क गया।

नरोत्तम और मोहन विजयबहादुर को वहीं छोड़ पद्मा की ओर चल

पड़े। नरोत्तम ने पूछा, "यह कौन था?"

"यहां का एक आवारा आदमी है।"

"यह पगला कौन है, जिसके पकड़े जाने की बात कह रहा था?"

"वही गुरुदेव। जब वह यहां आये थे तो उनका दिमाग़ कुछ कुछ खराब था।"

नरोत्तम इस बात को सुनकर गम्भीर विचार में डूब गया। वह मन में सोचता था कि यह शराब के नशे में था अवश्य, परन्तु पथिक के पकड़े जाने की बात इसके दिमाग़ में कहां से आगयी। इस विषय पर मोहन कुछ भी प्रकाश नहीं डाल सका।

रात को नरोत्तम सुरेश से मिला और उससे विजयबहादुर की बात बताई। सुरेश ने नरोत्तम को बताया, "पिछली बार जब आप और सेठ साहब यहां आये थे तो थानेदार यह तहकीकात करने आया था कि आप लोग कौन थे और यहां किस काम से आये थे। विजयबहादुर आजकल थानेदार से बहुत मेलजोल रखता है। मालूम होता है कि थानेदार ने उसके दिमाग़ मे कुछ भर दिया है। और हां, तब इलाहाबाद से भी एक पुलिस-अफसर आया था और आपके विषय में पूछताछ कर रहा था।"

इलाहाबाद के अफसर की बात सुनकर नरोत्तम बहुत घबराया। वह जानता था कि यह अफसर ज्योतिप्रसाद के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। विजयबहादुर के बार बार पथिक के पकड़े जाने की बात कहने से वह समझ गया कि इस विषय में थाने में बातचीत अवश्य हुई होगी। उसने तुरन्त निश्चय किया कि पथिक को ढूंढकर, यदि वह मधुसूदन हो तो, सचेत कर देना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातः ही नरोत्तम मोहन के घर पहुँचा और उससे बोला, "मैंने विजयबहादुर की बातों पर बहुत विचार किया है और मैं समझता हूँ कि उसको पथिक के पकड़े जाने की बात थाने से मालूम हुई है। यह सम्भव है कि पथिक के वारण्ट निकल चुके हैं। ऐसी अवस्था में मेरा उससे मिलना अत्यावश्यक है। मैं चाहता हूँ कि आप भी मेरे साथ चलें।"

मोहन यद्यपि पथिक के आदेश की प्रतीक्षा में था तो भी उसके पकड़े जाने की सम्भावना ने उसे बेचैन कर दिया। वह नरोत्तम के साथ चलने को तैयार होगया। नलिनी समीप बैठी बातें सुन रही थी। उसने कहा, "भैया, मैं भी चलूंगी।"

मोहन ने पूछा, "कहां?"

"भूतनाथ से मिलने।"

"तुम क्या करोगी?"

"मैं उससे मिलूँगी। मेरी जी चाहता है।"

मोहन ने कहा, "हट, नहीं जाना। मां के पास कौन रहेगा?"

नलिनी सहम गयी। उसकी बड़ी बड़ी आंखें आंसुओं से भर आईं। वह वहां से उठी और भीतर कमरे में चली गयी। नरोत्तम ने मोहन से कहा, "इसे ले चलो न। क्या हानि है?"

"व्यर्थ का झंझट होगा।"

"झंझट की कौन बात है? ले चलो न। मैं इसे कलकत्ते ले चलूँगा। वहाँ माँ इसे देखकर बहुत प्रसन्न होंगी।"

मोहन मानता नहीं था, परन्तु नरोत्तम ने बहुत जोर दिया। मोहन की माँ ने भी जब नलिनी को भीतर कमरे में चुपचाप रोते हुए देखा तो बाहर आ कहने लगी, "मोहन, ले जाओ न बिटिया को साथ। पहले गुरुदेव गये तो कई महीने रोती रही थी। उसका मन छोटा न करो।"

मोहन मान गया।

[१०]

मुसलमान विद्यार्थियों के जलसे में बन्देमातरम् गीत पर विरोध और उसमें सलीमा का विद्यार्थियों को समझाना, इस पर सब विद्यार्थियों का चुपचाप बन्देमातरम् सुनने के लिये तैयार हो जाना, यह समाचार 'बॉम्बे क्रौनिकल' में छप गया। जब से अकरम और सलीमा बम्बई में पहुँचे थे उन्होंने चुपचाप काम करना पसन्द किया था। वे सदा यह यत्न करते रहते थे कि उनका नाम समाचार-पत्रों में न जाये। इस पर भी इस बार सलीमा

की राष्ट्रीयता के लिये अपील इतनी प्रभावशाली थी कि संवाददाता उनका नाम दिये बिना नहीं रह सका।

'बॉम्बे क्रौनिकल' की यह प्रति मध्य-प्रान्त के अमरावती नगर में पथिक को मिल गई। वह सलीमा को बम्बई में देश का काम करते पढ़ सन्न रह गया। उसका विचार था कि वह अभी भी कलकत्ते में कहीं किसी दूकान पर क्लर्की कर रही होगी। कल्याणी से डांटे जाने के पश्चात् वह सलीमा को समझा बुझाकर राजी कर लेने का निश्चय कर चुका था। अब जब उसे विदित हुआ कि वह बम्बई में वही काम कर रही है, जिसको करने के लिये उसने अकरम को कहा था, वह चकित रह गया। उसका मन कहता था कि वह सत्य कहती थी कि वह अपने आचरण से यह सिद्ध कर देगी कि वह उसके योग्य है। उसने कमाल कर दिया है।

पथिक के मन में आया कि पंजाब जाने से पूर्व वह एक बार बम्बई होता जाय तो क्या हानि है। अगले ही दिन वह बम्बई के लिये चल पड़ा।

अकरम और सलीमा धोबी-तालाब पर एक मकान की सबसे उपर की मंज़िल पर दो कमरे भाड़े में लेकर रहते थे। उनका दिन भर का काम यही था कि बम्बई के विद्यार्थियों को प्रचार-कार्य के लिये संगठित करें। जो बाधा मुसलमान विद्यार्थियों ने खड़ी कर रखी थी वह धीरे २ कम हो रही थी। जब लड़कों को पता चला कि ये बहिन-भाई किसी बड़े नवाब की सन्तान हैं और युवक-संघ की ओर से विद्यार्थियों को संगठित करने बम्बई मे आये हैं तो उनसे मिलने वाले और अपनी शंकायें दूर करने वाले विद्यार्थियों के आने-जाने का ताता बध गया। प्रति दिन सायंकाल पाच बजे से विद्यार्थियों का आना-जाना आरम्भ हो जाता था। बम्बई में एक भारी संख्या में पढ़ने वाली लड़कियां थीं। उन्होंने प्रचार-कार्य के लिये अपनी पृथक २ मण्डलियां बना ली थीं। इस प्रकार कार्य आगे और आगे बढ़ता जाता था।

एकाएक एक दिन पथिक वहा पहुँच गया। सलीमा तो यह समझती थी कि वह चुपचाप काम करती जायेगी और पथिक को उसका पता नहीं

चलेगा। उसे नहीं मालूम था कि उसका नाम 'बॉम्बे क्रौनिकल' में निकल गया है। वह उसे कुली के सिर पर असबाब लदवाये उनके कमरे के बाहर खड़ा देख चकित रह गई। सलीमा कई क्षण तक उसे देख भौंचक्की सी खड़ी रही। उसके मुख से केवल एक शब्द निकला, "आप ?"

पथिक ने हाथ जोड़ 'नमस्ते' की और सलीमा को हैरानी में चुपचाप खड़े अपनी ओर देखते हुए देख कुछ विस्मय में पूछा, "सलीमा, क्या मैंने यहां आने में भूल की है? क्या अभी तुमने मुझे क्षमा नहीं किया ?"

अब सलीमा को चेतना हुई। उसने पूछा, "क्षमा ! मैंने ?" इतना कह उसने मुख से कुछ उत्तर देने के स्थान में पथिक के चरण स्पर्श किये। पथिक ने उसे उठाकर कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा मत करो सलीमा। हम मनु के काल में नहीं रहते। इस समय हम अपने अपने स्थान को अधिक अच्छाई से जानते हैं।"

इस समय अकरम कमरे से निकल आया। यह पथिक को देख अति प्रसन्न हुआ। "ओह, दादा !" और वह आगे बढ़कर पथिक से हाथ मिलाकर गले मिला।

सलीमा अवसर पा कुली को कमरे में ले गयी, असबाब रखवाया और चाय बनाने लगी।

अकरम ने यहा की परिस्थिति से पथिक को परिचित कर दिया। अकरम का अनुमान था कि प्रान्त भर में से दो सहस्र के लगभग विद्यार्थी मिल जायेंगे जो यह काम करने के लिये तैयार हैं। पथिक इस सफलता पर बहुत प्रसन्न था। वह जानता था कि इस प्रान्त में मुसलमानों के विरोध को शान्त करने में इन भाई-बहिन का बहुत हाथ है।

अकरम सलीमा के मन की अवस्था को समझता था। स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण वह यह प्रकट नहीं करती थी कि वह पथिक के समीप रहना चाहती है और विवाह को वह पसन्द करेगी। इस पर भी यथार्थ मन की बात तो स्पष्ट ही थी। इस कारण उस दिन जब सलीमा कहीं घर से बाहर गई हुई थी तो अकरम ने इस विषय पर बातचीत आरम्भ कर

दी। पथिक का कहना था, "मुझे इस बात में आपत्ति नहीं है। तब भी मैंने तो यही कहा था कि मेरे में अवगुण हैं। वे अवगुण मेरे मुख पर ताला लगाये हुए हैं। इस ताले को खोलने की शक्ति सलोमा में ही है।"

जब सलीमा बाजार से लौटकर आई तो अकरम ने उससे कहा, "देखो बहिन, मैंने मिस्टर पथिक से सब कुछ तय कर लिया है। अब सिर्फ दो बातों का फैसला रह गया है। एक यह कि शादी कब और कहां होगी और दूसरे यह कि हिन्दू तरीके पर होगी या मुसलमानी तरीके पर।"

सलीमा का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। अकरम ने फिर कहा, "ये दोनों बातें तुम्हारे फैसले पर छोड़ी गयी हैं।"

"अभी कुछ दिन ठहरा नहीं जा सकता?"

"इसमें क्या लाभ होगा?"

"अगर वालिद साहब मान जाते तो क्या अच्छा न होता?"

"मुझे उनके मान जाने के मुतल्लिक कोई उम्मीद नहीं है।"

"यह बम्बई का प्रोग्राम खत्म हो जाता तो।"

"यह क्या बहाना बना रही हो? हम लोगों के लिये बम्बई और लखनऊ में क्या फर्क पड़ जाता है। रहा यहां का प्रोग्राम। यदि आज यहां है तो कल कहीं और का होगा।"

सलीमा निरुत्तर थी। अकरम ने जब सलीमा को चुप देखा तो पूछा, "क्या कोई और ऐतराज़ है?"

"भैया, आप क्या चाहते हैं? जैसा आप उचित समझें कर दें।"

"मेरे करने पर तुम्हें कोई एतराज़ न होगा?"

"बड़े भाई, मा और बाप के बराबर होते हैं।"

"अच्छी बात, तो मेरा फैसला यह है कि शादी बम्बई में 'स्पेशल मैरिज़ एक्ट' के मुताबिक हो जाय।"

"जैसा मन करे।"

इसी समय किसी ने बाहर से आवाज दी।

"कोई है ? कोई है ?"

अकरम ने सलीमा से कहा, "अब्बाजान मालूम होते हैं।"

सलीमा ने भागकर दरवाज़ा खोल दिया। नवाब साहब हाथ में एक काग़ज का पुर्जा लिये कमरे का नम्बर पढ़ रहे थे। सलीमा ने जब दरवाज़ा खोला तो नवाब साहब ने सलीमा को देख लिया और कहा, "ओह, तुम !"

"अब्बाजान, सलामालैकुम।"

"कहां है तुम्हारा भाई ?"

इस समय अकरम भी कमरे से बाहर आगया। उसने कहा, "सलाम, अब्बाजान। आप बहुत अच्छे मौके पर तशरीफ लाये हैं। आइये, अन्दर आइये न।"

नवाब साहब कमरे में चले गये। उन्हें बहुत आदर-सत्कार से बैठाया गया। अकरम और सलीमा अभी खड़े ही थे। अकरम ने पूछा, "आप कब तशरीफ़ लाये हैं ?"

"आज सुबह की गाड़ी से पहुँचा हूं।"

"अम्मी अच्छी तरह से हैं ?"

"हूं।"

"उन्हें भी साथ ले आते तो मिलकर दिल को तसल्ली होती।"

"वह वहीं ठीक हैं। तुम लोगों का मुँह देखना नहीं चाहती।"

"क्यों हमने क्या किया है ?"

"ख़ानदान का नाम डुबोया है।"

"किस फ़ेल (कर्म) से ?"

"हिन्दू होकर।"

"कौन कहता है ?"

"तुम्हारे ख़्यालात।"

"कैसे ख़्यालात अब्बाजान ? ख़्याल (विचार) दो हिस्सों में बंटे हुए हैं। एक वे विचार, जो मज़हब (धर्म) से ताल्लुक़ रखते हैं और

दूसरे, जो मुल्क से ताल्लुक़ रखते हैं। आपका मतलब किस किस्म के ख़्यालों से है ?"

"दोनों किस्म के ख़्यालात से। इस्लाम सिरफ एक मज़हबी जमात नहीं है। यह मज़हबी और सियासी दोनों बातों को अपने अन्दर रखने की ख़ूबी रखता है।"

"सियासियात के मुतल्लिक इस्लाम का क्या अक़ीदा है ?"

"दुनिया के हर मुल्क में इस्लामी हुकूमत कायम करनी।"

"इस्लामी हुकूमत से आपका क्या मतलब है ?"

"इस्लामी हुकूमत वह हुकूमत है, जो मुसलमानों द्वारा इस्लाम की तरक्की व बहबूदी के लिये चलाई जाय।"

"और उन लोगों का क्या होगा, जो इस्लाम को नहीं मानते ?"

"वे या तो मुसलमान हो जायें या मुल्क को छोड़ दें।"

"और अगर उनकी तादाद मुसलमानों से ज़्यादा हो तो ?"

"तो तब्लीग़ (मुसलमान बनाने) का प्रोग्राम जारी रखा जाय।"

"तो अब्बाजान, मैं मुसलमान न था और न हूँ। मैं आपके ख़्यालात को ठीक नहीं समझता। मैं मज़हब को अपना जाती मसला समझता हूं, इसका सियासियात से कोई वास्ता नहीं मानता।"

"इसी से तो कहता हूँ कि तुम हिन्दू होगये हो। एक हिन्दू का मज़हब उसकी अपनी चीज है। सैकड़ों मज़हबों के रखने वाले भी मुल्की, इक़्तसादी (अर्थिक) और मजलसी (सामाजिक) बातों में मिल बैठ सकते हैं। इस्लाम में ऐसा नहीं है।"

"मैं इस्लाम को ऐसा नहीं समझता था। अगर हक़ीकत में यह ऐसा है तो मैं मुसलमान नहीं हूँ।"

"इसी से तो मैं कहता हूं कि तुमने ख़ानदान का नाम डुबो दिया है।"

"जिस वक्त हमारे एक बुजुर्ग हिन्दू से मुसलमान हुए थे तो क्या उस वक्त भी ख़ानदान का नाम डूब गया था। अगर नहीं तो अब भी नहीं डूबेगा।"

"वह बात दूसरी थी। मुसलमान की औलाद तो मुसलमान ही होगी। मगर हिन्दू की औलाद कोई भी मज़हब इख्तियार कर सकती है।"

सलीमा यह सब वार्तालाप चुपचाप सुन रही थी। अब उससे नहीं रहा गया। वह बोली, "हम लोग तो इस्लाम को इतना तंग नहीं समझते। अगर आप इस्लाम को ऐसा मानते हैं कि इसमें जो एक बार आगया फिर वह उसे छोड़ने का हक़ नहीं रखता, तो मैं तो ऐसे मज़हब में नहीं रह सकती।"

"तुम क्यों मानोगी ? तुम्हारे पर इश्क सवार है। उसने तुम्हारे दिमाग़ को ख़राब कर रखा है। तुम·····।"

अकरम ने अपने वालिद को बीच में ही रोककर कहा, "अब्बाजान, सुनिये। आप हमें ग़लत समझ रहे हैं। सलीमा का यह मतलब नहीं कि वह कोई दूसरा मज़हब इख्तियार कर लेगी। बात यह है कि हम आपको इस्लाम की ग़लत तशरीह (व्याख्या) करते देख रहे हैं। आपके ग़लत इस्लाम को भला हम कैसे मान सकते हैं ?"

"देखो जी, मैंने आपको बताया है कि इस्लाम जहां एक मज़हब है वहां एक सियासी जमात भी है। मान लो एक मुल्क में रहने वाले उस मुल्क को छोड़ छोड़कर जाना शुरू कर दें तो उस मुल्क में रहने वाले क्या इसकी इजाज़त दे सकते हैं ? इसी तरह एक सियासी जमात अपनी ताकत कम होती नहीं देख सकती।"

सलीमा कुछ कहने लगी थी कि अकरम ने उसे रोक दिया और वह खुद कहने लगा, "तो अब्बाजान, आपका मतलब यह है कि तब्लीग़ एक सियासी हथियार है ?"

"हा बिलकुल। जब किसी मुल्क में मुसलमानों की तादाद कम होती है तो हम तादाद बढ़ाने की कोशिश करते हैं। जब हमारी कसरत हो जाती है तो हम उस मुल्क की हुकूमत अपने हाथ में लेने की कोशिश करते हैं। हिन्दुस्तान में तो इससे उल्टी बात हुई थी। मुसलमानी हुकूमत पहले कायम हो गयी थी। पीछे हुकूमत को मज़बूत करने के लिये हमने

तब्लीग का काम शुरू किया। अगर कुछ अर्से तक यह तब्लीग का काम और जारी रहा तो हिन्दुस्तान में हमारी तादाद हिन्दुओं से ज़्यादा हो जायगी और हमारी ही हुकूमत होगी।"

अकरम इस मानसिक अवस्था से सर्वथा निराश था। वह समझने लगा था कि बहस करनी फिजूल है। इस कारण उसने कहा, "अब्बाजान, हम दोनों आपके ख्यालात को बहुत अच्छी तरह समझ गये हैं। अब आप फरमायें कि आप हमको क्या करने को कहते हैं?"

"मैं लखनऊ से सिर्फ तुमको समझाने के लिये आया हूं। तुम इस युवक-संघ का काम करके मुसलमान तुल्बा को वरगला रहे हो। इससे इस्लाम को नुकसान पहुँच रहा है। यह इस्लाम के साथ गद्दारी है। मैं तुम दोनों को इस गुनाह से बचाने के लिये आया हूँ।"

सलीमा फिर कुछ कहने लगी थी, परन्तु अकरम ने उसे हाथ के संकेत से चुप कराकर कहा, "अब्बाजान, अगर हम आपकी बात न मानें तो क्या होगा?"

"तो मैं तुम्हें अपने हक से बरतरफ कर दूंगा, और जागीर किसी और को दे दूंगा।"

इसी समय पथिक जो कहीं बाहर गया हुआ था वहां आगया। उसने देखा कि एक वृद्ध, भला पुरुष कुर्सी पर बैठा क्रोध में अकरम और सलीमा को डाट रहा है। अकरम और सलीमा सामने बहुत उदास मुख खड़े हैं। पथिक को समझने में देरी नहीं लगी कि वह नवाब साहब हैं। वह चुपचाप वहां से चला जाना चाहता था कि अकरम ने उसे रोक लिया। "मिस्टर पथिक, ठहरो," उसने कहा।

पथिक घूमकर फिर कमरे में आकर खड़ा हो गया। अकरम ने कहा, "मिस्टर पथिक, यह हमारे वालिद शरीफ हैं।"

पथिक ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते कर दी। नवाब साहब ने बहुत ध्यान से पथिक को सिर से पांव तक देखा और फिर प्रश्न भरी दृष्टि से अकरम की ओर देखा। अकरम ने पथिक का परिचय केवल इतना दिया,

"यह हैं मिस्टर पथिक, युवक-संघ के सब से बड़े लीडर, और मेरे होने वाले बहनोई।"

"तुम्हारे बहनोई! क्या मतलब?"

"सलीमा की इनसे 'स्पेशल मैरिज़ एक्ट' से शादी होने वाली है।"

नवाब साहब यह सुन एकदम चौंककर कुर्सी से उठ खड़े हुए। अकरम ने समझा कि वह वहां से चले जाने वाले हैं। उसने उन्हें कहा, "अब्बाजान, ज़रा तशरीफ रखें। एक आध बात अभी और बतानी है।"

नवाब साहब कुछ क्षण तक पथिक को बहुत हैरानी से देखते रहे। फिर धीरे धीरे कुर्सी पर बैठ गये। अब अकरम ने पथिक को एक और कुर्सी पर बैठाया और स्वयं सलीमा के साथ पलंग पर बैठ गया। नवाब साहब कुछ काल तक सोचते रहे। फिर बोले, "क्यों हज़रत, आप में क्या खूबी है कि एक नवाब की लड़की को फुसलाने में आप कामयाब हो गये हैं।"

पथिक ने बहुत शांति और नम्रता से कहा, "जी मैं नहीं जानता। यह तो सलीमा ही बता सकती है।"

"तुम्हें अपना जाल यहाँ नहीं बिछाना चाहिये था।"

"मैं नहीं समझता कि मैंने जाल बिछाया है। यह तो सलीमा की अत्यन्त कृपा है कि उसने मुझे अपना साथी चुना है।"

"तो तुम समझते हो कि इस मामले में तुम्हारा कुछ कसूर नहीं है।"

"कसूर? नहीं साहब, इसमें तो मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं। सलीमा की कृपा-दृष्टि का पात्र बनना यदि दोष भी हो तो भी बहुत आनन्दप्रद दोष है। मगर यह सलीमा का दोष नहीं यह तो उसकी उदारता है।"

"बताओ, तुम इस रिश्ते से इन्कार क्यों नहीं कर देते?"

पथिक ने मुस्कराते हुए कहा, "इसका कारण तो स्पष्ट ही है। भला सलीमा जैसी लड़की से शादी करने में कौन इन्कार करेगा?"

"अपनी औकात देखो।"

"यह तो मुझे मालूम नहीं कि मैं किस का लड़का हूँ, कहां पैदा हुआ हूँ, कौन जात में से हूं। मेरे पास धन-सम्पत्ति भी कुछ नहीं है।"

"तो तुम्हें अपने ख़ानदान का पता नहीं है ?"

"बिलकुल नहीं। मैं एक राजा का लड़का भी हो सकता हूं और एक कंगाल का भी।"

"ओह ! तो तुम बे घर और बे सामान के हो। तुम्हारा न कहीं ठौर है, न ठिकाना। और एक नवाब की नाज़ोनखरों में पली लड़की से शादी करने की जुर्रत कर रहे हो। देखो जी, इस आग में न कूदो। जल जाओगे। बेहतर है तुम यहां से चले जाओ।"

"जो जलकर पहिले ही भस्म हो चुका है उसे और क्या जलाइयेगा। आप मुझे कहने के स्थान में अपनी लड़की को क्यों नहीं समझाते ?"

"अच्छा, यह बताओ कि तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते ?"

"इसलिये कि मै इस्लाम को समझता नहीं।"

"पीछे फ़ुरसत पर समझ लेना। इसकी जल्दी क्या है ?"

"आख़िर किसलिये इस्लाम कबूल करूं ?"

"इसलिये कि सलीमा से शादी करना चाहते हो।"

"अब्बाजान," सलीमा ने बीच में बात काटकर कहा, "आपको यह कहने का हक़ नहीं है।"

"क्यों ? क्या मैं तुम्हारा बाप नहीं हूं ?"

"मगर आपने तो शादी का इन्तज़ाम नहीं किया। जिसने किया है वह यह बात तय कर लेगा।"

"अगर तुम मेरी और अपनी कौम की रज़ामन्दी चाहती हो तो इन्हें इस्लाम कबूल करना होगा।"

"मैं अब बालिग़ हूँ और कानून की रूह से मुझे आप या आपकी कौम की रज़ामन्दी की जरूरत नहीं है।"

"यह तो अंग्रेजी कानून की बात करती हो न। मगर शरह और कौमी मफ़ाद इसको नहीं मंजूर करते।"

"मैं आपकी शरह को नहीं मानती और आपकी कौम से बाहर हूँ।"

"यह कैसे हो सकता है ? तुम एक मुसलमान की लड़की हो।"

"और आप एक हिन्दू के पोते हैं।"

"कुछ भी हो, तुम अभी तक मुसलमान हो।"

"मैं आज ही हिन्दू बन जाऊंगी।"

"मगर हिन्दू तुम्हें कबूल नहीं करेंगे।"

"मुझे बेवकूफों से कोई मतलब नहीं। जिनसे मेरा ताल्लुक होना है वह तो मुझे बिना हिन्दू बने भी कबूल करते हैं।"

"तो मै समझूं कि यह सब तुम्हारा कुसूर है।"

"कुसूर बुरी बात करने में होता है या अच्छी बात करने में भी ?"

इस पर अकरम ने कहा, "अब्बाजान, बहस से तो कुछ नतीजा नहीं निकलेगा। आपको मैं एक बात अर्ज़ करता हूँ। सलीमा की शादी की दर्खास्त कचहरी में एक दो दिन में दी जायगी। मेरी आपसे इल्तजाह (विनम्र निवेदन) है कि आप इस शादी को अपनी रज़ामन्दी देकर खुदा से दुआ करें कि इसमें बरकत पड़े।"

"मै ऐसा नहीं कर सकता।"

"तो मुझे सख्त अफसोस है," सलीमा ने पलंग से उठते हुए कहा। उसके उठने का प्रयोजन यह था कि वह नवाब साहब को चले जाने के लिये कहती थी।

नवाब साहब इस बात को समझते थे। वह उठ खड़े हुए और यह कहते हुए बाहर निकल गये, "तुम लोग ठीक नहीं कर रहे हो। बहुत नुक्सान उठाओगे।"

[११]

सायंकाल की नमाज़ का वक्त था। मसजिद में नमाज़ी वज़ू कर करके पंक्तियां बांध घुटनों के बल बैठते जाते थे। देखते देखते मस्जिद का आंगन भर गया। मुल्ला मुंडेर पर खड़ा अज़ान दे रहा था। अज़ान समाप्त कर वह नीचे उतर आया और नमाज़ आरम्भ होगयी। नमाज़

ख़तम कर लोग अपना अपना स्थान छोड़ने ही वाले थे कि मुल्ला ने ऊंची आवाज़ में कहा, "ठहरो ! मोमिनो ठहरो !"

सब लोग अपनी अपनी जगह पर खड़े होगये। मुतवल्ली फिर मुंडेर पर चढ़ गया और कहने लगा, "वह देखो।" यह कह उसने एक ओर हाथ लम्बा कर उंगली से इशारा किया। सब लोगों की दृष्टि उधर चली गयी।

मस्जिद सड़क के किनारे पर थी। सड़क की दूसरी तरफ एक मकान धड़ाधड़ बहुत सरगरमी से बन रहा था। यद्यपि अब सायंकाल का समय होगया था, इस पर भी बनाने वाले काम कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मकान बनने का काम रात भर जारी रहेगा। स्थान स्थान पर गैस के हन्डे लगाकर रोशनी की जा रही थी। सब लोग बड़ी तेजी से काम कर रहे थे।

मुल्ला के कहने पर सब नमाज़ी उसी तरफ देखने लगे। उसने कहना जारी रखा, "यह काफिरों का मन्दिर बन रहा है। मसजिद के नज़दीक आप ऐसी कुफरगाह बननी गवारा करेंगे ?"

किसी ने उत्तर नहीं दिया।

मुल्ला ने कहा, "ऐ मुसलमानो, ऐ एक ख़ुदा और रसूलेपाक को मानने वालो, क्या तुम अपने घर में भी बैठकर ख़ुदा परवरदिगार की परस्तिश अमन से नहीं कर सकोगे ? यहां मन्दिर पर चढ़कर काफ़िर आपको नमाज़ पढ़ते देखेंगे और मज़ाक करेंगे। आप जब नमाज़ पढ़ते होंगे, वे मन्दिर में घण्टे-घड़ियाल बजायेंगे। यह आपकी मज़हबी हक़तलफ़ी है।"

लोग अगरचे चुप थे, इस पर भी सब की आंखों में लहू उतरता दिखाई देता था।

मुल्ला फिर कहने लगा, "क्या इस कांग्रेसी सरकार से हम जाबजा ज़लील ही किये जायेंगे। ओ रसूल सुलाउल इस्लाम के पैराओ, ऐ दुनिया को इस्लाम के झण्डे तले लाने का दावा करने वालो, वक्त

आगया है कि तुम अपने मज़हब के लिये, अपने ईमान के लिये और अपने रसूल के लिये कमर-बस्ता हो जाओ।"

नमाज़ियों में से एक ने पुकारा, "नारा-ए-तकबीर।" नमाज़ियों का जवाब था, "अल्ला-हो-अकबर।" मसजिद का कोना कोना गूँज उठा।

इस समय सबसे पिछली पंक्ति में से एक नौजवान अपनी पंक्ति में खड़ा खड़ा कहने लगा, "मगर यह मन्दिर तो यहां पर पहिले भी था।"

मुल्ला का जवाब था, "हां, मगर इतना ऊंचा नहीं था।"

"उसकी छत से मसजिद पहले भी दिखाई देती थी।"

इस पर सब लोग बोल उठे, "चुप रहो, बकवास बन्द करो।"

मुल्ला ने हाथ ऊंचा कर सब को चुप कराया और कहने लगा, "जमात में करामात है। अगर तुम सब मिलकर जाओ तो मन्दिर बनना अभी रुक सकता है।"

फिर किसी ने नारा लगाया। 'अल्ला-हो-अकबर' के नारों से बाहर बाजार में भी भीड़ एकत्रित होने लगी। लोग मसजिद से बाहर निकल आये। बाजार में लोगों का आना-जाना बन्द हो गया। हज़ारों की भीड़ ने मन्दिर को चारों तरफ से घेर लिया। लोग मेमारों और मज़दूरों को काम बन्द करने के लिये कहने लगे।

एक खद्दरपोश मन्दिर में खड़ा यह सब कुछ देख रहा था। मन्दिर के प्रबन्धकों ने जब मसजिद में खास चहल-पहल देखी तो बलवे की आशंका कर एक कांग्रेसी नेता को टेलीफोन कर वहां बुला लिया था। उस खद्दरधारी व्यक्ति ने बाहर आकर गुस्से और जोश से भरे लोगों की भीड़ को देखा। मसजिद का मुतवल्ली भीड़ में सब से आगे खड़ा था। खद्दरपोश उसके पास जाकर पूछने लगा, "यह क्या है?"

"मुल्ला ने उत्तर दिया, "हम मन्दिर नहीं बनने देंगे।"

"क्यों?"

"हमारी नमाज़ में खलल पड़ेगा।"

"यह तो पहिले भी था।"

"अब नया जो बन रहा है।"

खद्दरपोश विस्मय में पड़ गया। कुछ सोच कर पूछने लगा, "तुम कौन हो?"

"एक मुसलमान।"

"बहुत अच्छा। काम अभी बन्द करवा देता हूं। तुम लोगों को चुप करवाओ।"

इतना कह वह भीतर चला गया। मन्दिर के पिछवाड़े एक दूकान में जाकर उसने पुलिस को टेलीफोन पर इत्तला कर दी।

अभी लोग हल्ला कर ही रहे थे कि पुलिस का एक दस्ता बन्दूकें लिये वहां पहुँच गया। पुलिस बन्दूकें तान मन्दिर के सम्मुख खड़ी हो गयी। एक मैजिस्ट्रेट भी वहां पहुँच गया, जो लोगों को वहा से हट जाने के लिये कहने लगा। लोग नहीं हटे। कुछ समय बाद लोगों ने यत्न किया कि पुलिस पर काबू पा जायें और मन्दिर पर चढ़कर काम बन्द करवा दें। परन्तु पुलिस ने लाठी से पीट-पीटकर भीड़ को तितर-बितर करना शुरू कर दिया। लोग दूर दूर हट गये। अब लोगों ने पुलिस पर ईंटें फेंकनी शुरू कर दीं। पुलिस ने गोली चला दी।

जब लोग गोली चलने से भागे तो मुल्ला के पास खड़े एक आदमी ने पूछा, "अब?"

उसने भागते हुए लोगों को ललकारकर कहा, "ओ बुज़दिलो, ओ गद्दारो, इधर आओ, अभी भागने की जरूरत नहीं।"

भागते हुए लोगों में से बहुतों को उसने अपनी ओर बुला लिया और सब को अपने साथ ले वह एक हिन्दू मुहल्ले की तरफ चल पड़ा। मुल्ला के उसी साथी ने फिर पूछा, "अब किधर?"

उसने उत्तर दिया, "शहर को लूट लो। काफ़िरों को मार डालो। यही मौका है। फिर हाथ नहीं आयेगा।"

"मगर मन्दिर?"

"वह तो बहाना था।"

मुल्ला के साथी ने नारा लगाया, "नारा-ए-तकबीर।"

इसके उत्तर में 'अल्ला-हो-अकबर' पीछे आने वाले लोगों ने कहा। ज्यों ज्यों ये नारे लगाये जाते थे, लोगों की भीड़ बढ़ती जाती थी।

शहर की दूकानें बन्द हो गयीं। आने-जाने वालों के पेट में छुरे भोंके जाने लगे। ट्राम-गाड़ियां रोक रोककर लोगों को मारना-पीटना आरम्भ हो गया।

[१२]

पथिक नवाब साहब की बातचीत से विस्मय में डूबा हुआ सिर झुकाये बैठा रह गया। सलीमा और अकरम भी इससे प्रसन्न नहीं थे। नवाब साहब के चले जाने के पश्चात् तीनों अपने २ विचारों में डूबे हुए बैठे रहे। सबसे पहिले पथिक ने सिर उठाया। वह सलीमा और अकरम को सम्बोधित कर कहने लगा, "सलीमा, क्या यह अच्छा न होगा कि शादी अभी कुछ दिन के लिये रोक दी जाय?"

अकरम ने पूछा, "इससे लाभ?"

"यही कि सलीमा को नवाब साहब के कहने पर विचार करने का और अवसर मिल जायगा। मैं चाहता हूँ कि आप फिर एक बार मेरी गरीबी और मेरे परिवार के न पता होने की बात पर ठण्डे दिल से सोच ले।"

सलीमा ने आंखें नीची किये हुए कहा, "आपकी ग़रीबी पर या आपके ख़ानदान के पता न होने पर तो आपत्ति नहीं की गयी। अगर ऐसा होता तो फिर आपसे मुसलमान होने को क्यों कहा जाता?"

"वह पुराने ख़्यालों का शिकार हो रहे हैं। क्या एक बार फिर उनको अपने ख़्याल का बनाने का यत्न न किया जाय?"

"वे सूद है," अकरम का जवाब था।

सलीमा ने कहा, "मैं तो यह समझती हूँ कि मैं आज हिन्दू हो जाऊँ। सुना है यहां आर्यसमाज में मुसलमान हिन्दू बनाये जाते हैं। तब मैं हिंदू तरीके से शादी कर सकूंगी।"

पथिक ने हैरानी से पूछा, "हिन्दू बन जाओगी, क्यों ?"

"इस्लाम मुझे पसन्द नहीं है।"

"और क्या हिन्दू बनना पसन्द है ? देखो सलीमा, कोई बात क्रोध में अथवा घबराकर नहीं करनी चाहिये।"

"इसमें घबराने की क्या बात है ? आप ही तो एक बार कहते थे न कि हिन्दू कोई मज़हब नहीं है। यह एक सियासी जमात है। हिन्दुस्तान को अपना मुल्क समझने वाले अपने आपको हिन्दू कहते हैं और हिन्दू लोग किसी के मज़हबी अक़ीदे पर आपत्ति नहीं उठाते। आप बतायें कि हिन्दुओं में नास्तिक, मेरे जैसे नास्तिक, रह सकते हैं या नहीं।"

"हां, हिन्दुओं में नास्तिक भी रह सकते हैं। हिन्दू तो एक राजनीतिक श्रेणी, हिन्दुस्तान को अपनी पुण्य भूमि और पूज्य भूमि मानने वाली श्रेणी है।"

"तो मैं हिन्दू बन जाऊंगी।"

अकरम ने कहा, "मगर बहिन, हमारा रसूख, जो मुसलमानों में है और जिनकी वजह से हम यहां मुसलमान तुल्बा में बहुत कुछ काम कर सके हैं, ज़ायल हो जायेगा।"

"मैं तो उनको भी हिन्दू बन जाने के लिये कहूँगी। इस्लाम की जो तशरीह (व्याख्या) अब्बाजान ने की है वह हिन्दुस्तान क्या, तमाम दुनिया में बदअमनी (अशाति) फैलाने वाली है। ऐसे इस्लाम को मैं ख़तरनाक समझती हूं।"

"मगर अब्बाजान की तशरीह ठीक है, यह तुम कैसे जानती हो ?"

"जो हकीकत में इस्लाम है, वह मैं न तो जानती हूँ और न ही उसके ख़िलाफ कुछ कहती हूं। मैं तो उसी इस्लाम को नापसन्द करती हूँ जिसकी तशरीह एक अंजुमने-तन्ज़ीम-इस्लाम के मुअज़्ज़िज़ (माननीय) सदस्य ने की है। इस वक्त हिन्दुस्तान में जो इस्लाम के दावेदार हैं यह उनका फर्ज़ है कि वे इसकी ठीक तशरीह करें।"

पथिक ने कहा, "कल हमने तीन जगहों पर जाना है। एक तो

इस्लामिया कॉलेज के तुल्बा का जलसा है। दूसरे डा० अहमद की चाय-पार्टी है। तीसरे चौपाटी पर पब्लिक जलसे में जाना है।"

पथिक ने सलीमा का ध्यान बदलने के लिये बात बदल दी थी। अकरम इसको समझ गया। उसने कहा, "अहमद की पार्टी पर तो आपको जाना चाहिये।"

"मैं पार्टियों को पसन्द नहीं करता। कुछ न कुछ तो खाना ही पड़ता है। मुझे यह चाय और दूसरी चीजें रुचिकर नहीं लगतीं। मैं कॉलेज के तुल्बा में चला जाऊंगा।"

सलीमा ने सायंकाल के प्रोग्राम में रुचि प्रकट करते हुए कहा, "मैं तो समझती हूँ कि इस्लामिया कॉलेज में अधिकतर मुसलमान विद्यार्थी होंगे। वहां भैया चले जायें तो ठीक रहेगा और आप पार्टी में ही जाइये। डा० अहमद अगरचे कौमी ख़्याल के आदमी हैं, मगर वहां सब किस्म के मुसलमान जमा होंगे। उनसे बातचीत करने के लिये आपका जाना ज्यादा अच्छा होगा।"

"और देवी जी किधर जायेंगी?" पथिक ने पूछा।

"मैं कमज़ोर पार्टी की मदद करने के लिये।"

"ओह!" अकरम ने कहा, "तो तुम मेरे साथ चलोगी?"

"मैं तो आपको कमज़ोर नहीं समझती।"

"नहीं, मेरे साथ ही चलना होगा। जो कुछ मैं कहना भूल जाऊं तुम पीछे कह देना।"

"हां," सलीमा ने कहा, "चौपाटी पर हम सब पहुँचेंगे।"

पथिक सलीमा को अपने साथ ले चलने के लिये आग्रह करना नहीं चाहता था। इस कारण बात तय हो गयी।

दूसरे दिन सायंकाल पथिक विक्टोरिया गाड़ी भाड़े पर कर डा० अहमद की पार्टी में पहुँच गया।

अकरम और सलीमा एक टैक्सी भाड़े पर कर इस्लामिया कॉलेज में जा पहुंचे। कॉलेज के लड़कों ने बम्बई भर के विद्यार्थियों को आमंत्रित

किया हुआ था। पथिक की वहां पहुंचने की पूरी आशा थी। कॉलेज के विद्यार्थियों ने आज सामयिक राजनीति पर चर्चा करने का विचार कर रखा था।

जब अकरम और सलीमा वहां पहुँचे तो लड़के पथिक के स्वागत के लिये आगे बढ़े। मोटर गाड़ी के चारों तरफ लड़कों की भीड़ खड़ी हो गयी। इस्लामिया कॉलेज के विद्यार्थियों के नेता ने सलीमा और अकरम के गले में फूलों की माला डाली और पूछा, "मिस्टर पथिक नहीं आये क्या?"

"उन्हें एक पार्टी पर जरूरी जाना था। शायद वहां से आ सके तो आयेंगे।"

इस समय एक नवयुवक फूलों की एक माला लिये हुए भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ आया। उसने माला अकरम के गले में डाल अपनी आस्तीन में से एक तेज़ चाकू निकाल अकरम के पेट में भोंक दिया। "आह!" अकरम के मुख से निकल गया। आह की आवाज़ सुनते ही सलीमा, जो एक विद्यार्थी से बातें करती २ कुछ आगे बढ़ गयी थी, घूमी। उसने घातक को हाथ से लहू से लथपथ चाकू का ज़मीन पर फेंकते देखा। वह उसकी ओर लपकी। इसी समय कुछ और विद्यार्थी लपककर घातक पर झपटे। वह भागने का यत्न करता हुआ पकड़ लिया गया। अकरम वहीं ज़मीन पर लेट गया।

सलीमा ने अकरम को दो-तीन विद्यार्थियों की सहायता से उठा फिर टैक्सी में लिटा दिया और स्वयं उसमें बैठ घाव पर हाथ रख लहू के बहने को रोकती हुई टैक्सी वाले को अस्पताल ले चलने के लिये बोली।

घातक को पकड़कर लड़के कॉलेज में ले गये। वहां उसे एक बैंच पर हाथ-पांव बांध बैठा, लहू से लथपथ चाकू उसके पास रख दिया और पुलिस को टेलीफोन कर दिया।

सभा के प्रधान बम्बई के एक विख्यात वकील, मुन्शी खलील अहमद बैरिस्टर थे। वह कुछ देरी में पहुँचे। जब उन्होंने घटना का

वृतान्त सुना तो वह घातक के पास पहुंच लड़कों को वहां से दूर हटाकर उससे पूछने लगे, "तुम कौन हो ?"

"एक मुसलमान।"

"बेवकूफ, यह तुमने क्या किया है ?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"तुमने कत्ल क्यों किया है ? जानते हो यह कितना बड़ा गुनाह है ?"

"एक काफिर को मार डालना स्वाब (पुण्य) है।"

"काफिर को ? किसको कत्ल कर दिया है, तुम नहीं जानते हो ?"

"पथिक को। एक मुसलमान लड़की को भगा लाने वाले को।"

"पाजी आदमी, तुमने एक मुसलमान, होनहार नौजवान को मार डाला है।"

इसी समय पुलिस के अफसर एक मोटर में वहां पहुंच गये। उन्होंने घातक को बन्दी बना लिया और घटना स्थल के कुछ गवाहों को साथ ले थाने पर चले गये।

[१३]

पथिक अकेला जब डा० अहमद की पार्टी पर पहुंचा तो सब से पहिले उसकी दृष्टि नवाब साहब पर पड़ी। पथिक ने निश्चय कर लिया था कि वह नवाब साहब से दूर रहेगा। वह पार्टी में 'तू-तू मैं-मैं' से बचना चाहता था। नवाब साहब जिनके घर ठहरे हुए थे, वह पार्टी में आमन्त्रित थे। वह अपने मेहमान को भी साथ ले आये। नवाब साहब का चित्त स्थिर नहीं था और यह विचार कर कि पार्टी में जाने से ध्यान दूसरी ओर लगेगा, वह वहा चले आये थे। डा० अहमद से जब परिचय हुआ तो वह अपने विचारों में डूबे हुए होने से डाक्टर साहब की किसी बात को सुन नहीं सके। अब वह एक टेबिल के पास बैठ गये। बैरा चाय वगैरह सामान वहा रख गया। परन्तु उनको कुछ खाने-पीने का ध्यान नहीं था।

पथिक आया। वह उनके पास से गुज़र गया। लोगों में चहल-पहल हो उठी थी, परन्तु नवाब साहब अपने स्थान पर बैठे अपने विचार में

लीन थे। उन्होंने कुछ न देखा, न सुना।

पथिक ने जान-बूझकर अपने बैठने का स्थान ऐसा ढूंढा जहां पर नवाब साहब उसे न देख सकें। कुछ देर तक खाना-पीना होता रहा। पश्चात् डा० अहमद ने मिस्टर पथिक की प्रशंसा कर बताया, "आज की दावत के एक अतिथि मिस्टर पथिक को मैं, जब वह पहले बम्बई आये थे, एक दिन एक जल्से में मिला था। वहां और उसके बाद उनसे बातचीत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। मैंने उनको एक अति शुद्ध, निर्मल विचारों वाला विद्वान पाया है। आज हिन्दुस्तान को ऐसे ही निस्वार्थी कारकुनों की जरूरत है। मैं मिस्टर पथिक से प्रार्थना करता हूँ कि वह थोड़े से शब्दों में अपने विचार प्रकट करें।"

इसके पश्चात् तालियों से पथिक का अभिवादन किया गया। इन तालियों के बजने से नवाब साहब का ध्यान भंग हुआ। वह देखने लगे कि यह कौन है, जिसका स्वागत किया गया है। जब तक उन्होंने पहिचाना पथिक ने अपना वक्तव्य आरम्भ कर दिया था। पथिक कह रहा था, "लेडीज़ एण्ड जैन्टलमैन, डाक्टर साहब ने और आप लोगों ने जो मेरा सम्मान किया है वह मेरी ज़ात का नहीं है क्योंकि मैं स्वयं तो एक बहुत ही छोटा मनुष्य हूँ। हां मैं कुछ विचार रखता हूँ। वे मेरी दृष्टि में तो कुछ भी चमत्कारक नहीं हैं। सर्वथा सीधी-सादी बातें हैं। यह कोई भी आदमी जो अपने, आपके साथ, अपनी समाज के साथ अथवा अपने देश के साथ ईमानदारी का बर्ताव करना चाहता है, जो मन, वचन और कर्म से सत्य-प्रिय है, बिना किसी संकोच के कह देगा।"

नवाब साहब पथिक को वहां पार्टी में देख और पहिचान पसीना पसीना हो उठे। उनके दिमाग़ में अनेकानेक अशुभ विचार चक्कर काट रहे थे। कुछ देर तक तो वह पथिक के कथन को चुपचाप, परन्तु बिना समझे हुए, सुनते रहे। आखिर उनसे नहीं रहा गया। वह अपने स्थान से उठकर मेहमानों की मेज़ों को चीरते हुए आगे बढ़कर पथिक के सम्मुख आ खड़े हुए। पथिक कह रहा था, "हिन्दुस्तान में कोई भी

हिन्दुस्तानी विदेशी सरकार को अपने देश में हुकूमत मज़बूत करने में मददगार·····।" वह आगे नहीं कह सका।

नवाब साहब ने उसे बोलने से रोककर पूछा, "सलीमा और अकरम कहां हैं?"

पथिक ने नवाब साहब की घबराहट देखकर अचम्भे में पूछा, "क्यों?"

"मैं पूछता हूँ, वे कहां हैं?"

"मेरे ख्याल में इस्लामिया कॉलेज में होंगे।"

"और तुम वहां क्यों नहीं गये?"

इस गड़बड़ को देख लोगों ने समझा कि कोई पागल है, जो इस प्रकार वक्ता से झगड़ा करने आगया है। डाक्टर अहमद ने नवाब साहब को हाथ से पकड़ एक तरफ करने का यत्न किया, मगर उन्होंने झटका देकर डाक्टर को एक तरफ कर दिया। वह साहब, जिनके घर में नवाब साहब ठहरे हुए थे, बहुत लज्जा अनुभव करने लगे थे। जब कुछ शांति हुई तो डा० अहमद ने उनसे पूछा, "यह क्या माजरा है?"

वह कहने लगे, "नवाब साहब को कभी कभी हिस्टीरिया के फिट पड़ते हैं।"

वह नवाब साहब को, कुछ दूसरे मेहमानों की सहायता से, अपनी मोटरगाड़ी में ले गये। वहा से वह घर की ओर चल पड़े। मार्ग में नवाब साहब से पूछा, "यह आपने क्या किया है?"

नवाब साहब ने कुछ उत्तर नहीं दिया। जब गाड़ी कुछ दूर तक चली गयी तो नवाब साहब ने कहा, "मुझे खानबहादुर अब्दुलरशीद के घर पर छोड़ दो।"

नवाब साहब जब खानबहादुर के घर पर पहुँचे तो वह एक बहुत मैले-कुचैले कपड़े पहिने, रूमी टोपी सिर पर रखे, अधेड़ उमर के मुसलमान से बातें कर रहे थे। नवाब साहब को देख खानबहादुर बोले, "आइये नवाब साहब, आइये। आपको अब इधर-उधर भागना नहीं चाहिये।"

नवाब साहब बहुत उत्सुकता से खड़े खड़े ही प्रश्न भरी दृष्टि से खान बहादुर की ओर देखने लगे खानबहादुर ने स्वयं उत्तर देने के स्थान उसी मैले कपड़े पहिने आदमी से कहा, "सब बात एक बार फिर कह दो।"

वह कहने लगा, "मैंने उस पठान नौजवान को भाड़े के कपड़े ले दिये और उसके दिमाग में यह नक्श कर दिया कि यह काम ख्वाब का है। यदि वह काफिर मार दिया जायेगा तो एक शरीफ मुसलमान खानदान की लड़की बच जायेगी, नहीं तो वह हिन्दू हो जायेगी। इसके बाद मैंने उसे दो सौ रुपया दिया जो उसने अपनी मा के लिये कोइटा में अपने भाई को मनिआर्डर कर दिया। पीछे मैं, उसके हाथ में एक फूलों की माला दे, उसे कॉलेज के अन्दर भेज, कॉलेज के दरवाजे के बाहर बैठ गया।

"कुछ देर बाद एक मोटर आई। उसके अहाते में जाते ही लोगों ने बन्देमातरम् के नारे लगाये। कुछ सैकण्ड के बाद ही पकड़ो पकड़ो का शोर मच गया। फिर वही मोटर बहुत तेजी से भागती हुई हौस्पिटल रोड की तरफ चली गयी। ड्राइवर घबराया हुआ था। लड़के दो-दो चार-चार की टोलियों में वापिस जाने लगे। मैंने कइयों को कहते सुना कि वह बचेगा नहीं। उसकी आंतें बाहर निकल आई थीं।

"कुछ देर बाद दो मोटर गाड़ियों में पुलिस वहां आई और उस पठान नौजवान को हथकड़ियां लगाकर मोटर में बैठा ले गयी।

"मैं वहां से चल मसजिद के मुल्ला के पास गया। मसजिद के सामने हजारों लोगों की भीड़ जमा थी। मेरे वहां पहुँचते ही पुलिस ने गोली चला दी। लोग भाग खड़े हुए। मगर मुल्ला ने ललकार कर फिर लोगों को जमा कर लिया। अब वह हजारों मुसलमानों की भीड़ के साथ कालबादेवी रोड पर तबाही मचाता हुआ चला जा रहा है।

"शहर भर में हड़ताल हो गयी है। हिन्दू धड़ाधड़ मर रहे हैं। यह देख मैं अपने इनाम के लिये हुजूर के पास हाज़िर हुआ हूँ।"

नवाब साहब यह सब सुनकर क्रोध से थर थर काप रहे थे। उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकलता था। मुख का रंग पीला पड़ता जाता था। खान बहादुर ने खुशी से नवाब साहब की तरफ देख कर कहा, "क्या इनाम·····।"

इससे आगे वह कुछ नहीं कह सके। नवाब साहब बेहोश हो ज़मीन पर गिर पड़े थे। खान बहादुर ने नौकर को बुला नवाब साहब को उठवा बगल के कमरे में पलंग पर लेटा दिया। पश्चात् उस मैले कपड़ों वाले मुसलमान को एक सौ रुपया देकर विदा करते हुए कहा, "फिर आना, और देंगे।"

[१४]

पथिक जब डाक्टर अहमद की पार्टी के पश्चात् बाहर सड़क पर आया तो उसने लोगों को चारों ओर भागते हुए देखा। उसने एक आदमी से पूछा, "क्या बात है?"

भागते हुए आदमी ने कहा, "फसाद हो गया है।"

पथिक हैरान था और नहीं जानता था कि क्या करे। वह अकरम और सलीमा से किये निश्चय के अनुसार चौपाटी पर मीटिंग में जाना चाहता था। जिधर से चौपाटी को मार्ग था, उधर से ही लोग भागे चले आते थे। पथिक ने उधर जाना उचित नहीं समझा। वह उलटी तरफ चल पड़ा। उस तरफ से वह धोबी-तालाब अपने घर पहुचना चाहता था। कुछ दूर जाने पर उधर का मार्ग भी रुका हुआ मिला। हिन्दू और मुसलमान बलवाइयों में डण्डेबाज़ी हो रही थी। इतने में पुलिस पथिक के पीछे से लारियों में आई और जहां पथिक खड़ा यह देख रहा था, लारिया ठहरा, उतरकर बन्दूके तान खड़ी होगयी। पुलिस को देख बलवाई भाग खड़े हुए। इस प्रकार मार्ग साफ होगया। पथिक जल्दी जल्दी पाव उठाता हुआ धोबी-तालाब की तरफ चल पड़ा।

धोबी-तालाब पर जिस मकान में पथिक और अकरम ठहरे हुए थे उसके नीचे एक जौहरी की दूकान थी। मुसलमानों की एक भारी भीड़

उस दूकान पर लूट मचा रही थी। दूकान का चौकीदार मार डाला गया था और उसका शव कुछ लोग टांग पकड़कर घसीटते हुए लिये जाते थे। पथिक ने चौकीदार को पहिचान लिया था। पथिक अन्धेरे में एक तरफ खड़ा हो यह सब झगड़ा देख रहा था। एकाएक नलिनी की आवाज़ उसके कान में पड़ी, "भूतनाथ ! भूतनाथ !!"

पहिले तो पथिक ने यह भ्रम समझा। परन्तु जब दुबारा यही पुकार आई तो वह इधर उधर देखने लगा। भीड़ में से एक आदमी नलिनी को उठाये हुए भागा जा रहा था। पथिक उसके पीछे भागा। यदि अधिकतर लोग दूकानों को लूटने में न लगे होते तो शायद पथिक के लिये इस आदमी तक पहुँचना कठिन हो जाता। प्रायः लोग जब कोई चांदी-सोने की वस्तु अथवा कोई अन्य वस्तु पा जाते थे तो वे घर को भागने की करते थे। ऐसी परिस्थिति में नलिनी को लेकर भागता हुआ आदमी पथिक से पकड़ लिया गया। पथिक ने एक घूंसा उसके मुख पर लगाया। वह आदमी चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ा। पथिक ने नलिनी को गोदी में उठा लिया। नलिनी ने भूतनाथ से कहा, "भैया, मोहन भैया लड़ रहे हैं। वोह हैं।" इतना कह उसने जौहरी की दूकान के साथ मकान के ऊपर जाती हुई सीढ़ियों की ओर हाथ उठाकर दिखाया। वहां पर लाठी चल रही थी। दस-पाच आदमी सीढ़ियों के ऊपर चढ़ना चाहते थे। मोहन लाठी लिये ड्योढ़ी पर खड़ा था। समीप आने वाले पर लाठी की चोट की जाती थी। पथिक समझ गया कि मोहन की जान जाने का भय है। यदि अभी तक वह भीड़ को मकान पर चढ़ने से रोके हुए था तो यह उसका ड्योढ़ी के सकड़े और ऊंचे स्थान पर खड़े होने के कारण था।

बहुत सोचने का समय नहीं था। सड़क की एक तरफ एक पेड़ के नीचे कुछ अन्धेरा था। पथिक ने नलिनी को वहां खड़ाकर समझाया, "यहां पर लेट जाओ और बोलना नहीं। चुपचाप पड़ी रहना। मैं मोहन को छुड़ाने जा रहा हूं।"

नलिनी को भूतनाथ पर अगाध विश्वास था और वह बहुत सहमी हुई भी थी। वह चुपचाप पेड़ के तले लेट गयी। पथिक ने एक आदमी के हाथ से, जो दूकान से लूटा हुआ कुछ सामान अपनी जेबों में ठूँसता हुआ भागा जा रहा था, लाठी छीन ली और पूर्व इसके कि वह घूमकर देखे कि किसने लाठी छीनी है, वह मकान की ड्योढ़ी की ओर भागा जा रहा था। लुटेरे ने यह समझकर कि कोई और दूकान में अपनी भाग्य-परीक्षा करने जा रहा है लाठी का ध्यान छोड़ वहां से भागने की सोची।

पथिक ने ड्योढ़ी के पास पहुंचते ही ड्योढ़ी को घेरे हुए मुसलमानों की भीड़ पर लाठियां बरसानी आरम्भ कर दीं। जब पथिक ने लाठी घुमाई तो ड्योढ़ी के सामने मैदान हो गया। दो-चार घायल हो वहीं गिर गये। शेष पीछे हट गये और ड्योढ़ी का मार्ग खुल गया। अब लोगों ने ईंटें, पत्थर फेंकने आरम्भ किये। मोहन तो लाठी की चोट से घायल हो चुका था। वह बहुत कठिनाई से मार्ग रोके हुए था। पथिक को वहां पहुंचा देख वह अचेत हो वहीं लेट गया।

पथिक ने देखा कि मोहन के पीछे एक और आदमी घायल अचेत पड़ा है। वह मोहन को वहीं छोड़ दे अथवा न, इसको सोचने लगा। बलवाइयों ने अवसर पा फिर धावा बोल दिया। पथिक की लाठी फिर चलने लगी। दूसरी बार ड्योढ़ी के सामने मैदान हो गया। इस समय दूकान लूटने वालों ने, जब दूकान खाली कर दी तो, उसे आग लगा दी। अब तो मोहन को वहीं छोड़ जाना असम्भव हो गया। यदि मोहन जिन्दा है तो जलते हुए मकान में जल जायगा, पथिक ने यह विचार कर मोहन को उठाकर ड्योढ़ी के बाहर कर लिया। लोगों ने फिर धावा बोल दिया। इस समय पथिक का एक हाथ मोहन को पकड़ने में लगा था। केवल एक हाथ से लाठी नहीं चल सकी। वह हार गया। कई लाठियां एकदम उसे लगीं। वह मोहन के अचेत शरीर पर ढेर हो गया।

[१५]

सलीमा अकरम को लेकर अस्पताल पहुंची। अकरम को तुरन्त

सर्जिकल-रूम में ले गये। परीक्षा करने पर पता चला कि वह मर चुका है। रक्त अधिक निकल जाने के कारण हृदय की गति बन्द हो गयी थी। जब सलीमा को बताया गया कि अकरम डाक्टरों की चिकित्सा से दूर हो गया है तो वह वहीं बरामदे में अपने सिर को पकड़कर बैठ गयी। उसका सिर घूम रहा था और उसे कुछ नहीं सूझ रहा था कि क्या करे। अस्पताल में उसने अपना नाम-पता लिखा दिया था और घटना का स्थान और समय भी बता दिया था।

एकाएक उसे यह सूझा कि पथिक को सूचित कर देना चाहिये। वह उठी और टैक्सी कर डाक्टर अहमद के मकान पर पहुँची। वहा उसे मालूम हुआ कि पथिक पैदल चला गया है। वह समझती थी कि अवश्य चौपाटी की ओर गया होगा। वहा से उसने चौपाटी की ओर जाने का यत्न किया, परन्तु बलवाइयों को देख टैक्सी-ड्राइवर ने उधर जाने से इन्कार कर दिया। अब वह घर की ओर लौटी। घर से कुछ दूर ही टैक्सी वाले ने गाड़ी खड़ी कर दी और अपना भाड़ा मांगा। मकान के सामने भारी भीड़ देख सलीमा घबराई। उसने टैक्सी वाले को विदा कर दिया। स्वयं पैदल, सड़क के एक तरफ हो, वह मकान की तरफ जाने लगी।

जब वह वहां पहुंची तो जौहरी की दूकान धकधक जल रही थी। आग की रोशनी में उसने देखा कि एक नौजवान, जो देखने से मुसलमान प्रतीत होता था, दो अचेत अथवा मृत, लहू से लथ-पथ, आदमियों की जेबें टटोल रहा था। और लोगों में भगदड़ मच गयी थी। किसी ने कह दिया था पुलिस आगयी है,। सलीमा ने देखा कि उस नौजवान ने पथिक के शरीर को उठाकर एक तरफ किया। सलीमा ने कहा, "यह क्या कर रहे हो ? यह तो मुसलमान है।"

उस आदमी का हाथ रुक गया, परन्तु वह सलीमा को देख चकाचौंध रह गया। उसके सौन्दर्य को देख उसके मन में मैल आगया था। उसने पथिक को वहीं छोड़ सलीमा को पकड़ कन्धे पर डाल लिया और भाग

खड़ा हुआ।

सलीमा ने शोर मचाना आरम्भ कर दिया, "बचाओ ! बचाओ !!"

सलीमा को उठाये हुए वह आदमी अभी पचास पग से अधिक नहीं गया था कि उसकी कमर में गोली लगी और वह 'हाय' कर वहीं गिर गया। गिरते समय सलीमा के सिर में चोट लगी और उसे चक्कर आगया। कई क्षण तक वह वहीं पड़ी रही। उसे अपना पूर्ण शरीर शिथिल हो गया प्रतीत होता था। किंचितमात्र चेतना आने पर वह उठी। उसने देखा कि सड़क खाली हो गयी है। आग बुझाने का एंजिन आग बुझाने का यत्न कर रहा है। पुलिस के लोग भागते हुए बलवाइयों का पीछा करते हुए दूर निकल गये थे। सलीमा लड़खड़ाते हुए कदमों से वहां पहुँची जहां पथिक और मोहन को अचेत पड़े देखा था। वे अभी भी अचेत थे। समीप एक लड़की बैठी, 'भैया ! मोहन भैया !!' कहती हुई मोहन के शरीर को हिला रही थी। सलीमा ने पथिक के नाक पर हाथ रखा। अभी श्वास चल रहा था। उसके मन में आशा जागृत होने से हिम्मत बँध आई। मोहन के शरीर के पास खड़ी लड़की से सलीमा ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

"नलिनी। यह मोहन भैया है।"

'नलिनी और मोहन भैया !' सलीमा को याद आगया। "मोहन और तुम यहां कैसे आये ?" उसने कहा।

इस समय एक आदमी रेंगकर मकान की ड्योढ़ी से बाहर निकलता हुआ पुकारने लगा, "कीर्ति देवी ! कीर्ति देवी !!"

सलीमा ने देखा और पहिचान लिया। नरोत्तम था। सलीमा भागकर उसके पास पहुँच गई और बोली, "भाई साहब, आप ?"

"हा, मेरी टांग टूट गई मालूम होती है। देखो कोई गाड़ी मिले तो अस्पताल ले चलो।"

सलीमा ने चारों ओर नज़र दौड़ाई। सड़क की दूसरी ओर एक एम्बुलेंस-कार खड़ी थी। वह पुलिस-पार्टी के साथ आई थी। सलीमा वहां

पहुँच ड्राइवर से बोली, "तीन-चार ज़ख्मी हैं। अस्पताल ले चलो।"

ड्राइवर समझता था कि वह पुलिस के ज़ख्मियों के लिये ही भेजा गया है। उसने इन्कार कर दिया। सलीमा निराश हो वापिस लौट आई। नरोत्तम ने पूछा, "क्या कहता है?"

"कहता है, पुलिस वालों के लिये है।"

नरोत्तम, जो जमीन पर पथिक, मोहन और नलिनी के समीप आकर बैठ गया था, सलीमा से बोला, "मेरी जेब में रुपया है। निकाल लो और उसे लालच देकर कहो।"

सलीमा ने नरोत्तम की जेब में हाथ डाला। सौ सौ रुपये के कितने ही नोट थे। सलीमा ने दो निकाल लिये और फिर एम्बुलेंस-कार के ड्राइवर के पास आकर बोली, "इन लोगों को हस्पताल पहुँचा दो तो एक सौ रुपया दूंगी।" ऐसा कह उसने नरोत्तम इत्यादि की ओर संकेत किया और सौ रुपये का एक नोट दिखाया।

ड्राइवर तैयार हो गया। मोहन और पथिक अभी अचेत थे। उनको ड्राइवर और सलीमा ने मिलकर उठाया और गाड़ी में लिटा दिया। नरोत्तम को ड्राइवर आश्रय देकर मोटर में ले गया और उसे अपनी पास की सीट पर बैठा लिया। सलीमा और नलिनी पीछे बैठ गयीं।

अस्पताल में जगह नहीं थी। जख्मियों को बाहर मैदान में लिटाया हुआ था और उनके कराहने का शब्द चारों ओर फैल रहा था। नरोत्तम ने जब यह अवस्था देखी तो ड्राइवर से बोला, "यहां कोई प्राइवेट नर्सिंग होम नहीं है?"

"है तो, पर दूर है।"

"वहां ले चलो; एक सौ और दूंगा।"

ड्राइवर इस रुपयों की वर्षा से अति प्रसन्न था। उसने गाड़ी घुमाई और मालाबार हिल की तरफ चल पड़ा। डाक्टर फिशर के नर्सिंग-होम में गाड़ी पहुँच गयी। डाक्टर साहब ने पहिले तो बलवे के घायलों को लेने से इन्कार किया। पश्चात्, जब नरोत्तम ने नोटों का बण्डल दिखाया तो

राज़ी हो गया। तुरन्त स्ट्रैचरों पर घायलों को लिटाकर भीतर पहुँचाया गया। नरोत्तम ने सब रुपया सलीमा को दे दिया और कहा कि पांच सौ रुपया डाक्टर के पास जमा करा दो और कह दो, "आपका बिल पूरा २ दे दिया जायगा।"

[१६]

कई घण्टों के प्रयत्न के पश्चात् नवाब साहब को चेतना हुई। खान बहादुर और उनके घर के सब लोग उन्हें सचेत करने में लगे हुए थे। जब नवाब साहब को सब बातें अपने अचेत होने से पूर्व की स्मरण हो आईं तो उन्होने खान बहादुर के कान में कुछ कहा। खान बहादुर ने सब घर वालों को वहां से हटा दिया। नवाब साहब ने कहा, "मैं बरबाद हो गया हूँ। और अपने ही हाथों।"

"क्यों क्या हुआ?"

"उस पठान के बच्चे ने मेरे ही लड़के अकरम को मार डाला है।"

"ओह! कैसे हुआ है?"

"मुझे नहीं मालूम क्यों? वह काफ़िर का बच्चा पथिक डाक्टर अहमद की पार्टी में था। जब मैंने उससे पूछा कि अकरम और सलीमा कहां हैं तो उसने बताया कि इस्लामिया कॉलेज में गये हैं।

"डाक्टर अहमद के यहां से मैं तुम्हारे पास आया और कत्ल की वारदात सुन मेरे सिर में चक्कर आने लगा था। ज़रा अस्पताल में टेलीफोन करके पता निकालो तो।"

खानबहादुर ने टेलीफोन घुमाया। कई बार यत्न करने पर नंबर मिला और बड़ी कठिनाई से एक डाक्टर से बातचीत हुई। अस्पताल दंगे के घायलों से भर रहा था। डाक्टरों को बातचीत करने की फ़ुरसत नहीं थी। बहुत मिन्नत करने पर डाक्टर ने कहा, "हां, सायंकाल पांच बजे के लगभग एक लड़की एक आदमी को लेकर यहां आई थी। उसके पेट में छुरे से ज़ख्म किया गया था। लड़का मरा पड़ा है और पुलिस के कब्ज़े में है। लड़की अपना नाम बताकर अपने सम्बन्धियों को बुलाने

गई थी, परन्तु फिर नहीं आई। मृतक का नाम अकरम लिखाया गया है और लड़की ने अपना नाम सलीमा बताया था। अपना पता उसने धोबी तालाब नम्बर पांच में रूम नम्बर बीस और इक्कीस बताया है।"

खानबहादुर ने डाक्टर की सब बात ज्यों की त्यों नवाब साहब को बता दी। नवाब साहब अपना माथा पीटकर रह गये। रात को नगर भर में करफ्यू-आर्डर लग गया था और सड़क पर निकलना असम्भव था।

दिन निकलने पर भी शहर में शाति नहीं थी। इस पर भी नवाब साहब ने खानबहादुर की गाड़ी ली और अस्पताल का रास्ता पकड़ा। हस्पताल में प्रति चार-पांच मिनट के बाद एम्बुलेंस गाड़ी घायलों से लदी हुई आती थी। इससे प्रकट होता था कि शहर में अभी भी फ़साद चल रहा है।

नवाब साहब ने अस्पताल के सब से बड़े डाक्टर के पास पहुंच अपना कार्ड दिया और अकरम की बाबत पूछा। डाक्टर उन्हें अकरम की लाश के पास ले गया। नवाब साहब ने लाश को पहिचान लिया। एक डाक्टर पोस्टमार्टम करने के लिये आया हुआ था। इतने में पुलिस आ पहुंची। उन्होंने नवाब साहब के बयान भी कलम-बंद कर लिये। नवाब साहब को सलीमा की चिन्ता लग रही थी। पुलिस भी उसकी तलाश में थी। सबका ख्याल था कि रात कहीं बलवे में मारी गई है, अथवा घायल हो कहीं पड़ी है। सलीमा ने जो पता लिखाया था पुलिस वालों ने बताया कि वह मकान तो जलकर भस्म हो गया है।

लगभग दस बजे डाक्टर ने बताया कि सलीमा का टेलीफोन डाक्टर फिशर के नर्सिंग-होम से आया है। उसके कुछ सम्बन्धी बलवे में घायल हो वहां पड़े हैं और गाड़ी न मिल सकने के कारण वह भी अभी तक आ नहीं सकी। पुलिस वालों ने अपनी कार, जिसमें हथियार-बन्द पुलिस वाले भी थे, मालाबार-हिल पर नर्सिंग-होम में भेज सलीमा को बुला भेजा।

नवाब साहब के मन में चोर था और उनको साहस नहीं हुआ कि वह सलीमा के सामने आंखें कर सकें। जब वह आई तो वह आंखें नीचे

किये बैठे रहे। सलीमा भागकर उसके आगे घुटनों के बल बैठ अपना सिर उसकी गोदी में रख रोने लगी।

कुछ समय तक यह हृदय-विदारक दृश्य सब देखते रहे। पोस्टमार्टम समाप्त हुआ। अकरम का शव दे दिया गया। नवाब साहब ने खानबहादुर को टेलीफोन कर अकरम के दफ़नाने का प्रबन्ध करने को कहा।

सायंकाल पुलिस के निरीक्षण में अकरम का जनाज़ा निकला। नगर के बड़े बड़े मुसलमान लीडर साथ थे। सलीमा और नवाब साहब से सैकड़ों लोग हमदर्दी करने वाले कब्रिस्तान में पहुँचे थे।

सलीमा यह तो समझी थी कि किसी मज़हबी दीवाने ने पथिक के धोखे में उसके भाई को मार डाला है, पर उसे यह नहीं मालूम था कि उसके बाप ने ही कातिल को भेजा था।

नवाब साहब अपने किये पर बहुत लज्जित थे। यद्यपि उपस्थित लोगों में, सिवाय खानबहादुर अब्दुलरशीद के, कोई नहीं जानता था कि अपने लड़के को कत्ल कराने वाले वह स्वयं हैं, इस पर भी मन ही मन वह अपने आप पर घृणा कर रहे थे।

खानबहादुर अब्दुलरशीद यद्यपि जनाज़े में सम्मिलित थे इस पर भी अपने विचारों में लीन थे। उनके मुख का रंग पीला पड़ गया था। वह थोड़े थोड़े समय के पश्चात् भय से काप उठते थे। उन्हें साहस नहीं हुआ कि नवाब साहब को अपना मुख भी दिखा सकें।

जनाज़े के पश्चात् जब सब लोग चले गये तो नवाब साहब ने सलीमा से कहा, "अब ?"

"मैंने नर्सिंग-होम जाना है। अगर खानबहादुर अपनी गाड़ी दे सकें तो उनकी बड़ी मेहरबानी होगी।"

"वहां क्या है ?"

"वह वहां बेहोश पड़े हैं।"

"वह कौन ! पथिक ?"

"हां, बलवे में फंस गये थे।"

नवाब साहब चुप थे। खानबहादुर ने सिर हिलाकर गाड़ी देनी स्वीकार कर ली। सलीमा उसमें सवार हो नर्सिंग-होम को चली गयी। किसी ने उसे रोकने का यत्न नहीं किया।

जब वह चली गयी तो नवाब साहब ने लम्बी सांस खैंचकर कहा, "अब क्या होगा?"

खानबहादुर ने कहा, "नवाब साहब, सख्त अफसोस है। हमारा मन्शा यह न था।"

"आपने मेरा घर तबाह कर दिया। मैं भी बेवकूफों की तरह आपके चकमें में फंस गया। ऊफ! या खुदा।"

नवाब साहब की आंखों से आसू बहने लगे थे।

[१७]

नरोत्तम की टांग की हड्डी टूट गयी थी। उसे ठीक बैठाकर पट्टी बांध दी गयी। वह खाट पर लेटा हुआ था। मोहन की कनपटी में सख्त चोट आई थी। वह यद्यपि होश में था तो भी बातचीत करने में कष्ट अनुभव करता था। उसका मुंह और सिर पट्टियों से बंधा हुआ था। पथिक के सिर में कई चोटें आई थीं। खोपड़ी की हड्डी एक स्थान से चटक गयी थी। उसे अभी चेतना नहीं हुई थी। इस पर भी डाक्टर आशा कर रहा था।

सलीमा जब सायंकाल पहुंची तो अवस्था अभी वैसी ही थी। उसने डाक्टर से पूछा, "कब तक होश आयेगा?"

"कह नहीं सकता।"

"ठीक हो जायेंगे?"

"बहुत उम्मीद है।"

नरोत्तम को सलीमा ने अकरम की मौत का हाल सुनाया। उसे इससे बहुत ही शोक हुआ। नरोत्तम ने अपने बम्बई पहुंचने का कारण बताते हुए कहा, "मुझे कई बातों से यह मालूम हो गया था कि यह मिस्टर पथिक वही है जो मैं समझ रहा था। मेरा एक मित्र था। उसका

नाम था मधुसूदन। उसकी सगाई मेरी बहिन पूर्णिमा से हो चुकी थी। पूर्णिमा की तस्वीर तुमने देखी थी न। वह नलिनी से बिलकुल मिलती थी। उसी तस्वीर से मुझे सन्देह हुआ था कि पथिक मधुसूदन है। मधुसूदन हाथ से चित्र बनाना जानता था। मैंने समझा था कि उसने पूर्व स्मृति से पूर्णिमा का चित्र बनाया है। चित्र तो नलिनी का निकला, परन्तु पथिक के मधुसूदन होने के और प्रमाण मिल गये। मैं उसे मिलना चाहता था। पथिक का पता जानने के लिये मैं देवा पहुँचा। वहां से मोहन और नलिनी मेरे साथ हो लिये। हम उसे ढूंढते हुए जबलपुर, अमरावती होते हुए बम्बई पहुंचे। कल दिन भर हम आपका और पथिक के रहने का पता मालूम करते रहे। सायंकाल हम पता जान आपके मकान पर पहुंचे। आप में से वहां कोई नहीं था। कुछ देर तक आपकी प्रतीक्षा की। फिर यह सोच कि कुछ देर के बाद लौट आयेंगे, मकान के नीचे उतरे। उतरते ही हमें बलवाइयों ने घेर लिया। एक ने बड़े ज़ोर से मेरी टांग पर एक लाठी मारी। मैं तो वहीं गिर गया। मोहन ने मुझे उठा सीढ़ियों की ड्योढ़ी में लिटा दिया। स्वयं वह लाठी तानकर खड़ा हो गया। पश्चात् मुझे बेहोशी हो गयी। जब मुझे चेतना हुई तो मकान में आग लग चुकी थी। मैं उठ नहीं सकता था। रेंगता हुआ मकान से बाहर आया। नलिनी बेहोश पथिक और मोहन के पास बैठी थी। उसी समय आप वहां आगयीं।"

अगले दिन पथिक ने आंखें खोलीं। परन्तु अभी भी वह किसी को पहिचान नहीं सका, न ही कुछ बोल सका था। हां इससे आशा बहुत बढ़ गयी। दो दिन पश्चात पथिक के मुख से पहिला शब्द निकला और यह शब्द था पूर्णिमा। उस समय नलिनी उसके पास खड़ी थी।

नरोत्तम ने जब देखा कि शहर में फसाद बंद हो गया है तो उसने कलकत्ते तार भेजकर अपने नर्सिंग-होम में लेटे होने की सूचना भेज दी। परिणाम यह हुआ कि नरोत्तम की माता और पत्नी वहां पहुँच गयीं। चिट्ठी में मधुसूदन का हाल जब भेजा गया तो सेठ कुँजबिहारी भी वहां पहुँच गये।

इस समय तक पथिक को पर्याप्त चेतना हो चुकी थी। उसने नरोत्तम, तपस्विनी इत्यादि को पहिचान लिया था। सबसे कठिन समस्या नलिनी की थी। वह उसे पूर्णिमा ही समझता था। जब उसे बताया जाता कि वह मोहन की बहिन है तो वह अचम्भे में सबका मुख देखने लगता था। सलीमा को वह नहीं पहिचानता था। अकरम की बाबत वह कुछ नहीं जानता था। देवा की उसे कोई बात याद नहीं थी। युवक-संघ की बातें उसे ज्ञात नहीं थीं।

मोहन ने उसके देवा पहुंचने से लेकर बम्बई आने तक का सारा वृत्तान्त सुनाया, परन्तु पथिक को यह सब एक कहानी ही प्रतीत हुई। उसने एक दिन सलीमा से कहा, "आपका मेरे पास आकर बातें करना मुझे बहुत भला प्रतीत होता है। परन्तु आप जो कुछ पिछली बातें करती हैं वे मुझे स्मरण नहीं आतीं। आप कहती हैं कि मेरा आपसे विवाह होने वाला था। सत्य ? कितनी अच्छी बात आप कहती हैं। क्या अब मेरे दिमाग की ऐसी हालत जानकर भी आप मेरे प्रति वही भाव रखती हैं ? मगर कल भैया नरोत्तम बता रहे थे कि आपके पिता एक बड़े जागीरदार, नवाब हैं और मैं भिखारी हूं। आप मुसलमान हैं और मैं हिन्दू हूँ। मैं अब क्या समझूं ?"

सलीमा ने कहा, "क्या फिर वही झगड़ा करना होगा जो पीछे छः महीने से होता रहा है ? क्या मेरी तपस्या अभी पूर्ण नहीं हुई ? क्या मुझे फिर यह सिद्ध करना होगा कि मैं आपके योग्य हूँ ? आप कैसे समझेंगे ?"

"देखो सलीमा, मैं एक गरीब ब्राह्मण का लड़का हूं। मैं जेल से भागा हुआ कैदी हूं। मुझे एक देवी ने इसी कारण अस्वीकार कर दिया था। उसकी याद अभी भी मेरे दिमाग में उपस्थित है।"

"उसने आपको अस्वीकार कर दिया था ?"

"हां, उसने महात्मा गांधी का सत्य का व्रत लिया हुआ था। एक सत्याग्रही के लिये एक भागे हुए कैदी को आश्रय देना उचित नहीं माना गया। इस कारण मेरा उससे विवाह न हो सका।"

"और वह नरोत्तम बाबू की बहिन थी ?"

"हाँ।"

ऐसी ही बातें होती रहती थीं, जिनके कारण सलीमा एक विचित्र परिस्थिति में पड़ गई थी। उसने एक राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत व्यक्ति को अपना हृदय अर्पण कर दिया था। वह व्यक्ति एकाएक बदल गया है। सूरत शक्ल वही है। सहृदयता और सौजन्य वही है। चमत्कार आकर्षण भी उपस्थित है। परन्तु क्या देश-प्रेम भी वही है यह सलीमा जानने का यत्न करती थी। वह पूछना चाहती थी कि क्या वह इसी मज़हब में रहते हुए भी उसे पत्नी बनाना स्वीकार करेगा, परन्तु डरती थी कि वह ब्राह्मण का लड़का है। उसके पूर्व संस्कार जाग्रत हो उठे हैं। वह कहीं इन्कार न कर दे। वह बात करने के लिये आती थी, परन्तु बात होठों पर आकर रह जाती थी।

सलीमा, जबसे अकरम का देहान्त हुआ था, नवाब साहब से मिलने रोज जाती थी। वह समझती थी कि उसके पिता को बहुत सदमा पहुँचा है और उसका यह कर्तव्य है कि उनसे हर रोज मिलकर उनके चित्त को शांति दे और उनके मन को दूसरी ओर लगाये। सलीमा की मां भी बम्बई आगयी थी। वे सब लोग खानबहादुर के मकान पर ही रहते थे। अकरम के कातिल पर मुकदमा चल रहा था। खानबहादुर और नवाब साहब यह समझते थे कि ऐसे अवसर पर उनका बम्बई में रहना निहायत ज़रूरी है।

इस समय अजीब अजीब किस्म के लोग नवाब साहब और खानबहादुर से मिलने आते थे। एक दिन की बात है कि सलीमा अपने पिता से मिलने आई। उनसे प्रायः वह बैठक में मिला करती थी। उस दिन उसके पिता और खानबहादुर दोनों घर पर नहीं थे। वह पथिक से वार्तालाप ठीक रूप में न कर सकने से कुछ उदास थी। जब बैठक को खाली देखा तो नौकर से यह जानकर, कि उसके पिता आधे घण्टे में लौट आने को कह गये हैं, वह वहीं बैठ गयी। अपनी मां से मिलने की

उसे अब कुछ चाह नहीं रही थी। वह मां को, उसे धोखा देने के लिये, नाटक करते देख चुकी थी। अपने पिता के लिये उसके हृदय में अभी भी कुछ स्थान था। वह उन्हें अकरम के जनाज़े पर रोते देख चुकी थी।

सलीमा को बैठे अभी दस मिनट से अधिक नहीं हुए थे कि एक बहुत मैले-कुचैले कपड़े पहिने, रूमी टोपी लगाये आदमी को बैठक में निधड़क आते देख वह घबराई। उसने समझा कि कोई खानबहादुर से मिलने आया है। उसने उसे पहले कभी वहां नहीं देखा था। सलीमा उठकर बग़ल के कमरे में हो गयी। यह कमरा खानबहादुर का स्टडी-रूम था। वहां वह एक कुर्सी पर बैठ गयी और मेज़ पर रखी एक किताब उठाकर पढ़ने लगी।

एक-दो मिनट पश्चात् एक और आदमी बैठक में पहुंच गया प्रतीत होता था। दो आदमियों की बातें करने की आवाज़ उसे आने लगी थी। सलीमा का मन किताब में नहीं लग रहा था, इस कारण उसने उठकर देखना चाहा कि यह दूसरा आदमी कौन है? कमरे के दरवाज़े पर पर्दा लगा था। सलीमा ने पर्दे को थोड़ा सा हटाकर झांका। यह नया आया हुआ एक मुल्ला मालूम होता था। दाढ़ी-मूछों और कपड़ों से कोई मस्जिद में लड़कों को कुरान पढ़ाने वाला मालूम होता था। वह पर्दे के पीछे से हटने ही वाली थी कि उसके कान में एक के यह कहने के शब्द पड़े, "मैं आज नवाब साहब से आख़िरी बात करने आया हूँ। अगर वह न माने तो कल उनको हथकड़ी लगवा दूंगा।"

यह हथकड़ी की बात सुन सलीमा रुक गयी। वह वहीं खड़ी रह गयी। दूसरे ने उत्तर दिया, "देखो भाईजान, ज़रा उनके जज़बात का भी ख्याल करो। उन्होंने जो कुछ किया कौमी मफ़ाद के लिये किया था। इस पर मर गया उनका लड़का। इससे उनको सदमा पहुँचा है। वह अभी भी अपने होश में नहीं हैं। आराम से समझाने पर सब बात सुलझ जायेगी।"

पहिले आदमी ने क्रोध में फिर कहा, "कौमी मफ़ाद की बातों को

मैं खूब समझता हूँ। बात यह थी कि उनकी लड़की की आशनाई एक हिन्दू से थी। वह उस हिन्दू नौजवान को मरवाना चाहते थे। ग़लती उन्होंने की कि उस हिन्दू के मिलने की जगह के बजाय अपने लड़के के मिलने की जगह बता दी। हुलिया भी जो बयान किया था वह ग़लत था। हिन्दू की जगह उनका लड़का मारा गया है। और फिर मेरा भी तो लड़का मारा गया है।"

"तुम्हारा लड़का मारा गया है! कैसे?" खानबहादुर ने बैठक में दाखिल होते हुए कहा। इस समय नवाब साहब और खानबहादुर वहां आ पहुँचे थे। सलीमा के लिये यह वार्तालाप असह्य हो रहा था। वह पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रह गयी।

खानबहादुर के प्रश्न पर वही आदमी अब और भी क्रोध में कहने लगा, "देखिये साहब, आपने मुझे दो हज़ार रुपया देने का वायदा किया था और अभी तक सिर्फ पांच सौ रुपये दिये हैं।"

नवाब साहब ने कहा, "तो बाकी देने से इन्कार तो किया नहीं। मैंने तो यह कहा था कि यह कत्ल का मुकदमा खतम हो जाये तो तुम्हारी रकम तुम्हें दे देंगे।"

"साहब, मुकदमा खत्म करने की बात तो थी नहीं। उसके लिये आपने बीस हज़ार तक और खर्च करने को कहा था। यह दो हज़ार तो मुझे फौरन मिलना चाहिये और फिर कातिल को और कातिल के रिश्तेदारों को चुप कराने के लिये उस बीस हज़ार में से खर्च करें। मेरे दो हज़ार में से इसके लिये देना तय नहीं था।"

"हां, हां, तुम ठीक कहते हो," खानबहादुर ने कहा। "तुम्हारे दो हज़ार में से कुछ कम नहीं करेंगे। सिर्फ बात यह है कि नवाब साहब के बेटे के मारे जाने से कई खर्चे और पैदा होगये हैं और मुकदमा लड़ने के लिये भी धड़ाधड़ रुपया खर्च हो रहा है। कुछ देर ठहर जाओ। तुम्हारी रकम अदा कर दी जायगी।"

"मगर साहब, मेरा लड़का मर गया है और मुझे रुपये की सख़्त

ज़रूरत है।"

नवाब साहब ने सहानुभूति दिखाते हुए पूछा, "उसे क्या हुआ था?"

"आप लोगों की बुरी नज़र उस पर पड़ी है। उसे बलवे में गोली लग गयी थी।"

"गोली! किस जगह?" खानबहादुर ने पूछा। वह इस प्रकार क्रोध में भरे हुए से हमदर्दी प्रकट कर उसे कुछ शांत करना चाहते थे।

उसने कहा, "पहली शाम की ही बात है। मैं आपके यहां से जब गया तो एक झुँड में शामिल हो गया। मेरा लड़का भी उसी में था और मैं उसे बलवाइयों से निकालकर बाहर ले जाना चाहता था। मेरे उसके पास पहुंचने से पहले लोग धोबी-तालाब के चौक में जा पहुंचे। वहां जौहरी की दूकान में लूट मच गयी। मुझे लूटने में कुछ दिलचस्पी नहीं थी। कुछ हिन्दू जौहरी की दूकान के ऊपर मकान से नीचे उतरे। उनमें एक आठ-नौ साल की निहायत खूबसूरत लड़की भी थी। जब लोगों ने उन हिन्दुओं से लड़ना शुरू किया तो मैं उस लड़की को उठा कर ले भागा। अभी कुछ दूर ही पहुंचा था कि लड़की ने पुकारा, 'भूतनाथ! भूतनाथ!' और एक आदमी पेड़ के पीछे से निकल आया और मेरे मुख पर ऐसे ज़ोर का घूंसा मारा कि मैं चक्कर खाकर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब मुझे होश आया तो पुलिस आ पहुंची थी। मैं अपने लड़के की तलाश में था। वह दो हिन्दुओं की लाशों की जेबें टटोल रहा था। इतने में एक नौजवान लड़की उसके पास पहुँच तकरार करने लगी। वह शायद मकान के ऊपर से उतरी थी। मेरे लड़के ने उस लड़की को ले भागने के लिये उठा कंधे पर रख लिया और भाग खड़ा हुआ। लड़की ने 'बचाओ, बचाओ' का शोर मचा दिया। पुलिस के आदमी ने देख लिया और निशाना बाधकर गोली चला दी। गोली लड़के की कमर में लगी और वह गिर गया। लड़की तो बेहोश हो गयी और मैंने अपने लड़के को, जो अभी मरा नहीं था कंधे पर उठाया और समीप ही एक गली में घुस गया और वहा से घर

पहुँच गया। तब से उस लड़के का इलाज कर रहा था। कल वह फ़ौत हो गया है।"

सलीमा ने यह किस्सा सुना तो सन्न रह गयी। वह अपने पिता को रुपया देकर उसके प्रेमी को मरवाने के लिये हत्यारा भेजने की बात सुन बहुत ही बेचैन हो उठी थी और अब वह देख रही थी कि उस नौजवान का बाप, जो उसे उठाकर उसकी बेइज़्ज़ती करने के लिये ले जा रहा था, उसके बाप से रुपया मांग रहा है। वह थरथर कांपने लगी थी, इतने विचार उसके मस्तिष्क में एकदम उठ रहे थे कि वह नहीं जानती थी कि क्या करे? वह इसी समय कुछ करने के लिये छटपटा रही था। परन्तु निश्चय नहीं कर सकती थी। एक ओर तो उसके मस्तिष्क में अपने पिता के प्रति घृणा उत्पन्न हो रही थी, दूसरी ओर वह सोचती थी कि इस षडयन्त्र को प्रकाशित कर दे। फिर वह सोचती थी कि इस बदमाश को, जो रुपया लेकर लोगों की हत्या करने या करवाने पर तैयार हो जाता है, अभी जाकर जूतों से पीट दे। और भी अनेकानेक क्रोध से उत्पन्न विचार उसके मन में पैदा हो रहे थे। इनके साथ ही उसके मन में आत्मग्लानि उत्पन्न हो रही थी। वह सोच रही थी कि हिन्दुस्तान जैसे पतित देश में, जहां निजी बातों पर कौमी बलवे करवा दिये जाते हैं, जहां कोई निरर्थक खिताब लेने के लिये जाति के लाभ को बेच दिया जाता है, जहां बीस-पचीस रुपये की नौकरी के लिये अपने ही सगों पर अ और अत्याचार किया जा सकता है, जहां बाप मज़हबी जनून के लिये सगे लड़के का घात करवा सकता है अथवा लड़की को विधवा बना सकता है, रहते हुए जीने में क्या कोई अच्छाई है? वह आत्मघात कर हिन्दुस्तानी होने के कलंक से छुटकारा पाना चाहती थी।

जब इस प्रकार के विचार उसके दिमाग़ में भर रहे थे तो उसने सुना कि उसका पिता कह रहा था, "अभी यह दो सौ रुपये ले लो।"

मांगने वाला कह रहा था, "नहीं, एक हज़ार फौरन दे दो वरना·····"

सलीमा और आगे नहीं सुन सकी। वह स्टडी-रूम से बाहर निकल

आई। बैठक में मैले-कुचैले कपड़े पहिने आदमी खड़ा हुआ घूर घूर कर नवाब साहब और खानबहादुर की ओर देख रहा था। मुल्ला की रूप-रेखा का आदमी कुर्सी पर धीरज से बैठा हुआ था और खानबहादुर तथा नवाब साहब बहुत बेचैनी से एक दूसरे की ओर देख रहे थे। सलीमा को आते देख कांपते हाथों से नवाब साहब रुपयों के बण्डल को उठाकर जेब में रखने लगे और रक्तविहीन होठों से मुस्कराने का बहाना करने लगे। सलीमा ने अपने पिता को घबराया हुआ देखकर कहा, "अब्बाजान, मैंने सब सुन लिया है। इसके छुपाने की कोई ज़रूरत नहीं। आप इसे दें या न दें मुझे कुछ नहीं कहना। हां, मैं एक बात आपको बताना चाहती हूँ कि इसका लड़का मुझे ही उठाकर ले भागा था जब उसे गोली लगी थी। कहीं इत्तिफ़ाक से भाग जाने में वह कामयाब हो जाता तो वह आपकी लड़की की इस्मतवरी करता। अच्छा अब्बाजान, अब मैं जाती हूँ और शायद अब फिर नहीं आऊंगी।"

इतना कह सलीमा बैठक से बाहर की ओर को चल पड़ी। नवाब साहब ने अपने आचरण की सफाई देने के लिये सलीमा को पुकारा, "सलीमा, सलीमा, ठहरो, सुनो।"

सलीमा दरवाज़े के समीप गई और अपने पिता की ओर देखकर बोली, "सलीमा मर गयी है। उसका ख्याल आप छोड़ दें। सलीमा और अकरम दोनों गये, ऐसा समझ लें।"

इतना कह वह बैठक से निकल मकान से बाहर निकल गयी।

[१८]

नरोत्तम अब बैसाखियों के सहारे चल सकता था। उसकी टांग की हड्डी जुड़ तो गयी थी, परन्तु डाक्टर ने उस पर बोझा डालकर चलने की अभी सम्मति नहीं दी थी। मोहन अब नर्सिंग-होम में नहीं रहता था। वह अब बिलकुल ठीक होगया था। मोहन, मोहन की मां, नलिनी, नरोत्तम की माता और स्त्री सब नर्सिंग-होम से कुछ फासले पर एक कोठी में रहते थे। पथिक अब भी नर्सिंग होम में था।

नरोत्तम सलीमा की परेशानी को समझता था। वह देख रहा था कि पथिक सलीमा से विवाह के लिये कुछ अधिक उत्सुक प्रतीत नहीं होता। सलीमा एक ओर तो माता-पिता से झगड़ा कर चुकी थी, और दूसरी ओर अपने एकमात्र सहायक, भाई की मृत्यु से घुलती जाती थी। वह समझ रहा था कि यदि यही अवस्था कुछ दिन और चलती रही तो सलीमा या तो आत्मघात कर लेगी या पागल हो जायगी। कभी २ वह घण्टों ही चुप चाप बैठी मन में सोचती रहती थी।

एक दिन नरोत्तम के मन में आया कि कहीं पूर्णिमा की कहानी दोबारा न घट जाय। उसने मन में निश्चय कर लिया कि इस समस्या को सुलझाना चाहिये और तुरन्त। तपस्विनी ने भी इस बात पर बहुत जोर दिया। नरोत्तम ने तुरन्त सेठ साहब से बात की। वह अभी तक बम्बई में ही टिके थे। सेठ साहब ने कहा, "यदि मधुसूदन का पथिक बन कर अपना पूर्व इतिहास भूल जाना पागलपन था तो अब पुनः मधुसूदन बन पथिक के जीवन को भूलना भी पागलपन ही कहा जाना चाहिये। इस पागलपन की चिकित्सा होनी चाहिये। नरोत्तम को यह युक्ति अच्छी लगी, उन्होंने डाक्टर घोष को कलकत्ते से बुला लिया।

डाक्टर साहब का सलीमा से स्नेह हो गया था और वह सब बात सुन कर इस विषय पर गम्भीरता से विचार करने लगे। एक दिन डाक्टर साहब ने सेठ साहब, नरोत्तम, सलीमा और तपस्विनी को पथिक के रोग का निदान और चिकित्सा बताई। उन्होंने बताया, "पथिक को पागल तो नहीं कहा जा सकता था और न वह अब ही पागल है। यह मस्तिष्क की एक विशेष परिस्थिति है जो पागल के दिमाग से सर्वथा भिन्न है। पागल के दिमाग पर उसके वातावरण का वह प्रभाव नहीं होता जो एक साधारण मनुष्य के मस्तिष्क पर होता है। पथिक के मस्तिष्क पर तो बाहरी बातों का वैसा ही प्रभाव होता है जैसा कि मेरे, आपके, तथा किसी भी साधारण मनुष्य के मस्तिष्क पर होता अथवा होना चाहिये। उदाहरण के तौर पर मैंने उसके सम्मुख देश की राजनीतिक परिस्थिति रखी। उसका उत्तर

सर्वथा युक्तिसंगत था। उसने कहा, 'मांगने से कुछ नहीं मिल सकता। अधिकार प्राप्त करने के लिये अधिकारी बनना आवश्यक है। दूसरों को अपने अधिकारी होने की योग्यता बतानी होगी। राजनीतिक अधिकार चरित्रवान, बुद्धिमान और वीरों को मिलते हैं।' मैंने उससे मज़हब के विषय पर वार्तालाप किया। वह बोला, 'किसी बात को किसी ढंग से मानने को मज़हब कहते हैं। कोई भी दो व्यक्ति किसी भी बात को सर्वथा एक ढंग से मान ही नहीं सकते। इससे यह कहना कि संसार में कोई भी दो व्यक्ति समानधर्मी (एक ही मज़हब के मानने वाले) हैं, मिथ्या है। पूर्ण रूप से कोई भी बात दो मस्तिष्क एक ही समान न तो समझ सकते हैं, न मान सकते हैं।'

"ऐसी परिस्थिति में मैं उसे पागल नहीं कहता। मैं उसकी त्रुटि को इस प्रकार वर्णन करता हूँ। मनुष्य का मस्तिष्क दाहिने और बायें दो भागों में विभक्त है। दोनों भाग एक जैसा काम करते हैं, परन्तु दोनों एक ही समय काम नहीं करते। प्रायः मनुष्यों के मस्तिष्क का बाया भाग काम करता है, दाहिना सोया रहता है। यही कारण है कि मनुष्य के दाहिने अंग अधिक कार्य सम्पन्न कर सकते हैं। दाहिने अंगों का सम्बन्ध मस्तिष्क के बाये भाग से होता है और बायें अंगों का सम्बन्ध मस्तिष्क के दाहिने भाग से। प्रकृति ने यह दोहरा प्रबन्ध इसलिये कर रखा है कि कहीं किसी कारण से मस्तिष्क का एक भाग नाकारा हो जाय अथवा थक जाये तो दूसरा भाग काम कर सके। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्णिमा की मृत्यु के समय उसे भारी शोक और सदमा हुआ, जिससे मस्तिष्क का वह भाग जो उस समय काम करता था थक गया अथवा बेकार होगया। उसके मस्तिष्क का वह भाग सो गया और काम करने के लिये दूसरा जाग उठा। वे सब संस्कार, जो पहिले भाग में थे, उसके सो जाने के साथ सो गये और नवीन संस्कार एकत्रित होने लगे। अब फिर मस्तिष्क पर बहुत बोझा पड़ा है और सिर पर चोट लगना भी कारण हो सकता है जिससे यह भाग, जो पथिक की अवस्था में संस्कार एकत्रित कर रहा

था, शिथिल होकर सो गया है और पुनः पहिला भाग जागृत हो उठा है। यही कारण है कि उसे पथिक के जीवन की घटनायें भूल गयी हैं।

"दिमाग के इस भाग को, जो अब थककर अथवा किसी अन्य कारण से सो गया है, पुनः जागृत करने का उपाय है। यदि पथिक को विवश कर दिया जाय कि वह अपने बायें हाथ और दूसरे बायें अंगों से काम करे तो मस्तिष्क के सोये हुए अंग को उत्तेजना दी जा सकती है। हम उसे बायें पांव से फुटबॉल खेलने और बायें हाथ में छड़ी रखने पर विवश करें। हमें चाहिये कि उसके चलने, बैठने, बातें करने, उसके कमरे के फर्नीचर को सजाने का ढंग ऐसा कर दें कि उसे बायें अंगों से काम करने पर विवश होना पड़े। उसको जब भी कोई चीज़ पकड़ाओ बायें हाथ में, उसके साथ चलो और बातें करो तो बाईं तरफ होकर। उसके कमरे का दरवाज़ा उसके बैठने के स्थान से बाईं तरफ हो। इस प्रकार कुछ महीने तक करने से उसके मस्तिष्क का दाहिना भाग पुनः स्फूर्ति पकड़ लेगा और वह पथिक की योजनाओं को चलाने में सफल हो सकेगा।"

सलीमा को डाक्टर घोष से पथिक की अवस्था का निदान और चिकित्सा सुन बहुत सन्तोष हुआ। एक बात तो स्पष्ट हो गयी थी कि पथिक की इस अवस्था को पागलपन नहीं कहा जा सकता। यदि यह अवस्था केवल भूलने के साथ सम्बन्ध रखती है और मस्तिष्क में विचार करने से सम्बन्ध नहीं रखती तो पथिक के सब गुण मधुसूदन में होने सम्भव हैं। मधुसूदन भी वैसा ही देशभक्त, मज़हबी पक्षपात से ऊपर और दृढ़ चरित्रवान हो सकता है। यदि विचार-शक्ति का लोप नहीं हुआ, जो पागलों में हो जाता है, तो मधुसूदन पथिक के जीवन को भूल कर भी वैसा ही देश तथा जाति के लिये कार्य करने में धीर, वीर, गम्भीर होगा।

कठिनाई केवल यह रह गयी थी कि उसके मन में सलीमा के लिये प्रेम जागृत किया जाय। अब यह कुछ कठिन अवश्य था। पथिक पूर्णिमा को भूल चुका था। अब पूर्णिमा की स्मृति सलीमा से प्रेम के विचार का

विरोध कर सकती है। इस विरोध को विजय करना सलीमा का काम था और इसके लिये वह अपनी पूर्ण शक्ति लगा देने के लिये कमर बांध तैयार हो गयी। वह सोचती थी कि यह तो करना ही होगा। यदि यह चोट लगने की घटना कहीं विवाह के पश्चात् होती तो बहुत बुरा होता। अब तो परिस्थिति और भी स्पष्ट है। पथिक को पीछे यह कहने का अवसर नहीं आयेगा कि उसने सलीमा से विवाह अज्ञानता में किया था।

डाक्टर घोष की बताई विधि, जिससे उसके मस्तिष्क का वह भाग जो पथिक के काल में जाग्रत था पुनः जाग्रत हो, सलीमा प्रयोग में लाने लगी। साथ ही वह सेवा-सुश्रूषा, विचार-विनिमय और अपने त्याग का दिग्दर्शन करा उस पर विजय प्राप्त करने के लिये अपने पूर्ण मन से लग गयी।

वह पथिक के समीप नर्सिंग-होम में ही रहती थी। पथिक अब इतना ठीक हो चुका था कि वह नर्सिंग-होम के लॉन में घूम-फिर सकता था। डाक्टर फिशर अभी एक-आध सप्ताह उसे अपने यहाँ और रखना चाहता था। इन दिनों सलीमा जहा पथिक से बाये हाथ से काम करने के लिये आग्रह किया करती थी, वहा उसमें अपने साथ प्रेम रखने की स्मृति को भी जाग्रत करने का यत्न करती रहती थी।

पथिक अब तक सलीमा के पूर्ण इतिहास से परिचित हो चुका था और मन ही मन वह सलीमा से विवाह कर लेने पर तैयार हो चुका था। केवल वह स्वयं अपने आपको सलीमा से प्रत्येक बात में, समाज की दृष्टि में, छोटा समझता था और चाहता था कि ऐसी अवस्था में सलीमा को स्वयं प्रस्ताव करना चाहिये।

एक दिन नरोत्तम ने पथिक के मन की अवस्था जानकर विवाह का निर्णय करने का निश्चय कराने की ठान ली। वह नर्सिंग-होम में आया तो पथिक और सलीमा लॉन में बैठे इधर-उधर की बातें कर रहे थे। नरोत्तम को देख सलीमा पथिक के समीप से उठ खड़ी हुई और उससे बोली, "लो, अब आप अपने मित्र की रखवाली करें, मैं जरा अपने

वालिद साहब से मिल आऊं।"

यह वही दिन था जिस दिन सलीमा ने एकाएक जाना था कि अकरम के मरवाने में उसके पिता का हाथ है। वह यहीं से खानबहादुर के घर के लिये रवाना हुई थी जहां उसने वह वार्तालाप सुना, जिसने उसके मन में विप्लव उत्पन्न कर दिया था।

नरोत्तम सलीमा से रिक्त किये स्थान पर बैठ गया और स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें पूछने के पश्चात् कहने लगा, "दादा, आज मैं तुमसे एक अत्यावश्यक विषय पर वार्तालाप करने आया हूँ।"

"हां, तो बताओ भाई।"

"तुम्हारा सलीमा के विषय में कैसा विचार है?"

"मैं समझता हूँ कि वह बहुत अच्छी लड़की है।"

"उसके अच्छे होने में तुमसे प्रमाण-पत्र नहीं मांगा गया। तुम जानते हो कि वह तुम्हारे लिये ही घर से भागकर आई है और यथार्थ में उसके भाई का कत्ल भी इसी कारण हुआ है।"

"हां, मैं जानता हूं। परन्तु भैया नरोत्तम, तुम यह भी तो जानते हो कि वह प्रेम करती थी पथिक से और मैं हूं मधुसूदन। तुमको यह तो विदित ही है कि पथिक और मधुसूदन में भारी अन्तर है।"

"मुझे तो कुछ भी अन्तर प्रतीत नहीं होता। क्या कोई, दफ्तर में काम करता हुआ जब घर की बातें भूल जाता है और फिर घर पहुंचने पर जब घर की बातों का स्मरण कर लेता है, बदल रहा होता है। मैं तो दादा, तुम में कोई अन्तर नहीं पाता। तुम मधुसूदन बनो अथवा पथिक, तुम वही आकर्षण रखते हो, जो पूर्णिमा को पागल बनाये हुए था। क्या तुम चाहते हो कि पूर्णिमा की भांति सलीमा भी इस प्रेम के दीपक पर पतंगा बन जाये?"

"परन्तु मेरा पकड़ा जाना और पुनः जेल में ठूँस दिया जाना क्या सम्भव नहीं है? ऐसी अवस्था में विवाह के पश्चात् उसे किस सुख की आशा हो सकती है?"

"दादा, तुम में यही भारी दोष है कि तुम दूसरों की बातें स्वयं सोचने लग जाते हो। प्रत्येक मनुष्य अपने मन की अवस्था के अनुकूल विचार करता है। तुम दूसरे के मन की अवस्था को कैसे समझ और जान सकते हो और फिर इस अधूरे ज्ञान पर, जो युक्ति तुम देते हो क्या मिथ्या अथवा भ्रम पूर्ण नहीं होगी ?"

"तो भैया, तुम क्या चाहते हो ?"

"मैं चाहता हूं कि तुम दोनों का विवाह हो जाये।"

"आप चाहते हैं, सो ठीक। मान लो मैं भी स्वीकार करता हूँ। परन्तु वह क्या चाहती है, कैसे चाहती है यह आप जानते हैं क्या ?"

"तो तुम यह नहीं जानते कि वह क्या चाहती है ? तुम लोग इतनी देर तक बैठे बैठे क्या बातें करते रहते हो ?"

"पहले तो हम महाशय पथिक की योजना चलाने की बातें करते थे। उसके लिये अब समय नहीं रहा। इस वर्ष का काम तो सर्वथा विफल गया। भविष्य में क्या होगा कुछ कहा नहीं जा सकता। युरोप में युद्ध छिड़ जाने के लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। उस समय भारतवर्ष की परिस्थिति क्या होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। योजना उस परिस्थिति के अनुकूल ही होनी चाहिये। सरकार के लिये फौजी-भर्ती करवानी होगी अथवा नहीं, मैं और कोई भी अभी क्या कह सकता है ? अब कुछ दिन से सलीमा एक बात करती है। मुझे बायें हाथ से काम करने पर, और बाईं ओर घूमने, उठने, बैठने के लिये आग्रह किया करती है। मैं इसका अर्थ नहीं समझता और जब उससे पूछता हूं तो हंस देती है।"

नरोत्तम की भी हँसी निकल गयी। उसने शीघ्र ही फिर गम्भीर होकर कहा, "मान लो वह तुमसे कचहरी में जाकर विवाह करने के लिये कहे तो ?"

"यह रीति-रिवाज की बात मैं नहीं पूछता। मैं तो यह कहता था कि वह निर्धन की पत्नी बनने में सबल हो सकेगी ?"

"फिर वही बात। तुमने क्या उसे अभी तक अपने आपको धनी होना बताया है ? वह तो जब से भी तुम्हें जानती है तब से ही तुम्हें जो कुछ तुम हो वही जानती है। तुम उसकी ओर से निरर्थक शंकायें अपने आप बनाते रहते हो। उसे सब कुछ पहिले ही विचार कर लेना चाहिये था।"

"मैं कुछ नहीं जानता, जैसा उचित जान पड़े करो। मुझे आपत्ति नहीं होगी।"

"तो ठीक है। तुम लोगों का विवाह विशेष-विवाह कानून (Special Marrige Act) के अनुसार होगा।"

"हां, यदि उसे आपत्ति न हो तो।"

पथिक मान तो गया परन्तु वह सोचता था कि सलीमा को भारी कष्ट होगा। अभी तो वह अपने पिता से मिलती है। किसी भी समय वह उनसे क्षमा मांग उनके घर जा सकती है परन्तु विवाहोपरांत ऐसा सम्भव नहीं होगा। यदि कहीं वह सरकार द्वारा पकड़कर कैदी बना लिया गया तो उसका कौन सहायक होगा ? इसी प्रकार की बातें उसके मन में पुनः उत्पन्न होने लगी थीं और उसका मन पुनः विचलित हो रहा था।

नरोत्तम यह कहकर, कि सलीमा से कहना कि सेठ साहब उससे मिलना चाहते हैं, मधुसूदन से विदा हो गया।

[१६]

सलीमा जब खानबहादुर के घर से निकली तो उसका मुख क्रोध और विषाद के कारण राख की भांति पीला पड़ रहा था। उसके सिर में चक्कर आ रहा था और उसके लिये पैदल चलना कठिन हो रहा था। भाग्य से मकान के नीचे टैक्सी मिल गयी। नर्सिंग-होम का पता बताकर वह उसमें बैठ गयी।

जब तक वह मोटरकार में बैठी रही और उसके पश्चात् जब वह अपने कमरे में चली गयी, उसके मन में विचारों की इतनी भीड़ लग रही थी कि वह कोई भी बात गम्भीरता-पूर्वक विचार नहीं सकती थी।

कभी वह सोचती थी कि वह मुसलमान नवाब के घर पैदा हुई है। क्यों, क्या यह इत्तिफ़ाक (आकस्मिक घटना) है ? वह एक हिन्दू नवयुवक से प्रेम करने लगी है, क्यों, क्या यह भी इत्तिफाक है ? उसने राजनीतिक कार्यक्रम में भाग लिया, क्या यह भी अकारण घटना थी ? उसके पिता को ये बातें पसन्द नहीं आईं। उन्होंने उसके प्रेमी को मरवा डालना चाहा। प्रेमी के स्थान में उसका भाई मारा गया। अभी भी उसके पिता को पश्चात्ताप नहीं लगता। वह अभी भी अपने हठ पर डटे हैं।

केवल ये बातें ही नहीं थीं जो उसको चिंतित कर रही थीं। वह अपनी परिस्थिति के अनिश्चित होने से कम चिन्तित नहीं थी। उसने अपने माता-पिता को छोड़ दिया था। घर के सुख और आराम को तिलांजलि दे दी थी। भाई, जो उसकी रक्षा के लिये उद्यत हुआ था, अब नहीं रहा था। इन सबसे अधिक जिसको प्रेम करने के कारण यह सब कुछ हुआ था वह बदल गया था। वह पथिक से प्रेम करती थी। पथिक नहीं रहा था। पथिक के स्थान में एक नवीन व्यक्ति आ उपस्थित हुआ था। क्या मधुसूदन और पथिक एक हैं ? बाह्य शरीर से तो एक ही जैसे प्रतीत होते हैं, परन्तु पथिक अथवा मधुसूदन क्या मन से भी एक हैं ? मधुसूदन भी उतना ही आकर्षणमय शरीर रखता है जितना पथिक का था। पथिक से मधुसूदन होने में शारीरिक आकर्षण में परिवर्तन नहीं हुआ था, परन्तु सलीमा के लिये शारीरिक आकर्षण कुछ अधिक मूल्य नहीं रखता था। उसने एक देशभक्त को, कर्मयोगी को, चमत्कारक विचार रखने वाले को और कंचन के समान पवित्र आचरण रखने वाले व्यक्ति को अपने प्रेम का पात्र बनाया था। क्या इन सब गुणों में मधुसूदन भी पथिक ही है ?

उसकी चिन्ता और दुःख का एक और कारण भी था। उस के मन में स्वयं भी अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र देखने की उत्कट अभिलाषा थी। इस अभिलाषा से प्रेरित हो वह राजनीति की गन्दी नाली में अवतीर्ण हुई थी। वह अपने आचरण से अपने भाई को भी इसमें घसीट लाई। भाई

गया और साथ ही उस बृहत् अभिलाषा की पूर्ति के लिये जो कुछ प्रयत्न किया गया था वह भी मिट्टी में मिल गया।

जिस दृष्टिकोण से भी वह अपनी, अपने परिवार की, अपने हृदय के देवता की, अपने देश और जाति की अवस्था पर विचार करती थी, उसकी विचार-धारा कुछ दूर जाकर इस प्रकार अटक जाती थी जैसे मार्ग आगे से बन्द हो गया हो। यह सब कुछ उसे पागल बना रहा था। वह इस परिस्थिति के जाल से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं पाती थी। ऐसी परिस्थिति में मनुष्य को आत्मघात का ही मार्ग दिखाई देता है। सलीमा के सम्मुख भी अपनी परेशानी से मुक्त होने का यह द्वार मुख फैलाकर कई बार आ उपस्थित हुआ था, और वह इस सब झंझट से छुट्टी पाने के इस उपाय को ग्रहण करने के लिये अपने मन को तैयार करती थी। इसी प्रकार के विचारों में लीन, किसी निर्णय तक न पहुंच सकने के कारण, वह नर्सिंग होम में अपने कमरे को अन्दर से बन्द कर अपने पलंग पर लेटी छत की ओर टकटकी लगाये हुई थी।

पथिक ने उसे आते देखा था और वह नरोत्तम का सन्देश उसे देने के लिये पीछे पीछे आया, परन्तु उसके वहां पहुंचने से पहिले ही सलीमा ने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिया था। मधुसूदन ने यह विचार कर कि, वह अभी बाहर आयेगी तो उसे सेठ साहब से मिल लेने के लिये कह देगा, अपने कमरे में, जो सलीमा के कमरे के बगल में ही था चला गया। वह वहा सलीमा की प्रतीक्षा करता रहा। लंच का समय हो गया। खाना आया, परन्तु वह नहीं आई। प्रतीक्षा करते करते चार बजे की चाय का समय होगया। सलीमा अभी भी नहीं आई। पथिक ने अब फिर उसके कमरे को जाकर देखा। वह अभी भी भीतर से बन्द था। उसने इधर उधर से झांककर देखने का यत्न किया। खिड़की का पर्दा कुछ हटा हुआ था। उसमें से झांककर देखने पर पथिक ने देखा कि सलीमा पलंग पर लेटी हुई है। वह हिल-डुल नहीं रही। निश्चल पड़ी है। वह इसका अर्थ नहीं समझ सका। उसने दरवाज़े को खटखटाया।

परन्तु भीतर से न तो आवाज़ आई और न ही दरवाज़ा खुला। पथिक ने फिर दरवाज़ा खटखटाया। इस बार खूब ज़ोर से। इस पर भी दरवाज़ा नहीं खुला। उसने फिर खिड़की में से जाकर झांका। सलीमा अभी भी वैसी ही लेटी हुई थी। यह क्या है? उसे क्या हुआ? क्या बेहोश पड़ी है, अथवा वह भी·····उसे पूर्णिमा की मृत्यु याद आगयी। इस विचार के आते ही वह उतावला हो उठा। उसके मन में आया कि दरवाज़े का किवाड़ तोड़कर भीतर चला जाये। इस विचार की पूर्ति के लिये वह कोई लोहे की मज़बूत वस्तु ढूँढने लगा। इसके लिये वह भागता हुआ डाक्टर फिशर के कमरे की ओर गया। उस कमरे से नरोत्तम, नरोत्तम की स्त्री और सेठ साहब को बाहर निकलते देख वह वहीं रुक गया और बितर-बितर उनका मुख देखने लगा। वे लोग भी मधुसूदन को पागलों की भांति भागते हुए उनकी ओर आते हुए देख और उसे अब अवाक् खड़ा देख विस्मय में ठहर गये। नरोत्तम ने आगे बढ़ मधुसूदन से पूछा, "दादा, क्या बात है, कहां जा रहे हो?"

मधुसूदन के मुख से निकला, "पूर्णिमा·····।" वह आगे कुछ नहीं कह सका। नरोत्तम ने समझा कि मधुसूदन फिर पागल होगया है। उसने मधुसूदन की ज्योतिहीन आंखों और कांपते हुए होठों को देखते ही यह अनुमान लगाया था। वह डाक्टर फिशर की ओर घूम प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगा था। डाक्टर, जो उनके पीछे पीछे आ रहा था, आगे आकर मधुसूदन को कन्धे से पकड़कर हिलाकर पूछने लगा, "वैल, क्या है? कहां भागे जाते हो?"

मधुसूदन को अपनी बात कहने के लिये उचित शब्द नहीं मिल रहे थे। चिन्ता से उसका गला सूख रहा था और वह कुछ भी कहने में अशक्त था। वह हाथ से नरोत्तम को पकड़कर सलीमा के कमरे की ओर ले गया। सब लोग उसके पीछे पीछे गये। मधुसूदन ने खिड़की में से देखने के लिये कहा। नरोत्तम ने देखा कि सलीमा छत की ओर टकटकी बांधे देख रही है। डाक्टर ने भी देखा। उसने कहा, "फेन्टेड (बेहोश

हो गयी है)।"

मधुसूदन ने अब फिर अपने विचार प्रकट करने का यत्न किया। कहा, "शायद पूर्णिमा की भाति.....।"

इस आशंका को सुन नरोत्तम कांप उठा। उसने डाक्टर साहब से भीतर चलने को कहा। डाक्टर ने अपनी छड़ी से, जो वह हाथ में लिये हुए था, खिड़की का शीशा तोड़ डाला और हाथ भीतर डाल चटकनी खोल डाली। खिड़की के मार्ग से मधुसूदन कमरे के भीतर चला गया और उसने भीतर से दरवाज़ा खोल दिया।

सब लोग भीतर चले गये। सलीमा अभी भी खाट पर लेटी हुई थी, और वैसे ही छत की ओर देख रही थी। डाक्टर ने नाड़ी देखी। डाक्टर का हाथ लगते ही सलीमा चौंककर उठ बैठी। सबको अपने चारों ओर खड़े और प्रश्न भरी दृष्टि से देखते हुए देख वह हैरान रह गयी। पूछने लगी, "क्या है ? आप क्या देख रहे हैं ?"

डाक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, "देख रहे हैं कि तुम जीती हो या नहीं।"

नरोत्तम ने अवस्था समझाते हुए कहा, "दरवाज़ा खटखटाया, खिड़की तोड़ भीतर आये, परन्तु तुम्हारी जाग ही नहीं खुली।"

इस पर डाक्टर ने कह दिया, "मैंटल-ट्रान्स (मानसिक एकांत) में थी।"

सलीमा ने अचम्भे से पूछा, "सत्य ही आपने दरवाज़ा खटखटाया था ? मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि बाहर घटाटोप काले काले बादल छा रहे हैं और उनमें गर्जना हो रही है। तो यह दरवाज़ा था। डाक्टर साहब, शोक है आपको खिड़की तोड़नी पड़ी।"

वह पलंग से उठ पड़ी। सबने देखा कि उसका मुख पीला पड़ गया है और उसके हाथ कांप रहे हैं। डाक्टर अब उन बातों के सम्बन्ध में, जो वह सेठ साहब इत्यादि से अपने कमरे में से कहता हुआ आ रहा था, कहने लगा, "अच्छी बात है। आप मिस्टर पथिक को ले जा

सकते हैं। मैं इनके लिये औषधि लिख देता हूँ। यह पीते रहें। ठीक हो जायेंगे। हां, तो सलीमा को 'डिज़िटैलिस' की एक खुराक पी लेनी चाहिये।"

इतना कह डाक्टर वहां से चला गया। सलीमा ने लम्बी सांस ली और पुनः पलंग पर बैठ गयी। सेठ साहब ने पूछा, "क्यों क्या है? तुम्हारा रंग पीला क्यों हो गया है?"

सलीमा के मस्तिष्क पर भारी दबाव पड़ रहा था। अब वह दबाव सब लोगों के आने से ढीला पड़ गया। इस आकस्मिक दबाव के हटने से उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। वह पहले तो इन आँसुओं को छुपाने का यत्न करने लगी, परन्तु इसमें सफल न हो सकने से आंचल से मुख ढांक लाचार हो रोने लगी। तपस्विनी, उसे इस प्रकार अधीर होते देख, पलंग पर उसके पास बैठ गयी और पीठ पर हाथ फेरते हुए बोली, "बहिन सलीमा, क्यों रोती हो? क्या हुआ है जिससे तुम्हें इतना दुःख हो रहा है?"

सब के बहुत समझाने-बुझाने पर सलीमा के आंसू थमे। उसने संक्षेप में वह सब बता दिया जो उसने खानबहादुर के स्टडी-रूम में खड़े खड़े सुना था। यह रहस्य सुन सबकी आंखों में विषाद के आंसू झलकने लगे। अन्त में सलीमा ने कहा, "मेरे मन में आता है कि कल कोर्ट में जाकर अपना बयान दे दूं।"

यह सुन सब घबराकर बोल उठे, "नहीं नहीं!"

"क्यों?" सलीमा ने सबकी ओर देखते हुए पूछा।

"नवाब साहब ने भूल की है। उस भूल का फल उनको मिल भी गया है। उन्होंने अपनी लड़की को विचारानुकूल मुसलमान बनाये रखना चाहा और एक ख्याली बात, अर्थात् इस्लाम का वह रूप जो वह समझते हैं, को बचाने के लिये उन्होंने वास्तविक वस्तु अर्थात् अपनी लड़की खो दी। उन्होंने अशुद्ध विचार से एक हिन्दू काफ़िर को मरवाना चाहा था और खो बैठे हैं अपना इकलौता पुत्र। यथार्थ में तो उनको दण्ड मिल ही गया है। वह असल और नकल में अन्तर न जान, इस छोटी

सी भूल का बहुत भारी दण्ड पा चुके हैं। हम समझते हैं कि भूल से अधिक दण्ड मिल चुका है। इससे और अधिक करोगी तो अन्याय हो जायेगा।"

"परन्तु मेरा आत्मा नहीं मानता। मैं असल कातिल के स्थान में किसी दूसरे को फांसी चढ़ते नहीं देख सकती।"

सेठ साहब ने कहा, "इस देश में अनेकों इससे भी बड़े बड़े अन्याय हो रहे हैं। पहले उन अन्यायों को तो मिटा लें। यहां तो असल दोषी को पर्याप्त से अधिक दण्ड मिल चुका है।"

सलीमा को अपने मिथ्या विचारों के एक पक्ष का भास हो गया। उसने कहा, "मैं नहीं जानती, परन्तु तीन घण्टे से मैं इसी समस्या को सुलझाने का यत्न कर रही हूँ।"

"बस इसीलिये इतनी चिंतित थीं?"

"नहीं और भी बातें हैं, परन्तु वे गौण हैं। मुख्य तो यही है कि मेरा आत्मा मुझे बार बार कह रहा है कि वास्तविक दोषी वालिद साहब हैं। उन्हें दण्ड दिलवाना चाहिये।"

अब तपस्विनी की बारी थी। उसने कहा, "यह तो मानना ही पड़ेगा कि नवाब साहब भारी दोषी हैं, परन्तु क्या उनको उचित से अधिक दण्ड नहीं मिल चुका? किसी का इकलौता बेटा मर जाय यह क्या कम मुसीबत है?"

नरोत्तम ने कहा, "सलीमा बहिन, छोड़ो इस बात को। और क्या बात है जिसकी तुम्हें चिन्ता है?"

"कुछ नहीं। वह तो मामूली है।"

"मैं जानती हूँ।", तपस्विनी ने कहा।

"तुम?" सबने हैरानी में पूछा।

"हां, इन्हें मधुसूदन दादा के विवाह करने की चिन्ता लग रही है।"

सब हँसने लगे। सलीमा का मुख लज्जा से लाल हो उठा। नरोत्तम ने हँसी के सूत्र को लम्बा करते हुए कहा, "तो क्या सलीमा की निगाह

में कोई ऐसी लड़की है जो पागल दादा से विवाह करना स्वीकर कर ले।"

"एक लड़की को तो मैं जानती हूँ," तपस्विनी ने कहा।

"तब तो ठीक है। दादा, तुम्हें तो स्वीकार है न।"

सलीमा और सुन नहीं सकी। उसके मन में भांति भांति की आशंकायें उत्पन्न हो रही थीं। वह नहीं जानती थी कि वह क्या उत्तर देगा? अतएव उठकर वह कमरे से बाहर जाने लगी तो तपस्विनी ने उसकी बांह पकड़ ली और उसे घसीट कर अपने पास बैठाते हुए कहा, "भागी कहां जाती हो? देखो, दादा पर तरस खाओ न। उसके बनते काम में विघ्न नहीं डालना चाहिये।"

नरोत्तम ने कहा, "तो दादा, क्या सम्मति है आपकी?"

पथिक ने मुस्कराते हुए कहा, "पागल के साथ तो किसी पगली का ही विवाह हो सकता है। यदि कोई मेरे जैसी पगली मिल जाय तो।"

"वह मालूम तो पगली ही होती है", तपस्विनी ने कहा, "परन्तु न्यूनाधिक की बात मैं नहीं जानती। हां, वह मुसलमान है।"

"नहीं," सलीमा बोल उठी, "वह लड़की मुसलमान नहीं है।"

"तो तुम भी उसे जानती हो?" सेठ साहब ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा।

सब हंसने लगे। सलीमा की भी हंसी निकल गई।

तपस्विनी ने सलीमा की ओर देखकर पूछा, "मैं तो समझती थी कि वह मुसलमान है।"

"नहीं," सलीमा ने गम्भीर होकर कहा, "अब वह मुसलमान नहीं रही। आज दोपहर से उसने इस्लाम से ताल्लुक तोड़ दिया है।"

"किसी आर्यसमाजी पण्डित ने शुद्धि की होगी?"

"नहीं। उसे हिन्दुस्तान में माने जाने वाले इस्लाम से नफरत हो गई है।"

"और टर्की में माने जाने वाले इस्लाम से?"

"वह यह नहीं जानती। उसने वहाँ के लोगों के मज़हब को देखा

नहीं है।"

"इस पर भी बिना शुद्धि के तो वह मुसलमान ही होगी न। क्यों दादा, क्या विचार है आपका?"

"मैं समझता हूँ," मधुसूदन ने कहा, "पागलों की दुनिया में तो पागलों की बातें होनी चाहियें। यह शुद्धि-संस्कार तो बुद्धिशील व्यक्तियों में ही शोभा देता है। वही दो वेद-मन्त्र पढ़ने से किसी को हिन्दू मान लेते हैं और कल्मा पढ़ने से मुसलमान।"

"तो आप क्या चाहते हैं?" तपस्विनी ने पूछा।

"मैं तो इन्सान इन्सान में विवाह होना मानता हूँ।"

"इतना तो वह है।"

"तो ठीक है। मुझे स्वीकार है।"

[२०]

कोर्ट में नियमानुकूल प्रार्थना-पत्र दे दिया गया और यथा समय विवाह हो गया।

सलीमा को अपने प्रयास में सफलता मिली। उसे बहुत सन्तोष था। वह अति आनन्दित थी। विवाह के दूसरे दिन बहुत प्रातःकाल सलीमा को पथिक ने जगाकर कहा, मैंने एक योजना बनाई है।"

"हिन्दुस्तान को आजाद करने की?"

"वह भी तो होगी, परन्तु अपने समय पर। जो उपाय हमने चलाया था वह तो विफल गया। दूसरी योजना इससे भी अधिक प्रबल और व्यापक होनी चाहिये। उसके लिये गम्भीरता पूर्वक विचार करने की, कई लोगों से परामर्श करने की और साधन एकत्रित करने की आवश्यकता है। उसके लिये समय चाहिये। हमें तो अभी 'हनीमून' मनाना है।

"हां, तो फिर?" सलीमा ने कहा।

"हम दोनों यहां से चुपचाप चल दें। मेरी इच्छा काश्मीर-यात्रा के लिये हो रही है।"

"परन्तु चुपचाप क्यों?"

"केवल इतना लिखकर रख जायेंगे कि हम 'हनीमून' को जा रहे हैं।"

"नरोत्तम भैया को भी नहीं बतायेंगे क्या?"

"नहीं, किसी को नहीं।"

"इससे लाभ क्या होगा?"

"मैं अब किसी स्थान पर नाम बदल कर रहूँगा। वहां एकान्त में बैठकर भविष्य का कार्यक्रम बनायेंगे। यदि सेठ साहब इत्यादि को बता कर गया तो वे नहीं जाने देंगे। मैं उनके मुख पर उनकी बात का विरोध नहीं कर सकता।"

"कश्मीर में क्या एकान्त मिलेगा?"

"चल कर देखो तो सही। 'हनीमून' तो होगा ही।"

कश्मीर-यात्रा के विचार ने तो सलीमा के मन में भी गुदगुदी उत्पन्न कर दी। वह राजी हो गई। सलीमा ने पूछा, 'बिना बताये कैसे जायेंगे? दिन भर तो घर में कोई न कोई मेरे पास रहता है।"

"मेरी राय है कि ये सब भूषण और कपड़े, जो तपस्विनी बहिन ने हम लोगों को दिये हैं, एक में बांध लो। इस समय चार बजे हैं। घर भर के लोग सो रहे हैं। हम दबे पांव चलेंगे तो बिना किसी को जगाये जा सकेंगे।"

सलीमा ने कपड़े और आभूषण बांध लिये उन्हें एक सूटकेस में रख लिया और वे दोनों बहुत ही साधारण कपड़े पहिन चुपके से कोठी के पिछले दरवाजे से निकल गये।

घूमकर जब वे कोठी के सामने आये तो साथ ही कोठी के फाटक पर एक पुलिस-लारी खड़ी थी और कई पुलिस वाले वहाँ दरवाजे पर खड़े थे। पुलिस-इन्सपैक्टर चौकीदार से तकरार कर रहा था। सलीमा ने कहा, "यह क्या है? इतनी सुबह ये लोग यहाँ इकट्ठे क्या कर रहे हैं?"

वह बलवे से डरी हुई थी और समझती थी कि उसी के सम्बन्ध में